"कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा-साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन"

(2009 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की
पीएच.डी.–उपाधि (संस्कृत)
के लिए प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

(कला–संकाय)

शोध–निर्देशिका
डॉ. साधना कंसल,
व्याख्याता, संस्कृत–विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.)

शोधकर्त्री
श्रीमती अशोक कंवर शेखावत,
व्याख्याता, संस्कृत–विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2015-16

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती अशोक कंवर शेखावत आत्मजा श्री अर्जुन सिंह शेखावत द्वारा प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध **"कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा-साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन" (2009 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में)** मेरे निर्देशन में तैयार किया गया है। यह शोध प्रबन्ध मौलिक एवं सारगर्भित है। शोध–प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु अग्रसारित किया जाता है।

डॉ. साधना कंसल,
व्याख्याता, संस्कृत–विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
कोटा (राज.)

समर्पणम्

स्नेहश्रद्धाविश्वासौदार्यस्वरूप,

प्रेरणास्रोतस्वरूप,

ब्रह्मलीन,

परमपूज्य पिता

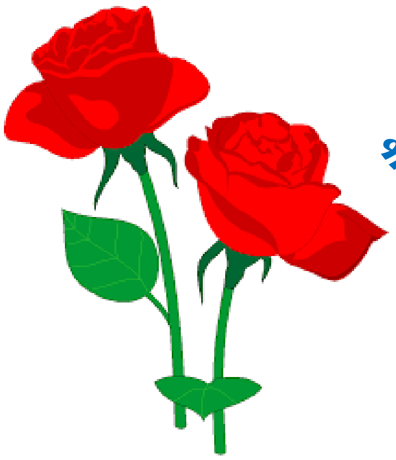

श्री अर्जुन सिंह शेखावत

के

चरणकमलों

में

श्रद्धा से

समर्पित है यह शोध-प्रबन्ध।

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।

मनुस्मृति 2/227

मनुष्यों की उत्पत्ति में माता-पिता जिस कष्ट को सहन करते हैं, उस ऋण से मुक्ति सैंकड़ों वर्षों में भी नहीं हो सकती।

कृतज्ञता-ज्ञापन

वृहत्सहायः कायान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।।

अमूर्त संकल्प की शोधप्रबन्धरूपी साकार परिणति के मार्ग में असंख्य स्नेहिल आशीषों, प्रेरणा, सहयोग एवं सहायता रूपी ऋणों को स्वीकारती आयी हूँ। उस कृतार्थता की अनुभूति को अभिव्यक्ति देना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं है, परन्तु भावाञ्जलि के श्रद्धाकण समर्पित है उन सभी के प्रति, जो इस यात्रा में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक, मानसिक एवं भावनात्मक सम्बल बने हैं।

सर्वप्रथम शतशत वंदन विघ्नविनायक विघ्नेश एवं वागेश्वरी मां शारदे को, जिनकी कृपा से पथ–कण्टकों का निवारण कर लक्ष्य साधने में सफल हो सकी हूँ।

माँ सरस्वती की वरद–पुत्री सौम्य, सहज एवं उदारहृदया शोधनिर्देशिका डॉ. साधना कंसल महोदया के सरलस्वभाव एवं सहज–निर्देशन का ही परिणाम है कि मेरा शोधकार्य निर्विघ्न पूर्णता की ओर अग्रसर हो सका है। पथ पर अडिग रहने में आपकी सौम्यता एवं मानसिक सम्बल ही आधारशिला है।

शोधप्रबन्ध के लिए प्रेरित करने वाली परमस्नेहिल अनुजा डॉ. अलका बागला की मैं हृदय से ऋणी हूँ जिन्होने हर पल मेरा मनोबल बढ़ाया।

शोधप्रबन्ध के विषयचयन से लेकर अद्यावधि यथोचित परामर्श एवं सहायता के लिए मैं परश्रद्धेय डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय के प्रति कृतज्ञ हूँ।

डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र का, जो ऋण मुझ पर है उससे शाब्दिक आभार मात्र से उऋण होना असंभव है। विषयचयन से शोधप्रबन्ध के ग्रन्थरूप में आने तक आपका अद्भुत सहयोग एवं मार्गदर्शन रहा। मेरे विनम्र अनुरोध पर आपने अपना संपूर्ण साहित्य मुझे प्रेषित कर दिया। राष्ट्रीय संगोष्ठियों में आपके कर्तृत्व पर मेरे द्वारा प्रस्तुत शोधलेखों को सराह कर मुझ अल्पज्ञ का आत्मबल बढ़ाया। आपके प्रति मैं हृदय से नतमस्तक हूँ।

मेरे इस ग्रन्थ के प्रणयन में मेरी पूजनीया माता जी श्रीमती लक्ष्मी कँवर राठौड़ **का असीम स्नेह, प्रोत्साहन एवं** आशीष मेरी ऊर्जा के स्रोत रहे हैं। जीवन पथ पर, जो कुछ भी मेरी उपलब्धियां रही है, उन सबका श्रेय उनके उस विश्वास को जाता है, जो उन्हें मुझ पर है। मेरी प्रत्येक उपलब्धि पर गौरवान्वित महसूस करने वाले एवं मुझ पर अखण्ड विश्वास रखने वाले पिता बीच राह में साथ छोड़कर चले गए, परन्तु आपकी स्मृतियां व आपका

विश्वास मेरा हौंसला है। मेरा हर सपना पूरा होने पर मुझे लगता है कि मैंने उनके सपनों को साकार कर पितृ–ऋण से किञ्चित् मुक्ति पाई है।

मेरे जीवन सहचर गिरीश पाल सिंह मेरी हर उपलब्धि में मेरे साथ कदम से कदम मिलाकर चले हैं। गृहस्थ जीवन के साथ ही मेरी प्रत्येक सफलता में वो मेरे पूरक रहे हैं। मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ कि उन्होने मेरे मार्ग को सदैव निष्कण्टक बनाए रखा। अर्द्धांगिनी होने के नाते मेरी सफलता उनकी ही सफलता है। श्रद्धेया उर्मिला दीदी (ननद) एवं स्नेहिल अनुज महावीर का स्नेह सम्बल भी जीवनपथ में सदैव साधक रहा है। मेरे पुत्र व पुत्री चिरंजीवी, अभिषेक एवं अंकिता मेरे भावनात्मक सम्बल हैं। मेरा संघर्ष उनके जीवन का पाथेय बन सके तो मेरा माँ होना संभवतः सार्थक हो पाएगा।

परमपूज्य प्रो. के.बी. भारतीय एवं डॉ. सरिता भार्गव द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन के लिए मैं उपकृत हूँ।

महाविद्यालय परिवार के आदरणीय स्नेहिल स्वजन डॉ. फूलसिंह गुर्जर, डॉ. सज्जन पोसवाल, प्रो. अर्जुमन्द कुरैशी, डॉ. वी.पी. सिंह, प्रो. रूपम् कुलश्रेष्ठ, डॉ. प्रणवदेव, डॉ. रेखा भदौरिया, डॉ डी.एस.एन. प्रसाद, डॉ. नीलकमल राठौड़ की कृतज्ञ हूँ कि समय–समय पर आपका प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन मिलता रहा।

शोध के लिए पुस्तकसंकलन में सहयोगी डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय, डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, डॉ. सरिता भार्गव, डॉ. अनीता वर्मा, डॉ. अलका बागला, पुस्तकालयाध्यक्ष पी.डी. गुप्ता एवं श्रीरामपुस्तक भण्डार के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ।

जिन पुस्तकों को सन्दर्भग्रन्थों के रूप में उद्धृत किया गया है, उन सबके ग्रन्थकारों को कोटिशः आभार। प्रत्यक्ष रूप से अपनी ज्ञान रश्मियों से ग्रन्थ को आलोकित करने वाले ज्ञान–गुरूओं के प्रति मस्तक नत कर कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

शोध प्रबन्ध के उत्कृष्टकोटिक एवं सृजानात्मक टंकण के लिए मैं इमरान कम्प्यूटर, झालावाड़ के इमरान खान की आभारी हूँ जिन्होने विषम परिस्थितियों में पूर्णमनोयोग एवं धैर्य से शोधप्रबन्ध को आकार देने का कार्य किया है।

इस शोधग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण में अज्ञानतावश हुई त्रुटि के लिए मेरा अल्पज्ञान ही दोषी है। श्रेष्ठ सब पथ प्रदर्शन का परिणाम है।

विनयावनत

श्रीमती अशोक कंवर शेखावत,
व्याख्याता, संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
झालावाड़ (राज.)

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
उपक्रम (भूमि)		III-XVIII
प्रथम अध्याय	**कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व** **व्यक्तित्व-खण्ड** ❖ जन्मस्थान एवं जन्मकाल ❖ वंशावली ❖ विद्यार्थी जीवन एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ ❖ पद, कार्यभार एवं कार्यक्षेत्र ❖ पुरस्कार एवं सम्मान **कर्तृत्व-खण्ड** ❖ अभिराज-वाङ्मय-परिचय	1-45
द्वितीय अध्याय	**अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा सम्बन्धी रचना-साहित्य का पूर्ण परिचय एवं वस्तु-विश्लेषण** ❖ संस्कृत-कथा सम्बन्धी रचनाओं का वर्गीकरण एवं विधा-विशेष की परिभाषा ❖ कथाओं का वस्तु-विश्लेषण, मूल मंत्र एवं जीवन-दर्शन ❖ संस्कृतेतर (हिन्दी) भाषा में रचित कथा-साहित्य का संक्षिप्त परिचय	46-128
तृतीय अध्याय	**मिश्र जी के कथा-साहित्य में लोक-चेतना** ❖ सामाजिक-चेतना ❖ स्त्री-चेतना ❖ दलित-चेतना ❖ सांस्कृतिक-चेतना ❖ धार्मिक-चेतना ❖ आर्थिक-चेतना ❖ ऐतिहासिक-चेतना	129-195

चतुर्थ अध्याय	मिश्र जी की कथाओं की आलंकारिकी–समीक्षा ❖ कथाओं में रस–निष्पत्ति ❖ कथाओं की अलंकार–योजना ❖ कथाओं मे रीति –संघटना ❖ कथाओं का भाषागत वैशिष्ट्य	196-240
पञ्चम अध्याय	**कथाओं में मिश्र जी का पाण्डित्य तथा नैसर्गिकी कवित्व–प्रतिभा** ❖ कथाओं में शास्त्रीय–ज्ञान ❖ कथाओं में दार्शनिक–ज्ञान ❖ कथाओं में व्यावहारिक–ज्ञान ❖ कथाओं में मनोवैज्ञानिक–ज्ञान ❖ कथाओं में प्रकृति–चित्रण	241-272
षष्ठम अध्याय	**कथाशास्त्रीय तत्त्वों एवं समसामयिकता के आधार पर मिश्र जी का समीक्षण** ❖ कथाकार की कथावस्तु ❖ कथाकार का वातावरण–चित्रण ❖ कथाकार के पात्र एवं चरित्र–चित्रण ❖ कथाकार की कथा–शैली ❖ कथाकार के कथोपकथन अथवा संवाद ❖ कथाकार की कथाओं का उद्देश्य ❖ कथाकार का युगीन समाकलन	273-309
उपसंहार	**उपसंहार**	310-316
परिशिष्ट	❖ सुभाषितानुक्रमणिका ❖ लोकोक्तियाँ/मुहावरे ❖ स्फुट–पद्य–संकलन	317-332
सहायक-ग्रन्थ-नामानुक्रमणिका	❖ अभिराज–वाङ्मय ❖ अन्य सहायक–ग्रन्थ ❖ व्याकरण एवं कोश–ग्रन्थ ❖ शोध–पत्रिकाएं	333-341

उपक्रम (भूमि)

1) संस्कृत साहित्य का महत्त्व, वर्गीकरण एवं कथा की विकास यात्रा

साहित्य जनमङ्गल का साधक है। जनमङ्गलसाधक अर्थ में **'हितेन सह इति सहितं'** व्युत्पत्ति के अनुसार तथा **'सहभावश्चाष्टादशप्रस्थानभिन्नानां विद्यानाम्'** में निहित सहभाव अर्थ में सह+इतच् से निष्पन्न **सहित** पद से 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च' से **ष्यञ्** प्रत्यय होकर साहित्य पद सिद्ध होता है। अष्टादश विद्याओं अर्थात चार वेद, छः वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और अर्थशास्त्र का सहभाव साहित्य है अथवा सृजन के भाव को स्फुट् रूप से अभिव्यक्त करने में समर्थ शब्द और शब्दों में निहित अर्थ का सुन्दर एवं जनमंगलकारी सामञ्जस्य साहित्य है।

शब्दार्थ साहित्य से जनमङ्गलसाधना के सुन्दरसाध्य को साधने वाले कवि की सृष्टि विधाता की सृष्टि से बढ़कर है। उस काव्यसृष्टि का अभिनंदन करते हुए आचार्य मम्मट कहते है–

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।

(काव्य प्रकाश 1/1)

साहित्य शब्द संकुचित अर्थ में काव्य(गद्य–पद्य) नाटकादि के लिए प्रयुक्त होता है। विक्रमांकदेवचरित में बिल्हण ने काव्यामृत को साहत्यमंथन से उद्भूत बताया है–

'साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं काव्यामृत रक्षत हे कविन्द्राः।
यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति।'

(बिल्हण विक्रमांकदेवचरितम् 1/11)

संस्कृत साहित्य का महत्त्व

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में जो भी घटित होता है वह साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। कवि की अनुभूति ही काव्य रूप में अभिव्यक्ति पाती है। यह अभिव्यक्ति किसी भी भाषा में हो सकती है। भाषा केवल माध्यम है। भाव ही मुख्य है, परन्तु

चूंकि यह प्रमाणित है कि संसार की समस्त कृतियों में ऋग्वेद प्रथम कृति है तो लगभग यह भी प्रमाणित हो जाता है कि संस्कृत भाषा प्राचीनतम भाषा है। अतः संसार का प्राचीनतम ज्ञानविज्ञानकोष इसमें निहित है।

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के उत्कृष्ट जीवनमूल्यों, जीवनदर्शन, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं का प्रतिबिम्ब है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का संवाहक भी है। लगभग 3000 वर्ष पहले वैश्विक धरातल पर जब अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रारम्भिक प्रयास चल रहा था, उस समय भारतभूमि पर वाग्देवी अपने सम्पूर्ण एवं उत्कृष्ट रूप मे ऋग्वेद के सूत्रों के रूप में अवतरित हो चुकी थी। तब से अनवरत संस्कृतसाहित्यसरिता अविरल एवं सहज गति से प्रवाहमान है। धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष जैसे पुरूषार्थों की परिकल्पना कर उसे व्याख्यायित करने वाली, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम के रूप में जीवन को एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में समाज को व्यवस्था एवं सन्तुलन प्रदान करने वाली, सोलह संस्कारों, तीन ऋणों, पंच महायज्ञों एवं गुरूकुल शिक्षा से जीवन को परिमार्जित करने वाली तथा अपने आध्यात्मिक जीवन दर्शन से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण दर्शन है संस्कृत साहित्य, जीवन के श्रेय एवं प्रेय दोनों पक्षों का सामंजस्य है संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास की सम्पूर्ण झांकी है संस्कृत साहित्य।

ज्ञान के अमूर्तस्वरूप वेद यद्यपि अपौरूषेय है तथापि संहिता के रूप में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के आंकलन के अनुसार वेदों का समय लगभग आठ हजार वर्ष पूर्व का ठहरता है। ऋग्वेद की प्रथम ऋचा के अविर्भाव से लेकर अद्य पर्यन्त संस्कृतकाव्यसरिता समस्त विषम परिस्थितियों के प्रहारों के बीच अविच्छिन्न रूप से सतत प्रवाहमान है।

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी चार पुरूषार्थो का विवेचन करने वाले असंख्य ग्रंथो से विस्तारमय संस्कृत साहित्य का भण्डार अगाध है। वेद ,उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, वेदाङ्ग, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे धर्मप्रवर्तन करने वाले ग्रन्थ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वात्स्यायन का कामशास्त्र, दर्शनों के रूप में मोक्षशास्त्र, सांसारिक कामनाओं की पूर्ति करने वाले अन्यान्यशास्त्र संस्कृत साहित्य में विराजमान है। यह जीवन के श्रेयस्कर एवं

प्रेयस्कर शास्त्रों का समागम है। धर्म, संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान, विज्ञान, साहित्य के प्रमाणित स्रोत के रूप में संस्कृत साहित्य का महत्त्व वैश्विक धरातल पर प्रतिष्ठापित है।

संस्कृत शब्द **सम्** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है—परिष्कृत, परिमार्जित, व्यवस्थित एवं शुद्ध। भाषा के अर्थ में संस्कृत शब्द का प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में सर्वप्रथम प्राप्त होता है। इससे पूर्व केवल भाषा शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। रामायण को लौकिक संस्कृत में सृजित आदिकाव्य एवं वाल्मीकि को आदिकवि स्वीकार किया जाता है। रामायण से पूर्व का साहित्य वैदिक साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य **वैदिक** एवं **लौकिक** संस्कृत साहित्य के रूप में स्पष्ट रूप से विभाजित है।

वैदिक साहित्य में वेद एवं वेदों में ऋग्वेद प्राचीनतम साहित्य सर्जन है। वेद भारतीय धर्म, दर्शन एवं प्राचीन कवित्व की अपार निधि है। वेद शब्द के व्युत्पत्ति मूलक अर्थ के सम्बन्ध में विचार करते हुए 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा है—'विदन्ति, जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विदन्ति अथवा विदन्ते, लभन्ते, विन्दन्ति, विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सत्यविद्यां यैर्येषुवा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।' अर्थात् वेद मानव मात्र की सत्य विद्या के साधन एवं स्रोत है। वस्तुतः अद्भुत प्रतिभासम्पन्न ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत ज्ञानराशि का नाम ही वेद है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिता साहित्य एवं वेदाङ्ग साहित्य सम्मिलित है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि रचित रामायण एवं महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत ऐसे विशालकलेवर ग्रन्थ है जिनसे अद्यपर्यन्त साहित्य की समस्त विधाएं अनुप्राणित होती रही हैं। इसीलिए उन्हे उपजीव्य काव्य के नाम से पुकारा जाता है। इन दोनों ग्रन्थों मे सर्वाधिक काव्यों का स्रोत निहित है।

पुराण संस्कृत वाङ्मय के गरिमामय ग्रन्थ हैं। इन्हें वेदों का पूरक माना जाता है। भविष्य, भागवत्, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, वामन, वराह, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गुरूड़, कूर्म तथा स्कन्दपुराण।

<u>संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण</u>

अभिराज राजेन्द्रमिश्र अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रंथ में काव्य का लक्षण करते हुए कहते हैं–

'काव्यं रसात्मकं चेद् शब्दार्थकलेवरम्।
भिद्यते खलु निर्मित्या रूचिरूपप्रभेदतः।।

(अभिराजयशोभूषणम् 4/1)

तदनन्तर प्राचीन शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य के भेदों का निरूपण करते हुए वे कहते हैं कि **दृश्य** एवं **श्रव्य** के भेद से काव्य दो प्रकार का होता है–

दृश्यश्रव्यप्रकाराभ्यामादौ काव्यं द्विधा मतम्।
रूपरूपकनाट्यानि दृश्यनामान्तराणि च।

(अभिराजयशोभूषणम् 4/19)

दृश्य काव्य के दो भेद है **रूपक एवं उपरूपक।** रूपक के दस भेद है– नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क तथा वीथी।

उपररूपक के अठारह भेद है– नाटिका, भाणिका, गोष्ठी, दुर्मल्ली, विलासिका, त्रोटक सट्टक, काव्य, रासक, नाट्यरासक, संलापक, श्रीगदित, प्रेङ्खण, शिल्पक, हल्लीश, प्रकरणी, प्रस्थान तथा उल्लाप्यक।

श्रव्य काव्य का भी प्राचीन विद्वानों की तरह उन्होनें तीन प्रकार का बताया है– **गद्य, पद्य तथा मिश्र अथवा चम्पू-**

'पद्यगद्यमयं श्रव्यं मिश्रञ्चेति त्रिधास्थितम्
पदैर्नियमितं पद्यं गद्यं यद्धि निगद्यते।

(अभिराजयशोभूषणम् 4/51)

नियताक्षरमाख्यातं नाट्यशास्त्रकृता पुनः
पद्यं गद्यं तथैवेदं घुष्टमनियताक्षरम्।

(अभिराजयशोभूषणम 4/53)

पद्यकाव्य के भेद महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं मुक्तक काव्य कहे गए है। खण्ड काव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर इसे अन्योक्ति–काव्य, स्त्रोत–काव्य, नीति–काव्य, प्रहेलिका–काव्य,

विमान–काव्य, यात्रा–काव्य, नर्म–काव्य, राग–काव्य, लहरी–काव्य, दूत–काव्य, संदेश–काव्य आदि नामों से अभिहित किया जा सकता है।

गद्यकाव्य पुनः चार प्रकार का होता हैं– **मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय एवं चूर्णक**।

प्रबन्धात्मक गद्य को प्राचीन आचार्यो द्वारा **कथा एवं आख्यायिका** के रूप में विभाजित किया है तथा उसे 'प्रबन्धकल्पनाकथा' एवं 'आख्यायिका इतिवृत्ताश्रिता' के रूप में परिभाषित किया है, परन्तु सम्प्रति कथाओं का स्वरूप वैसा नही है जैसा प्राचीन काल की वृहत्कथा आदि का। इसका विस्तृत विवेचन कवि ने पुनर्नवा एवं चित्रपर्णी की प्रस्तावना तथा अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ अभिराजयशोभूषणम् में किया है।

संस्कृत कथा विकास यात्रा

संस्कृत साहित्य के अवलोकन से प्रतीत होता है कि साहित्य–सर्जन की प्रक्रिया में कथासाहित्य का मूल वैदिक एवं पौराणिक आख्यानों में देखने को मिलता है। भारतीय एवं भारतेतर साहित्य पर अपना व्यापक प्रभाव स्थापित करने वाले कथा साहित्य का विशाल संसार वैदिक काल से लेकर अद्यपर्यन्त अत्यन्त लोकप्रिय, स्तरीय, उपादेय एवं समृद्ध रूप से विराजमान है। वैसे तो साहित्य की प्रत्येक विधा में 'कथा–तत्त्व' मूल रूप से विद्यमान रहता है, परन्तु लोक जीवन में शुद्ध कथाविधा में कोई अद्‌भुत ही बात है। संस्कृत साहित्य में कथाओं का विशाल भण्डार है। वैदिक, जैन एवं बौद्ध तीनों धार्मिक परम्पराओं में उपदेशात्मक जीवन मूल्यों से परिपूर्ण एवं सहज रूप में संस्कारों को मानव मन में समारोपित करने वाली कथाओं की अविरल शृंखला है।

मानव की प्रकृति चूंकि स्वाभाविक रूप से कौतुहलपूर्ण एवं अद्‌भुत की ओर आकृष्ट होने वाली है। सामान्य से अलग जो कुछ भी असाधारण, विलक्षण एवं नवीन है, वही विस्मय की जन्मभूमि है। मानवमन की इसी कौतुहलमयी प्रवृत्ति को उपदेश के सहज मार्ग के रूप में प्रयोग करते हुए समाज के दिग्दर्शक तत्त्ववेत्ताओं ने कथा नामक काव्य परम्परा के माध्यम से मानव जीवनोपयोगी श्रेष्ठ जीवनमूल्यों को मानव जीवन में प्रविष्ट करवाया। वैश्विक धरातल पर संस्कृत सहित्य को कथा का उद्‌गम स्थल माना जाता है। कथाओं की यह अविशृंखल परम्परा मानव मन के कौतुहल एवं जिज्ञासा को शान्त करते हुए अत्यन्त सहज, परन्तु अद्‌भुत रूप से धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को सिखाने का कार्य करती हैं।

नीतिकथाओं अथवा लोककथाओं के रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय शिक्षण परम्परा के रूप में विराजमान कथा–साहित्य के बीज वैदिक काल में ही ऋग्वेद में मानवामर्त्यकथा एवं छान्दोग्योपनिषद के उद्गीथाश्वाख्यान जैसे संवादसूक्तों एवं अन्य स्तुतिपरक सामान्य सूक्तों में भी विभिन्न देवों के मनोरंजक एवं उपदेशपरक आख्यानों के रूप में मिलते हैं। इन आख्यानों की सूचना सामान्य रूप में ऋक्संहिता में तथा विस्तार से यास्क के निरूक्त में, शौनक के वृहद्देवता में, कात्यायन–सर्वानुक्रमणी की षड्गुरूशिष्यप्रणीत वेदार्थदीपिका व्याख्या में तथा तदनुसार सायण के वेदभाष्यों में उपलब्ध होती है। ईसापूर्व तृतीय शताब्दी के भरहुतस्तूप की नीतिकथाओं के रूप में अथवा पुरूरवा–उर्वशी तथा शकुन्तलोपाख्यान जैसे पौराणिक आख्यानों में कथा विकास यात्रा के अनेक पदचिह्न परिलक्षित होते हैं।

ईसा की तीसरी शताब्दी में पं. विष्णुशर्मा रचित पञ्चतन्त्र एवं नारायण पण्डित की हितोपदेश नामक उपदेशपरक कथासंग्रह **नीतिकथाओं** का प्रतिनिधित्व करते है जबकि ईसा की प्रथम शताब्दी मे रचित गुणाढ्य की वृहत्कथा तथा सोमदेव की कथासरित्सागर **लोककथाओं** का प्रतिनिधित्व करती है। इसी परम्परा में आगे चलकर बुधस्वामी द्वारा वृहत्कथाश्लोकसंग्रह एवं कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा वृहत्कथामञ्जरी के रूप में कथा साहित्य के मील के पत्थर सिद्ध होने वाले संग्रह रचे गये, जो अर्वाचीन काल में भी कथा साहित्य के आदर्शस्वरूप है।

कथासृजन की इस अनवरत एवं सतत प्रक्रिया में उदयसुन्दरीकथा, वेतालपंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका, शुकसप्तति, पुरुषपरीक्षा, कथार्णव, भोजप्रबन्ध जैसे महनीय ग्रन्थरत्न साहित्य मंथन से उद्भूत होकर मानवकल्याण के लिए बहुमूल्य सिद्ध हुए।

प्राचीन कथासाहित्यसरिता समानान्तर रूप से कथा एवं आख्यायिका के रूप में प्रवाहित हो रही है। जिनको 'प्रबन्धककल्पनाकथा' एवं 'आख्यायिकोपलब्धार्था' के रूप में परिभाषित किया गया। एक ओर पशुपक्षिकथाओं के रूप में नीतिकथाओं एवं मानवाचरण से सम्बद्ध लोककथाओं की दो धाराओं को समाहित करने वाली कथा निरन्तर जीवन एवं समाज को उत्कृष्टता की ओर प्रेरित कर रही थी तो दूसरी ओर इतिहास में उपलब्ध श्रेष्ठ जीवनचरित्रों को लेकर रची जा रही प्रबन्धात्मक औपन्यासिक कथाकृतियों की धारा भी सतत प्रवाहमान हो रही थी। **औपन्यासिक कथाकृतियों** की ऐतिहासिक शृंखला में महाकवि दण्डी की दशकुमारचरित, सुबन्धु की वासवदत्ता एवं बाणभट्ट की कादम्बरी एवं हर्षचरित

उत्कृष्ट ग्रंथरत्न है। तदनन्तर धनपाल की तिलकमञ्जरी वामनभट्टबाण की वेमभूपालचरित, विश्वेश्वरपाण्डेय की मन्दारमञ्जरी, मेधाव्रत की कुमुदिनीचन्द्र, विधुशेखरशास्त्री की चन्द्रप्रभा, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की शिवराजविजय, डॉ. रामजी उपाध्याय की द्वासुपर्णा आदि ग्रंथ निरन्तर संस्कृत कथा–साहित्य सरिता के विकास को गति प्रदान करते हुए उत्कृष्टतम स्थान पर प्रतिष्ठापित हो चुके हैं।

संस्कृत साहित्यसृजन यात्रा में **अर्वाचीन** काल में भी निरन्तर उत्कृष्ट साहित्य सर्जना के दर्शन हमें होते रहे है। असंख्य रूप में लिखे जा रहे कथा साहित्य में कुछ **कथामुक्तक** यथा क्षमाराव की कथामुक्तावली, अनन्ताचार्य की कथामञ्जरी, हरिकृष्ण गोस्वामी की ललितकथा, 'कल्पलता', रामशरण त्रिपाठी की कौमुदीकथाकल्लोलिनी, मथुरानाथ शास्त्री की कथानिकुंज, कलानाथ शास्त्री की कथावल्ली, भागीरथ त्रिपाठी की कथासंवर्तिका, माधवाचार्य की कथाशतक, शिवसागर त्रिपाठी की कथापंचगव्यम्, कृष्णदत्त शर्मा की शुष्को वृक्षः, प्रभुनाथद्विवेदी की कथावल्लरी व श्वेतदूर्वा, नलिनी शुक्ला की कथासप्तकः, रामकिशोर मिश्र की किशोरकथावलि, नारीकथामृतम् और अर्न्तदाह, प्रशस्यमित्र शास्त्री की अनाघ्रातं पुष्पम्, पण्डित शिवदत्त शर्मा की अभिनवकथानिकुंज, कैलाशनाथ द्विवेदी की कथाकलिका, अनुसंधेय कवि अभिराज जी की राङ्गड़ा, इक्षुगन्धा, पुनर्नवा, छिन्नमस्ता, चित्रपर्णी व कान्तारकथा, पं. द्वारिकाप्रसाद शास्त्री की सिद्धेश्वरी–वैभवम्, डॉ. वीणा पाटनी की अपराजिता, केशवचन्द्रदाश की दिशा–विदिशा व ऊर्मिचूड़ा, इच्छाराम द्विवेदी की एकादशी, डॉ. प्रभाकर शास्त्री की राजकथाकुञ्जम्, देवीनाथ मिश्र की अभिनवनीतिकथा, सूर्यनारायण शास्त्री की आन्ध्रप्रदेशस्य हास्यकथा, राधावल्लभ त्रिपाठी की उपाख्यानमालिका, प्रमोद कुमार नायक की उवाच कण्डुकल्याणः, प्रभुनाथ द्विवेदी की कथाकौमुदी, मीरसागर की कथाकौमुदी, गणपति शुक्ल की कथामृतम्, बाक कल्वे की कथारत्नाकर, तिरूवेंकटचार्य की कथावल्लरी, श्रीधरभास्कर वर्णेकर की कथावल्लरी, भी. वेलणकर की कथासारः, पं. अ.शास्त्री की कथाशतकम्, ओमप्रकाश ठाकुर की नीतिकथामकरन्दः, भी. वेलणकर बाभवे की बालकथाकुंजम्, कृष्णदत्त शर्मा की बालकथाकौमुदी, पं.अ. शास्त्री की विश्वकथाशतमकम्, केशवचन्द्रदाश की शून्यनाभिः, नरोत्तमदास स्वामी की संस्कृतकथाकौमुदी, गोविन्दभावे की संस्कृतकथातरङ्गिणी, स्वामी वेदानन्दतीर्थ की संस्कृतकथा मंजरी, प्रमोदभारतीय की सहपाठिनी, पद्मशास्त्री की संस्कृतकथाशतकम्, प्रो. कृष्ण लाल की अनन्तमार्गः, बनमाली

विश्वाल की नीरवस्वनः आदि प्रकाश में आए हैं, जो अनवरत समयानुकूल जीवन मूल्यों को अपनाते हुए तथा प्राचीन मूल्यों का संरक्षण करते हुए साहित्यानुरागी समाज के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

2) आधुनिक संस्कृत साहित्य की काल सीमा व उसका स्वरूप

चिर–संचित जीवन मूल्यों को नए संदर्भों, नई अपेक्षाओं एवं नए दृष्टिकोण से देखना ही आधुनिकता है। अधुना भवः अर्थ में **अधुना** पद से **ठञ्** प्रत्यय लगकर आधुनिक पद का निर्माण होता हैं। अधुनातन समयानुकुल विचारसरणि का नाम ही आधुनिकता है।

संस्कृतसाहित्यसरिता ऋग्वेद से अद्य पर्यन्त अनवरत प्रवाहशील है। सम्पूर्ण लौकिक संस्कृत साहित्य को प्राचीन एवं अर्वाचीन दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रश्न यह उठता है कि वो कौनसी काल सीमा है जहाँ से आधुनिक साहित्य का प्रारम्भकाल माना जा सकता है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य की काल सीमा

आचार्य बलदेव उपाध्याय आधुनिक काल का प्रारम्भ 18वीं शती से मानते हैं जब नागेश भट्ट का काशीवास हुआ, परन्तु प्रायः साहित्यकार इस समय सीमा को 17वीं शती मानते हैं, क्योंकि इस समय साहित्यधारा में विशेष व्यावर्तक लक्षण दिखाई देते हैं। इस समय प्रखर पाण्डित्य प्रवीण पं.जगन्नाथ ने अपने कर्तृत्व से साहित्य सर्जना की धारा को विलक्षण गति प्रदान की है। श्री केशव मुसलगॉवकर कहते है 'आनन्दवर्धन के पूर्व शास्त्रविरचना (Formation) का काल है एवं उसका उत्तरवर्तीकाल शास्त्र की पुनर्व्यवस्था एवं तत्त्वपरीक्षा (Systematization Application) का काल है, जो व्यावर्तक गुण को दर्शाता है। ऐसी स्थिति में **अर्वाचीन साहित्य** का आरम्भ या उद्‌भवकाल 1700 **ई. से** ही मानना समीचीन प्रतीत होता है।' (आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा पृष्ठ–28)

आधुनिक संस्कृत साहित्य का स्वरूप

17वीं शती से 20वीं शती तक आधुनिक संस्कृत साहित्य के विविध रूपों की निर्मिति हुई है, किन्तु 20वीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य सरिता को एक विलक्षण गति एवं स्वरूप मिला है। 1954 में अखिल भारतीय स्तर की संस्था **'साहित्य-अकादमी'** की स्थापना ने संस्कृत साहित्यकार समाज के लिए 'प्रकाशस्तम्भ' का कार्य किया। इस संस्था ने साहित्यकारों को सहृदय समाज के समक्ष रखा, उन्हें प्रोत्साहित किया एवं पुरस्कृत कर उनको

साहित्यसमाज में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया। देश में संस्कृत–अकादमियों संस्कृत–विश्वविद्यालयों, संस्कृत–विद्यापीठ एवं संस्कृत–कविसम्मेलनों का प्रचलन हुआ। प्रचार माध्यमों में संस्कृत को स्थान मिला।

डॉ. वर्णेकर के शोधप्रबन्ध 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य' तथा डॉ.हीरालाल शुक्ल के 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' ने आधुनिक संस्कृत साहित्य पर **शोधयुग** का प्रारम्भ किया। कालान्तर में 'पोस्ट इण्डेपेण्डेन्ट संस्कृत लिटरेचर' नामक निबन्ध–संकलन अखिल भारतीय संगोष्ठी के निबन्धों के संकलन के रूप में प्रकाशित हुआ। समय–समय पर आयोजित संगोष्ठियों के विचारमंथन से अधुनातनकाल के संस्कृत साहित्य सर्जना में रत साहित्यकारों की प्रवृत्तियों का जनमानस से साक्षात्कार हुआ।

समसामयिक पत्र-पत्रिकाएं संस्कृत साहित्य को पहचान एवं प्रोत्साहन प्रदान कर रही हैं। भारती, स्वरमङ्गला, सागरिका, दूर्वा, अजस्ता, सूर्योदय, प्रतिभा, विश्वसंस्कृतम्, शारदा आदि पत्रिकाएं संस्कृत रचनाकारों को मंच प्रदान कर रही हैं।

समकालीन संस्कृत साहित्यकार साहित्य की समस्त विधाओं में निर्बाध रूप से सृजनरत है। प्राचीन विधाओं के अतिरिक्त **नवीन विधाओं का विकास** हो रहा है। आधुनिक संस्कृत साहित्य विपुल रूप से रचा जा रहा है, पढ़ा जा रहा है और निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है।

वर्तमान काल में गद्य पद्य निबन्ध नाटक कथा आदि विधाओं में प्रचुर साहित्य सृजन हो रहा है। सम्प्रति लघु–कथाओं, प्राचीन नाटकों के रेडियो रूपान्तर, ध्वनिनाटक आदि की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है, उपन्यास लेखन हो रहा है, पुस्तकसमीक्षा, समाचारसमीक्षा, व्यंग्यविनोदवाटिका, समस्यापूर्तिः, चाटूक्तिः आदि स्तम्भ पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे है। संस्कृत पद्यलेखन में घनाक्षरी, दोहा, गजल एवं मुक्त छंदों का लेखन उन्मुक्त रूप से हो रहा है। अन्य भाषाओं में निहित ज्ञानभण्डार को भी अनुवाद के माध्यम से संस्कृतसाहित्यकोष में लाया जा रहा है।

शैलीगत नवीनता के साथ–साथ विषयवस्तुगत नवीनता भी आधुनिक साहित्य में दिखाई देती है। प्राचीन उपजीव्य काव्यों का आश्रय छोड़कर नवीन विषयों पर साहित्यरचना हो रही है। लेनिनामृतम्, पत्रदूतम्, पलाण्डुशतकम्, सिनेमाशतकम्, फेनकाष्टकम्, क्रिकेटाष्टकम्, चायशतकम् जैसे ग्रंथ रचे जा रहे हैं।

समसामयिक ज्वलन्त विषयों जैसे स्त्रीसशक्तीकरण, दलितचेतना आदि पर साहित्य निर्माण हो रहा है। चन्दामामा जैसी पत्रिका का संस्कृतानुवाद, दैनिक समाचार पत्र प्रसारण, वृत्तचित्र निर्माण, संस्कृत सम्मेलनों का आयोजन आदि उत्साह वर्धक प्रयासों से लगता है कि संस्कृत साहित्य का आधुनिक–काल वास्तव में अधुनातन अपेक्षाओं के अनुकूल निरन्तर परिवर्धनशील है।

श्रव्यकाव्य की गद्यविधा के अर्न्तगत **'कथा'** अपने प्राचीन प्रबन्धात्मक औपन्यासिक कथाकृतियों की अपेक्षा **हिन्दी की कहानी के अधिक निकट है**। लघुकथा, कथानिका एवं दीर्घकथा के स्वरूप में अर्वाचीन कथा साहित्य खूब विस्तार पा रहा है। कथा भेदों का विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है।

3) शोध विषय का उद्देश्य, कथाओं की मौलिकता एवं उपादेयता

कालिदास के कुमारसंभवम् का मङ्गलाचरणश्लोक साहित्य में निहित लोकमङ्गल के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए कहता है–

वागर्थाविव सम्प्रक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
वन्दे जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ।।

(कुमारसम्भवम् 1/1)

वाणी और अर्थ की प्रतिपत्ति अर्थात् समझ, चेतना, अवेक्षण, प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए वाणी और अर्थ की तरह एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करने वाले पार्वती तथा परमेश्वर को वन्दन। वाणी को सामर्थ्य प्रदान करने वाले अर्थ और अर्थ को सशक्त माध्यम प्रदान करने वाले शब्दों का लोककल्याणकारी स्वरूप ही साहित्य कहलाता है। उस साहित्य में समाज का चेहरा स्पष्ट दिखायी देता है। साहित्यकार मानवीय भावनाओं से एकाकार होकर त्रिकालदर्शी स्वरूप को प्राप्त करता है वह समाज के संरचनात्मक ढांचे को, सामाजिक संवेदनाओं को, सामाजिक मनोविज्ञान को तथा समाज की दशा एवं दिशा को देखता है, समझता है, महसूस करता है तथा अपनी लेखनी से समाज के मनोमस्तिष्क में व्याप्त अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान करता है।

शोध विषय का उद्देश्य

किसी भी साहित्यकार के साहित्यसंसार की समीक्षा करने का **प्रथम उद्देश्य** उस साहित्यकार के सृजन में निहित **लोककल्याण** की खोज कर उसे समाज के समक्ष रखना

होता है। **गौण लक्ष्य** के रूप में साहित्य के शिल्प, अलङ्कार, कलापक्ष, सौन्दर्यपक्ष, शैली आदि का साहित्य के विकास में योगदान, **साहित्यिक अवदान** आदि साहित्य के बाह्य पक्ष का विवेचन हो सकता हैं। मेरे शोध विषय 'कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथासाहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन' का उद्देश्य उनके कथासाहित्य की सर्वाङ्गीण समीक्षा प्रस्तुत कर उसके लोककल्याणकारी स्वरूप को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करना है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र जी के कथा साहित्य को पढ़ते हुए मैने महसूस किया कि उनकी कथाओं में कुछ तो ऐसा है, जो बलात् चित्त को आकर्षित करता है। उनकी कथाओं में समाज स्फटिक् के समान प्रतिबिम्बित होता है। वहाँ अर्वाचीन एवं प्राचीन जीवन मूल्यों का संयोजन है। कथा के शिल्प एवं भाव दोनों ही दृष्टियों से उनका कथा साहित्य अद्भुत एवं आदर्श उदाहरण है। समकालीन समाज मे स्त्री, पुरूष, बालक, वर्ण, जाति, धर्म, इतिहास, राजनीति, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, मनोविज्ञान, दर्शन, आचारशास्त्र, पर्यावरण, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीयता, जीवन मूल्य, नीतिशास्त्र, अध्यात्म आदि ऐसे विषय है जिन्होनें उनके कथा साहित्य में स्थान बनाया है। कविवर की दृष्टि में समाज के विषय गंभीर चिंतन के विषय है। कवि की दृष्टि में समाज, उसका स्वरूप, उसकी समस्याएं, उसकी पीडाए, उनके समाधान क्या है? उस दृष्टिकोण को साहित्यानुरागियों के समक्ष स्थापित करना ही मेरे शोध का प्रमुख लक्ष्य है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को विशिष्ट रूप से उनके कथा साहित्य के विविध आयामों को साहित्य समाज के समक्ष प्रतिष्ठापित करना भी शोध का लक्ष्य है।

अवान्तर लक्ष्यों के अन्तर्गत संस्कृत कथा साहित्य की विकास यात्रा, उसके बदलते स्वरूप, कथा विधा के भेद, कथा साहित्य पर अन्य साहित्यों के प्रभाव, कथाओं में लोकचेतना, सामाजिक समस्याओं आदि का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए शोध परम्परा में किञ्चित योगदान देय है।

कथाओं की मौलिकता

'स्वाध्याय ही बहुश्रुतता का मूल है और बहुश्रुतता ही मेरी दृष्टि में रचनाकार का स्वरूपलक्षण होना चाहिए। संस्कृत रचनाधर्मिता के क्षेत्र में ऐसे स्वाध्याय सम्पन्न लेखकों की कमी नहीं है। उन्हे बार–बार पढकर भी न समझने वाले आलोचकों के आक्रोश का यही

कारण है कि वह उस भाव भूमि तक पहुंच ही नही सकें हैं जिस पर आरूढ़ होकर वह कवि – विशेष काव्य रचना कर रहा है।'

(अभिराज राजेन्द्र, पुनर्नवा, नान्दीवाक्)

अभिराज राजेन्द्रमिश्र ऐसे ही स्वाध्याय सम्पन्न रचनाधर्मी है। समकालीन संवादी साहित्य के अध्ययन में उनको अन्तः प्रेरणा का अक्षय स्त्रोत प्राप्त होता है। उनके स्वयं के शब्दों में उनकी ऐसी कई कहानियां है जिन का कथ्य–तथ्य अथवा कथाशिल्प अन्य भाषाओं की कथाओं से प्रभावित है। यह सारस्वत अन्तः संवाद का परिणाम है, जो उनके कथासाहित्य को समृद्ध एवं समरस बनाता है।

कविवर की कथाएं उनके आस–पास के चलते फिरते जीवन्त समाज से ली गई है। कथानिकाओं के कथ्य सामाजिक विसंगतियों एवं सुसंगतियों से उठाए गए है। अतः उनके कथ्य मौलिक हैं, पात्र मौलिक हैं, संवाद मौलिक हैं, परन्तु उनरका संरचनात्मक स्वरूप हिन्दी अथवा अंग्रेजी से आया है। कवि का ऐसा मानना है कि उत्कृष्ट कहानी लिखने के लिए अन्य भाषाओं की कथाओं का ज्ञान जरूरी है। कविवर ने जार्ज बर्नार्डशॉ, मोपासाँ, मार्कट्वेन, चार्ल्स डिकंस, जेन आस्टिन जैसे अंग्रेजी कथाकार एवं मुंशी प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विष्णुप्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि को पढ़ा है।

कवि को 'कुक्की' तथा 'चञ्चा' की प्रेरणा मुंशी प्रेमचन्द की हीरा–मोती तथा रूसी उपन्यास तुर्गनेव से मिली। देवरा हजारी एवं रक्तवैतरणी कथा संग्रह की कहानियों पर यद्यपि अन्तः संवाद का प्रभाव आया है, परन्तु यह उनकी कथाओं का अलङ्कार ही है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की सूक्ष्म दृष्टि अपने आस–पास घट रही सामान्य घटनाओं को कथ्य बना देती है। वे यथार्थ के नजदीक हैं। अपने आस–पास के सामाजिक परिवेश में विद्यमान व्याकुलताओं के भीतर छिपी व्यथाओं को वे अनुभूत करते हैं तथा अभिव्यक्त करते हैं। उनकी कथाओं की मौलिकता, सहजता एवं रोचकता उन्हे चलायमान चित्रवत् प्रस्तुत कर देती है, यहां तक कि उनकी ऐतिहासिक कथानिकाएं भी काल की बाधा को पारकर प्रत्यक्ष प्रतीत होती हैं।

कविवर की स्वाध्याय प्रवणता एवं अन्तः संवादी प्रवृत्ति से उनके कथा–साहित्य को प्रेरणा एवं निखार मिला है। उनकी कथावस्तु की आत्मा भारतीय ग्रामीण अंचल में बसती है। उनके विषय शुद्ध भारतीय है। उनकी कथाओं को पढ़कर मुंशी प्रेमचंद की कहानियों

की याद आती है। कथाओं की केन्द्रीय बिन्दु भारतीय समाज की विसंगतियां हैं, जो जनमानस को झकझोरती हैं। जिस ग्रामीण परिवेश से कवि आते हैं, उस परिवेश में उन्होनें जमीन से जुड़ी जटिलताओं को नजदीक से महसूस किया है। समाज की आम समस्याओं को कविवर ने अपने नजरिए से देखा है और अपनी शैली में प्रस्तुत किया है। उनका अपना दृष्टिकोण है, जिसमें वे पुरातन का अन्धानुकरण नहीं करते तथा नवीन के प्रति अति उत्साह व्यक्त नहीं करते। उनका सामंजस्य ही उनकी मौलिकता है, उनके समाधान उनके अपने दृष्टिकोण से उद्भूत हैं। तपती का यौन उत्पीड़न, शुभदा की प्रेमकथा, अनामिका की उपेक्षा, विमला का अर्न्तद्वन्द्व, रमा की सेवा, रामलाल का ह्रदय परिवर्तन, बिट्टी की अधूरी प्रेम कहानी, वन्दना की वैधव्यकथा, सोमधर के प्रति हेय दृष्टिकोण, कुक्की के साथ हुआ छल, मुन्नी बाई का शोषण के विरूद्ध आक्रोश, एकचक्रः का आदर्श दाम्पत्य, भाग्य से ठगी गई महुली की निश्छलता, दिदिशा की पीड़ा, प्रेताधीश्वरी का ममत्व, नगर से गाँव वापसी का संकल्प, वन्ध्या की वेदना, नर्तकी का उदात्त चरित्र, मुदिता का न्याय, ध्रुवस्वामिनी के लिए पथ प्रदर्शन, सुनन्दा की उदारता, श्यामा की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता, कृष्णा का उद्धार, बाणभट्ट का दर्शन एवं चित्रपर्णी के विद्युत् उन्मेषसम लघुकलेवर सामाजिक कटाक्ष सब कुछ **कविवर की मौलिक उद्भावनाएं हैं शुद्ध भारतीय परिवेश से उत्पन्न, देशज, माटी से जुड़ी, परन्तु एकदम नये कलेवर में, नये रूप में प्रस्तुत।**

<u>कथाओं की प्रासंगिकता व उपादेयता</u>

कविवर की कथाएं समकालीन समाज के लिए निस्संदेह रूप से उपादेय है। कथाओं की साम्प्रतिकी प्रासंगिकता को लेकर शोधग्रन्थ में पृथक् से विस्तारपूर्वक षष्ठम् अध्याय में चर्चा की गई है। सामाजिक सरोकारों से जुड़ा ऐसा कोई विषय नहीं है, जो कवि की गहन एवं सूक्ष्म दृष्टि से बचा हो और उनकी कथाओं का विषय न बना हो। ऐसी कोई समस्या अथवा संवेदना नहीं है जिसने कवि के मर्म को छुआ न हो और कवि ने उसका समाधान किया न हो।

अधुनातन समय में जातीयता, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, भौतिकता, भ्रष्टाचार आडम्बर, दिखावा, दोहरी मानसिकता, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन, राजनीतिक स्वार्थपरता, शहरों की ओर पलायन जैसी प्रवृत्तियां सामाजिक ताने–बाने को शीर्ण कर रही हैं। कवि ने इन सभी समस्याओं के मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं

सामाजिक कारणों की पृष्ठभूमि में जाकर, उनकी विवेचना कर, उनके अन्धानुकरण को छोड़कर प्रासंगिक को अपनाने का आग्रह किया है। उनकी ऐतिहासिक कहानियां भी तत्कालीन समाज का एवं मानव मन का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए अद्यतन समाज के लिए अनुकरणीय जीवन मूल्यों का ही उपदेश करती हैं।

प्राचीन गौरवशाली मूल्यों को अपने गर्भ में समेटे अर्वाचीन संस्कृतसाहित्य की ऊर्वरधरा पर अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित एवं विकसित वटवृक्षरूपी अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कर्तृत्व की एक शाखा कथाविधा पर केन्द्रित यह शोध नयी पीढ़ी को नया दृष्टिकोण एवं पुरातन जीवनमूल्य समर्पित कर सार्थकता को प्राप्त होगा। यही शोध का अन्तर्निहित मन्तव्य है।

4) शोध कार्य की संक्षिप्त रूपरेखा

किसी भी क्षेत्र में किया गया कोई भी शोधकार्य अपने आप में यद्यपि कभी पूर्ण नहीं होता तथापि शोधकर्ता का प्रयास रहता है अस्पृष्ट एवं अनालोकित पक्षों को स्पर्श कर उजागर करने का। मैनें भी कोशिश की है अभिराज जी के कथासागर की गहराईयों में छिपे मूल्यवान रत्नों को निकाल कर लाने की। जो प्रयास मैने किया है, उसकी संक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार है–

शोध कार्य की भूमिका अथवा **उपक्रम** में संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। सतत प्रवाहमान इस संस्कृत साहित्य में प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य की सीमा रेखा को भी निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

विषय प्रवेश की भूमिका में शोध विषय का उद्देश्य क्या है ? कथाओं की मौलिकता एवं उनकी उपादेयता समसामयिक संदर्भो में कितनी है ? उस पर सम्यक प्रकाश डाला गया है।

शोध प्रबन्ध के **प्रथम अध्याय** में अभिराज राजेन्द्रमिश्र के व्यक्तित्व के विविध आयामों को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत करते हुए उनके कर्तृत्व की विविध धाराओं का विवेचन किया गया है। यद्यपि कवि की लेखनी सतत संस्कृतसाहित्य को विस्तार प्रदान कर रही है। उन्होनें संस्कृत, हिन्दी, भोजपुरी तीनों भाषाओं में साहित्य की दोनों विधाओं दृश्य एवं श्रव्यकाव्य में विपुल साहित्य सृजन किया है। उनका साहित्य संसार व्यापक है और निरन्तर विस्तार को

प्राप्त हो रहा है, परन्तु मैनें उनके कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व को समेटने का प्रयास यहां किया है।

द्वितीय अध्याय में कथा विधा पर विस्तृत विवेचन करके अनुसंधेय कथासंग्रहों की समस्त कथाओं का समीक्षात्मक सारांश प्रस्तुत करते हुए कथाओं में निहित मूलमंत्र एवं जीवन दर्शन को प्रकट किया है।

तृतीय अध्याय में लोकचेतना के अर्थ को विस्तार पूर्वक व्याख्या देते हुए लोकचेतना के विविध आयामों को अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा–साहित्य के संदर्भ में गवेषणात्मक अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि के कथासाहित्य में सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, आर्थिक चेतना, दलित चेतना, राष्ट्रीय चेतना, स्त्री चेतना, धार्मिक चेतना एवं ऐतिहासिक चेतना की विवेचना करने का प्रयत्न किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं का मूल्यांकन काव्य शास्त्रीय आधार पर किया गया है। कथाओं में रस परिपाक का स्तर, उनकी भाषा शैली, कथाओं में अलङ्कारयोजना तथा कथाओं की रीतिसंघटना का सम्यक विवेचन करते हुए यह सिद्ध किया है कि कवि की कथाएं काव्यशास्त्रीय मानकों पर उत्कृष्ट स्तर पर प्रतिष्ठापित है।

पञ्चम अध्याय में कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र के पाण्डित्य एवं नैसर्गिकी काव्य प्रतिभा के प्रमाण उनकी कथाओं की विषयवस्तु के आधार पर प्रस्तुत किए गए है। उनकी कथाओं में प्रतिबिम्बित शास्त्रीय ज्ञान, दार्शनिक ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान, मनोवैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रकृति के प्रति संवेदनाओं के दृष्टिकोण से उनके पाण्डित्य एवं सहज काव्य प्रतिभा की विवेचना विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की गई है।

षष्ठम अध्याय में कथा के अनिवार्य छः तत्त्वों के सन्दर्भ में सविस्तार समीक्षा करते हुए कथातत्त्व की कसौटी पर खरा उतारा गया है। कवि की कथाओं की कथावस्तु किन विषयों के आस–पास घूमती है? उनकी कथाओं के पात्र समाज के किस चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं? पात्रों के संवाद अथवा कथोपकथन किस विचारधारा एवं जीवनमूल्यों को प्रतिपादित करते हैं? उनकी कथाओं का वातावरण अथवा परिवेश कैसा है? कथाओं की भाषाशैली किस की प्रकार की है? तथा अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कवि की कथाओं का मूल उद्देश्य क्या है? इन सभी तथ्यों की सप्रमाण समीक्षा की गई है। साथ ही सामयिक परिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं के शोध प्रबन्ध के सार को रखा गया है।

प्राचीन जीवन मूल्यों को अक्षुण्ण रखते हुए समसामयिक समस्याओं एवं अपेक्षाओं के अनुकूल नवीन विचारसरणि को साहित्य में समायोजित करने का सफल प्रयास कवि ने किया है। **'अधुनातन समायनुकूल वैचारिक विकास करते हुए भारतीय संस्कृति की सर्वात्मना रक्षा का विचार ही'** शोध प्रबन्ध का **मूलमंत्र** है।

परिशिष्ट में कवि के सुभाषित, लोकोक्तियों एवं स्फुट पद्यों का संकलन किया गया है।

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

संस्कृत साहित्यानुरागीजनों के हृदयसिंहासन पर विराजमान प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र एक नवीन साहित्य युग के प्रणेता है। आधुनिक संस्कृत साहित्यसंसार के वे 'अभिनव–कालिदास' कहे जा सकते हैं। अद्भुत व्यक्तित्व एवं विलक्षण सारस्वत प्रतिभा के धनी अभिराज राजेन्द्रमिश्र की विविध विधामय विपुल काव्य शृंखला उन्हें मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठापित करती है। पं. बलभद्र प्रसाद शास्त्री कहते हैं – 'मेरी दृष्टि में आप सर्वाधिक सक्षम संस्कृत के विद्वान हैं और रहेंगे।'[1]

आधुनिक संस्कृत साहित्याकाश में देदीप्यमान नक्षत्रों के बीच उनका स्थान निरूपण करते हुए इसी भाव को स्टीफन कॉलेज, दिल्ली के डॉ.पंकज मिश्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है– **'Prof.Abhiraj Rajendra Mishra First and foremost amongst र–त्रय (Rajendra, Radhavallabh & Rama Kant) is indeed, one of the greatest poets of modern Sanskrit Literature and Critic of Literary world, Highly respected in International Circles.'**[2]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व दोनों विलक्षण हैं। युवावस्था में पितृहीनता, माँ के वैधव्य, परिवार की विषम परिस्थितियों, शारीरिक एवं मानसिक व्यथाओं ने उनके स्वर्णमय व्यक्तित्व को तपाकर कञ्चन बना दिया। उनके व्याकुल मन की व्यथाएं काव्य रूप में परिणमित होकर विश्रान्त होती हैं। जितना वे बिखरे हैं, उतना ही वे निखरे हैं। उनकी नवीन दृष्टि उनकी काव्यसृष्टि में प्रतिबिम्बित होती हैं।

यद्यपि अभिराज राजेन्द्रमिश्र के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर शोध मेरा प्रत्यक्ष विषय नही है। उनके कथा–साहित्य की समग्र एवं सायाम समीक्षा करना ही मेरा लक्ष्य है, परन्तु कर्तृत्व की महत्ता व्यक्तित्व की प्रामणिकता से ही सिद्ध की जा सकती है। चूंकि अभिराज राजेन्द्रमिश्र आधुनिक संस्कृतसाहित्य के पुरोधा हैं, एक संवदेनशील साहित्यकार हैं, समाज

के सूक्ष्म अध्येता हैं, मानवता के पक्षधर हैं, मानवमन के मनोविश्लेषक हैं, मनोभावों के मूर्तिकार हैं, शब्द सम्राट हैं, वाग्विदग्ध हैं, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं के रक्षक हैं, समयानुकूल परिवर्तन के पक्षधर हैं, सामाजिक विसंगतियों विशेषतः नारी जीवन की विसंगतियों को सुसंगतियों में बदलने के पक्षधर हैं। अतः यह समीचीन होगा कि इस सुधी साहित्यकार की दृष्टि से समाज को परखा जाए और सामाजिक जीवन को सहज एवं सरल बनाया जाए। अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा साहित्य की समीक्षा से पूर्व उनके समग्र व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का परिचय प्राप्त करना एक तरह से विषय प्रवेश एवं भावभूमि निर्माण का कार्य सिद्ध होगा।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के विलक्षण व्यक्तित्व एंव विशाल कर्तृत्व को समेटना मेरे वश में नही है। इस विषय पर विशाल शोधग्रंथ लिखे जा चुके हैं तथा लिखे जा सकते हैं। मैं केवल परिचयात्मक व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व प्रस्तुत करना चाहूंगी।

(1) व्यक्तित्व-खण्ड

1) जन्म स्थान एवं जन्मकाल[3]

विविध विधामय साहित्य सर्जना से अधुनातन वाङ्मय–संसार को विस्तार प्रदान करने वाले त्रिवेणी कवि के रूप में लब्धप्रतिष्ठ अर्वाचीन संस्कृत साहित्य शिरोमणि ‘अभिराजराजेन्द्र मिश्र’ का जन्म उत्तरप्रदेश के जौनपुर जनपद में, स्यन्दिका (सई) नदी के तटवर्ती ग्राम **द्रोणीपुर में संवत् 1999 वि. की पौष कृष्ण पंचमी** को हुआ। इस दृष्टि से आप की जन्मतिथि 26 दिसम्बर, 1942 को आती है, परन्तु शैक्षणिक प्रमाण–पत्रों में आपकी जन्मतिथि 2 जनवरी 1943 ई. अंकित है।

आपके पिता का नाम **दुर्गाप्रसाद मिश्र** तथा माता का नाम श्रीमती **अभिराजी देवी मिश्र** है। आप अपने तीन भाईयों में मध्यम है। अग्रज डॉ. देवेन्द्र मिश्र तथा अनुज आचार्य सुरेन्द्र मिश्र दोनो ही संस्कृत के विद्वान रहे हैं। अपने जन्म से वंश को कृतार्थ कर देने वाले सुपुत्र का जिस कुल में जन्म होता है वह कुल कृतकृत्य हो जाता है। अपने व्यक्तित्व एवं कर्त्तत्व से सम्पूर्ण संस्कृत साहित्यानुरागीजनों के हृदयों पर विराजमान अभिराज राजेन्द्र मिश्र का नाम संस्कृत साहित्य के इतिहास में महनीय स्थान रखता है। यहाँ अपने वंश से कृतार्थ हुए एवं अपने कृत्यों से वंश को कृतार्थ कर देने वाले अभिराज राजेन्द्रमिश्र की वंशावली

का उल्लेख किये बिना यह शोध पूर्णता की ओर अग्रसर नहीं हो सकेगा। कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र का वंशवर्णन निम्न प्रकार है–

वंशावली[4]

पं. भोजराज मिश्र

↓

पं. शीतलदीन मिश्र

पं. शिवरतन मिश्र
(विशालपरिवार)

पं. रामरतन मिश्र
(विशालपरिवार अद्यावधि)

पं. काशीराम मिश्र

पं. रामकुबेर मिश्र
एकमात्र पुत्र गोवर्धन
की निसन्तान मृत्यु

पं. रामकुमार मिश्र
एकमात्र पुत्र जिनका
विवाह सँवराई ग्राम में।

पं. रामदुलार मिश्र

पं. रामानन्द मिश्र

पं. रामनाथ मिश्र

पं. राममूर्ति मिश्र

श्री अच्युतानन्द मिश्र
(तीन पुत्र एवं एक पुत्री)

पं. रामदेव मिश्र

श्री बद्रीनारायण मिश्र
डॉ. ईश्वरचन्द्र मिश्र

डॉ. विश्वम्भरनाथ मिश्र
(सभी पुत्रवान्)

पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र
श्रीमती अभिराजी देवी मिश्रा

प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र

श्री सत्यव्रत मिश्र

श्री प्रियव्रत मिश्र
श्री मधुव्रत मिश्र

पं. सुन्दरी प्रसाद मिश्र

श्री सत्यप्रकाश मिश्र

श्री दिनेश कुमार मिश्र
श्री विनोदकुमार मिश्र
(सभी पुत्रवान्)

डॉ. देवेन्द्र मिश्र

डॉ. इन्दुप्रकाश मिश्र
डॉ. आलोककुमार मिश्र
श्री पुष्कर मिश्र

प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र
डॉ. राजेशकुमारी मिश्र 'राजश्री'

कुमार क्षेमेन्द्रमिश्र
(बालकवि)

आचार्य सुरेन्द्र मिश्र
(बाल ब्रह्मचारी,
तपस्वी सन्त)

भोजराज के पूर्वज सरयू एवं राप्ती नदियों के संगम पर बसे रापतपुर–भभया गांव से विन्ध्याचल यात्रा पर आये और शिष्यों के आग्रह पर जौनपुर जनपद के ब्राह्मणपुर नामक गांव में बस गये। कालान्तर में ब्राह्मणपुर से ही पण्डित कृपाराम एवं पण्डित भोजराज यह दो भाई सई नदी के तटवर्ती ग्राम दोनई (द्रोणीपुर) में आकर बस गये। ये लोग गौतमगोत्री.य, भभयास्पद मिश्र हैं, इनकी वेदशाखा माध्यदिन तथा सूत्र कात्यायन है।

विद्यार्थी जीवन एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ[5]

कविवर अभिराजराजेन्द्र मिश्र की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पैतृक गाँव में ही हुई। आपकी उच्च शिक्षा पितृव्य डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र के संरक्षण में हुई। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय से आपने **स्नातकोत्तर** परीक्षा में 1964 ई. में न केवल संस्कृत विषय बल्कि सम्पूर्ण कला संकाय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। पितृव्य के निर्देशन में ही 'अन्योक्ति साहित्य के उद्भव एवं विकास' विषय पर शोधकार्य करते हुए 1966 ई. में **डी.फिल.** की उपाधि प्राप्त की।

पद, कार्यभार एवं कार्यक्षेत्र[6]

शोधकार्य सम्पदित करने के साथ ही साथ कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में **10 दिसम्बर 1966 ई.** से अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया तथा जनवरी 1991 ई. तक व्याख्याता एवं रीडर के पद पर कार्यरत रहे। इसी बीच भारत सरकार ने उन्हें बालीद्वीप (इण्डोनेशिया) के उदयन विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त कर दिया, जहाँ उन्होंने मार्च 1987 ई. से अप्रेल 1989 ई. तक रहकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का उत्कृष्ट साहित्यिक कार्य किया।

भारत लौटने पर आप 22 जनवरी 1991 में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में आचार्य एवं अध्यक्ष नियुक्त हो गये। वहाँ से आप जून, 2003 में सेवानिवृत्त हुए। शिमला विश्वविद्यालय में अध्यक्ष के अतिरिक्त भाषा संकाय के डीन, इक्जीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य तथा सांस्कृतिक समिति के संयोजक भी रहे। सेवावधि पूर्ण होने से पूर्व ही आपको महामहिम कुलाधिपति, उत्तरप्रदेश ने सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी का कुलपति नियुक्त कर दिया। दिनांक 24 अप्रेल 2002 से 24 अप्रेल 2005 तक आपने वहाँ संस्कृताराधना से साहित्य व शिक्षा जगत को उपकृत किया। मुख्यमंत्री उत्तराञ्चल के आग्रह पर आपने उत्तराञ्चल संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार के सलाहकार के रूप में अपनी सेवाएं दी। संप्रति आप राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली (मानित विश्वविद्यालय) के इलाहाबाद परिसर में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर अधिष्ठित हैं।

पुरस्कार एवं सम्मान[7]

लगभग 100 से अधिक प्रसिद्ध कृतियों एवं लगभग 300 शोध निबन्धों की रचना करने वाले अभिराज राजेन्द्रमिश्र सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त पुरस्कारों से

सम्मानित होते रहे हैं। पुरस्कार से साहित्यकार की प्रामाणिकता साहित्यसमाज में महती प्रतिष्ठा को प्राप्त करती है। डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र विभिन्न प्रदेशों की सरकारों व अकादमियों से पुरस्कृत एवं राष्ट्रपति से पुरस्कार प्राप्त करने वाले सौभाग्यशाली, सर्जनधर्मा एवं वरेण्य साहित्यकार हैं। उनके रचना संसार की प्रासंगिकता, वरेण्यता, गहनता, मौलिकता आदि गुणों के कारण विवेकशील निर्णायकों द्वारा उन्हें पुरस्कृत करने का अनेकशः निर्णय लिया गया है। उनके पुरस्कारों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैः–

1) साहित्य अकादमी 1988,
2) वाचस्पति सम्मान 1993,
3) कालिदास सम्मान 1988, 1998,
4) कल्पवल्ली सम्मान 1996, 1998,
5) राष्ट्रपति सम्मान 1999,
6) उत्तरप्रदेश शासन साहित्यिक पुरस्कार 1972 से 1997 (ग्यारह बार),
7) दिल्ली संस्कृत अकादमी पुरस्कार 1994 से 1998 (तीन बार),
8) राष्ट्रीय आत्मा पुरस्कार 1983 (सपनों में डुब गया मन),
9) वाल्मीकि पुरस्कार 1983 (चित्रकूट),
10) रामकुमार वर्मा एकांकी पुरस्कार 1988, (शकुन्तला सिरोठिया न्यास, इलाहाबाद, रक्ताभिषेक : एकांकी संग्रह)
11) स्वामी धर्मानंद साहित्य सम्मान 1994, (स्वामी धर्मानन्द सरस्वती न्यास, परमार्थाश्रम हरिद्वार)
12) डॉ. विद्यानिवास मिश्र नामित 'संस्कृत वाङ्मयालङ्कार' सम्मान 2002 ई.–सोनाञ्चल, साहित्यकार संस्थान, सोनभद्र (उ.प्र.)
13) सहस्राब्दीरत्न सम्मान 2002 ई.। पानीपत, हरियाणा (जैमिनी अकादमी),
14) अच्युतराम शर्मा संस्कृत सम्मान, हैदराबाद, 2001 ई.
15) कविकुलगुरू कालिदास सम्मान, महाराष्ट्र शासन, मुम्बई 2004 ई.।

किसी भी साहित्यकार के साहित्य की प्रासंगिकता अथवा उपादेयता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उसके साहित्य को अन्य भाषाओं के साहित्य समाज द्वारा शिरोधार्य करके अनुवाद के माध्यम से अपने साहित्य क्षेत्र में प्रविष्टि दी जाती है। अन्यान्य

भाषाओं में कवि के साहित्य का अनुवाद उनकी लोकप्रियता एवं गुणवत्ता का प्रमाण है। उनकी कृतियाँ निम्नानुसार अन्यान्य भाषाओं में अनुदित हो चुकी है।[8]

कृति	भाषा-रूपान्तरण	अनुवादक
अनामिका व महानगरी (कथा)	अंग्रेजी	डॉ. वी कामेश्वरी
पोतविहगौ (कथा)	अंग्रेजी	डॉ. गंगाधर पण्डा
इक्षुगन्धा (कथा)	अंग्रेजी	डॉ. रविशंकर
वैशाली (कविता)	अंग्रेजी	डॉ. हर्षदेव माधव
स्वतंत्रता (कविता)	हिन्दी	श्री बाल स्वरूप राही
न्यायालयवृत्तम् (कविता)	हिन्दी	डॉ. इन्दुप्रकाश
इन्द्रजालम् (एकांकी)	तेलगु	डॉ. श्रीनिवास दीक्षितुलु
जिजीविषा (कथा)	मलयालम	डॉ. वेणुगोपाल कृष्ण
भग्नपञ्जरः (कथा)	उर्दू	डॉ. अहमद नसीम सिद्दीकी
विविध कथाएँ (विपुल पत्रिका में)	तेलगु	डॉ. ए. राजश्री
इक्षुगन्धा (कथा)	हिन्दी	डॉ. प्रमोद भारतीय व शैल वर्मा द्वारा पृथक–पृथक
इक्षुगन्धा (कथासंग्रह)	बँगला संस्करण	साहित्य अकादमी (कलकत्ता शाखा)

हम कह सकते हैं कि अभिराज राजेन्द्रमिश्र आधुनिक साहित्य सरिता को निरन्तर गति प्रदान करते हुए साहित्य समाज में पूरी प्रमाणिकता व प्रासंगिकता के साथ प्रतिष्ठापित है।

डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र एक रचनाधर्मी साहित्यकार के साथ–साथ एक मधुर गीतकार भी है, जो श्रोताओं को अपनी उपस्थिति एवं प्रस्तुति से बलात् आकृष्ट करने की क्षमता रखते है। उनका गहन चिन्तन, मनन, शोधात्मक दृष्टिकोण, तार्किकता व विद्वता संगोष्ठियों में विद्वज्जनों को निश्चित रूप से प्रभावित करती है। आपके 300 से अधिक शोध निबन्ध प्रस्तुत हो चुके है। 436 मुक्त गीत, लेख, संस्मरण आदि प्रकाशित हो चुके हैं। संस्कृत साहित्य सर्जन पत्रिकाओं में मिश्र जी की उपस्थिति दृढ़ता के साथ अंकित हैं।

कविवर को त्रिवेणी कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है क्योंकि आपको संस्कृत के साथ–साथ हिन्दी एवं भोजपुरी में भी समान रूप से अधिकार प्राप्त है। आपकी 25 मौलिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी है। आपका हिन्दी खण्ड काव्य 'मुक्तिदूत' 1975 से उत्तरप्रदेश में हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में निर्धारित है।

आपकी साहित्य सृजन की अद्भुत क्षमता एवं असीम ऊर्जा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि दो वर्ष के बालीद्वीपीय प्रवास में डॉ. मिश्र ने 10 काव्य, 36 शोध निबन्ध, 44 कविताओं एवं अनेक संस्मरणों का सृजन किया। कादम्बिनी एवं धर्मयुग में आपके अनेक आलेख प्रकाशित है।

कविवर मिश्र के साहित्यिक कार्यों में उनके दो महत्त्वपूर्ण कार्य परिगणित है।

1. Bhasa Indonesia (इण्डोनेशिया की वर्तमान राष्ट्रभाषा) में संस्कृत साहित्य के इतिहास की रचना (Sejarah Kesusastran Sanskerta. P 110, Denpasar, Bali, 1988.)
2. Ramayan Kakaween (जावी रामायण, 26 सर्ग तथा 2778 श्लोक) का देवनागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद

सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि. द्वारा प्रकाशित। प्राक्कथन लेखन डॉ. मण्डन मिश्र, पूर्व कुलपति सं.सं. वि.वि. वाराणसी द्वारा।[9]

निःसंदेह कवि साहित्य समाज में अपना अप्रतिम स्थान बना चुके हैं। संस्कृत, हिन्दी, भोजपुरी भाषाओं में सिद्धहस्त त्रिवेणी कवि विविध विधामय साहित्यसर्जन में निरन्तर गतिशील है तथा निश्चित ही भविष्य में साहित्य पुरोधा के रूप में नई ऊँचाइयों को प्राप्त करेगें।

समकालीन साहित्य संसार में संस्कृत, हिन्दी, भोजपुरी रूपी साहित्य त्रिवेणी को विविधता, विपुलता सहजता, नवीनता, सर्जनात्मकता व मौलिकता से नवीन गति प्रदान

करने वाले त्रिवेणी कवि 'डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र' महोदय काव्य, नाटय एवं कथा तीनों ही विधाओं में सिद्धहस्त है।

साहित्य के क्षेत्र में मिश्र जी का अवदान निश्चित रूप में वर्तमान साहित्यिक समाज में उनको महनीय स्थान प्रदान करता है। सर्जन के क्षेत्र में उनका अनवरत अनथक एवं प्रशंसनीय प्रयास उनके विशाल एवं विविध विद्यामय रचना संसार में प्रतिबिम्बित होता है। उनके कृर्त्तत्व–संसार को संक्षेप देना मेरे सामर्थ्य में नहीं है, परन्तु अत्यन्त संक्षिप्त रूप से में उनके साहित्य को इंगित करने का प्रयास करूंगी। यद्यपि यह कार्य यहाँ पूर्णता को प्राप्त नहीं होगा क्योंकि आप वर्तमान में पूर्ण सक्रियता एवं ऊर्जा के साथ माँ सरस्वती की अराधना में रत हैं। माँ सरस्वती के इस वरद् पुत्र की कृपा से सुधी समाज कृतार्थ होता रहेगा।

(2) कर्तृत्व-खण्ड

अभिराज-वाङ्मय परिचय

(क)महाकाव्य

1) जानकीजीवनम[10]

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में कवि ने रामायण से कथावस्तु लेकर अपनी कल्पनाशीलता से कथानक को समृद्ध किया है। महाकाव्य–परम्परा के विपरीत **नारीपात्र** को **केन्द्रीय भूमिका** प्रदान करने वाले इस महाकाव्य का प्रकाशन 1988 में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से हुआ है। अबाध गति से प्रवाहमान विलक्षण भावसौन्दर्य एवं काव्यसौन्दर्य से विभूषित इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग 'अवतार' में कृषिकर्म से सीता की प्राप्ति 'शिशु केलि' नामक द्वितीय सर्ग में सीता की शैशवकाल की क्रीड़ाएं, 'स्मराङ्कुर' नामक तृतीय सर्ग में नवयौवना सीता के मनोभावों का स्वाभाविक वर्णन, चतुर्थसर्ग 'राघवानुराग' में राम के मन में सीता के प्रति प्रेम की उत्पत्ति, पंचम सर्ग 'रघुराजसङ्गम' में मिथिलापुर मार्ग का वर्णन, षष्ठम् सर्ग 'पूर्वराग में रामसीता के विवाह पूर्व पारस्परिक प्रेम का वर्णन, 'श्वसुरालय' नामक सर्ग में सीता–राम के विवाह का वर्णन 'वध्वाचार' सर्ग में अयोध्या में वधु सीता के आगमन पर माङ्गलिक वध्वाचार का वर्णन, 'वनवास' नामक दशम सर्ग में राम का वनगमन, 'रावणापहार' नामक सर्ग में सीता–अपहरण, 'अशोकवनाश्रय' नामक सर्ग में अशोकवाटिका में सीता की मनोव्यथा का वर्णन, 'लंकाविजय' में रावणवध, 'अग्निपरीक्षा' में सीता की अग्निपरीक्षा 'राज्याभिषेक' में सीता के विषय में विवादास्पद वक्तव्य, 'अपवाद निर्णय' नामक सर्ग में कवि की नवीन परिकल्पना के रूप के सीता के हित में निर्णय, 'लवकुशोदय' में लव–कुश की उत्पत्ति, 'अश्वमेध' नामक सर्ग में आदर्श रामराज्य के वर्णन के साथ यज्ञोत्सव के शिष्टाचारों का वर्णन तथा अग्रिम इक्कीसवें 'रामायणगानम्' नामक सर्ग में लवकुश के द्वारा गीत शैली में रामकथा का वर्णन प्रस्तुत करके 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य को कविवर ने रामायणोपजीव्य महाकाव्य परम्परा में प्रमाणित रूप से प्रतिष्ठापित कर दिया है।

सामाजिक औचित्य को आधार बनाकर पौराणिक रामकथा में यथेष्ट परिवर्तन एवं नवीन व्याख्याएं की है। 'नारी अस्मिता' को प्रमाणित करने का कविवर का यह अनूठा प्रयास है।

2) वामनावतरणम[11]

'**वामनावतरणम्**' महाकाव्य में कविवर ने **श्रीमद्भागवत की 'बलिगर्वभञ्जन' की घटना** को केन्द्र बनाकर अपनी काव्य प्रतिभा से उसे विस्तार प्रदान किया है। महाकाव्य 17 सर्गो में निबद्ध है जिनमें कविवर ने क्रमशः मङ्गलाचरण, कविवंशवर्णन, कथारम्भ, बलिप्रतापवर्णन, अदिति का मनस्ताप, पुत्र प्राप्ति के लिए अदिति का तप, वर प्राप्ति, वामनावतरण, बालचरित, शिक्षा–संस्कार, माता द्वारा वामन को शिक्षा, सुर विपत्ति–शापन, वामनकृतसंकल्प, मातृनियोगानुसरण, बलियज्ञवर्णन, प्रतिहारवेदन, बलिकृत–वामनाभ्यर्चन, दान के लिए प्रतिश्रुति, वामनकृत बलिप्रशंसा, साढे–तीन कदम भूमि के लिए निवेदन, शुक्रबलि–संवाद, बलि का निश्चय, शुक्राभिशाप, वामनकृत लोकत्रयाक्रमण, देवकृता वामनस्तुति, बलिबन्धन, वामनकृत बलिप्रबोध, बलिकृता वामनस्तुति, वामन प्रसाद, वरदान, देवसाम्राज्य वर्णन प्रस्तुत किया है।

महाकाव्य का अंगीरस शांत है तथा यहाँ पौराणिक वस्तुशिल्प को ही अपने युगबोध से प्रासंगिकता प्रदान करते हुए श्रीमद्भागवत की पौराणिक कथावस्तु का विन्यास **आधुनिक आदर्श लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में** किया है।

(ख) खण्डकाव्य

3) आर्यान्योक्तिशतकम्[12]

'**आर्यान्योक्तिशतकम्**' अभिराज राजेन्द्रमिश्र द्वारा रचित **शतक काव्य** है जिसका प्रणयन 1976 ईस्वी में पूर्ण हुआ। अन्योक्ति एक प्रकार से अन्योपदेश रीति है जिसमें कवि पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष आदि को संकेतित करके वो सब बाते कहता है जिसका सीधे–सीधे कहने में शायद वैसा प्रभाव न हो जैसा अप्रत्यक्ष रूप से कहने से। अभिधा द्वारा कथित की प्रतीति लब्ध में व्यंजना द्वारा होती है। कविवर ने भी 'आर्यान्योक्तिशतकम्' में विबुधवर्ग, मानववर्ग, पशुवर्ग, पक्षीवर्ग, प्राणीवर्ग, विटपिवर्ग, प्रकीर्णवर्ग आदि के प्रति अभिधा शैली में कही बातों से सामान्य मानव जीवन के लौकिक व्यवहारों, जीवन मूल्यों, जीवनोपयोगी उपदेशों की व्यंजना शक्ति द्वारा प्रतीति करवाई है।

4) नवाष्टकमालिका[13]

नौ अष्टको की श्रृंखला के रूप में यह काव्य वस्तुतः स्तोत्र–काव्य है, जिसमें मरन्दमाधुरीस्तवनम्, स्तनन्धयक्रन्दनम्, आशुतोषाराधनम्, सृष्टिमूलस्तवनम्, दुकूलचौरचरितम्, पिशाचभञ्जनम्, मधुराभिधानम् तथा मङ्गलायतनगीतम् शीर्षकों में कवि ने माँ सरस्वती, माँ दुर्गा, भगवान शिव, सृष्टिपालक विष्णु, लीलाधर कृष्ण, अंजनानंदन हनुमान, कविवृन्द एवं विघ्नहर्ता गणपति की स्तुति की है। अन्त में 'आत्मनिवेदनम्' में अपनी संवेदनाओं को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

5) पराम्बाशतकम्[14]

यह पराम्बा अर्थात् **दुर्गा की स्तुति** में सौ से अधिक 'भुजंगप्रयात' छन्द में निबद्ध स्तुति पद्यो का संग्रह है जिसमें सामान्य प्रचलित स्तोत्रकाव्यों की तरह विशेषणों के रूप में माँ दुर्गा की महिमा का गान करके उनको नमन तो किया ही गया है, साथ ही यह स्तुति एक पुत्र की तरफ से माँ के साथ बाँटी गई पीड़ा भी है क्योंकि पुत्र को विश्वास है कि उसकी माँ (पराम्बा) अवश्य ही उसके भावों को समझेगी। काव्य की आत्मा उसका कथ्य और उसका शरीर उसका शब्दशिल्प है। काव्य के बिम्ब, उत्प्रेक्षा एवं कल्पनायें अद्‌भुत है।

6) शताब्दीकाव्यम्[15]

'**शताब्दीकाव्यम्**' 1987 में आयोजित **इलाहाबाद विश्वविद्यालय** के शताब्दी समारोह के अवसर पर पाँच खण्डों में लिखा गया। यह काव्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति कवि का **Attribute** है।

इस महाकाव्य में पाँच खण्ड है। प्रस्तावना सर्ग में 32 पद्य है जिसमें प्रयाग नगर की महिमा एवं विश्वविद्यालय की स्थापना की पृष्ठभूमि का वर्णन है। द्वितीय संस्थापना सर्ग के पद्यों में विश्वविद्यालय की स्थापना एवं तृतीय संगणना सर्ग के 36 पद्यों में कुलपतियों का परिचय दिया गया है। चतुर्थ गवेषणा सर्ग के 51 पद्यों में विश्वविद्यालयों के संकाय, विभाग, छात्रावास आदि भौतिक संसाधनों का वर्णन है। पंचम एवं अंतिम पुरोचना सर्ग में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की उपलब्धियों तथा वैज्ञानिक एवं साहित्यिक विभूतियों का वर्णन है।

वस्तुतः यह काव्य विश्वविद्यालय का सम्पूर्ण एवं प्रामाणिक अध्ययन है। यह **विश्वविद्यालय का इतिहास** कहा जा सकता है।

7) अभिराजसप्तशती[16]

'अभिराजसप्तशती' अभिराज राजेन्द्रमिश्र द्वारा प्रणीत काव्य संकलन है, जिसमें समान प्रकृति वाले सात शतक काव्यों का संकलन है। इन काव्यों के नाम नव्यभारतशतकम, मातृशतकम्, प्रभातमङ्गलशतकम्, सुभाषितोद्धारशतकम्, चतुर्थीशतकम्, भारतदण्डकम् एवं सम्बोधनशतकम् है। **'नव्यभारतशतकम्'** में भारतभूमि के ऐतिहासिक गौरव, विदेशी आक्रांताओं का आगमन, भारत भूमि का दासत्व, भारतभूमि के वीर सपूतों द्वारा उसकी आजादी, वर्तमान स्वतंत्र राष्ट्र की शनैः शनैः होती दुर्दशा पर चिंता करते हुए कविवर ने स्वयं के जन्म व वंशावली का परिचय प्रदान किया है। **'मातृशतकम्'** में कविवर ने अपनी जन्मदात्री माँ अभिराजी देवी को प्रणाम करते हुए उनके त्याग, तपस्या व संघर्ष का वर्णन करते हुए संसार की समस्त महापुरुषों को जन्म देने वाली माताओं का स्मरण करते हुए, उनके समकक्ष स्वयं को भी आकार देने वाली माँ को नमन करते हुए, ग्रंथ का समापन किया है। **'प्रभातमंगलशतकम्'** में सृष्टि की समस्त दिव्य शक्तियों से प्रार्थना की है कि वह हमारे प्रभातकाल को भव्य, माङ्गलिक एवं शुभ कर दें। जीवन में संध्या, अधंकार, मध्याह्न कभी नहीं हो। सदैव कृपा रूपी प्रभात बना रहे। **'सुभाषितोद्धारशतकम्'** (पैरोडी) में समकालीन सन्दर्भों में प्राचीन सूक्तियों की झलक देने वाली नवीन सूक्तियों का निर्माण किया है, जिनमें समसामयिक मानसिकता पर प्रहार करते हुए व्यंग्यात्मक शैली में युवापीढ़ी को शिक्षा देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। **'चतुर्थीशतकम्'** में संसार में समस्त आसुरी शक्तियों को व्यंग्यात्मक शैली में नमन किया गया है। नमः के योग में सर्वत्र चतुर्थी का प्रयोग है। इसीलिए कविवर ने चतुर्थीशतकम् नाम दिया है। **'भारतदण्डकम्'** में माँ भारती, भारतभूमि, भारत भूमि की साहित्यिक, प्राकृतिक, आध्यात्मिक शक्तियों, संस्कृत वाणी को नमन किया गया है। **'संबोधनशतकम्'** में कविवर ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तरीके से जड़चेतन को सम्बोधित करके अपनी दीर्घकालिक सहज अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

8) धर्मानंदचरितम्[17]

'धर्मानंदचरितम्' डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र के परम श्रद्धेय स्वामी धर्मानंद जी सरस्वती महाराज की वार्षिकी के अवसर पर प्रकाशित **श्रद्धांजलि काव्य** है। मिश्र जी के गुरूवर्य डॉ. राजकुमार वर्मा की प्रेरणा पर हरिद्वार के परमार्थ आश्रम जाने पर शुकदेवानंद

जी के पुत्र धर्मानंद के सान्निध्य में रहने पर कवि उनके सहज, सरल एवं सादगीपूर्ण व्यक्तित्व एवं असीम स्नेह से श्रद्धापूरित हो उठे और उस श्रद्धा का छलकना ही काव्यधारा के रूप में श्रद्धांजलि काव्य के रूप में छलक उठा। इस काव्य में धर्मानंद जी के जीवन चरित्र को उद्घाटित करते हुए उनको पुनः पुनः नमन किया गया है।

9) पञ्चकुल्या[18]

'पञ्चकुल्या' विमानयात्राशतकम्, बालीप्रत्यभिज्ञानशतकम्, यवसाहित्यशतकम्, देववाणीहुंकारशतकम्, एवं सुरभारतीदण्डकम् नामक पाँच शतककाव्यों का संकलन है। **'विमानयात्राशतकम्'** में कवि ने भारत से बालीद्वीप जाते समय विमान के अन्दर के क्रियाकलापों का तथा विमान से दिखाई दे रहे प्राकृतिक दृश्यों का रोमांचक वर्णन प्रस्तुत किया है।

'बालीप्रत्यभिज्ञानशतकम्' में कवि ने अपनी प्रवास भूमि बालीद्वीप का सविस्तार वर्णन किया है। बालीद्वीप की भौगोलिक परिस्थितियों, संस्कृति एवं धार्मिक स्थलों के स्वाभाविक वर्णन से बालीद्वीप को साक्षात् प्रस्तुत कर दिया है।

'यवसाहित्यशतकम्' भारताश्रित प्राचीन जावी भाषा में रचे गए ग्रन्थों की विषय व ग्रन्थकार सहित विशाल अनुक्रमणिका है।

'देववाणीहुंकारशतकम्' एवं **'संस्कृतशतकम्'** दोनों शतक काव्यों में कवि ने भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत साहित्य की महत्ता एवं वरेण्यता को प्रतिपादित करते हुए उनका अनुसरण करने की प्रेरणा प्रदान की है।

10) करशूलनाथमाहात्म्यम्[19]

'करशूलनाथमाहात्म्यम्' डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र द्वारा भ्राता देवेन्द्रमिश्र की आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए लिखा गया एक खण्डकाव्य है जिसमे **करशूलनाथ** नामक शिवलिङ्ग के अवतरण के **पौराणिक-उपाख्यान** को प्रस्तुत किया गया है। 'करशूलनाथमाहात्म्यम्' के अनुसार 'करशूलनाथ' संबोधन के विषय में जिज्ञासा प्रकट करने पर शिव, पौराणिक प्रसंग पार्वती को सुनाते है। वह बताते हैं कि किस प्रकार पूर्वजन्म में दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप में सती दक्ष द्वारा किए गए यज्ञ में अनामन्त्रित होने पर भी जाती है। शिव के अपमान से क्रोधित होकर स्वयं को यज्ञमण्डप में दग्ध कर देती है तथा हरद्रोही (हरदोई

नगर) से सती नामक नदी बनकर निकलती है। इसीलिए यह सती अथवा सई नदी शिव को अत्यन्त प्रिय है। अगले जन्म में पार्वती बनकर शिव की पत्नी बनती है। सई नदी के किनारे महिषासुर का आतंक होने पर तथा ऋषियों द्वारा रक्षा के लिए प्रार्थना किए जाने पर पार्वती ने महिषासुर का वध किया। महिषासुर को खोजनें से पार्वती अत्यन्त थक चुकी थी तब उन्होने शिव से सई नदी के किसी एकान्त स्थल पर विश्राम करने की अभिलाषा की। शिव अपने कन्धों पर बिठाकर पार्वती को सई के तट पर ले आए और सुन्दर शैया का निर्माण कर उनको सुला दिया तथा करशूल (त्रिशूल) लेकर उनकी निर्विघ्न निद्रा के लक्ष्य से विचरण करने लगे। शिव के इस भार्या प्रेम के कारण देवगणों ने उनका जयगान करते हुए 'करशूलनाथ' नाम दिया। देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर शिव वहीं स्वयंभू सई नदी के तट पर पार्वती सहित 'करशूलनाथ' नामक शिवलिंग के रूप में प्रकट हुए यही करशूलनाथ उपाख्यान है। यह आख्यान राजेन्द्र मिश्र जी ने अग्रज देवेन्द्र मिश्र की आकांक्षा पूर्ति, अनुज सुरेन्द्र मिश्र की कीर्ति एवं अभिराजी देवी की शिवकृपा के लिए लिखा।

11) कस्मैदेवाय हविषा विधेम [20]

'कस्मैदेवाय हविषा विधेम' कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र का एक **प्रशस्ति-काव्य** है। इस काव्य में कवि ने देवस्तुतिः, महात्मस्तुतिः, विद्वत्स्तुतिः, राजस्तुतिः, सत्पुरुषस्तुतिः तथा प्रकीर्णस्तुतिः शीर्षक से छः खण्डों में स्तुतियां प्रस्तुत की है। **'देवस्तुतिः'** में गंगा कावेरी, चिदम्बर, मीनाक्षी, बृहदीश्वर, जम्बुश्वेश्वर एवं शिला दुर्ग की महिमा का बखान है। **'महात्मस्तुतिः'** में कालिदास, भवभूति, भोज, गुरूगोविन्द सिंह, स्वामी शुकदेवानन्द, योगिराज अरविन्द, चन्द्रशेखर सरस्वती, जयेन्द्र सरस्वती आदि की प्रशस्तियां संग्रहीत है। **'विद्वत्स्तुतिः'** में प्रो. शार्पे, गोपीनाथ कविराज, आद्याप्रसाद मिश्र, वासुदेव द्विवेदी, बलदेव उपाध्याय, महादेवी वर्मा, भोलाशंकर व्यास, रामकरण शर्मा, लक्ष्मीकांत दीक्षित, चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, विद्यानिवास मिश्र, सत्यव्रत शास्त्री, रेवा प्रसाद द्विवेदी, शशिधर शर्मा, आचार्य केशवदेव, श्रीमती कमलारत्नम् एवं प्रो. श्रीनिवासरथ आदि के स्तुतिपरक सप्तक अथवा अष्टक है। **'राजस्तुतिः'** में गांधी, नेहरू, मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टंडन, सुभाषचन्द बोस, राममनोहर लोहिया, गणेशशंकर विद्यार्थी, आचार्य नरेन्द्र देव, बाबू सम्पूर्णानंद, कमलापति त्रिपाठी, वी.वी. गिरि, इन्दिरा गांधी, पैरालारत्नम्, सत्यनारायण रेड्डी, महामहिम सुह्वार्तो तथा नेल्सन मंडेला की प्रशस्तियां है। **'सत्पुरुषस्तुतिः'** में हरिश्चन्द्रपति

त्रिपाठी, दामोदर स्वरूप विद्रोही, दानबहादुर सिंह सूँड, विजय देवनारायण शाही आदि की प्रशस्तियों के द्वारा उनके व्यक्तिव एवं कृर्त्तत्व को प्रकाशित किया गया है। इन पाँच खण्डों से सर्वथा पृथक **अभिराजराजेन्द्र-प्रशस्ति** शीर्षक से एक अतिरिक्त खण्ड में शिष्यों, मित्रों तथा शुभाकांक्षियों द्वारा प्रणीत कवि की अपनी प्रशस्तियों का संग्रह है। सात सौ से भी अधिक श्लोकों के इस प्रशस्ति काव्य में अंग्रेजी कृतियों टामस, ट्रान्सटोमर तथा टेड्यूज की कविताओं व डॉ. मिश्र द्वारा किया गया संस्कृतानुवाद, अनिरूद्ध नीरव के छत्तीसगढ़ी गीतों व स्वयं के हिन्दी गीतों के संस्कृत रूपान्तरण, 'विदा–बालि' का संस्कृत रूपान्तरण इस कृति को विलक्षण स्वरूप प्रदान करता है।

12) अरण्यानी [21]

'अरण्यानी' अभिराज राजेन्द्रमिश्र की उन कविताओं का संकलन है, जो उपजाति, मालिनी आदि संस्कृत छंदो में प्रणीत है। अरण्यानी काव्य संकलन की कविताऐं 1962 से 1999 तक के कविवर के जीवन के उतार–चढ़ाव के 37 वर्षो के अनुभवों, संवदेनाओं एवं परिवर्तनों का सार अपने भीतर समेटे हुए है। यह संकलन कवि के काव्य के निरन्तर विकास, क्रमिक परिपक्वता, काव्य सौष्ठव की सतत समृद्धि का इतिहास है। प्रस्तुत संकलन में लघु अक्षरों में प्रणीत सात विलक्षण रचनाएँ कवि की विलक्षणता को प्रकट करती है।

13) संस्कृतशतकम् [22]

'संस्कृतशतकम्' नामक खण्ड काव्य में सामयिक सन्दर्भ में संस्कृत अध्ययन की प्रासंगिकता को प्रमाणित करते हुए विविध तर्को के माध्यम से इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि **संस्कृत का अध्ययन क्यों किया जाए?** अपने चिन्तन, ज्ञान, दर्शन, वैज्ञानिकता, तार्किकता के कारण सर्वप्रथम ऋचाओं के रूप मे यथार्थ सत्य का दर्शन करने वाले विश्वगुरू भारत को असंस्कृत होने से बचाने के लिए भारतवंशियो की प्राणस्वरूप संस्कृत भाषा को बचाना अनिवार्य है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य हमारी पहचान है, इसमें हमारी जड़े हैं, यह हमारे समस्त ज्ञान का मूल है, यह हमारे इतिहास का अपरिहार्य एवं अविभाज्य अंग है। हमारे सांस्कृतिक, साहित्यिक, भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक विकास की आधारशिला संस्कृत साहित्य में विराजमान है। कवि ने इस तर्क को भी निर्मूल बताया है

कि संस्कृत भाषा कठिन एवं क्लिष्ट है। संस्कृत भाषा के व्याकरण एवं भाषा संरचना के मूल आधार बिन्दुओं का परिचय देते हुए कहा है कि–

'न शंका न सन्देहो न चापि संभ्रमः क्वचित्।
संस्कृते वाक्य निर्माणे धारणा यदि निर्मला।'

चीनी भाषा की संरचना समझते हुए कविवर ने सिद्ध किया है कि कठिन होते हुए भी सर्वाधिक संख्या मे बोली जाती है।

न केवल उच्चकोटिक साहित्य के ज्ञान के लिए अपितु ज्योतिष, कर्मकाण्ड, तंत्रमंत्र, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष की अवधारणाओ को समझने के लिए, श्रेयस्–प्रेयस ज्ञान के लिए, काव्यानंद के लिए, लोक–परलोक विषयक जिज्ञासा शान्ति के लिए, भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों के लिए संस्कृत भाषा अनिवार्य है–

'संस्कृतेनैव संस्काराः संस्कारैरेव संस्कृतिः।
संस्कृत्यैव संस्काराः संस्कारैव राष्ट्रकार्यं नु भारतम्।।'

सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में सम्पूर्ण नूतन समाज अपनी पुरातन देवसंस्कृति एवं देववाणी को विस्मृत कर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का अंधानुकरण कर रहा है। यह विडम्बना ही है कि ज्योतिष, खगोलशास्त्र, गणित, दर्शनशास्त्र, साहित्य, औषधदर्शन, तंत्रशास्त्र, मंत्ररहस्य, आगमशास्त्र, पशु–पक्षी विज्ञान, भौतिक विज्ञान सभी क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान स्वतः सिद्ध है, परन्तु हमारी हीन भावना ही हमें पाश्चात्यों को श्रेष्ठ मानने पर विवश करती है। इस मनोदशा का कारण निश्चित रूप से संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रति उदासीनता ही है। संस्कृत कामधेनु सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।

14) अभिराजसहस्त्रकम्[23]

'अभिराजसहस्त्रकम्' मिश्र जी के दश शतकों गुर्जरशतकम्, पाकशासनशतकम् प्रबोधशतकम्, भोजशतकम्, हिमाचलशतकम्, भारतीपरिदेवनशतकम्, कालिदासमहोत्सवशतकम्, वैशालीशतकम्, विस्मयशतकम् तथा सौवस्तिशतकम् का संकलन है।

अभिराजसहस्त्रकम् के **'गुर्जरशतकम्'** में गुजरात–यात्रा के सन्दर्भ में गुर्जर भूमि के वैदिक पौराणिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रतिबिम्बन है।

'पाकशासनशतकम्' 'करगिल युद्ध' के तुरन्त बाद की रचना है। जिसमें आर्यसंस्कृति विद्रोही पाकिस्तान की शत्रु सेना का संहार करने वाली भारतीय सेना पाक नामक दानव का वध करने वाले पाकशासन अर्थात् इन्द्र के समकक्ष शत्रु विजयी है।

'प्रबोधशतकम्' में कालिदास का मेघ, जो कह न सका, उस संदेश को कवि कल्पना ने साकार रूप प्रदान किया है। इस दृष्टि से इस इसे **'उत्तर मेघदूत'** कहा जा सकता है।

'भोजशतकम्' में महाराज भोज के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का वर्णन किया गया है।

'हिमाचलशतकम्' में हिमालय की पौराणिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक समृद्धि का वर्णन है। 'भारतपरिदेवनशतकम्' में कवि ने राजीव गांधी की मृत्यु पर उनको श्रद्धांजलि समर्पित की है।

'कालिदासमहोत्सवशतकम्' में उज्जयिनी के सांस्कृतिक, धार्मिक, व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा इतिहास का वर्णन किया है।

'वैशालीशतकम्' में प्राचीन वैशाली के वैभव का वर्णन है।

'विस्मयशतकम्' वर्तमान दुर्दशाग्रस्त भारत की विसंगितियों पर प्रहार करता है।

'सौवस्तिशतकम्' में वस्तुतः दिल्ली की देववाणी संस्कृत परिषद के अध्यक्ष पद से निवृत्त होने के अवसर पर प्रस्तुत किया गया अध्यक्षीय भाषण काव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें कविवर ने संस्कृत भाषा की महिमा का बखान करते हुए संस्कृताराधकों के लिए स्वस्ति वचन प्रकट किया है।

15) मृगाङ्कदूतम्[24]

मेघदूत की तरह 'मृगाङ्कदूतम्' कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की अपनी मां के प्रति, देश के प्रति, प्रकृतिसौन्दर्य के प्रति आत्मानुभूति की सुन्दर अभिव्यक्ति है। दूतकाव्यों की श्रेणी मे रखा जाने वाला यह काव्य भारत को जावा एवं बालीद्वीप से जोड़ने वाला एवं समकालीन संस्कृत साहित्य के पुरोधा साहित्यकारों के प्रति प्रशस्ति प्रकट करने वाला असाधारण काव्य है।

1987 से 89 तक विजिटिंग प्रोफेसर के रूप मे बालीद्वीप में उदयन यूनिवर्सिटी में प्रवास के समय अपनी माँ की स्मृति में संतप्त कवि पूर्णिमा के चन्द्रमा (पार्वण मृगाङ्क) के माध्यम से अपना संदेश अपनी मातृभूमि भारत भेजते हैं।

मन्दाक्रान्ता छन्द मे निबद्व यह काव्य पूर्वमृगांक एवं उत्तरमृगांक में विभाजित है। पूर्वमृगाङ्क में चन्द्रमा की बाली से धनुष्कोटि तक यात्रा का वर्णन है जिसमें सुमात्रा के जंगल, अण्डमान–निकोबार तथा कम्बोडिया के मन्दिर का वर्णन है। उत्तरमृगाङ्क में चन्द्रमा की भारतयात्रा का वर्णन है जिसमें वह तिरूवनंतपुरम् मदुरई, रामेश्वरम्, पुरी, कलकत्ता, गौहाटी, दिल्ली, जयपुर, उज्जैन होते हुए कवि के घर प्रयाग पहुँचकर कवि की माँ अभिराजी देवी को संदेश देकर सांत्वना देता है।

16) चर्चरी[25]

सात खण्डों में विभाजित इस काव्य संग्रह में वाक्चर्चा, राष्ट्रचर्चा, आत्मचर्चा, जगच्चर्चा, गुणचर्चा एवं तपश्चर्चा के रूप में आत्मानुभूति प्रकट की गई है। **'वाक्चर्चा'** में वागीश्वरी की आराधना के रूप में कवितायें, **'देवचर्चा'** में सरस्वती, जयन्ती, काशी विश्वनाथ तथा कालभैरव की स्तुतियाँ है। **'राष्ट्रचर्चा'** में राष्ट्रीय विषयों से जुड़ी कवितायें हैं। **'आत्मचर्चा'** में आत्मसंवेदना को व्यक्त करने वाली कवितायें है। **'गुणचर्चा'** में सुभाष, पटेल, वर्णेकर, बलदेवोपाध्याय आदि देश की विलक्षण विभूतियों की प्रशंसा है। **'तपश्चर्चा'** में दीक्षागुरू आचार्य तुलसी आदि श्रेष्ठ गुरूजनों की प्रशस्तियाँ है।

17) जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्[26]

'जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्' में पण्डित जवाहर लाल नेहरू के जन्म, शैशवकाल, युवावस्था, कर्तव्यबोध, स्वतंत्रता संग्राम के प्रति समर्पण, स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता के लिए संघर्ष, नवीन भारत के निर्माण आदि विषयों को दश खण्डों तथा 201 पद्यों मे विभक्त किया है। यह काव्य पण्डित नेहरू के सम्पूर्ण जीवन व उनके पुरुषार्थ को वर्णित करता है। नेहरू के जीवन के सन्दर्भ में इन्दिरा, राजीव आदि से सम्बद्ध स्फुट कवितायें भी ग्रन्थान्त में संकलित है।

18) मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्[27]

मृग तथा मृगेन्द्र का आश्रय लेकर अन्योक्ति के माध्यम से मानवीय प्रवृत्तियों को वर्णित कर सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने वाला यह अपनी तरह का एक विलक्षण **'अन्योक्तिशतक'** है। कविवर ने मृग (हिरण) तथा मृगराज (शेर) के चरित्र, आचरण, मूल प्रवृत्तियों, स्वभाव एवं क्रियाओं का अत्यन्त सूक्ष्म अवलोकन किया है, साथ ही मनुष्य के जीवन एवं इसकी मूल प्रवृत्तियों का बारीकी से अध्ययन किया है एवं अन्योक्ति के माध्यम से बहुत ही सुन्दर साम्य स्थापित किया है। हिरण के जीवन में वर्तमान सुख, वात्सल्य, निर्भयता, भाग्याश्रय, विपत्ति, संघर्ष, दुर्भाग्य, पराधीनता, छल, सौभाग्य का गर्व, कृपा, धैर्य, संन्यास, कृतज्ञता, पुरुषार्थ, प्रणय एवं विरह की अवस्थाओं के आश्रय से मनुष्य को लक्ष्य बनाते हुए पुरुषार्थ के लिए प्रेरणा देने का कार्य भी किया है। मृग का जीवन सामान्य मनुष्य के जीवन का प्रतिबिम्ब है।

मृगराज के प्रणय वात्सल्य, विकत्थना, पश्चात्ताप, काल एवं व्याधिग्रस्त होना, सुभटता, वंचकत्व, कृतघ्नता, धिक्कार, कदर्थना, एकाकीपन, बाल्यावस्था, प्रभुत्व, कृतज्ञता आदि का वर्णन करते हुए प्रभुत्व सम्पन्न मनुष्य के जीवन को लक्ष्य बनाते हुए मनोवैज्ञानिक वर्णन है। विषयानुसार रेखाचित्रों के साथ इसको कवि ने संपादकत्रय रत्नकीर्ति विजय, धर्मकीर्ति विजय एवं कल्याणकीर्ति विजय के गुरु विजयशीलचन्द्र सूरि महाराज को समर्पित किया है।

(ग) नवगीत-संग्रह

19) वाग्वधूटी[28]

'वाग्वधूटी' कविवर के मधुर गीतों का संग्रह है। उनके गीतों में राष्ट्रीय संवेदनाएं, प्राकृतिक सौन्दर्य, लोकचित्र एवं मानव मनोभूमि प्रतिबिम्बित होती है। सारे गीत पीड़ाओं के चित्रण है। डॉ. राजेन्द्र मिश्र के अपने शब्दों में उनके गीत उनकी **'जीवन व्यथा के चित्र'** है।

20) मृद्वीका[29]

'मृद्वीका' में नमस्या, रूपश्रीः, ऋतुश्रीः, जिजीविषा, राष्ट्रश्रीः तथा प्रकीर्णम्, शीर्षकों के अन्तर्गत तिरेपन गीतों को छः खण्डों में विभाजित करके कवि ने अपने लोकगीतों को

संकलित किया है। इन खण्डों के शीर्षक इनकी विषयवस्तु का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें क्रमशः मातृवन्दन, सौन्दर्य एवं **शृंगारवर्णन, ऋतुसौन्दर्य, मानवजिजीविषा, राष्ट्रगौरव** तथा अन्य विषयों को समाहित किया है।

21) श्रुतिम्भरा[30]

'श्रुतिम्भरा' गीतसंग्रह का प्रकाशन वैजयन्त प्रकाशन से 1988 में हुआ है। 'श्रुतिम्भरा' में कवि ने राष्ट्रीय गौरव के लिए तथा **भारतीय संस्कृति एवं सांस्कृतिक विरासत** के **संरक्षण एवं संर्वधन** के लिए संस्कृत की अनिवार्यता को प्रतिपादित किया है। 'प्रवासध्वनि' के गीतों में मातृभूमि को छोड़कर अन्यत्र रह रहे लोगों की मनोभूमि का शाब्दिक रेखांकन किया गया है। 'निसर्गध्वनि' में प्रकृति के गीत है। इसमें भारतीय पर्वो, ऋतुओं, नदियों, पर्वतों, समुद्रों एवं भारतभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य सम्पदा का वर्णन किया गया है। 'आत्मध्वनि' में कवि के जीवन से संबंधित कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं। कवि के अनुसार सांस्कृतिक संकट के दौर में भी भारतीय संस्कृति अपने पृथ्वीपुत्रों के अदम्य साहस और उत्साह के सहारे सुरक्षित रहेगी। वस्तुतः श्रुतिम्भरा विविध भावों की सुन्दर अभिव्यञ्जना करने वाला एक सफल गीतिकाव्य है।

22) मधुपर्णी[31]

'मधुपर्णी' वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 2000 ईस्वी में प्रकाशित कवि का 68 गीतों का संकलन है। जय–पराजय, सुख–दुख, आशा–निराशा, सम्पत्ति–विपत्ति, के जीवन सागर मंथन से जीवनमूल्यों रूपी जीवनामृत की खोज, 'गलज्जलिका', गीति और मुक्तछंद नाम से तीन खण्डों में विभाजित मधुपर्णी में लोकहित एवं लोकमङ्गल के लिए कवि के शब्द समर्पित है। सांसारिक संतापों से अथवा प्रेम की उष्मा से क्रान्तदर्शी कवि का हृदय जब पिघलता है तो काव्य रूपी सरिता प्रवाहित होती है। इसी मन्तव्य को सार्थक करता प्रथम खण्ड काव्य 'गलज्जलिका' भावबोध एवं रचनाशिल्प की दृष्टि से **उर्दू-फारसी गजलों की झलक** है। मधुपर्णी की गलज्जलिकाएं जीवन के विविध भावों को शब्दार्थरुप में अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। द्वितीय खण्ड में 28 गीतों का संकलन है, जिनमें मानवीय संवेदनाओं की सहज एवं भावपूर्ण सचित्र अभिव्यक्ति है, जीवन की चंचलता, गहनता, स्निग्धता, प्रवाहशीलता एवं सहजता का भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण है। मधुपर्णी प्राचीन जीवन मूल्यों एवं

अर्वाचीन विसंगतिपूर्ण यथार्थ के बीच सामंजस्य का नवीन मार्ग प्रशस्त करती हुई सी जीवन की महाधारा है।

(घ) गलज्जलिकासंग्रह

23) कनीनिका[32]

'कनीनिका' वस्तुतः कवि की प्रारम्भिक कालखण्ड की रचनाओं का ही संग्रह है, जो वाग्वधूटी, मद्वीका, श्रुतिम्भरा तथा मधुपर्णी में है, परन्तु गजल साहित्य को पृथक पहचान देने के दृष्टिकोण से गजल कोटिक गीतियों का संकलन 'कनीनिका' शीर्षक से किया है।

'कनीनिका' अर्थात् आँख की पुतली जो दृष्टि एवं सौन्दर्य की प्रतीक है। इसकी विलक्षण भाव भंगिमाएं जीवन के विविधरूपों को सहज ही हृदयांकित कर देती है। कवि की युवावस्था के अनुकूल गजलों में रूमानियत एवं चंचलता है। इसकी प्रस्तावना में कवि ने अपनी गजल यात्रा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

24) मत्तवारणी[33]

'मत्तवारणी' अभिराज राजेन्द्रमिश्र का 60 गजलों का संकलन है। सारी गजलें लगभग सवा साल की अवधि में लिखी गई है तथा वे जिस क्रम में लिखी गई है उसी क्रम में अंकित है। उनकी गजलों का अपना एक संविधान है। उनका एक–एक शेर अलग–अलग प्रसंग, देशकाल, मनःस्थितिः घटनाप्रसंगों की अनुभूति करवाते हुए कहीं भी पाठक की तन्मयता को भंग नहीं होने देता है। विलोकिता, शनैः–शनैः, प्रभविष्णुता, का में भुजंगता जैसी गजलों में विविध विषयों पर अपनी वाणी को विस्तार देते हुए श्रृंगार की कम ही रचनाएं इस संकलन में है। गजलों के रचना–विन्यास एवं संयोजन–कुशलता से कविवर की अद्भुत प्रतिभा एवं सतत काव्य–साधना परिलक्षित होती है।

25) शालभञ्जिका[34]

गलज्जलिकाओं का यह संग्रह कवि ने अपनी **जीवन-सहचरी को समर्पित** किया है। उपालम्भा न दीयेरन्, प्रीतिवीथी, गभीरा–गभीरा, भविता तदेव विलक्षणम्, मामवेहि क्षुमाम्, गतभीरहं जातः, यदा वहन्नासम्, हन्त भूयो मरिष्ये, त एव बन्धुवराः, भुजङ्गाः कथम्? पथमती जाता, कुत्र वार्द्धक्ये वसेयम्?, न मां सहन्ते, सोऽहम्, मम् शालभोऽनुरागः नेदमावश्यकम्, किं

महत्त्वं हायनानाम्? तेषां सूर्योदयऽद्य हस्ते, कीदृशं सौहृदम्? रम्यरामायणम्, यत्र काकोदराश्चन्दने–चन्दने एवं शालभञ्जिका शीर्षकाश्रित गजलों का यह संग्रह सहृदय हृदयों के लिए हृदयग्राही रहा है।

26) हविर्धानी [35]

'हविर्धानी' अर्थात् यज्ञकुण्ड। यज्ञकुण्ड निवृत्तिपरक अथवा **धर्मोन्मुख जीवन का प्रतीक** है, जो वैराग्य, शान्ति, पवित्रता, विवेक एवं आन्तरिक शुचिता का आधार है। हविर्धानी निःश्रेयस में पर्यवसित है। पारलौकिक मार्ग एवं भोगविरक्ति से ही निःश्रेयस् की प्राप्ति संभव है।

(ङ) नाटिका-नाटक

27) प्रमद्वरानाटिका [36]

यह श्रीमद्भागवतमहापुराण एवं महाभारत में उपलब्ध महर्षि प्रमति के पुत्र **रुरु** एवं महर्षि स्थूलकेश की कन्या **प्रमद्वरा** की प्रणयकथा पर आधारित विशुद्ध नाट्यशास्त्रीय मानदण्डों पर लिखी गई चार अङ्कों की नाटिका है।

28) विद्योत्तमानाटिका [37]

यह महाकवि कालिदास एवं उनकी अर्धाङ्गिनी राजकुमारी विद्योत्तमा के मिलन एवं विरह पर आधारित ऐतिहासिक नाटिका है। नाटिका में कपिष्ठल ग्राम के अनाथ देवदत्त एवं विद्योत्तमा के विवाह, देवदत्त की पूर्व पत्नी में आसक्ति की भ्रान्ति के कारण वियोग एवं गढ़कलिका मंदिर में तपस्या से विद्वत्ता एवं कवित्व प्राप्ति तथा अन्ततोगत्वा पश्चात्तापयुक्त **विद्योत्तमा एवं कालिदास का मिलन** इस नाटिका की विषय वस्तु हैं।

29) प्रशान्तराघवम [38]

यह रामायण के कथानक को आश्रय बनाकर लिखे गए काव्यों की पम्परा में रामायण के नायक **श्रीराम के प्रशान्त चरित्र को प्रस्तुत** करने वाला नाटक है। प्रशान्तराघवम् में अधुनातन जीवन मूल्यों, समय एवं स्वयं के मौलिक चिन्तन को सार्थकता प्रदान करते हुए कविवर ने नवीन प्रयोग किए हैं जैसे परम्परा के विपरीत रामायण कथानक में **विदूषक की अवधारणा,** विदूषक का परम्परामुक्त व्यक्तित्व, प्राचीन प्राकृत के स्थान पर आधुनिक प्राकृत का प्रयोग। इन प्रयोगों के अतिरिक्त कविवर सीता निर्वासन से असहमत प्रतीत होते हुए कथानक को सकारात्मक एवं सुखान्त मोड़ पर लाकर समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करते है।

कवि के काव्य में रजक अपनी जड़बुद्धि पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए राम से क्षमा मांगता है। राम उसे क्षमा कर देते हैं। इस प्रकार सीता–निर्वासन का संकट टल जाता है।

कविवर के काव्य में **लवकुश का जन्म अयोध्या में** होता है तथा वे पाँच वर्ष की उम्र में शिक्षा ग्रहण हेतु वाल्मीकि आश्रम में जाते हैं लक्ष्मण एवं सीता के साथ। सीता लव–कुश के साथ कुछ समय रहकर वापस आ जाती है।

इस प्रकार नाटक का सकारात्मक व सुखान्त समापन होता है।

30) लीलाभोजराजम्[39]

मालवराज भोज के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया 'लीलाभोजराजम्' नाटक पाँच अंकों में विभाजित है। ऐतिहासिक विषयवस्तु होते हुए भी कविवर ने इसे अपनी कल्पना से चमत्कारिक सौन्दर्य प्रदान किया है।

खरगोन में एक सामन्त द्वारा निर्मित शिव मंदिर में राजा भोज अभिषेक के लिए जाते हैं। सामन्त पुत्री राजा भोज को हृदय से अपने वर के रूप में स्वीकार कर चुकी है और ऐसा न होने पर आजीवन कुमारी रहने का संकल्प भी ले चुकी है।

सामन्त कन्या एक तेंदुए के आक्रमण से भोजराज के पुत्र को बचाती है अतः उनके परिवार की वो प्रिय है। भोजराज भी उसकी ओर आकर्षित है, परन्तु महारानी लीलावती के प्रति दृढ़निष्ठ है।

रानी की उदारता सम्पूर्ण कथानक को सुखद सोपान पर लाकर सबके हृदयों को बांध देती है।

(च) एकांकी-संग्रह

31) नाट्यपञ्चगव्यम्[40]

यह पाँच एकांकियों का संग्रह है। कविसम्मेलम्, राधामाधवीयम्, फण्टूसचरितभाणः, नवरसप्रहसनम् तथा कचाभिशापम् नामक पाँच एकांकी संग्रह उनके राजकीय सेवा में आने से पहले लिखे जा चुके थे।

32) अकिञ्चनकाव्यम्[41]

यह एकांकी एक **यूनानी कथा का मौलिक नाट्यरूपान्तर** है। मीडोस नामक सुवर्ण प्रेमी राजा को देवदूत से स्वप्न में वरदान प्राप्त होता है कि वह जिस भी वस्तु को स्पर्श करेगा वह सुवर्ण की हो जाएगी। सुवर्ण मोह में वह प्रत्येक वस्तु को स्पर्श करता है। इसी क्रम में वह अपनी पुत्री को भी स्पर्श करता है तो वह भी सोने की हो जाती है। लोभ के दुष्परिणाम से उसे पश्चात्ताप होता है। पुनः देवदूत के वरदान से अपनी कन्या का जीवन प्राप्त करता है।

33) नाट्यपञ्चामृतम्[42]

यह दास्यापनोदनम् अर्जुनोर्वशीयम्, समर्चितमृत्तिकम्, प्रीतिनिर्यातनम् तथा छलिताधमर्णम् नामक पाँच एकांकियो का संकलन है।

34) चतुष्पथीयम्[43]

यह इन्द्रजालम्, वैधेयविक्रमम्, निर्गृहघट्टम् तथा मोदकं केन भक्षितम् नामक चार लघुनाट्यों का संग्रह है। यह एकांकी संग्रह **नुक्कड़ नाटकों का उद्भावक** है।

35) रूपरूद्रीयम्[44]

यह सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा मनोवैज्ञानिक विषयों पर आधारित ग्यारह एकांकियों का संग्रह है। अभीष्टमुपायनम्, नात्मानमवसादयेत्, पुनर्मेलनम्, कन्थामाणिक्यम्, स्वप्नजागरणं वरम्, कुटुम्बरक्षणम्, राजराजौदार्यम्, को विजयते नैव ज्ञातम्, रक्ताभिषेकम्, काश्यपाभिशापम् तथा एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति नामक एकांकियों का संग्रह सभी विषयों को विषयवस्तु बनाता है।

36) नाट्यसप्तपदम्[45]

पञ्चसीनमी, वाणीघटकमेलकम् बधिरप्रहसनम्, साक्षात्कारः, रूपमती, देहलीपरिदेवनम् तथा द्विसन्धानम्–शीर्षकों पर रोचक, मर्मस्पर्शी, अधिक्षेपात्मक लघुनाट्यों का एक श्रेष्ठकोटिक एकांकी संग्रह है।

37) नाट्यनवरत्नम्[46]

आधुनिक भारतीय **समाज की ज्वलन्त समस्याएं,** जो हमारे परिवेश में सर्वत्र दिखाई पड़ती है, उन्हें कविवर ने अपना विषय बनाकर नाट्यनवरत्नम् की रचना की है। लचर एवं शिथिल न्याय व्यवस्था, कारागार निरीक्षण, भिक्षावृत्ति के विलक्षण तरीके, कन्या विवाह की समस्याएं, बुद्धिजीवियों की उपेक्षा आदि विषय हैं, जिन्हें कविवर ने मण्डूकप्रसहनम्, प्रतिभापरीक्षणम्, प्रत्यक्षरौरवम्, स्वयंवरकेन्द्रम्, क्रीतानन्दनम् तथा शारदावमानम् नामक लघु नाटकों में प्रस्तुत किया है।

38) नाट्यनवग्रहम्[47]

पौराणिक प्रेरणादायी प्रसंगों को लेकर **बालकों के लिए शिक्षाप्रद एकांकियों का प्रणयन** कवि ने 'नाट्यनवग्रहम्' के रूप में किया है। कुमार ध्रुव के कथानक पर 'ईश्वरान्वेषणम्,' द्रोणाचार्य एवं द्रुपद की शत्रुता के कथानक पर 'गुरूदक्षिणा,' कद्रूवनिता के कथानक पर 'दास्यमुक्तिः' रामायणीय श्वेत कथा के कथानक पर 'श्वेतोद्धारः' सत्यकाममहर्षि गौतम के कथानक पर 'सत्यकामजाबालः' भीष्म द्वारा द्रोण की शिक्षक के रूप में नियुक्ति के कथानक पर 'रत्नप्रत्यभिज्ञानम्' रावण के कैलाशोत्थापन एवं शिव द्वारा दण्डित होने के कथानक पर 'नामकरणम्' 'पञ्चतन्त्र' के कथानक पर 'सिंहजम्बूकीयम्' तथा काल्पनिक कथानक पर 'गुणाः पूजास्थानम्' की रचना करके कविवर ने नई पीढ़ी के लिए पुराने जीवन मूल्यों के सेतु का काम किया है, एक पथ प्रदर्शक का काम किया है, एक गुरू का काम किया है। समाज के लिए भी और अपने पुत्र क्षेमेन्द्र के लिए भी आपने यह रचना समर्पित की है।

39) नाट्यनवार्णम्[48]

नौ नुक्कड़ नाटको का संग्रह है, 'नाट्यनवार्णम्'। नुक्कड़ नाटक अर्थात् ऐसे नाटक, जो किसी बस्ती के भीड़ भरे नुक्कड़ पर किये जा सकें। मनोरंजक, शिक्षाप्रद एवं जनजागरूकता उत्पन्न करने वाले तथा अंतिम आदमी तक पहुंचने वाले नाटक नुक्कड़ नाटक की श्रेणी में आते हैं।

'मण्डितमण्डनम्' खोंखीप्रहसनम्, विद्यालयनिरीक्षणम्, कलिकौतुकम्, उपनेत्रप्रहसनम्, वेतालप्रहसनम्, द्विजच्छात्रीयम्, अद्भुतज्यौतिषम्, मृदङ्गदास आदि **प्रहसन** मनोरंजक विषयवस्तु के साथ सामाजिक संदेश सहज ही दर्शक तक पहुंचा देते है।

(छ) कथासंग्रह (कथानिका एवं लघुकथा)

40) इक्षुगन्धा –(कथानिका-संग्रह)[49]

'इक्षुगन्धा' आठ कथानिकाओं का संग्रह है, जिसमें लगभग **सभी कहानियों के केन्द्र में नारी** है। नारी कविवर की कहानियों की **मेरूदण्ड** है। माँ की विवशता, बहिन की पढाई, भाई के दूध जैसी जरूरतों के लिए यौवन के मूल्य पर नौकरी पाने में स्थित 'जिजीविषा', किसी सामाजिक विवशता के चलते प्रक्षिप्त कानीन शिशु 'अनामिका', अनीप्सित वर को प्राप्त करने वाली माँ की उपेक्षा की शिकार 'एकहायनी', वैधव्य की असह्य पीडा के प्रतिकार

स्वरूप परित्यक्त 'भग्नपञ्जर', एक जैसी दो ह्रदयों की 'सुखशयितप्रच्छिका', मिथ्या सामाजिक प्रतिष्ठा के अहंकार से टूटे बचपन के रिश्ते का युवावस्था में नवसृजन (इक्षुगन्धा), सात पुत्रियों के पिता की उपेक्षा की शिकार 'शतपर्विका' जैसी बेटियां तथा 'ताम्बूलकरङक्वाहिनी' के रूप में नायिका का नायक से मिलन को अपनी विषयवस्तु में समेटे हुए आठ कथानिकाओं का संग्रह है 'इक्षुगन्धा'।

इस कथासंग्रह की सारी कहानियां उन विषयों को अपने कलेवर में समेटे हुए हैं जिन्हे हम अपने दैनिक जीवन में हमारे आस–पास घटते हुए देखते हैं और महसूस करते हैं। अपनी चिरपरिचित संवेदनाओ के कारण ही यह कहानियां पाठकों के ह्रदय को दृढात् आकर्षित करती हैं।

41) राङ्गडा –(कथानिका-संग्रह)[50]

'राङ्गडा' संस्कृत-मूलक जावी शब्द है। यह संस्कृत के 'रण्डा' का तद्भव है। कथानिका संग्रह की यह प्रतिनिधि कथानिका बाली नरेश धर्मोदयनदेववर्मा की विधवा रानी महेन्द्रदत्ता के महत्त्वाकांक्षी जीवन एवं मार्मिक अंत की कहानी हैं, जो अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए कापालिक क्रियाओं में आसक्त हुई और इसी कारण राज्य से निष्कासित हुई, प्रजाओं में तिरस्कृत भी हुई, परन्तु अंत में पुत्री के कल्याण के लिए ममतामयी मां का स्वरूप धारण कर लेने वाली, बाली तथा जावा में 'महिषासुरमर्दिनी' के रूप में पूजित हुई।

इस संग्रह में जातीय श्रेष्ठता के अहंकार को नष्ट करने वाली तथा सामाजिक समरसता स्थापित करने वाली कुलदीपकः, पिता के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने वाले देवव्रत (भीष्म) के प्रति ऋणी हो जाने वाले पिता की 'अधमर्णः', मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत, कवि के मन में आत्मीयता ममत्व, करूणा, स्नेह जैसे भावो को जगा देने वाली मार्जारी की कथानिका 'कुक्की', तथाकथित सभ्य समाज के चेहरे पर ओढ़ी गई छद्म कुलीनता के भीतर छिपे कुटिल चरित्र को अनावृत्त करती 'चञ्चा', परायी संतान के प्रति संवेदनहीनता के मार्मिक चित्रण को प्रस्तुत करती 'महानगरी', दाम्पत्य जीवन के महत्त्व को प्रतिपादित करती 'एकचक्रः', संयोगवश जीवनधारण करने के लिए एक ही जहाज में आश्रय लेने वाले पक्षियुगल की तरह संयोगवश जीवन में एक दूसरे आ मिले महुली तथा निहाल की अन्योऽन्याश्रित भाव को अभिव्यक्त करती 'पोत–विहगौ' तथा दिदिशा के जीवन में अमृताङ्ग द्वारा अपहरण, पिता की मृत्यु, कर्णाङ्गारक के प्रति आकर्षण, कर्णाङ्गारक की अन्य

स्त्री में आसक्ति एवं विवाह तथा अन्त में कर्णाङ्गारक की मृत्यु जैसी घटनाओं को अपने में समेटे 'सिंहसारि' जैसी कथानिकाओं का संग्रह है। इस कथासंग्रह में विविध विषयों में आबद्ध कथानिकाओं का संकलन है, जो सामाजिक विसंगतियों एवं सुसंगतियों को प्रतिबिम्बित करते हुए समाज को दर्पण दिखाने का कार्य करती है तथा करणीयता का सुन्दर उपदेश प्रस्तुत करती है।

42) पुनर्नवा-(कथानिका-संग्रह)[51]

विधवाविवाह को ठोस, तार्किक एवं धर्मशास्त्रीय आधार प्रदान करने वाली, वैधव्य का दंश झेल रही कृष्णा को पुनर्जीवन देनेवाली कथानिका 'पुनर्नवा' को प्रतिनिधि कहानी के रूप में रखने वाला 'पुनर्नवा' कथानिका संकलन ग्यारह कथानिकाओं का संग्रह है।

वर्णव्यवस्था को सामाजिक समरसता एवं जाति व्यवस्था को वर्गभेद का आधार स्थापित करने वाली 'संकल्पः', सन्तान प्राप्ति के लिए सपत्नी को लाने पर स्त्री के जीवन में आई जटिलताओं एवं अप्रत्याशित परिणामों की ओर संकेत करती हुई 'सपत्नी', संस्कारित एवं शालीन विदेशी युवती जेनी से प्रभावित होकर अपनी वधु के रूप में स्वीकार कर लेने वाले प्रगतिशील विचारधारा के पोषक उमाचरण की ऊहापोह एवं सही निर्णय पर सकारात्मक अंत घोषित करती 'वाग्दत्ता', अपनी बुआ पर अन्याय करती मां को न्याय का रास्ता दिखाने वाली मुदिता की कहानी 'न्यायमहं करिष्ये', माँ की ममतामयी छवि वाली नर्तकी की उदारता को व्यक्त करती 'नर्तकी', पथभ्रष्टा नायिका को पथप्रदर्शित करने वाली 'ध्रुवस्वामिनी', वन्ध्या की मनोदशा का विश्लेषण करती 'वन्ध्या', अपने वचन के लिए सौतेले पुत्र की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर कर देने वाली सुनन्दा की कथानिका 'न्यासरक्षा', रेगिस्तान के एकाकी बरगद की तरह शोकसंतप्त श्यामा को शरण देने वाले दयालु की कहानी 'मरून्यग्रोध' तथा बाणभट्ट के स्वाभिमान, उनके दर्शन, पत्नी, पिता व बहिन के लिए उनके स्नेह को व्यक्त करती, कवि के स्वप्न के रूप में प्रकट होती 'अनाख्याता' बाणभट्टाऽत्मकथा' आदि कथानिकाएं स्त्री की पीड़ाओं, उनके मनोभावों एवं उनके समाधानों का ताना–बाना है, अंधानुकरण का खण्डन है, शास्त्रीय मान्यताओं की स्थापना है, संस्कृतियों का संगम है, सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करते हुए उन्हे सुसंगतियों में परिणत करने का प्रयास है।

43) चित्रपर्णी-(लघुकथा-संग्रह)[52]

अपने काव्य शास्त्रीय समीक्षा ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने लघुकथा का लक्षण करते हुए उसे **'विद्युदुन्मेषसन्निभा' 'नातिविस्तृतसंदर्भा' 'एकपात्रावसायिनी'** कहा है। इन विशिष्टताओं के सन्दर्भ में 'चित्रपर्णी' लघुकथा के समस्त मापदण्डों को पूरा करती है।

चित्रपर्णी की 62 कथाएं विषयवस्तु, तकनीक, कलेवर एवं संवेदना सभी दृष्टियों से लघुकथाएं है। ये विद्युत् सी कौंधती है प्रकाशीय प्रेरणा दे गायब हो जाती है। दोहरे चरित्र पर प्रहार करती द्विसन्धानम्, आत्मविश्लेषणम्, काष्ठभाण्डम्, पितृभक्तिः, अभिनयः, संस्कृतवर्षम्, पिशाचः, राष्टपतिपुरस्कारः, पात्रत्वम्, मद्यनिषेधः जैसी कथायें, पर्यावरण चेतना के लिए सजग करती अश्रुमूल्यम्, छागबलिः, वृद्धा महिषी, कृतज्ञः, नयनयोर्भाषाः, वैराग्यम् आदि कथायें, विवाह की विसंगतियों पर प्रहार करती जामाता, आद्यन्तम्, वरान्वेषणम्, अभिरूचिः, पितुह्रदयम्, प्रीतियोगः, गौर्यावरः, लिखितमपि ललाटे, युद्धविरामः, वाग्दत्ता आदि कथायें, जीवनमूल्यों को स्थापित करती दुस्सहम्, वात्सल्यामृतम्, प्रतिशोधः, निर्णयः, दायित्वबोधः, साक्ष्यम्, दृष्टिलाभः, वेतनम्, वाहनसार्थक्यम्, गुरूदक्षिणा, कोऽनुकरणीयः, यशोलिप्सा, वृक्षः, ज्योतिषमाहात्म्यम्, भिक्षुकः, नियतिकौशलम्, तथा भ्रष्टाचार जैसी समसामयिक समस्या पर कटाक्ष करती नियुक्तिः, रक्षाकवचम्, अवमानना, ऊर्ध्वरेता जैसी कथायें लघुकथाओं के प्रामाणिक आदर्श है, एक वाक्यीय संदेश है।

44) छिन्नमस्ता[53]

'छिन्नमस्ता' कविवर का चौथा कथानिका संग्रह है। जिसमें से आसीन्मम तातपादः, प्रीतिदर्पणः, मध्यमाज्जुका, छिन्नमस्ता, प्रायश्चित्तम्, मातुर्निमित्तम्, वाडवाग्निः, पितृष्वसा तथा कन्यादानम् नामक नौ कथानिकाओं का संग्रह है। साहित्य के शिखर पर विराजमान कविवर की ये कथानिकायें कथाशिल्प की श्रेष्ठ उदाहरण है, ये जमीन से जुड़ी हुई, यथार्थ है, लगभग जीवित पात्रों को आधार बनाकर लिखी गई है। इनके पात्र चिर–परिचित है। हमारे आस–पास जीवन्त रूप में चलते–फिरते प्रतीत होते हैं। आमजीवन के इन पात्रों को कथाकार ने अपने कथाशिल्प एवं काव्यवैशिष्ट्य से अद्भुत रूप प्रदान किया है, परन्तु इनकी आत्मा को अक्षुण्ण बनाए रखा है।

(ज) बाल-साहित्य

45) कौमारम्[54]

'कौमारम्' शिशु गीत संग्रह में बालकों के विचार, विकास, मनोवृत्ति, कल्पना शक्ति तथा परिचय क्षेत्र को प्रकट करने वाले विविध गीतों का संग्रह है।

इस गीतमाला में गीतों के माध्यम से परिवार, सम्बन्धों, विद्यालय, अक्षर, भारत के भूगोल, राष्ट्रीय घटनाओं, नदियों, तीर्थो आदि का ज्ञान बालकों को मनोरंजक ढंग से करवाने का सफल प्रयास किया गया है।

46) अभिनवपञ्चतन्त्रम्[55]

'अभिनवपञ्चतन्त्रम्' में नवीन विषयवस्तु के साथ प्राचीन वक्ता एवं श्रोता को लेकर लिखी गई पूर्ण रूपेण नवीन सोलह कथाओं में मित्रप्राप्ति, मित्रभेद, काकोलूकीय का परिवेश भारतीय है, परन्तु लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षित कारक की कहानियाँ जावा, बालीद्वीपीय परिवेश की है।

47) कान्तारकथा [56]

'कान्तारकथा' में मुद्गल नामक ग्रामीण युवक के डेढ़ माह के बच्चे को एक भेड़िया अपनी मादा के भोजन के लिए ले जाता है, परन्तु मादा को मुद्गल पुत्र मोद्गलि से स्नेह हो जाता है। वह उसकी रक्षा करती है, बच्चे की तरह पालन–पोषण करती है। मोद्गलि जंगली जानवरों के साथ रहकर उनके गुण सीख लेता है तथा सभी जानवरों का स्नेह उसे मिलता है। मोद्गली (मोगली) जंगल का नायक बन जाता है। यह कथा **वन्य-संस्कृति की एक झलक** प्रस्तुत करती है।

(झ) समीक्षात्मक-साहित्य

48) अभिराजयशोभूषणम्[57]

अभिनव प्रमेयों के साथ प्राचीन पारम्परिक काव्यशात्रीय प्रमेयों के समायोजन स्वरूप 'अभिराजयशोभूषणम्' इक्कीसवीं सदी का **अभिनव-काव्यशास्त्र** है।

युगानुकूल संशोधनों के साथ पाँच उन्मेषों में प्रणीत इस काव्य में 568 मौलिक कारिकायें एवं 177 उदाहरण पद्य हैं जिनमें अधिकतर उनके मौलिक पद्य हैं।

प्रथम **'परिचयोन्मेष'** में काव्यप्रशंसा, काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यलक्षण एवं काव्यविभाजन दिया गया है।

द्वितीय **'शरीरोन्मेष'** में शब्दशक्ति, रीतिवृत्ति एवं गुणालंकार का विवेचन है।

तृतीय **'आत्मोन्मेष'** में रसादि की काव्यात्मकता का विवेचन है।

चतुर्थ **'निर्मित्युन्मेष'** में महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, नाटिका आदि प्राचीन काव्य भेदों को परिष्कृत रूप से विवेचित किया गया है।

पंचम् **'प्रकीर्णोन्मेष'** में गीतकाव्य, गलज्जलिका तथा छन्दोमुक्त काव्य प्रकरण आदि नवीन काव्य शास्त्रीय विषयों के रूप में विवेचित किए गए हैं।

गजल को गलज्जलिका नाम देकर मतला, मक्ता, एवं शेर को क्रमशः प्रारम्भिका, अन्तियका एवं मध्यिका के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

गद्य के कथा एवं आख्यायिका के अतिरिक्त कथानिका, लघुकथा, दीर्घकथा एवं उपन्यास को भी सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार कविवर का यह अभिनव काव्य शास्त्र युगीन अपेक्षाओं पर खरा उतरते हुए काव्यशास्त्रीय आदर्श प्रतिमान के रूप में स्थापित होता है।

49) शास्त्रालोचनम्[58]

'शास्त्रालोचनम्' कुल सत्रह शोध निबन्धों का संकलन है जिनमें काव्य के विविध पक्षों के विवेचन के साथ ही अपनी काव्य, नाट्य एवं गद्ययात्रा को सविस्तार वर्णन किया है, साथ ही भारतमूलक जावी साहित्य को भी निबन्ध रूप में बांधने का सफल प्रयास किया है।

50) समीक्षासौरभम्[59]

इस 'शोधलेखसंकलन' में भाषा–समीक्षा, संस्कृति–समीक्षा, धर्म–समीक्षा, दर्शन–समीक्षा, शास्त्र–समीक्षा, काव्य–समीक्षा, अर्वाचीन संस्कृतकाव्य–समीक्षा आदि शीर्षकों में शोधलेखों को विभाजित किया गया है।

51) बालीद्वीपे भारतीया संस्कृति[60]

बालीद्वीपीय प्रवास में कविवर ने श्री चन्द्रशेखर सरस्वती के निर्देश से जावा–बाली द्वीप में विद्यमान वैदिक धर्म के विविध पक्षों को लेकर एक लेखमाला का निरन्तर दो वर्षों तक 'संस्कृतश्रीः' में प्रकाशन किया था। जिसमें बाली के वैदिक धर्म, देवालय, पूजा–व्यवस्था, दर्शन दृष्टि, तीर्थाटन, सामाजिक–व्यवस्था, धार्मिक–परम्परा आदि का वर्णन किया है। इस लेखमाला को भारत में अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

52) संस्कृत-साहित्य में अन्योक्ति[61]

यह समीक्षा ग्रन्थ प्रो. राजेन्द्र मिश्र के डी. फिल का शोध प्रबन्ध रूप है। जो आपने आद्याप्रसाद मिश्र के निर्देशन में सम्पादित किया था। इस समीक्षात्मक ग्रन्थ में कविवर ने अन्योक्ति के बीज लक्षणों (प्रोत्साहना, तुल्यतर्क, मनोरथ) में खोजे हैं। भामह से लेकर पण्डितराज तक अन्योक्ति अंलंकार की यात्रा को प्रस्तुत किया है।

53) सुवर्णद्वीपीय रामकथा[62]

इस ग्रन्थ में जावा तथा बाली की धर्म–संस्कृति की सारस्वरूप रामकथा का सविस्तार वर्णन किया गया है।

मतरामवंशीय यवद्वीप शासक बतुकुर बलितुङ्ग के राजकवि योगीश्वर द्वारा 26 अध्यायों में विभक्त, 2778 श्लोकों में लिखी गई यह कथा वाल्मीकि, कालिदास आदि का अनुसरण करते हुए राम को ईश्वर का अवतार मानती है। इस रूप में यह लंका, थाईलैण्ड, लाओस तथा मलेशिया की रामकथाओं से भिन्न है, जो रामकथा को विकृत रूप में प्रस्तुत करती है।

54) भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीक-बालीद्वीप[63]

भारतीय संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती बालीद्वीपीय संस्कृति को अभिव्यंजित करता हुआ, विभिन्न परिच्छेदों एवं चार सौ पृष्ठों में लिखित यह ग्रन्थ एक तरीके से कविवर के बाली प्रवास का प्रामाणिक एवं लिखित दस्तावेज है। डायरी के रूप में अभिव्यक्ति पाती कविवर की बाली प्रयास की अनूभूतियां बाली एवं भारतीय संस्कृति की ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत करती है।

55) मणिकाञ्चन [64]

मणिकाञ्चन कविवर के काव्य एवं काव्य शास्त्र से जुड़े 18 शोध लेखों का संकलन है जिसमें हिन्दी भाषा के माध्यम से कवि ने वैदिक एवं लौकिक संस्कृत से जुड़े विभिन्न विषयों पर शोधात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

56) सप्तधारा[65]

वेद, वेदांग, पुराणेतिहास, धर्म–दर्शन, संस्कृति, साहित्य शास्त्र सुवर्णद्वीप एवं अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय के रूप में सात शीर्षकों के अन्तर्गत 57 शोधलेख कविवर ने इस ग्रन्थ में समेटे हैं, जो उनकी विविध विषयों के प्रति गहरी समझ एवं शास्त्रीय प्रतिभा को प्रकट करता है।

57) संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र[66]

दस परिच्छेदों में विभाजित यह काव्य शास्त्र **अर्वाचीन-संस्कृत-काव्यशास्त्र** में अनुपम स्थान रखता है। यह काव्य शास्त्र संस्कृत, संस्कृत काव्यधारा की वेदमूलकता से प्रारम्भ होता है तथा भरतमुनि से पूर्व के काव्य शास्त्रीय संकेतों की सांगोपांग समीक्षा करता है।

तदन्तर भरतयुगीन काव्यशास्त्र का विश्लेषण करते हुए उसके नाट्यशास्त्रीय एवं काव्यशास्त्रीय तत्त्वों को पृथक किया है। तृतीय परिच्छेद में भरत के बाद पण्डितराज तक काव्यशास्त्र का विकास, चतुर्थ में पण्डितराज के बाद अठारहवीं से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के काव्यशास्त्रियों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का निरूपण किया है। पंचम परिच्छेद में संस्कृत काव्यशास्त्र के विवेच्य विषयों, छठे, सातवें, आठवें, नवें परिच्छेदों में शब्द–शक्तियों, वृत्तियों, रीतियों, गुणालंकारों, काव्यदोषों, रसालंकारों, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य एवं ध्वनि का काव्यात्मक तथा गद्यबन्धों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। अन्तिम परिच्छेद में अर्वाचीन संस्कृत काव्य की मौलिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए उदाहरण सहित पारम्परिक, गीतात्मक, गलज्जलिका एवं छन्दोमुक्त काव्य की व्याख्या की है।

58) शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपि विज्ञान (शास्त्रग्रंथ)[67]

इस ग्रंथ में कविवर ने अपनी पत्नी डॉ. राजेश कुमारी मिश्र के साथ शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपि विज्ञान का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। भारतीय वाङ्मय प्रामाण्य के साथ

भारतीय परम्परा में उपलब्ध, परन्तु सर्वथा अज्ञात विषयवस्तु को प्रस्तुत किया है। शोधार्थियों के लिए यह सर्वथा मौलिक एवं प्रामाणिक ग्रंथ है।

59) स्वाध्यायपर्व[68]

स्वाध्यायपर्व में 23 शोधनिबन्धों के संकलन में शास्त्र सन्दर्भ, संस्कृति सन्दर्भ, पुराणेतिहास सन्दर्भ, साहित्य सन्दर्भ, अर्वाचीन संस्कृत सन्दर्भ के शोध लेख है।

60) पोयेट्री एण्ड पॉयटिक्स[69]

Poetry and Poetics अंग्रेजी भाषा में लिखे गए पन्द्रह शोध लेखों का संग्रह है, जो मुद्रणाधीन है। सम्भवतः शोधप्रबन्ध पूर्ण होने तक प्रकाश में आ चुका होगा।

61) ग्लिंम्प्सेज ऑफ मॉर्डन संस्कृत पॉयेट्री[70]

यह अर्वाचीन संस्कृत काव्य के विविधपक्षों को प्रकट करने वाला ग्यारह अध्यायों में विभक्त ग्रन्थ है।

62) सेजराह कसुसास्त्रान् संसकिर्त[71]

जावा तथा बाली की **राष्ट्रभाषा इण्डोनेशिया में रचित यह संस्कृत साहित्य का इतिहास** कविवर का बालीप्रवास में बालीद्वीपीय पाठकों के लिए लिखा गया ग्रन्थ है।

नौ परिच्छेदों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में वैदिक वाङ्मय, द्वितीय में पुराणेतिहास, तृतीय में आर्षकाव्य, चतुर्थ में महाकाव्य एवं खण्डकाव्य, पंचम् में कथा एवं आख्यायिका, षष्ठम् में दशरूपक साहित्य, सप्तम् में शास्त्रीय साहित्य, अष्टम् में अर्वाचीन भारतीय संस्कृत साहित्य तथा अंतिम नवम अध्याय में संस्कृत एवं जावा बाली की समान कृतियों का अन्तः सम्बन्ध वर्णित है।

63) विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम्[72]

1901 से 2000 ईस्वी तक प्रणीत महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, दशरूपकों, कथोपन्यास, कृतियों, चम्पूग्रन्थों, शास्त्रग्रन्थों एवं अन्य भाषा के ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ वस्तुतः समीक्षात्मक काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। यह **देवनागरी एवं रोमन लिपियों में एक साथ** प्रस्तुत किया गया है।

(ञ) अनुदित एवं सम्पादित ग्रन्थ

64) रामायणककविन्[73]

महाकवि योगीश्वर द्वारा कवि भाषा में (प्राचीन जावा अथवा प्राचीन बाली लिपि) लिखी गई जावा–बाली की कालजयी रामकथात्मक कृति है जिसमें 26 सर्ग एवं 2778 श्लोक है। कविवर ने अथक परिश्रम से इसका देवनागरी लिप्यन्तरण एवं हिन्दीभाषारूपान्तर किया है।

65) रसों की संख्या[74]

प्राच्य भाषाविद् तथा संस्कृत रंगकर्मी प्रो. वेंकटराघवन् की अंग्रेजी भाषा में रचित 'नम्बर ऑफ रसाज' का प्रो. राजेन्द्रमिश्र ने हिन्दी में अनुवाद किया है।

66) महालक्ष्मीमुक्तिसंवाद:[75]

डॉ. प्रदीपवाद्य के आध्यात्मिक काव्य का संस्कृत काव्यानुवाद है।

67) देववाणीसुवास:[76]

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के वरेण्य कवि डॉ. रमाकान्त शुक्ल का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रो. राजेन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित किया गया है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पर केन्द्रित होने के कारण शोधार्थियों के लिए उपयोगी है।

68) प्रतानिनी[77]

बीसवीं सदी के कवि, संस्कृत–फारसी एवं हिन्दी के विद्वान बच्चूलाल अवस्थी की कविताओं का संकलन कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के अथक प्रयासों का परिणाम है।

'मन्मुखेनेदमाह' शीर्षक में अवस्थी जी का विलक्षण आत्मवृत्त है।

प्रतानिनी–स्तवक, अन्योक्ति, गजल–गीति, विराग एंव प्रकीर्ण नामक पाँच भागों मे विभक्त है।

69) विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामृतम्[78]

बीसवीं शती की वरिष्ठ, मध्यम तथा नवीन पीढ़ी के 130 कवियों के व्यक्तित्व–कर्तृत्व परिचय के साथ उनकी चयनित कवितायें संकलित की गई है।

70) संस्कृत वाङ्मय में हिमाचल[79]

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में विभागाध्यक्ष पद पर रहते हुए प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने एक संगोष्ठी दिनांक 12 मार्च से 14 मार्च 2000 ई. तक आयोजित की। संस्कृत वाङ्मय में वर्णित 'हिमाचल प्रदेश एवं हिमालय क्षेत्र' विषय पर आयोजित इस संगोष्ठी में प्रस्तुत छत्तीस वरेण्य शोध लेखों का संकलन एवं सम्पादन इस संग्रह में कवि ने किया है।

(ट) पाठ्य-ग्रन्थ[80]

1. किरातर्जुनीयम् प्रथम सर्ग–1968
2. कादम्बरीकथामुखम्
3. छन्दोऽलङ्कारसौरभम्
4. रसनिरूपणम्
5. संस्कृतगद्यामृतम्
6. साहित्य–दर्पण
7. संस्कृतकाव्यत्रिपथगा
8. संस्कृतामृतचन्द्रिका

संस्कृतेतर-अभिराजवाङ्मय

अभिराजवाङ्मय-हिन्दीसाहित्य[81]

संस्कृत साहित्य की महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीत संग्रह, एकांकी, पाठ्य ग्रन्थ, अनुवाद, लिप्यन्तरण, विशिष्ट काव्य सम्पादन, रूपक, नाटक अथवा नाटिका, कथा संकलन एवं समीक्षा साहित्य रूप विधाओं में अपनी बहुमुखी काव्य प्रतिभा को सिद्ध करने वाले कवि डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने हिन्दी, अंग्रेजी एवं भोजपुरी भाषाओं के माध्यम से भी अपने काव्यत्व को अभिव्यक्ति प्रदान की है, जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से है–

(क) काव्य-संग्रह

1. दो पात नींबू : तीन पात अमोला (68 कविताएँ)
2. मुक्तधारा (20 गीत)
3. सपनों में डूब गया मन (55 गीत)
4. पलकों के बन्द द्वार (53 गीत)
5. तटस्था (जनवादी कविताएं)

(ख) खण्ड-काव्य

1. वेदना
2. पनघट
3. मुक्तिदूत
4. पूर्णकाम (भरत पर आश्रित)
5. गृहत्याग (तथागत पर आश्रित)

(ग) कहानी-संग्रह एवं उपन्यास

1. विधवा (आञ्चलिक उपन्यास)
2. देवरा हजारी (कथासंग्रह)
3. स्क्तवैतरणी (कथासंग्रह)

(घ) बाल-साहित्य

1. बच्चों के पाहुन (पञ्चतञ्त्र की पद्यकथायें, सचित्र)
2. पढ़ो और बनो (सचित्र गद्यात्मक बालकथायें)
3. वन के गीतः मन के गीत (सचित्र, पञ्चतञ्त्र की कथायें)
4. नया विहान (तीन एकांकी, सचित्र)
5. तितली के पंख (30 बालोपयोगी, सचित्र गीत)
6. महाभारत की किशोर कथायें
7. रक्ताभिषेक (तीन एकांकी)

अभिराजवाङ्मय-भोजपुरी-साहित्य[82]

काव्य-संग्रह

1. फगुनी बयार (120 गीत)

अप्रकाशित अभिराज-वाङ्मय

(क) संस्कृत-साहित्य[83]

इस विविध विधामय एवं विविध भाषाओं में रचित प्रकाशित साहित्य के अतिरिक्त कविवर का अप्रकाशित साहित्य भी है :–

1. अभिराजचम्पूः (चम्पूकाव्यसंग्रह)
2. अभिराजदण्डकम् (दण्डक काव्य संग्रह)
3. गीतभारतम् (वृहत्तमरागकाव्यम्)
4. काव्यतरंगिणी (साहित्येतिहासः)
5. बालिविलासम् (खण्डकाव्यम्)
6. छन्दोऽभिराजीयम् (अभिनवच्छन्दश्शास्त्रम्)
7. पृथुवंशम् (महाकाव्यम्)
8. मंङ्गलाचरणकाव्यम्
9. सोनियाप्रशस्तिकाव्यम् (खण्ड काव्य)
10. शतकपंचदशी (शतकसंग्रह)
11. अभिराजशतकम् (खण्ड काव्यम्)
12. चौरशतकम् (प्रणयकाव्यम्)
13. गृम्भणामि त्वां सौभाग्यत्वाय (आत्मवृत्तम्)
14. मरुवणमाकन्दः (आत्मकथा)
15. जवाहरप्रशस्तिकाव्यम् (खण्डकाव्य)
16. अभिराजगीतमाधुर्यम् (गीतकाव्य)
17. नाट्यदशाननम् (हास्यैकाङ्कसंङ्कलन)
18. वैतरणी (विविधकाव्यसंग्रह)
19. विवेचनचन्द्रोदयः (संस्कृत शोधलेखों का अभिनव संकलन)

(ख) हिन्दी-वाङ्मय[84]

6. पाषाणी (खण्डकाव्य)
7. त्रिणाचिकेत (काव्यरूपक)
8. अदृश्यन्ती (पौराणिक नाटक, तीन अंक)
9. दुर्योयनवध (मञ्चीय नाटक, पाँच अंक)
10. रोदसी (महाकाव्य 25 सर्ग) अपूर्ण
11. टिटनेस वार्ड की पाँच रातें (डायरी)
12. हिमाचल के आँगन में (यात्रावृत्त)
13. मेरी प्रथम दक्षिण भारतीय यात्रा (यात्रावृत्त)
14. सुवर्णद्वीप में भारतीय वर्चस्व
15. महाकाल की नगरी में (यात्रावृत्त)
16. नाच्यौ बहुत गोपाल (आत्मकथा)
17. अस्थिकलश (खण्ड काव्य)
18. आत्मख्यात कालिदास (व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व)
19. पुण्यश्लोको नलो राजा (संस्मरण)
20. प्रज्ञालोक (शोध लेख संकलन)

(ग) भोजपुरी-वाङ्मय[85]

1. बदरा भइल मोरा दूत (मेघदूत का भोजपुरी रूपान्तरण)
2. बिरहा कै रैन (खण्डकाव्य)
3. सकुन्तला (भोजपुरी महाकाव्य)
4. गन्धमादन (राष्ट्रीय काव्य संग्रह)
5. सुपर्ण (खण्डकाव्य)

सारस्वत प्रेरणा से सारस्वताराधना में रत अभिराजराजेन्द्र मिश्र के रचना संसार की सीमाएं निर्धारण करना असम्भव है। माँ सरस्वती का यह वरदपुत्र निरन्तर उनकी आराधना में संलग्न है। जीवन पर्यन्त उनका रचना संसार किस आकार को ग्रहण करेगा यह समय ही प्रमाणित करेगा। 1966 से अनवरत साहित्य साधना रत कविवर का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

शोध का विषय हो गया है तथा अनेक शोधार्थी इनके साहित्य पर शोध कर चुकें हैं तथा कर रहे हैं। समकालीन विद्वानों एवं संस्थाओं द्वारा अर्वाचीन साहित्य सम्बन्धी, जो भी कार्य किए जा रहे हैं, उनमे डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र के बहुमूल्य योगदान का मूल्यांकन किया गया है।

इस प्रकार डॉ. अभिराज राजेन्द्रमिश्र अर्वाचीन संस्कृत–साहित्य के शिरोमणि हैं। डॉ. मिश्र के 300 **से अधिक शोध आलेख,** अ.भा. प्राच्य विद्या सम्मेलनो, साहित्य अकादमी, विश्वविद्यालय एन.सी.ई.आर.टी. कार्यशालाओं तथा विश्वविद्यालयीय समारोहों में सक्रिय सहभागिता, विविध पत्र –पत्रिकाओं में प्रकाशित 1136 **मुक्तगीत, लेख, संस्मरण** डॉ. मिश्र की **साहित्यिक ऊर्जा को प्रतिपादित करते हैं।** निश्चय ही डॉ. मिश्र न केवल संस्कृत साहित्य जगत में अपितु समस्त राष्ट्रीय साहित्य में अपना महनीय स्थान बना चुके हैं तथा अर्वाचीन साहित्य के पुरोधा साहित्यकार हैं।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विशाल संसार को एक सूत्र में ग्रंथित करने वाली उनकी जीवन–सहचरी डॉ. राजेश मिश्र 'राजश्री' के शब्दों में अध्याय को विराम देना चाहूंगी कि **'प्रो. राजेन्द्र मिश्र की साहित्य यात्रा अपने आप में उपन्यास का सुख देती है। उनकी प्रथम प्रकाशित कृति 1957 ईस्वी की है, जब वह मात्र 13 वर्ष के थे। युवा भी नहीं कुमार ही थे तब वह! परन्तु लोकभाषा एवं खड़ी बोली हिन्दी में गुनगुनाना प्रारंभ कर दिया था उन्होंने! उसी का परिणाम था कि लोकभाषा में कांग्रेसप्रगति तथा खड़ी बोली में विनयमंजरी जैसी कृतियां उन्होंने लिखी, जिनका प्रकाशन सेवाप्रेस, जौनपुर (उ.प्र.) से बाबू रामेश्वर प्रसाद सिंह(सम्पादक समय साप्ताहिक) ने किया।**

कोमलवय में प्रारंभ की गई कवि की वही सारस्वत-यात्रा आज जीवन के छठे दशक में प्रौढ़ि के शिखर पर हैं। प्रौढ़ि के शिखर पर भी, हिमालय की पञ्चचूली चोटी जैसी है, कई छोटे-छोटे पृथक् उपशिखरों से युक्त! ये उपशिखर हैं- महाकाव्य, खण्डकाव्य, रूपक, कथा, समीक्षा आदि। प्रो. मिश्र ने वाङ्मय की प्रत्येक विधा को अलङ्कृत किया है! पूर्ण परिष्कार एवं मौलिक योगदान के साथ। प्रत्येक क्षेत्र में प्रो. मिश्र ने कुछ ऐसा अवश्य जोड़ा हैं, जो अश्रुतपूर्व एवं अदृष्टपूर्व था।'[86]

सन्दर्भोल्लेख

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, साहित्यकल्पतरू : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृष्ठ–84
2. वही, वही, पृष्ठ–84
3. वही, अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कृर्तत्व, पृष्ठ–3
4. वही, साहित्यकल्पतरू : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृष्ठ–226–227
5. वही, वही, पृष्ठ–21
6. वही, वही, पृष्ठ–21–22
7. वही, अभिराज राजेन्द्रमिश्र , व्यक्तित्व एवं कृर्तत्व, पृष्ठ–17–18
8. वही, वही, पृष्ठ–18
9. वही, वही, पृष्ठ–20
10. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनम्, सम्पूर्ण महाकाव्यसंग्रह
11. वही, वामनावतरणम्, वही
12. वही, आर्यान्योक्तिसंग्रह, संम्पूर्ण खण्डकाव्यसंग्रह
13. वही, नवाष्टकमालिका, वही
14. वही, पराम्बाशतकम्, वही
15. वही, शताब्दीकाव्यम्, वही
16. वही, अभिराजसप्तशती, वही
17. वही, धर्मानंदचरितम्, वही
18. वही, पञ्चकुल्याशतकम्, वही
19. वही, करशूलनाथमाहात्म्यम्, वही
20. वही, कस्मै देवाय हविषा विधेम, वही
21. वही, अरण्यानी, वही
22. वही, संस्कृतशतकम्, वही
23. वही, अभिराजसहस्त्रकम्, वही

24. वही, मृगाङ्कदूतम्, वही
25. वही, चर्चरी (स्फुटकाव्यसंग्रह), वही
26. वही, जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्, वही
27. वही, मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्, वही
28. वही, वाग्वधूटी–सम्पूर्ण नवगीतसंग्रह
29. वही, मृद्वीका, वही
30. वही, श्रुतिम्भरा, वही
31. वही, मधुपर्णी, वही
32. वही, कनीनिका–सम्पूर्ण गलज्जलिकासंग्रह
33. वही, मत्तवारणी, वही
34. वही, शालभञ्जिका, वही
35. वही, हविर्धानी, वही
36. वही, प्रमद्वरानाटिका, सम्पूर्ण नाटिकानाटकसंग्रह
37. वही, विद्योत्तमानाटिका, वही
38. वही, प्रशान्तराघवम्, वही
39. वही, लीलाभोजराजम्, वही
40. वही, नाट्यपञ्चगव्यम्–सम्पूर्ण एकांकीसंग्रह
41. वही, अकिञ्चनकाव्यम्, वही
42. वही, नाट्यपञ्चामृतम्, वही
43. वही, चतुष्पथीयम्, वही
44. वही, रूपरूद्रीयम्, वही
45. वही, नाट्यसप्तपदम्, वही
46. वही, नाट्यनवरत्नम्, वही
47. वही, नाट्यनवग्रहम्, वही
48. वही, नाट्यनवार्णम्, वही
49. वही, इक्षुगन्धा, सम्पूर्ण कथानिकासंग्रह
50. वही, राङ्गडा, वही

51. वही, पुनर्नवा, वही
52. वही, चित्रपर्णी, सम्पूर्ण लघुकथासंग्रह
53. वही, छिन्नमस्ता, सम्पूर्ण कथानिकासंग्रह
54. वही, कौमारम्, सम्पूर्ण गीतसंग्रह
55. वही, अभिनवपञ्चतंत्रम, सम्पूर्ण कथानिकासंग्रह
56. वही, कान्तारकथा, सम्पूर्ण, द जंगल एपिसोड
57. वही, अभिराजयशोभूषणम्, वही
58. वही, शास्त्रालोचनम्, वही
59. वही, समीक्षासौरभम्, वही
60. वही, बालीद्वीपे भारतीयासंस्कृति, वही
61. वही, संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति, वही
62. वही, सुवर्णद्वीपीय रामकथा, वही
63. वही, भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीकः बालीद्वीप, वही
64. वही, मणिकाञ्चन, वही
65. वही, सप्तधारा, वही
66. वही, संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र, वही
67. वही, शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान, वही
68. वही, स्वाध्याय पर्व, वही
69. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, साहित्यकल्पतरू : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृष्ठ–209
70. वही, वही, वही
71. वही, सेजराह कसुसास्त्रान् संसकिर्त, वही
72. वही, विंशशताब्दीसंस्कृतग्रंथसूचीपत्रम्, वही
73. वही, रामायणककविन्, सम्पूर्ण अनुदित एवं सम्पादित ग्रंथ
74. वही, रसों की संख्या, वही
75. वही, महालक्ष्मीमुक्तिसंवादः, वही
76. वही, देववाणीसुवासः, वही
77. वही, प्रतानिनी, वही

78. वही, विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामृतम्, वही

79. वही, संस्कृत वाङ्मय में हिमाचल (शोधग्रंथ)

80. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, साहित्यकल्पतरू : अभिराज राजेन्द्रमिश्र , पृष्ठ–214–217

81. वही, वही, पृष्ठ–218–220

82. वही, वही, पृष्ठ–221–222

83. वही, वही, पृष्ठ–223, 260

84. वही, वही, पृष्ठ–223, 263

85. वही, वही, पृष्ठ–223, 263

86. वही, अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कृर्तत्व, पृष्ठ–3

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा सम्बन्धी रचना-साहित्य का पूर्ण परिचय एवं वस्तु-विश्लेषण

शोधग्रन्थ के केन्द्रीय विषय 'अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन' पर आने से पूर्व यह नितान्त अपरिहार्य हो जाता है कि समीक्ष्य कथाओं के कथ्य पर विचार किया जाये। कथाओं के भाव सौन्दर्य एवं शिल्प सौन्दर्य की समीक्षा से पूर्व उनके कथ्य पर दृष्टिपात करना समीचीन प्रतीत होता है। जनमङ्गल के साध्यस्वरूप कथाओं के निहितार्थो तक पहुंचने से पूर्व विषयवस्तु को परखना व जानना समीक्षा की भूमिका बांधने की ओर एक सार्थक कदम सिद्ध होगा। कवि की कथाओं के उद्देश्य, पात्र, चरित्र–चित्रण, वातावरण, संवाद, शैली एवं कथाओं में निहित कवि के ज्ञानगाम्भीर्य एवं शब्दशिल्प का अनुसंधान करने से पहले उनकी कथाओं की विषयवस्तु से परिचय न होना समीक्षा में बाधक सिद्ध हो सकता हैं। अतः शोधग्रन्थ के इस अध्याय में काव्य की गद्यविधा के एक अंश 'कथा' के भेदों पर चर्चा करते हुए आधुनिक कथाशिल्प के आधार पर कथाओं के विभाजन पर प्रकाश डाला गया हैं। मुख्यरूप से कवि के ही दृष्टिकोण को आधार मानते हुए कथाओं के प्रकार निर्धारित किए गए हैं, साथ ही कथाओं का परिचय प्रदान करते हुए कथाओं में निहित जीवनदर्शन एवं मूलमंत्र को भी खोजने का प्रयास किया गया हैं। यहाँ क्रमशः कथाभेद, कथ्य एवं मूलमंत्र प्रतिपाद्य हैं।

1) संस्कृत-कथा सम्बन्धी रचनाओं का वर्गीकरण एवं विधा-विशेष की परिभाषा

प्रस्तुत शोधग्रन्थ के अनुसंधेय कथा संग्रहों में तकनीकी अथवा शास्त्रीय दृष्टि से इक्षुगन्धा, राङ्गडा तथा पुर्ननवा कथानिकासंग्रह हैं तथा चित्रपर्णी लघुकथासंग्रह की श्रेणी में आता है।

कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र इस बात से चिन्तित हैं तथा व्यथित भी कि वर्तमान समय में विचित्र काव्यविधाएं प्रचलित हो रही हैं जिसका उस विधा के शिल्प से कोई लेना–देना नहीं है। लोक में घटित किसी भी घटना को कथा नहीं कहा जा सकता। घटना

कथा रूप में तभी परिणित हो सकती है जब कथाकार उसे कथावस्तु, पात्र, संवाद, वातावरण, भाषा शैली तथा उद्देश्य रूपी छः तत्त्वों से समन्वित करता है।

कथाभेदों की चर्चा करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि कथाभेद स्वरूपगत होने चाहिए न कि निसर्गाश्रित। मूल रूप से काव्यभेद **गद्य, पद्य** तथा **चम्पू** के रूप में संस्कृत साहित्य में निर्विवाद रूप से स्वीकार किए जाते रहे हैं। गद्य के शैली की दृष्टि से **मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय** तथा **चूर्णक** चार प्रकार हैं तथा प्रतिपाद्य विषय वस्तु की दृष्टि से गद्य को **कथा** एवं **आख्यायिका** के रूप में विभाजित किया गया है। जिनकों परिभाषित करते हुए **'प्रबन्धकल्पनाकथा'** तथा **'आख्यायिकोपलब्धार्था'** कहा गया है। इस आधार पर कथा कल्पनाश्रित होती है तथा आख्यायिका इतिहासाश्रित होती है।

कथा के इन दो भेदों के अतिरिक्त अन्य भेदों की संभावना दण्डी ने व्यक्त की है – 'अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः।' **आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा एवं कथानिका** रूपी गद्य के पांच भेदों का संकेत **अग्निपुराण** में मिलता है–

'आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यते गद्यकाव्यं च पञ्चधा।।'[1]

काव्यानुशासन में **हेमचन्द्र** ने गद्यकाव्य के **'आख्यायिका, कथा, खण्ड-कथा, परिकथा, आख्यान, उपाख्यान, प्रवह्लिका, मणिकुल्या, वृहत्कथा, सकलकथा, उपकथा तथा क्षुद्रकथा'**[2] के रूप में कमोबेश इन्ही गद्यभेदों को स्वीकार किया है। पं. **अम्बिकादत्त व्यास** ने **'कथा, कथानिका, कथन, आलाप, आख्यान, आख्यायिका, खण्डकथा, परिकथा तथा संकीर्ण'**[3] के रूप में गद्य काव्य के नौ भेद स्वीकार किए है।

आचार्य **आनन्दवर्धन** के मत को कवि सर्वाधिक प्रामाणिक मानते हैं। उन्होंने **कथा** एवं **आख्यायिका** के अतिरिक्त **परिकथा, खण्डकथा** एवं **सकलकथा** रूपी भेदों को स्वीकार करते हुए उन्हें परिभाषित किया है –

1. 'एकञ्च धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्यं प्रकारवैचित्र्येणाऽनन्तवृत्तान्तवर्णनप्रकारा परिकथा।
2. एकदेश वर्णना खण्डकथा।
3. समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना सकलकथेति।'[4]

स्वंय अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने अपने काव्यशास्त्रीय आलोचनाग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम् में गद्यभेदों की चर्चा करते हुए कहा है–

गद्यं चतुर्विधं प्रोक्तं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
ततश्चोत्कलिकाप्रायं चूर्णकञ्चान्तिमं मतम्।।[5]

असमस्तं पदं मुक्तं पद्यांशि वृत्तगन्धि च।
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं चूर्णमल्पसमासकम्।।[6]

अर्थात् गद्य के चार प्रकार हैं–मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक। समासहीनपदयुक्त गद्य मुक्तक तथा पद्यांशों से युक्त वृत्तगन्धि है, दीर्घसमासों से युक्त उत्कलिकाप्राय तथा अल्पसमासों से युक्त चूर्णक है।

कथाविधा एवं कथालक्षण को अभिराज राजेन्द्रमिश्र कहते हैं –

प्रबन्धात्मकगद्यस्य रूपद्वयमुदाहृतम्।
कथेति प्रथमं तत्राऽरव्यायिकेत्यपरं मतम्।।[7]
कथा तत्र भवेद्रम्या सरसा कल्पनाश्रिता।
दिव्याऽदिव्येतिवृत्तांशा विविधानुभवैर्युता।।[8]

अर्थात् प्रबन्धात्मक गद्य को दो प्रकार का बताया गया है–कथा तथा आख्यायिका। इन दोनों में रमणीय प्रकृतिवाली, रसवत्ता से ओतप्रोत तथा कल्पना पर आश्रित को कथा कहते है, जो कि दिव्य अथवा अदिव्य इतिवृंत्ताशों वाली तथा विविध अनुभवों से युक्त होती है।

कथाओं के उदाहरण के रूप में श्रीनिवासशास्त्री कृत चन्द्रमहीपति तथा मेधाव्रताचार्य कृत कुमुदिनीचन्द्र आदि को लिया जा सकता है।

आख्यायिका को परिभाषित करते हुए कवि कहते हैं –

'आख्यायिकोपलब्धार्था तस्मादैतिह्यसम्मता।'[9]

अर्थात् आख्यायिका उपलब्ध कथानक होती है।

इस प्रसंग में कविवर ने उपन्यास का भी लक्षण किया है–

'कथाऽऽख्यायिकयोः कश्चिन्मिश्रभेदोऽपि साम्प्रतम्।
उपन्यास इति ख्यातो भाषान्तरप्रतिष्ठितः।।[10]

अर्थात् कथा एवं आख्यायिका का कोई मिश्रित भेद भी वर्तमान युग में उपन्यास के नाम से विख्यात है, जो संस्कृतेतर भाषाओं में प्रतिष्ठित है।

कथानिका लक्षण करते हुए वे कहते है कि समस्त भारतीय भाषाओं में लोकप्रिय कथा का एक अद्‌भुत स्वरूप, जो इस समय विद्यमान है उसे कथानिका कहते है। यह **कथानिका** किसी विशेष उद्देश्य को लेकर चलती है—

'गृहीत्वा किमप्युद्देश्यं लोकाभ्युदयकारकम्।
चित्रणेन चरित्राणां सरत्यग्रे कथानिका।।[11]

इक्षुगन्धा, राङ्गड़ा एवं पुनर्नवा को कथानिका माना है।

यह कथानिका लघुकथा एवं दीर्घकथा के भेद से दो प्रकार की मानी जाती है। **लघुकथा** को परिभाषित करते हुए वे कहते है —

'नाऽतिविस्तृतसन्दर्भा विद्युदुन्मेषसन्निभा।
नूनं लघुकथेयं स्यादेकपात्रावसायिनी।।'[12]

चित्रपर्णी को लघुकथा संग्रह के रूप में स्वीकार किया गया है।

सकल कथा को ही **दीर्घकथा** के रूप में स्वीकार किया गया है जिसे परिभाषित करते हुए कहते हैं —

'समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना सकलकथेति'[13]

तथा 'एकदेशवर्णना खण्डकथा' से परिभाषित एकदेशीय वर्णन करने वाली खण्डकथा ही लघुकथा का रूप है। अर्थात् प्राचीन आचार्यो द्वारा अभिमत खण्डकथा ही आज की लघुकथा है तथा उनकी सकलकथा ही आज की दीर्घकथा है।

पशुपक्षियों, सरीसृप तथा वनस्पतियों की कथाएं भी उपर्युक्त तीनों भेदों में समाहित हो सकती है, जैसे कविवर की **कान्तार कथा।**

इसके अतिरिक्त बीती हुई घटना का यथावत् स्मृतिपरक वर्णन **'यथावृत्तस्य स्मृत्याख्यानं संस्मरणम्'**[14] ही संस्मरण है, शब्दों के द्वारा व्यक्ति अथवा घटना का चित्र उपस्थित कर देना **'शब्दैर्घटनाया व्यक्तेश्चित्रमिव निर्मितं रेखाचित्रम्'**[15] **'महापुरुषस्य प्रेरणाप्रदं चरितवर्णनं जीवनचरितं'**[16] ही जीवन चरित है, जीवन चरित का ही एक विशिष्ट भेद **'जीवनचरितस्यैव प्रकारविशेषं आत्मकथा'**[17] ही आत्मकथा है, यात्रा का यथानुभूत वर्णन **'यात्राया यथानुभूतं वर्णनं यात्रावृत्तं'**[18] ही यात्रावृत्त है।

ये सभी लक्षण देते हुए कविवर राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनचरित, आत्मकथा, यात्रावृत्त आदि कथारूपों की व्याख्या की है। ये सभी भेद कथा में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं।

पुनर्नवा की प्रस्तावना में विस्तारपूर्वक इन भेदों पर प्रकाश डालते हुए कवि ने कहा है कि लघुकथा, कथानिका तथा दीर्घकथा विशुद्ध रूप से Short story, Story or Fiction एवं large story की ही पर्याय है और अपने अंग्रेजी frame के अनुसार ही संस्कृत में लिखी जा रही हैं।

कविवर की दृष्टि में कहानी के लिए कथा शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि कथा एवं अख्यायिका में परिगणित कथा से आज की कहानी का कलेवर नहीं मिलता। आज की कहानी वस्तुतः प्राचीन कथानिका का रूप है। कथानिका कथानक का स्त्रीलिंग है, जो हिन्दी में कहानी है।

उनके दृष्टिकोण से हिन्दी संस्कृत एवं अंग्रेजी तीनों के परिप्रेक्ष्य में इन तीनों को परिभाषित किया जा सकता है

<u>खण्डकथा/लघुकथा/Short-Story</u>

लघुकथा का मात्र उद्देश्य वर्णित होता है। अतः यहाँ एकदेशीय अथवा आंशिक वर्णन होता है।

'A short story is a narrative, short enough to be read in a single sitting, written to make an impression on the reader, excluding all that doesn't forward that impression complete and final in itself.'[19]

’लघुकथा जब भी जन्मी, कौंध सी जन्मी।

कौंध के साथ ही उसने अपना चुनाव–रचाव स्वयं रचा।’[20]

स्वयं कवि चित्रपर्णी की भूमिका में लघुकथा को परिभाषित करते हुए कहते हैं, ’लघुकथा भवति विद्युदुन्मेषकल्पाऽकस्मादेव निखिलपरिवेशप्रकाशयित्री’[21]

<u>कथानिका/कहानी/Story</u>

प्राचीन शास्त्रीय वृहत्कलेवरा कथा और कहानी में भेद है। ’वस्तुतः कहानी कथानिका के नजदीक है। ये कथावस्तु, पात्र, संवाद, परिवेश, भाषाशैली, एवं उद्देश्य रूपी

छः तत्त्वों पर आधारित होती है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथाविन्यास सब उसी एक भाव की पुष्टि करते है।’[22]

‘Story is like a horse race’[23]

जिसमें मंजिल पर ही विश्रान्ति है।

’जीवनस्यैकदेशनिरूपणपरमाख्यानं कथा।।’[24]

दीर्घकथा/सकलकथा/Long Story

’समस्तफलान्ता इतिवृत्तवर्णना सकलकथेति’ परिभाषा के अनुसार दीर्घकथा कथानिका एवं उपन्यास के बीच की विधा है। कविवर की अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा दीर्घकथा विधा का उदाहरण है।

यह विवेचन स्पष्ट करता है कि प्राचीन शास्त्रीय परम्पराओं, आधुनिक नव्योद्भूत परम्पराओं व संस्कृतेतर साहित्यों का अवलोकन करने पर निष्कर्षतः कथा के तीन भेद लघुकथा, कथानिका एवं दीर्घकथा स्थापित होते है। कविवर का चित्रपर्णी कथासंग्रह लघुकथा का, इक्षुगन्धा, राङ्गड़ा एवं पुनर्नवा कथानिका के एवं पुनर्नवा की अंतिम कथा ‘अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा’ दीर्घकथा का उदाहरण है।

2) कथाओं का वस्तु-विश्लेषण, मूल मंत्र एवं जीवन-दर्शन

‘जिजीविषा’[25]

‘जिजीविषा’ कहानी का प्रारम्भ कहानी की नायिका तपती के हृदय को उद्वेलित कर देने वाली विचार शृंखला से होता है जिसमें नायिका प्रतिक्षण परिवर्तनशील सांसारिक परिस्थितियों के साथ बदलती मानवीय मनोदशा का वर्णन करते हुए कहती है कि सृष्टि चक्र यथावत गतिशील रहता है, परन्तु मन की अवस्था का संसार के प्रति हमारे दृष्टिकोण पर निश्चित प्रभाव होता है। निराश नायिका के स्वप्न संभावनाए तलाशते हुए उसके पास आते है, परन्तु उसे लगता है सब कुछ खत्म हो चुका है ‘पोतभंगे जाते सन्तरणाय कियदेव प्रयतितं मया’ ‘भग्नायां रज्जौ के घटं धारयन्ति’ जैसे वाक्यों से अपने चारों ओर छा रही हताशा एवं समाधानहीन परिस्थितियों के भ्रमर में फंसी नायिका का यह नित्य प्रति का क्रम है।

हंसते खेलते परिवार से अकस्मात् पिता की छत्रछाया छिन जाती है, सब कुछ नष्ट हो जाता है और पीछे रह जाती है तपती अकेली असहाय, हताश, निराश, हतप्रभ एवं किंकर्तव्यमूढ़।

भाई दूध के बिना भूखा है, बहिन की विद्यालय की फीस भरनी है, माता विवश है और सब कुछ तपती को ही करना है। आजीविका के लिए प्रयत्नशील तपती को अनुभव होता है कि व्यावसायिक जगत में गुण, शिक्षा एवं शील का कोई मूल्य नहीं है बल्कि यौवन एवं सौन्दर्य का ही मूल्य है। अथक प्रयत्नों के बाद भी तपती को सेवावृत्ति के बदले यौवन रूपी मूल्य को चुकाना ही पड़ता है। तपती की माँ की अनुभवी आंखो से तपती की मनःस्थिति छिपी नहीं रह सकती है। सहज एवं स्वाभाविक रूप से मिल जाने वाली तपती की सेवावृत्ति माँ के मन में असंख्य सवालों को खड़ा कर देती है। इतनी आसानी से नौकरी कैसे मिल गई ? कौनसी नौकरी मिली है?, कहाँ कार्य करती है? कितना कार्य करती है? कैसा कार्य करती है? कितना ज्यादा कार्य है? कैसे इतना कार्य करेगी? कोमलांगी एवं भोली–भाली तपती की माँ तपती से वृत्ति से सम्बन्धित सवाल पूछती है। तपती का मन आंशका से भर उठता है तपती की मानसिक, शारीरिक, वाचिक चेष्टाओं से माँ को अनिष्ट का आभास हो जाता है। तपती बताती है कि कामलोलुप कार्यालयाधिकारी ने अपनी कामपिपासा शांत करके ही यौवन के बदले वृत्ति प्रदान की है।

माँ स्तम्भित है, अवाक् है, ईश्वर से रूष्ट है। परमात्मा को उलाहना देते हुए कहती है कि हे परमात्मा! तुम्हारा न्याय कैसा है? जो तुम उठे हुओं को गिराते हो, गिरे हुए को उठाते हो, पापियों को बढ़ाते हो, साधुओं को तिरस्कृत करते हो। हे निदर्य परमेश्वर! तुमने तपती के हृदय के संताप को ही अनुभव नहीं किया।

तपती के लिए निश्चित किए गए वर विवेक के आने पर क्या होगा माँ इस प्रकार चिन्ता करती है। विवेक पड़ौस में तपती के बारे में विवादास्पद चर्चा सुनकर आता है, परन्तु फिर भी वह तपती के गुण, शील एवं शिक्षा को देखकर उसे अपनाने का निर्णय करता है। इस प्रकार कवि ने एक सकारात्मक आशावादी समाधान पर लाकर कहानी का सुखद अन्त दिया है। समाज में कामलम्पट भोगी पुरुष है, जो नारी को सिर्फ भोग्या मानते है, परन्तु विवेक जैसे उदात्त चरित्र के व्यक्ति भी है, जो समाज को पवित्र करने का पुनीत कार्य भी कर सकते है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

जीवन की अभिलाषा संघर्ष को जन्म देती है। अबोध, असहाय, एवं विवश प्राणी को जीवन के बदले में अपना स्वाभिमान, आत्मगौरव यहां तक कि अस्मिता को दांव पर लगाना पड़ता है। विकट परिस्थितियों में स्त्री को सहारा देने वाले हाथ कम और भोग के लिए आगे बढ़ने वाले हाथ ज्यादा होते हैं, परन्तु गुणग्राही कथानायक समाज के लिए आशा की किरण है।

'सुखशयितप्रच्छिका'[26]

'सुखशयितप्रच्छिका' कहानी औषधालय के आपातकालीन कक्ष में दुर्घटनाग्रस्त नायक के चेतना में आने से प्रारम्भ होती है। चेतना में आने पर नायक एक कमलनयना सुन्दर स्त्री को देखता है। लगभग बीस वर्षीया उस नवयुवति के साथ जिजीविषा से युक्त एक सत्तर वर्षीय बुजुर्ग थे। चेतना में आया हुआ देखकर बुजुर्ग व्यक्ति उसकी कुशलता के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। नायक अभिवादन करते हुए चिंतन करता है कि इस संवेदनहीन स्वार्थपूर्ण संसार में धैर्यशील पर्वत की तरह यह कौन वृद्ध पुरुष है, जो मेरी कुशलता की कामना कर रहा है?

नायिका निरन्तर वृद्ध पुरुष की आज्ञापालन करते हुए दोनों की सेवासुश्रूषा में संलग्न है। अध्ययन के बारे में प्रश्न करने पर भी नायिका शुभदा कोई उत्तर नहीं देती है। वृद्ध पुरुष शुभदा की संकोचशीलता के बारे में चर्चा करते हुए बताता है कि वह बी.ए. द्वितीय वर्ष में पढ़ती है। नायक अपना नाम समीरशुक्ल बताता है। वार्तालाप के दौरान पूछने पर शुभदा अपने पठनीय विषयों संस्कृत, संगीत एवं अंग्रेजी साहित्य के बारे में बताती है।

औषधालय के उद्यान में समीर एवं शुभदा के वार्तालाप से समीर को ज्ञात होता है कि शुभदा के पिता भारत–चीन युद्ध के दौरान वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं। पिता के जाने के बाद माँ चिरनिद्रा में लीन हो गई। शुभदा के पितामह ने ही उसका पालन किया है।

पितामह सप्तपदी मैत्री की बात करते हुए समीर को स्वयं के साथ ही भोजन करने के लिए कहते है। शुभदा के पितामह समीर के विषय में जानना चाहते है, परन्तु समीर के नेत्रों से अश्रु बहते हुए देखकर पितामह जीवन यात्रा की क्षणिकता एवं नश्वरता के शाश्वत सत्य का वर्णन करते हुए, समीर को सांत्वना देते हुए रोने के कारण पूछते हैं। समीर स्वयं को गोण्डा जनपद का निवासी बताते हुए अपने पिता की हृदय रोग से मृत्यु होने की बात बताता है तथा माँ के संघर्षो से हुई अपनी शिक्षा एवं आजीविका के बारे में बताता है। शोध

कार्य की इच्छा होने पर भी माँ के संघर्षो को कम करने के लिए आजीविका की तलाश कर रहा है। इसी संदर्भ में लेखा नियंत्रक कार्यालय से निकलते हुए राजमार्ग पार करते हुए बस के द्वारा घायल कर दिया गया।

शुभदा के पितामह समीर को गले लगाते हुए उसके औषधालय के व्यय को वहन करने का आश्वासन देते है।पितामह के संकेतो से समीर को लगता है कि वह समीर को जामाता के रूप में स्वीकार करना चाहते हैं। रात्रि को शुभदा समीर की शीर्ष वेदना को कम करने के लिए अपने शीतल कर स्पर्श से सिर दबाने व सुखशयितप्रच्छिका के लिए आती है।

शुभदा के प्रेम के प्रति आश्वस्त होकर सुखद दाम्पत्य जीवन के सपनों को आंखों में सजाए हुए शुभदा को हमेशा के लिए पाने के लिए जाने देता है। शुभदा के प्रणय से अपने आपको धन्य मानता है। इस प्रकार 'सुखशयितप्रच्छिका' का सुखद अन्त होता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

इस संघर्षमय जीवन में यदि कोई आपके सुख-दुख को बांटने वाला, शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक मनोभूमि को समझने वाला हो तो जीवन सार्थक एवं सुखद हो जाता है।

अनामिका[27]

'अनामिका' कहानी माता पिता द्वारा अंवाछित एवं परित्यक्त नवजात बालिका की कहानी है, जो समाज की एक बड़ी समस्या का संवेदनशील एवं मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करते हुए उचित समाधान भी प्रदान करती है। आत्मसंस्मरणात्मक शैली में कही गई कहानी कथानायक के प्रातःकालीन भ्रमण से प्रारम्भ होती है।

भ्रमणमार्ग में एक स्थान पर भीड देखकर कथाकार जिज्ञासावश वहा जाता है। वहा किसी युवती द्वारा नवजातकन्या को छोडकर जाने का पता चलता है घटनास्थल पर पास की बस्ती में रहने वाली भारी भीड़ थी। दारागंज थाने के अधिकारी घटनास्थल पर कन्या के विषय में जानकारी लेने का प्रयास कर रहे थे। थानाधिकारी कन्या की जाति जानकर उसे किन्ही सुरक्षित हाथों में उसके उज्ज्वल व सुरक्षित भविष्य के लिए देना चाहते हैं।

भीड़ में सम्भवतः इस निर्मम कृत्य को करने वाला, उसका सहयोग करने वाला एवं इस कार्य के लिए मंत्रणा देने वाला सभी है, परन्तु सभी भयभीत है कि यदि कुछ बोले तो बार–बार थाने में जाना पड़ेगा। समाज की यह उदासीनता एवं निष्क्रियता चिंतनीय है।

थानाधिकारी के धमकाने पर भीड़ डर के मारे भाग जाती है। शेष बचे लोगों से थानाधिकारी सादर कहते हैं कि यह कन्या साक्षात् भगवती गौरी का स्वरूप है, जो बन्धु सन्ततिहीन है यह कन्या उनके जीवन को आलोकित कर सकती है। यदि कोई महानुभाव इस कन्या को ग्रहण कर ले तो इसका जीवन परिवर्तित हो जाएगा।

कथाकार को लगता है जैसे उसे ही सम्बोधित किया जा रहा है। वह सोचता है कि वह शिक्षित जनों में सर्वश्रेष्ठ है तथा समाज का मुख्य भाग है इस दृष्टिकोण से उसे ही इस कार्य को वरीयता से करके समाज के समक्ष श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। यदि इस समय उसका मार्ग पलायनवादी होगा, तो यह श्रेयस्कर मार्ग नहीं होगा। विश्वविद्यालय में वेदपुराणधर्मदया आदि उपदेश देने वाले उसका कर्मक्षेत्र में कायरता का आचरण नहीं हो सकता। कथाकार स्वप्रेरणा से बालिका को गोद में लेकर, उसे स्वीकार करके, सब कुछ सम्पन्न कर देता है। इस मांगलिक अवसर पर थानाधिकारी मिठाई के रूप में भगवती भागीरथी का प्रसाद मंगवाकर अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त करता है और इस प्रकार एक सामाजिक समस्या, एक सामाजिक विकृति, एक कन्या के जीवन को नई दिशा व नई गति मिलती है। सर्वप्रथम तो किसी भी सभ्य समाज में ऐसी विषम परिस्थितियां परिहार्य है कि अवांछित संतति उत्पन्न हो और अगर ऐसा हो भी जाता है तो समाज संवेदनशीलता के साथ परमात्मा की इस कृपा को स्वीकार करके समस्या के समाधान का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करें, जो शेष समाज के लिए प्रेरणीय मार्ग हो।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

जीवन परमात्मा प्रदत्त उपहार है और उसका सम्मान मानवमात्र का कर्त्तव्य है। भावनात्मक आवेश में हुए शारीरिक सम्बन्धों अथवा पुत्रापेक्षा में उत्पन्न हुई पुत्री को मरने के लिए फेंक देना, उस ईश्वर की सृष्टि का अपमान है। ऐसी संतति को अपनाकर पुण्यार्जित करना चाहिए।

एकहायनी[28]

नवनीत राशि की तरह स्निग्ध, फेनसमूह की तरह धवल तथा कदलीफल की तरह कोमल, वह एक वर्षीया बालिका थी, परन्तु माँ विमला के हृदय में उसके प्रति तनिक भी स्नेह नहीं है। गर्भ में भी वह माँ के लिए गर्भभार ही रही। वैद्य के स्वास्थ्यकर वचनों के प्रतिकूल ही आचरण बालिका की माँ विमला ने किया। सामान्यतया माँ का आचरण अपनी सन्तान के प्रति ऐसा नहीं होता, परन्तु विमला का व्यवहार उसके अतीत में घटित की प्रतिक्रिया थी।

विमला एक ख्याति प्राप्त वकील देवेश धवन की तीन पुत्रियों में से मध्यम थी।देवेश धवन की अनुपस्थिति में एक सुदर्शन युवक अपनी पत्नी के व्यवहार से दुःखी होकर विवाह विच्छेद के मुकदमें (वाद) के लिए देवेश धवन से मिलने आता है। विमला मधुप की कथा सुनकर करूणाद्र हो उठती है तथा उसके मन में मधुप के लिए अनुरागभाव जाग उठता है। मधुप भी अपनी पत्नी की जगह विमला की कल्पना करते हुए अपने घर चला जाता है। तब से विमला, मधुप के जीवन के मरूस्थल में मधुरसलिला सरिता की तरह रस प्रवाहित करने वाली हो गई और उन दोनों के बीच प्रणय का कल्पवृक्ष निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता गया।

मधुप के सद्‌गुणों एवं अपनी पुत्री के प्रति उसके अनुराग को देखकर देवेश धवन ने भी उसे अपने जामाता के रूप में परिकल्पित कर लिया, परन्तु दुर्भाग्यवश देवेश धवन एक वाद प्रस्तुत करते हुए हृदय गति रूकने से मृत्यु को प्राप्त हो गये। वादा अधूरा रह गया और समाज निन्दा के भय से विमला का विवाह एक भोगलोलुप लिपिक से कर दिया गया। वैवाहिक सम्बन्धों से कुछ वर्षों बाद एक कन्या का जन्म हुआ। वही कन्या विमला के लिए उपेक्षा की पात्र बन गई।

वस्तुतः विमला विवाहोपरान्त भी मधुप को भुला नहीं पाई है। उसके प्रति अपने समर्पण, उसके साथ देखे गये सपने, उसे छोड़कर विवाह करना कुछ भी भूल नहीं पाई है वह! अपने आपको मधुप की सम्पत्ति मानती है तथा वैवाहिक सूत्र में बंधे इस पुरुष को वह अपरिचित एवं अनभीष्ट ही मानती है। भोगलोलुप पति की वासना पूर्ति करती हुई स्वयं को वेश्या की तरह घृणास्पद मानती है। उसे लगता है कि विवाह सम्बन्ध को नकार देना चाहिए था। उसे अपना अध्ययन, सौन्दर्य सब कुछ व्यर्थ लगता है।

पुनः कन्या रुदन करते हुए, हाथों को आकाश की और फैलाते हुए मुस्कुराने लगती है। अबोध, विकल एवं रूई की तरह कोमल कन्या के उस दैवीय स्वरूप को देखकर विमला का ममत्व जाग उठता है। वह अपने अतीत को भूलाकर उस निश्छल, निर्दोष एक वर्षीय बालिका के लिए जीने का संकल्प लेती है। इस प्रकार उस एकहायनी अबोध बालिका को माँ की गोद मिल जाती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

संतति शारीरिक संसर्ग का परिणाम होती है। चाहे अवांछित शारीरिक संसर्ग से उत्पन्न हो, परन्तु संतान सदैव वात्सल्य की अधिकारी होती है। मातृत्व की गरिमा संतान को जीवन एवं पोषण देने में ही है। संतान किसी को दण्ड देने अथवा घृणा का आधार नहीं हो सकती।

शतपर्विका[29]

'शतपर्विका' आश्विन मास की पूर्णिमा तथा दुर्वाघास की तरह पवित्र, पूर्ण, उज्ज्वल, प्रकाशमान, औषधिस्वरूप, स्वास्थ्य एवं मंगलकारिणी बेटियों की महत्ता, घरों के प्रति उनके समर्पण, संवेदनशीलता एवं सेवा भावना को व्यक्त करती कहानी है। रामलाल एवं उसकी पुत्रेच्छा के क्रम में जन्मी सात बेटियों के ताने बाने में बुनी गई, सामाजिक समस्या के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करती हुई, समाज को वस्तु स्थिति से अवगत कराती हुई, पुत्रेषणा एवं पुत्री की उपेक्षा करने वाली हमारी विकृत मानसिकता को समाधान की दिशा देती हुई, यह कहानी कन्याभ्रूण–हत्या, लैंगिक–असमानता जैसी समस्याओं से जूझ रहे समाज के लिए पूर्णतः सामयिक एवं प्रासंगिक है।

श्वेतश्यामरोमाराजि से युक्त चालीस वर्षीय रामलाल अस्वस्थ है। वयः संधि में स्थित रामलाल को जीवन की केवल तीन घटनाएं स्मरण है–भाग्यवती के साथ उसका विवाह, रक्षालेखा कार्यालय के कर्णिक पद पर नियुक्ति एवं रमा से लेकर कमला तक सात कन्याओं का जन्म।

कन्याओं के जन्म को लेकर वह सदैव भाग्य को कोसता रहता है। पुत्र न होने पर अपनी बहिन के पुत्र को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण करता है, जो प्रकृति से ही लम्पट व व्यसनासक्त है।

अस्वस्थ रामलाल के द्वारा बार–बार जल मांगने पर माँ की अनुपस्थिति में रमा साहसकर के जल लेकर जाती है, परन्तु पिता 'कि प्रमत्तशुनीव पितः पितः बुक्कसि ?

अपेहि' जैसे कठोर शब्दों से उसको तिरस्कृत कर अपने से दूर कर देता है। रमा व्याकुल हो जाती है, परन्तु निश्चय करती है कि पिता के वात्सल्य को वह जाग्रत करेगी। रमा पुनः पिता की शय्या के पास जाती है और देखती है कि पिता ने जल पी लिया है। प्रसन्नचित्त होकर वह पिता के चरण दबाने लगती है। पिता गहरी नींद में सो जाते है। पिता की नींद खुल जाने पर रमा घर के अन्दर चली जाती है। रामलाल को संवाहन की तृप्ति अनुभव होती है और वह अनुमान लगाता है कि अवश्य ही यह सेवा रमा ने की है। पुत्री के गुणों व सेवाभाव से रामलाल का हृदय आन्दोलित हो उठता है, उसे पुत्रियों के प्रति अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप होता है, नयनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। वह सोचता है कि 'पुत्र लोभ के कारण मैंने अपनी गुणी पुत्रियों की उपेक्षा की है। यदि प्रारम्भ से ही मैंने इनके लालन पालन पर ध्यान दिया होता तो इनके गुणों का यथोचित विकास होता।' डॉक्टर विद्या प्रसाद मिश्र को रामलाल के स्वास्थ्य के लिए बुलाने गई भाग्यवती लौटकर आती है तो पति को प्रसन्नचित्त पाती है।

कन्या जन्म के अपराधबोध से ग्रस्त सौभाग्यवती पति की सहृदयता व स्नेहिल व्यवहार से अपराध बोध से मुक्त हो जाती है। जो सौभाग्यवती बीस वर्षों में न कर पाई वह रमा ने एक दिन में अपनी सेवा से संवेदना, ममत्व व वात्सल्य जाग्रत करने का कार्य, जादू की तरह कर दिया।

रामलाल कहता है कि रोग उसके शरीर में नहीं, मन में था, जो अब दूर हो चुका है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

कन्याएं शतपर्विका (दूर्वा घास) की तरह अरक्षित एवं अपोषित होते हुए भी अपनी संजीवनी शक्ति से पुनर्नवता को प्राप्त करने वाली होती है। उनका आदर करना चाहिए।

'इक्षुगन्धा'[30]

'इक्षुगन्धा' के वनों में पनपी प्रणयकथा पर केन्द्रित विषयवस्तु वाली कथा 'इक्षुगन्धा' जिलाधीश के पद पर स्थित नायक के मिर्ज़ापुर जनपद के प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन से प्रारम्भ होती है।

नायक का समवयस्क वंशीधर शर्मा नायक का अधीनस्थ सेवक है। उसकी पत्नी, सेवक की पत्नी के शील, सौन्दर्यादि की प्रशंसा करते हुए वंशीधर के साथ उसके विवाह

को विधाता के द्वारा कृत अनर्थ कहती है। प्रसवङ्गवश कदाचित नायक उसको देख लेता है तथा पहचान लेता है कि वंशीधर की पत्नी वस्तुतः वही बिट्टी है जिससे वह बचपन से ही प्रेम करता था तथा उससे विवाह करना चाहता था।

नायक का मन इस घटना के रूप में अपने अतीत के सामने आ जाने से अत्यन्त विचलित है। जीपयान में चलते हुए उसका मन अतीत के पर्यटन के लिए बरबस निकल पड़ता है। जौनपुर जनपद के कान्हवंशीपुर ग्राम में नायक के मामा का घर है। ग्राम में ब्राह्मण तुरूष्क/तुर्क तथा अहीर जाति के लोग रहते हैं। अपनी माँ के साथ नायक प्रायः वहां जाता है। बिट्टी के प्रति नायक शैशवास्था से ही आकर्षित है। सघन रसाल वाटिका वाले इक्षुगन्धा के वन में शरद ऋतु में पर्णशाला का निर्माण करके दोनों घर–घर खेला करते थे। यह क्रीड़ा न जाने कब अनुराग में परिणत हो गई। एक दिन अवसर देखकर एकान्त में नायक बिट्टी से अपने प्रेम को प्रकट कर देता है। बिट्टी भी समर्पण भाव से प्रेम को अभिव्यक्ति प्रदान करती है, परन्तु उनका प्रेम परिणति को प्राप्त नहीं करता। नायक की शिक्षा पूर्ण होने से पहले ही उसकी दरिद्रता व भूमिहीनता के कारण नायिका बिट्टी का विवाह किसी धनिक पुत्र के साथ निश्चित हो गया।

चौदह वर्ष बाद नायक बिट्टी से पुनः अपने सेवक की पत्नी के रूप में मिलता है।

रात्रि में पत्नी प्रभावती के द्वारा पूछे जाने पर नायक अपना तथा बिट्टी का पूर्ण वृत्तान्त सुनाता है तथा प्रभावती के समक्ष एक प्रस्ताव रखता है कि पारिवारिक एवं सामाजिक कारणों से हमारा विवाह फलीभूत नहीं हो पाया तो क्या हमारे बच्चों का हो सकता है? मानसिक रूप से पहले से ही तैयार प्रभावती सहर्ष तैयार हो जाती है। 'पुत्रवधु के बहाने बिट्टी के प्रति प्रेम तो नहीं है', जैसे सहज दाम्पत्यसुलभ मनोविनोद के साथ कथा का सुखद अन्त होता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

विवाह का आधार आर्थिक एवं भौतिक स्तर तथा पद-प्रतिष्ठा न होकर गुण, संस्कार, सदाचार, योग्यता एवं सबसे ऊपर प्रेम होना चाहिए। गुण ही उन्नति एवं सफलता के आधार है।

भग्नपञ्जरः[31]

वैधव्य की विवशता, सामाजिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक मूल्यांकन पद्धति पर आश्रित 'भग्नपञ्जर' कथा का प्रारम्भ नायिका वंदना की वैचारिक उथल पुथल से होता है। नायिका का पिता समाज में अस्वीकार्य अपनी विधवा पुत्री को अवांछनीय समझता है तथा उसकी यह मनस्थिति अपनी पुत्री के प्रति असंवेदनशीलता के रूप में अक्सर प्रकट होती है।

दारूण अवस्था में अतीत का चित्र उसके मस्तिष्क में चलायमान हो उठता है। एक वर्ष पूर्व परिणय को रोकने का वंदना ने बहुत प्रयत्न किया था, परन्तु अविवाहित कन्या को बोझ समझने की मानसिकता वाले पिता ने उसके हाथ पीले करने के उत्तदायित्व को पूर्ण करने में ही अपनी निवृत्ति समझ ली। गुणहीन व अल्पशिक्षित वर के साथ सुरूचिसम्पन्न व सुशिक्षित वंदना का विवाह होने पर भी वंदना ने पति के घर में ताल–मेल बिठाने का पूर्ण प्रयत्न किया।

अल्पसमय में ही वन्दना श्वसुरालय में सबकी प्रिय हो गयी। उसने अपने अंसतोष रूपी ज्वालामुखी को अपने भीतर ही दबा लिया, परन्तु दुर्भाग्यवश असामयिक रूप से वंदना का पति चूहे का बिल बंद करते हुए सर्पदंश से मारा गया।

पति की मृत्यु के पश्चात् श्वसुरालय से उपेक्षित एवं तिरस्कृत वन्दना को माँ के कहने पर पिता घर ले आते हैं, परन्तु यहाँ भी माँ के अतिरिक्त वह सबसे उपेक्षित है। पिता के तिरस्कार से उसे वेदना मिश्रित आश्चर्य होता है कि विद्वान होते हुए भी पिता कन्या के प्रति पक्षपातपूर्ण एवं निर्दयतापूर्ण कैसे हो सकते हैं? इस सन्दर्भ में कवि ने **'बेटवा न होत बाबा'** गीत के संस्कृत माध्यम से समाज में व्याप्त लिंगभेद की विडम्बना पर प्रहार किया है। वंदना सामाजिक असंवेदनशीलता, स्त्री की मानवीय संवेदनाओं के प्रति क्रूर, निदर्यतापूर्ण एवं उपेक्षित दृष्टिकोण से विह्वल हो जाती है।

अर्द्धरात्रि को सर्दी का अहसास होने पर कम्बल लेने जाते हुए मार्ग में पिता के माँ के साथ होने वाले कामुकतापूर्ण वार्तालाप को सुनकर वंदना अंचभित रह जाती है और सोचती है कि इस वृद्धावस्था में स्वयं संयम का जीवन जीने में असमर्थ है तो मुझे तपस्विनी का जीवन जीने का उपदेश कैसे दे सकते है? वह अपने सतीर्थ्य जयदेव के साथ विवाह का निर्णय लेती है तथा किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा जाग्रत करने पर द्वार से

ही जननी को प्रणाम करते हुए अपने सपनों के संसार को पाने के लिए सामाजिक बन्धनों के पिंजरे को तोड़कर उन्मुक्त संसार में प्रस्थान कर जाती है।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

वैधव्य जीवन का अंत नही है। एक जीवन का अंत दूसरे के जीवन का दुर्भाग्य नहीं हो सकता। उसके सुखों, इच्छाओं, भावनाओं, संवेदनाओं, आंकाक्षाओं एवं सांसो को कैद करना अमानवीय है। बंधनों एवं वर्जनाओं के पिंजरे को तोड़कर स्त्री को सपनों का खुला आकाश देना ही चाहिए।

<u>ताम्बुलकरङ्कवाहिनी</u>[32]

पाण्ड्येश्वर के राजकवि हस्तिमल्ल के दरवाजे पर खट्–खट् होती है। दरवाजा खोलने पर वीरपाण्ड्य जटावर्मा उसे सूचना देता है कि 'पिता द्वारा मुझे उत्तराधिकारी घोषित करने पर द्वेष के कारण भ्राता सुन्दर पाण्डय के द्वारा पिता की हत्या कर दी गई है।'

हस्तिमल्ल भावविह्वल एवं अश्रुओं से गद्गद् कण्ठ से विलाप करते हैं। वे वीरपाण्ड्य जटा वर्मा को राजमहल जाकर प्रतीक्षा करने को कहते हैं और साथ ही कहते हैं कि वह सामन्त, अमात्य आदि को लेकर प्रातः काल होते ही आयेगें।

हस्तिमल्ल को चालीस वर्ष पुरानी घटनाएं स्मृतिपथ में आती हैं। दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चोलनरेश परान्तक प्रथम के द्वारा पाण्ड्य साम्राज्य उच्छिन्न कर दिया गया था। पाण्ड्यनरेशों ने राज्य को प्राप्त करने का पुनः प्रयास किया लेकिन राजेन्द्र चोल कुलोत्तुङ्गजप्रथम एवं तृतीय ने उन्हें पराजित कर भगा दिया।

दोनों राजवंषों का संघर्ष बार–बार होता रहा, परन्तु मारवर्मा सुन्दरपाण्ड्य द्वितीय के पुत्र जटावर्मा सुन्दरपाण्ड्य ने चोलसाम्राज्य को नामशेष कर दिया।

हस्तिमल्ल के पिता गोविन्दभट्ट जटावर्मा के राजकवि थे। हस्तिमल्ल और मारवर्मा साथ–साथ खेलते थे। दोनों में सखाभाव था। कालान्तर में कुलशेखर साम्राज्यपद पर अभिषिक्त हुए एवं हस्तिमल्ल राजकवि के पद पर। कतिपय वर्षों में कुलशेखर मारवर्मा ने दक्षिणी प्रदेश के सम्पूर्ण साम्राज्य को निष्कण्टक कर दिया। होयसल नरेश तो पिता द्वारा नष्ट कर दिए गए। काकतीय गणपति को नष्ट कर काञ्चीप्रदेश को अधिकृत कर लिया। श्रीरंगक्षेत्र तथा चिदम्बरतीर्थ में उसके द्वारा स्वर्णशिखर देवालय बनवाए गए। मारवर्मा ने

अपने पिता का यशोवर्धन करते हुए कौल्लराज्य को अधिकृत करके कुबेरदिशा में नेल्लोर तक विजयध्वज फहरा दिया। सिंहलद्वीप के सम्राट को भी हरा दिया।

सिंहलविजय से भारतभूमि की ओर लौटते हुए शिवाराधना के लिए कुलशेखर रामेश्वरतीर्थ गए। हस्तिमल्ल भी साथ थे। सर्वत्र कुलशेखर का स्वागत हो रहा था। लौटते हुए दिवंगत सामन्त की पुत्री, रूप एवं लावण्य की प्रतिमा, मालिनी मारवर्मा के नयन पथ में आ गई। उस सुन्दरी को देखकर मारवर्मा ने स्वयं पालकी से उतरकर पुष्पोपहार को ग्रहण किया। राजा के इस अनुग्रह से मालिनी कृतकृत्य हो गई। राजा मालिनी पर आसक्त होकर व्याकुल हो जाते हैं तथा हस्तिमल्ल से अपने प्रेम की बात साझा करते हैं।

परिचय ज्ञात कर प्रातःकाल ही हस्तिमल्ल मालिनी के घर जाते हैं और कहते हैं कि वीरभट सामन्त नटराज के कुटुम्ब के प्रति उपकार की दृष्टि से मुझे मारवर्मा ने भेजा है। वह आपकी पुत्री को 'ताम्बुलकरङ्कवाहिनी', आपके पुत्र अरूणराज को अपना शरीररक्षक तथा आपको राजकुलप्रांगण में नियुक्त करके सामन्त नटराज के ऋण को चुकाना चाहते हैं।

मालिनी की माँ अनुगृहीत होकर उनके प्रस्ताव को स्वीकार करती है। ताम्बुलकरङ्कवाहिनी मालिनी चांदनी रातों में स्वयं भी मारवर्मा में आसक्त होकर उसकी ह्रदेयश्वरी बन गई। परस्पर अनुराग की पराकाष्ठा होने पर माँ की स्वीकृति से मारवर्मा ने मालिनी से विवाह कर लिया। मारवर्मा एवं मालिनी की ही संतान जयवर्मा है, जिसने अपने गुणों से सबके ह्रदय को जीत लिया है। पिता ने अपने जीवनकाल में ही उसका राज्याभिषेक कर दिया। राजमहिषी के गर्भ से उत्पन्न अहंकारादि दुर्गुणों से युक्त सुन्दरपाण्ड्य ज्येष्ठ होने के कारण स्वयं को साम्राज्य का उत्तराधिकारी मानता है। अतः उसने अपने पिता को छलपूर्वक मार दिया।

स्मृतिपथ से बाहर निकलकर हस्तिमल शय्या छोड़कर उठते हुए भारत की दुर्दशा पर विचार करते हैं कि दक्षिणी क्षेत्र को छोड़कर तुर्की लोगों ने सम्पूर्ण राष्ट्र पर अधिकार कर लिया है। भारतीय राजवंश के विनाश के धूमकेतु अलाउदीन की सेना मलिककाफूर के नेतृत्व में दक्षिण की ओर बढ़ रही है। इस समय पाण्ड्यवंश विपत्ति में है। वे निर्णय करते है कि राजमहिषी मालिनी की रक्षा शीघ्र ही करनी चाहिए। ऐसा संकल्प कर वह सेनापति निवास की ओर विद्युतगति से चल पड़ते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

प्रेम किसी सामाजिक बंधन को स्वीकार नहीं करता। वह हर बंधन को तोड़कर दो आत्माओं को मिला देता है। मारवर्मा एवं मालिनी का प्रणय एवं विवाह इस बात का प्रमाण है। सत्ता का मोह विध्वंसक हो सकता है, यह शिक्षा भी कहानी से प्राप्त होती है।

कुलदीपकः[33]

'कुलदीपकः' कहानी सामाजिक संस्कारों में सदियों से जड़ें जमाए हुए बैठी जाति व्यवस्था एवं उससे जुड़ी ऊँच–नीच, अधम–उत्तम, पवित्र–अपवित्र की मिथ्या अवधारणा पर प्रहार करती है। तथाकथित उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला, इलाहाबाद के लूकरगंज क्षेत्र में रहने वाला उच्च न्यायालय का अधिवक्ता प्रवीन चौधरी सामान्य जनमानस में व्याप्त धारणा के अनुसार ही यह मान्यता रखता है कि छोटी जाति के लोग कुमार्गगामी होते हैं। वह अपने पुत्र सिन्धु को खटीक बस्ती में रहने वाले फलविक्रेता के पुत्र सोमधर के साथ रहने से मना करता है।

उच्च न्यायालय से लौटते समय जब वह अपने पुत्र को खटीक बस्ती से लौटते हुए देखता है तो उसका क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ जाता है। वह अपने पुत्र को बुलाकर इस बारे में पूछता है। पुत्र बताता है कि सोमधर एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी है, वह पढ़ाई में उसके समकक्ष ही है तथा वे दोनों एक दूसरे की पढ़ाई में मदद करते है, परन्तु प्रवीन चौधरी उसे ऊँचनीच का भेद बताते हुए सोमधर के साथ रहने से मना करता है।

जबकि प्रवीन चौधरी की पत्नी का मानना है कि अपराध का जाति से कोई लेना देना नहीं है। अपराध एक मानसिक विकार है। संकीर्ण विचारों से ग्रस्त पति के प्रति खिन्नता होते हुए भी पत्नी सामाजिक शिष्टाचार के कारण पति का विरोध नहीं करती।

शीतकाल में एक दिन सिन्धु संध्याकाल तक भी विद्यालय से घर नहीं लौटा। पत्नी के द्वारा सूचित किए जाने पर प्रवीन चौधरी भी व्याकुल होकर विद्यालय में दूरभाष पर सम्पर्क करता है, परन्तु विद्यालय से पता चलता है कि वहां से सारे विद्यार्थी जा चुके हैं। पति पत्नी दोनों व्याकुल हैं। प्रवीन चौधरी जैसे ही स्कूटर से पुत्र को ढूंढ़ने के लिए निकलने लगता है वैसे ही सोमधर सिन्धु को गोद में लेकर रिक्शायान से आता है।

सोमधर प्रवीन चौधरी को बताता है कि 'मार्ग में एक ट्रक ने सिन्धु की गाड़ी को टक्कर मार दी। बहुत सारे छात्र घायल हो गये। सिन्धु को पहचान कर अपने साथ ले

आया। आप सिन्धु को उतारिए, मैं डॉक्टर को लेकर आता हूँ।' परन्तु सोमधर के जाने से पहले ही सिन्धु होश में आ जाता है और माँ से पानी मांगता है। सब प्रसन्न हो जाते है। सिन्धु सोमधर को देखकर मुस्कुराता है, परन्तु पिता के भय से ज्यादा नहीं बोलता है। प्रवीन चौधरी अपने पुत्र की मनोदशा को समझ जाता है तथा स्नेह से पुत्र के सिर पर हाथ फेरता है।

सिन्धु के स्वस्थ होने पर सोमधर सिन्धु के पिता से जाने की अनुमति मांगता है। स्वभाव में सौम्य बालक सोमधर के व्यवहार से परिवर्तित हृदय वाले प्रवीन चौधरी को अपने व्यवहार पर पछतावा होता है। वह उससे कहता है कि 'पुत्र तुम कुलदीपक हो जिसने मेरे मोह–अंधकार को नष्ट कर दिया है। तुम अपने पिता को लेकर आना। उनके लिए कोई शासकीय सहायता की व्यवस्था करूंगा। तुम जैसे शील, सौजन्य एवं चरित्र सम्पन्न छात्र ही राष्ट्रीय उन्नति का आधार बन सकते है।'

इस प्रकार यह कहानी जाति व्यवस्था एवं उससे जुड़ी ऊंच नीच की संकीर्ण विचारधारा पर प्रहार करते हुए यह धारणा स्थापित करती है कि प्रतिभा, शील सज्जनता आदि आचरणों का जाति से कोई लेना देना नहीं है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

गरीब एवं निम्न जाति का होना अपराधी एवं कुसंस्कारी होने का आधार नहीं है। कुल को प्रकाशित कर आनन्द देने वाला कुलदीपक (उत्तम सन्तति) कहीं भी जन्म ले सकता है।

अधमर्णः[34]

'अधमर्णः' कथा शान्तनु एवं गंगा के पुत्र देवव्रत (कालान्तर में भीष्म) की, अतुल्य पितृभक्ति, दृढ़ संकल्प, राष्ट्रनिष्ठा, त्याग, उदारता एवं समर्पण की कथा है। यह कथा अपने भीतर देवव्रत से भीष्म बनने के बीज को समेटे हुए है। एक पुत्र व्यक्तिगत आकांक्षाओं एवं स्वार्थो से ऊपर उठते हुए राजा एवं राज्य की मानसिक एवं भौतिक स्थिरता के लिए एक विराट संकल्प लेकर पिता को 'अधमर्ण' बना देता है।

कथारम्भ में हस्तिनापुर नरेश व्याकुल है, अशान्त है। चंचल मन की गतिशील यात्रा वर्षों पूर्व गंगा किनारे गंगा से मिलन के स्मृति संसार में पहुंच जाती है। गंगातट पर विचरण करते हुए शान्तनु को एक कोमल सुकुमार रमणी दिखाई देती है। परस्पर प्रणय की अभिव्यक्ति एवं स्वीकृति के उपरान्त भगवती भागीरथी के तट पर ही दोनों गन्धर्वविवाह

कर लेते है, परन्तु वह रमणी युवराज शान्तनु के समक्ष एक शर्त रखती है कि जो भी सन्तति उनसे उत्पन्न होगी उसे वह भगवती भागीरथी को समर्पित कर देगी। रूप यौवन की वीथिकाओं में विचरण करते शान्तनु का पिपासु मन इस अनर्थ के लिए मौन स्वीकृति दे देता है। प्रतिवर्ष एक एक पुत्र को गंगा में प्रवाहित होते देख पिता का मन धैर्य की सीमाएं पार कर जाता है। सन्तति रक्षा के बोध के साथ शान्तनु आठवें पुत्र को भागीरथी में प्रवाहित करने से पहले ही अपनी पत्नी को रोक लेते हैं।

निश्चल एवं शान्त मन से भवितव्यता को प्रकट करते हुए वह शान्तनु को बताती है कि 'मैं देवनदी गङ्गा हूँ। वशिष्ठ के शाप से बचाने के लिए आठ वसुओं को गर्भ में धारण करने के लिए मुझसे प्रार्थना की गई थी। यह उपरिचर नामक आठवां वसु है। मैं इसे भागीरथी में प्रवाहित करने की अपेक्षा देव लोक ले जाकर शिक्षित–दीक्षित करके युवा होने पर स्वयं ही आपको समर्पित कर दूंगी।' नवजात शिशु के साथ गंगा जलधारा में विलीन हो जाती है। भागीरथी तट पर शान्तनु के अठारह वर्षों की प्रतीक्षा को सार्थक करते हुए देवी जाह्नवी अवतरित होती है तथा इच्छामृत्यु के वरदान से युक्त सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, देवव्रत को शान्तनु को सौंपती है।

स्मृतिवीथिकाओं की विचार यात्रा भंग होते ही शान्तनु पुनः वर्तमान में आ जाते है, परन्तु इस समय व्याकुलता प्राचीन प्रसंग की नहीं है। वर्तमान में बीते कल का वृत्तान्त उनके स्मृति पथ में आता है। प्रजा की कुशल क्षेम जानने निकले शान्तनु का शिविर यमुना के तट पर व्यवस्थित किया गया है। प्रभातकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य में विचरण करते हुए उन्होंने एक अनघ सुन्दरी युवति को नौका में बैठे हुए देखा। श्यामल, सलावण्य व आकर्षक रूप को देखकर शान्तनु हठात् उसके आसक्तिपाश में बंध गए। शान्तनु द्वारा प्रणय प्रस्ताव रखने पर सत्यवती ने स्वयं के पिता के अधीन बताया। विवाह प्रस्ताव प्रेषित करने पर सत्यवती के असुरक्षित भविष्य को विचार करते हुए पिता ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसी कारण शान्तनु व्याकुल हैं।

देवव्रत को पिता की व्याकुलता का कारण पता लगने पर वह सेवकों के साथ सत्यवती के पिता के पास पहुंचते हैं। सत्यवती को प्रणाम करते हुए पिता के विवाह का प्रस्ताव रखते हैं, परन्तु सत्यवती के पिता यह कहते हुए अस्वीकार कर देते हैं कि राजमहिषी बनना ही सौभाग्य नहीं है अपितु राजमातृत्व को प्राप्त करना विवाह को

सार्थकता एवं सुरक्षा प्रदान करता है। देवव्रत यह वचन देते हैं कि सत्यवती का पुत्र ही हस्तिनापुर सम्राट बनेगा, परन्तु देवव्रत पुत्रों द्वारा सत्यवती के पुत्रों पर अनिष्ट की आशंका धीवर द्वारा प्रकट करने पर देवव्रत आजीवन ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा लेते हैं।

कुमार देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा से आश्वस्त होकर धीवर अपनी कन्या सत्यवती का विवाह शान्तनु से करने की स्वीकृति प्रदान कर देता है। देवव्रत सत्यवती को लेकर आते हैं। श्रृद्धा एवं वात्सल्य से जड़ीभूत शान्तनु शून्य में देवी गंगा से कहते हैं 'देवी! तुमने पुत्र नहीं पिता दे दिया है जिसने मेरे सुख के लिए अपने सुखों की आहुति दे दी। मैं अपने पुत्र का ऋणी हो गया।'

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

पुत्र ही पिता के प्रति अधमर्ण हो यह आवश्यक नहीं। पिता के प्रति दायित्व-निर्वहन एवं त्याग से पिता भी पुत्र का अधमर्ण हो सकता है। जैसे शान्तनु देवव्रत के प्रति हो गए। ऐसे पुत्र से वंश कृतार्थ होता है। कामासक्ति विवेकहीनता को उत्पन्न करती है, यह शिक्षा भी ग्राह्य है।

कुक्की[35]

'कुक्की' कहानी कवि की प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करने वाली, कुक्की नामक मार्जारी एवं उसके साथ छल करने वाले दुष्ट मार्जार पर नायिका एवं खलनायक का आरोप कर रची गई एक सशक्त संदेशप्रद कहानी है। यह पशुसंवेदना, पुरुष–प्रकृति, कामवासना के दुष्परिणाम, मातृत्व–महिमा, बालचपलता जैसी विविध संवेदनाओं को एक माला में पिरोकर समाज को दिशा देने का सार्थक प्रयास है।

लेखक भिलाई नगर जाने के लिए उद्यत है, परन्तु एक मार्जारी उनके घर के दरवाजे पर स्थित है। दरवाजा खोलने पर अन्दर प्रविष्ट हो जाती है। लेखक के साथ अनौपचारिक, सहज एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार प्रकट करती है। अकस्मात लेखक के मन में करूणा जाग्रत होती है। वह सोचते हैं 'अवश्य ही कोई गूढ़ कारण है, शायद कोई अनहोनी का स्वाभाविक संकेत है। अतः मुझे नहीं जाना चाहिए।' यह सोचकर भिलाई नहीं जाते, वापिस घर में आ जाते हैं, चाय पीते हैं, मार्जारी को भी दूध देते हैं, परन्तु वह मानो नाराज है, नहीं पीती है। लेखक उसे उलाहना देते हुए विद्युत–दीपक बंद कर सो जाते हैं।

गंगा के किनारे भक्ति गीत, पक्षी कूजन आदि के कारण एवं स्वभावतः भी लेखक प्रातः जल्दी उठते हैं, परन्तु आज मार्जारी के द्वारा जगाऐ गए लेखक यद्यपि क्रोध व्यक्त करना चाहते हैं, परन्तु मार्जारी के मान, अनुरोध, प्रणय, सौहार्द मिश्रित गुँर–गुँर की आवाज से लेखक के चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती है। मार्जारी के प्रणयपूर्ण व्यवहार को देखकर कवि कल्पना करते हैं कि पुराने जन्मों के प्रणय सम्बन्धों को पशुयोनि में उत्पन्न यह प्रणयिनी मार्जारी अभिव्यक्त कर रही है। कर्मविपाक भी विचित्र होते हैं। कौन किस जन्म में किस रूप में मिल जाए निश्चित नहीं है। परस्पर एक दूसरे के संकेतो को समझ लेने वाले लेखक एवं मार्जारी मानो नायक–नायिका हो गए। मार्जारी लेखक की जीवन सहचरी हो गई।

मध्याह्नकाल में लेखक ने अखबार पर बैठी सद्य–प्रसूता मार्जारी को दो नवजात शिशुओं को दुग्धपान करवाते हुए देखा। लेखक हर्ष से नृत्य करने लगे। वे अब समझे कि मार्जारी भिलाई जाते समय प्रसव पीड़ा से पीड़ित थी। लेखक के घर में मानो मांगलिक कार्य सम्पन्न हो गया। लेखक को ऐसा लगा, वे वाल्मीकि है और मार्जारी वैदेही, दो शिशु लवकुश है। सीता सृदृश मार्जारी ने मुझ वाल्मीकि को अपनी पीड़ा बताने प्रयास किया, परन्तु मैं ही समझ नहीं पाया।

दोनों शिशु बालसुलभ क्रीडाओं के साथ बड़े हो रहे थे। लेखक उनका परिवार की तरह पालन–पोषण करने लगे। संस्कारित गृहिणी की तरह हिंसारहित मार्जारी अपने शिशुओं की परवरिश सावधानी से कर रही थी। अकस्मात् दुष्यन्त रूपी बिलाव लौटकर आ गया। लेखक निश्चिंत थे कि मार्जारी उसकी निष्ठाहीनता को क्षमा नहीं करेगी, परन्तु लेखक का मोहभ्रम टूट गया। कुछ समय पश्चात् कुक्की ने सहवास के लिए मार्जार को अनुमति दे दी। कुक्की ने अपने अपराधी को क्षमा कर दिया। कुक्की का परिवार पूर्ण हो गया तथा लेखक न चाहते हुए भी परिवार के संरक्षक हो गए। निरन्तर अवलोकन करते हुए लेखक ने पाया कि विडाल वहां कुक्की के लिए नहीं अपितु उसकी युवा होती शाविका मार्जारी के लिए आया था। कुक्की के रक्षण, जागरण, पहरेदारी आदि प्रयत्नों के बाद भी मर्यादा रूपी वाटिका कामरूपी हाथी ने नष्ट कर दी।

एक शाम को लेखक ने रक्तरंजित, क्षतविक्षत अवस्था में कुक्की को देखा। लेखक ने पानी की बूंदे कुक्की के मुख में डाली। पानी पीते ही हिचकी के साथ 'कुक्की' ने प्राण त्याग दिए। अपने प्रियजन की मृत्यु की तरह वेदना एवं विलाप युक्त लेखक ने गंगातट पर कुक्की का अंतिम संस्कार विधि विधान से किया। उसके मानवी रूप में पुनर्जन्म के लिए कामना की।

और्ध्वदैहिक संस्कार से लौटने पर लेखक ने विडाल को कुक्की की कन्या के साथ रमण करते हुए देखा। विडाल को मारने के लिए लेखक कृतसंकल्प थे, परन्तु उसने घर छोड़ दिया। अब केवल कुक्की की स्मृतियां ही मन में थी।

प्राणिमात्र के हृदय की संवेदना के साथ साक्षात्कार में सिद्धहस्त कवि ने कुक्की कहानी में 'स्त्री–पुरुष की प्रकृति का सूक्ष्म अवलोकन एवं वर्णन किया है। उपभुक्त एवं परित्यक्त नायिका का प्रतिनिधित्व करती हुई कथानायिका मार्जारी कुक्की के व्यवहार, ममत्व एवं संवेदनाओं का वर्णन अकल्पनीय है। कुक्की का छोड़ा जाना, जबरन कवि के घर में रहना, निर्वासिता सीता की तरह यहां आश्रय लेकर शिशुओं को जन्म देना, वाल्मीकि की तरह कवि द्वारा शिशुओं का पालन पोषण, बिलाव का पुनः आना, उसकी पुत्री पर कुदृष्टि रखना, मार्जारी का विरोध, उसका वध, कवि द्वारा अंतिम संस्कार सब कुछ मानवीय है। कुक्की समाज की साधुशीला स्त्री का, कवि करूणहृदय शरणागतवत्सल सज्जन पुरुषों का एवं बिलाव कामप्रधान पाशविक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुक्कीवत स्त्रियों को समाज में आश्रय देना ही इस स्थिति का समाधान है, परन्तु कहानी का अंत मुझे

भाव–विह्वल कर देता है। काश! अंत में बिलाव को दण्ड मिलता और कुक्की शेष जीवन सकुशल दायित्व निर्वहन करते हुए रहती।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

पशु-पक्षियों में भी संवेदनाएं है। संवेदनाएं प्राणिमात्र में निहित है। कामुकता, वासना, वात्सल्य, संस्कार, प्राणिमात्र में दर्शनीय है। पशु-पक्षी भी संवेदना एवं स्नेह के पात्र है।

चञ्चा[36]

'चञ्चा' इलाहाबाद नगर के गर्भगृह स्वरूप 'मीरगंज' क्षेत्र में रहने वाली मुन्नीबाई के विडम्बनापूर्ण जीवन, वेश्यावृत्ति के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण, स्त्री को भोग्या के रूप में देखने वाले पुरुषों के मिथ्या आडम्बरयुक्त जीवन पर कटाक्ष करती एक यथार्थपरक एवं मार्मिक कथा है।

मीरगंज में अब वेश्यावृत्ति समाप्त प्रायः है। अधिकतर गणिकाएं गृहिणियां होकर पारिवारिक दायित्व वहन कर रही हैं। इसी मीरंगज में अस्सी वर्षीय हीराबाई उसकी पुत्री मुन्नीबाई, जामाता महेश्वर एवं नातिन सोमा रहते हैं। वेश्यावृत्ति, नर्तन, गायन अथवा वादन उनका कभी व्यापार नहीं रहा है। पैंतालीस वर्षीय मुन्नीबाई का व्यक्तित्व अतीव आकर्षक है। पैंसठ वर्षीय उसका पति अकालवृद्ध है, परन्तु मुन्नीबाई से स्नेह करता है। रूपयों के लेन–देन का व्यापार करता है। दोनों की एक सन्तति सोमा नाम की सुन्दर कन्या है। महाविद्यालय में अध्ययनरत है। विजयादशमी के अवकाश पर एक सुदर्शन युवक प्रवीन के घर आने पर सोमा की माँ मुन्नीबाई को उनके संभाव्य प्रेम की आशंका होती है। वह सोमा से प्रवीन के विषय में पूछती है। सोमा प्रवीन का प्राध्यापक के रूप में परिचय करवाती है। स्त्री पुरुष सम्बन्धों के संभाव्य अनर्थों के प्रति सचेत करते हुए कहती है कि प्रणयसूत्र के विच्छिन्न होने पर गर्भ रूपी विपत्ति एवं अनादर स्त्री को ही भोगना होता है। लोक में नारी का ही तिरस्कार होता है। अपनी पुत्री से सत्य प्रकट करने को कहती हे। सोमा अपने व प्रवीन के प्रेम के बारे में माँ को बताती है।

मुन्नी बाई वंश, कुल आर्थिक स्तर की विषमता से अवगत करवाते हुए भविष्य में होने वाली विसंगतियों पर प्रकाश डालती है। वह प्रवीन को इस सम्बन्ध को आगे बढ़ाने से रोकती है। प्रवीन विनम्रतापूर्वक कहता है कि 'आप मेरी माँ समान है। सोमा मेरे जीवन का लक्ष्य है। आपके अतीत से मुझे कोई तात्पर्य नहीं है, न ही आपकी आर्थिक स्थिति से मुझे

कोई मतलब नहीं है। यदि उससे विवाह नहीं हुआ तो मैं आजीवन अविवाहित रहूँगा।' मुन्नीबाई प्रवीन के प्रति आश्वस्त होकर उसे जामाता के रूप में स्वीकार करती है।

प्रवीन के पिता राजमणि की आर्थिक स्थिति मजबूत है। राजमणि का मित्र निरंजन अपनी पुत्री का विवाह प्रवीन से करना चाहता है। मीरगंज क्षेत्र की किसी मुन्नी बाई की पुत्री से प्रवीन विवाह करना चाहता है यह जानकर निरंजन क्रोधित होता है, मुन्नी बाई को धमकाता है, तथा राजमणि पर मुकदमा कर देता है। मुन्नी बाई अपने साथ दुराचार करने वाले निरंजन को पहचान लेती है।

कथा का अन्तिम दृश्य न्यायालय का है। दोनों अपना पक्ष रखते हैं। राजमणि द्वारा दहेज लेकर विवाह सम्बन्ध तोड़ना लगभग असिद्ध था। निर्णय के अंतिम पलों में मुन्नीबाई न्यायाधीश महोदय से निरंजन से कुछ प्रश्न करने की अनुमति मांगती है। वह बचपन के नाम रज्जनबाबू एंव उसकी वाम भुजा पर व्रणाङ्क से यह सिद्ध करती है कि वही निरंजन की पूर्व प्रेमिका श्यामा है निरंजन ने जिसे मारने का प्रयास किया था तथा मृत मानकर नदी में प्रवाहित कर दिया था।

निरंजन पशुपक्षियों के मन में भय उत्पन्न करने वाले पुतले (चंचा) की तरह मिथ्या एवं दिखावटी चरित्र वाला है। अब यह मिथ्या वाद चलाकर दूसरों को मिथ्याचारी सिद्ध करना चाहता है। मुन्नी उसके द्वारा लिखित प्रणय पत्र भी प्रस्तुत करती है। रज्जन नाम वाली अंगूठी भी दिखाती है। चौबीस वर्षों वाद मुन्नी बाई को न्याय एवं पुत्री को जीवन दान मिल गया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

खेत में खड़ा पुतला जैसे मानव होने का भ्रम पैदा करने के कारण पशु पक्षियों में भय पैदा करता है, परन्तु वास्तविकता पता लगने पर उनका भय समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार समाज में कुछ लोग सम्मानीय, आदरणीय व वरेण्य होने का भभ्र पैदा करते है, परन्तु वस्तुतः भीतर से खोखले व पतितचरित्र होते है। आवरणहीन होने पर भ्रम समाप्त हो जाता है।

महानगरी[37]

'महानगरी' कथा वाराणसी से महानगरी मुम्बई को जाने वाली रेलगाड़ी की संस्मरण यात्रा है। यह समाज के उस पूरे वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जो अत्यन्त संकुचित एवं

क्रूर मानसिकता के कारण दूसरे की सन्तति के प्रति संवेदनाहीन होकर अधम आचरण करते हैं।

संस्मरणात्मक शैली में लिखी कथा में कथाकार मलाड से चर्चगेट तथा चर्चगेट से विक्टोरिया टर्मिनल्स आते है। रेल्वे स्टेशन का कहानीकार ने सहज एवं स्वाभाविक चित्रण किया है। रेलगाड़ी रवाना होने के बाद, कथाकार का ध्यान सामने वाली शायिका पर बैठे पति–पत्नी पर जाता है, जो अपने पुत्रों के साथ स्थित थे। ऊपर की शायिका पर एक बारह वर्षीया बालिका सो रही थी। बालिका का नाम संगीता था।

प्रायः तीस वर्षीया युवति नारी स्वभाववश अपने साथ विविध पिटकों में खाद्यसामग्री लेकर आई है। गेहूएं वर्ण की उस सुन्दर युवति के तीन पुत्र है क्रमशः पंचवर्षीय, द्विवर्षीय एवं सप्तमासीय। वह तीनों पुत्रों को संभालने में व्यस्त है। पति बैल के समान लगातार चर्वणाकार्य में लगा हुआ है। वह त्रिदोषों की तरह उत्पात मचातें बालकों को संभालने में कोई सहायता नहीं कर रहा। उसके ब्याज से कथाकार पुरुष की आत्मदंभ की प्रवृत्ति पर कटाक्ष करते हैं। बालिका संगीता तत्परता से सहायता कर रही है। पूरा परिवार भोजन करने में व्यस्त है, परन्तु संगीता को कोई नहीं पूछ रहा।

कथाकार पूरी यात्रा के दौरान उस परिवार की गतिविधियों का सूक्ष्म अवलोकन करते हैं और पाते हैं कि दूसरे की बालिका को पूरे रास्ते में खाने पीने के लिए पूछे बिना उसे काम में लगाया जाता है। उसकी पीड़ा, व्यथा, दर्द कौन जानता है? दूसरे के बच्चे की पीड़ा को कौन समझ सकता है? कैसे लोग शुनः शेप के समान अपने बालक को दूसरे को सौंप देते है? पाठकों के मानसपटल पर कवि एक प्रश्नचिह्न अंकित कर देते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

संकुचित मानसिकता वाले लोग दूसरे की संतति के प्रति संवेदनहीन होकर अमानवीय व्यवहार करते हैं। संवेदनहीनता एवं संकुचित दृष्टिकोण मानवता के लिए श्रेयस्कर नहीं है।

एकचक्रः[38]

स्मृति संसार में विचरण करते हुए 'एकचक्रः' कथा के नायक को लगता है कि कामनाओं का जो संसार कल तक दिखाई देता था वो आज कहीं हृदय के अन्तर में जाकर विलीन हो गया है। उसे अपना बचपन याद आता है, गाँव के दिन याद आते है, गाँव का प्राकृतिक सौन्दर्य याद आता है।

पिता के अध्यापन कार्य के लिए बाहर रहने पर करूणामयी माँ ही सन्तति का पालन पोषण करती तथा पिता की प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत करती। अग्रज की मृत्यु के बाद जो संस्कृतशिक्षण का संकल्प अग्रज के लिए था वो अपेक्षा अब पिताजी को कथानायक से थी। प्रारम्भिक शिक्षा पिता के सान्निध्य में हुई। युवावस्था में पिता व पुत्र के बीच दूरियां बढ़ने लगी। गालवपुर एवं वाराणसी में रहते हुए स्नातक एवं परा स्नातक की पढ़ाई पूरी की। विषम राष्ट्रीय एवं पारिवारिक परिस्थितियों से संघर्ष करते–करते कथानायक सागर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गए।

विश्वविद्यालय में चिन्तन–मनन करने वाले, समकालीन एवं प्रासंगिक समस्याओं अथवा विषयों पर विचार–विमर्श करने वाले सहृदय प्रबुद्ध जन मिल गये। हस्तिनख प्रदेश में किसी स्थान पर उनकी गोष्ठियां अथवा चर्चाएं होने लगी। देशकाल एवं व्यक्तिनिरपेक्ष, निर्बन्ध, मुक्त व्यवहार से तर्क वितर्क होते थे।

कथाकार की एक शिष्या के पिता दिवंगत हो गए। वे अपनी शिष्या लीला के पितृशोक से भावविह्वल होकर लीलामय ही हो गए। कथाकार विवाह का निर्णय करते हैं। परम्परा के पोषक पिता का अपेक्षित विरोध होता है। पिता–पुत्र के संघर्ष में माँ अन्तर्द्वन्द्व में थी, परन्तु उसने पुत्र–पुत्रवधु को आशीष दिया।

उन दोनों का दाम्पत्य जीवन आपसी समझ, समर्पण एवं स्नेह से आदर्श स्तर पर चल रहा था। उपकार–अपकार, अधमर्ण–उत्तमर्ण के भाव से परे, शुद्ध रूप से निष्ठामूलक, स्थायी सम्बन्ध परस्पर सम्मान एवं अर्चना से अभिभूत सम्बन्ध था उनका। तीस वर्ष प्रेममय सहारे एवं विश्वास से बीत गए। माता–पिता की मृत्यु के दुख को भी पत्नी के सहारे सहन कर लिया, परन्तु अब पत्नी के निधन पर सर्वथा असहाय हो गए। जीवन सहधर्मिणी के यूं अचानक चले जाने पर कथाकार हतप्रभ है, वेदनामय है, भावविह्वल है, निराश है, अवसाद में है। वह समझ नहीं पा रहे, अकस्मात् घटित इस अघटनीय को। रात को ही कनिष्ठ पुत्र के विवाह की तैयारियों की बात करके साई थी, परन्तु तीस वर्ष से पहले जागने वाली लीला आज चिरनिद्रा में चली गई थी। अब संसार वही है, पदार्थ वही है, मित्र–परिवार वही हैं, परन्तु लीलारहित नायक के लिए सब कुछ पराया है। गृहस्थी के रथ का एक चक्र रथ छोड़ कर चला गया। अब एक चक्र वाला रथ मात्र संकल्प के सहारे जीवनयापन कर

रहा है। मंत्रबद्ध की तरह एक कक्ष में ही उसकी पूरी दुनियां सिमट गई है। संकल्प संचालित रथ से यात्रा करना ही अब उसके जीवन का लक्ष्य है।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

दाम्पत्य-जीवन रूपी रथ में पति व पत्नी दो चक्र हैं, जिनके परस्पर सामंजस्य, सहयोग एवं समगति से जीवन चलता है। दोनों समान महत्त्व धारण करते हैं। एक के चले जाने पर जीवन गतिहीन व निष्प्राण हो जाता है।

पोतविहगौ[39]

'पोतविहगौ' कथा निहाल व महुली की कथा है, जो परिस्थिति वश मिल जाते हैं और फिर परिस्थितियां ऐसी बन जाती है कि उनका एक दूसरे के सिवा कोई आश्रय नहीं रहता जैसे समुद्री जहाज पर रहने वाले दो पक्षी कितनी भी यात्रा कर ले उन्हें जहाज पर लौटना ही पड़ता है। जहाज के अतिरिक्त उनका कोई आश्रय स्थल नहीं है और समुद्र की विशालता से दूर कोई आश्रय स्थल ढूंढ़ना उनके सामर्थ्य की सीमा में नहीं है।

कथा का प्रारम्भ महुली के विलाप से होता है। कथा 1940 के कालखण्ड की पृष्ठभूमि में चली जाती है। जौनपुर जनपद के गौरी पट्टी ग्राम का चित्तूपाण्डेय का पुत्र निहाल पाण्डेय अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र है, एक भाई व तीन बहनें हैं, विवाहित है, बेरोजगार है, पत्नी गर्भवती है। निहाल की बहिन के श्वसुर सेना में है। सेना में इस समय विषम स्थिति चल रही है। हिटलर की नाजी सेना (जर्मनी) एवं इटली के मुसोलिनी मिलकर यूरोप को आतंकित कर रहे थे। इंग्लैण्ड मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर हिटलर से युद्ध कर रहा था। भारतीय सेना इंग्लैण्ड की तरफ से युद्ध लड़ रही थी। निहाल की बहिन, श्वसुर से निहाल की सेना में भर्ती करवाने के लिए अनुरोध करती है। उसके अनुरोध पर बहिन के श्वसुर शिवदत्त उसे सेना में भर्ती करवा देते हैं।

युद्ध समाप्त होने पर रंगून के समीप जब सैनिक विश्राम के लिए ठहरे हुए थे, तब निहाल का परिचय महुली से होता है। जिसके पिता भारत मूल के है। पिता की मृत्यु के पश्चात् माँ ने दूसरा विवाह कर लिया है। नानी ही उसका एक मात्र आश्रय है। निरन्तर मिलते रहने से प्रणय का अंकुर, उनके हृदयों में प्रस्फुटित हो गया है। हास–परिहास में प्रणयाभिव्यक्ति भी होती है, परन्तु स्पष्ट रूप से निहाल कुछ नहीं कहता। परिहास में ही निहाल उससे भारत चलने का प्रस्ताव रखता है। महुली कुछ नहीं कहती लेकिन वह

निरन्तर उसके सम्पर्क में रहती है, अपनी गतिविधियों से निहाल के प्रति आसक्ति को प्रकट भी करती है।

सेना का भारत का लौटने का समय आता है। महुली भी निहाल के साथ भारत आना चाहती है। निहाल धर्म संकट में है, परन्तु महुली हठ करके उसके साथ आ जाती है। उधर भारत में पिता व पत्नी को पहले ही पता लग जाता है। पिता तो परिस्थिति वश हुए सम्बन्ध को धैर्य से स्वीकारते है, परन्तु पत्नी युद्ध के लिए तत्पर है।

महुली के साथ निहाल भारत आता है। गाँव में सभी की प्रतिक्रिया अलग–अलग है। पिता पुत्र के कहने पर यह मान जाते है कि निहाल का महुली के साथ केवल सखाभाव है। पत्नी किसी भी तरह से यह स्वीकारने को तैयार नहीं है कि महुली के साथ निहाल का कोई अनुचित सम्बन्ध नहीं है। पत्नी के अशिष्ट व्यवहार से निहाल व्यथित है, विवश है, उद्विग्न है, उसका धैर्य खो जाता है। एक दिन वह आतुर होकर महुली के पास लौट आता है और अपने प्रणय को स्वीकार करते हुए महुली के प्रति समर्पित हो जाता है। महुली भी निःस्वार्थ भाव से उसके प्रेम को स्वीकार करती है चूंकि अर्न्तमन में तो वह भी निहाल से प्रेम करती ही है।

घर के बाहर कुटिया में महुली रहती है। उसका घर में आना निहाल द्वारा निषिद्ध है। घर में कुछ लोग महुली के सरल व्यवहार से प्रसन्न हैं तथा कुछ लोग उसके प्रति द्वेष भावना रखते हैं।

निहाल के पुत्र के प्रति महुली वात्सल्य भाव रखती है। एक बार गाय के प्रहार से घायल होने पर उसे घर पहुंचाने के लिए महुली घर के अंदर चली जाती है। घर में तूफान आ जाता है। निहाल भी महुली को ही सबके सामने प्रताड़ित करता है। महुली का हृदय टूट जाता है। वह निहाल का घर छोड़ कर जाने को तत्पर है। ननद एवं सास उसके पक्ष में हैं। उसे मनाना चाहती हैं, परन्तु वह नहीं मानती। अंत में निहाल उसके पास जाता है, उसे हृदय से लगाता है प्रेमपूर्वक आग्रह करता है। निहाल कहता है कि अगर तुम मुझे छोड़कर जाओगी तो तुम्हारे सिवाय मेरा कौन है? हमारी स्थिति तो जहाज के पंछी की तरह है, जिन्हें पुनः लौटकर जहाज पर ही आना होता है क्योंकि जहाज के अतिरिक्त उनका कोई आश्रय स्थल नहीं होता, जहाज के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प नहीं होता। महुली भी मान छोड़कर निहाल के गले लग जाती है। दोनों का मनोमालिन्य प्रेमाश्रुओं में बह जाता है। प्रणयसरिता में उद्‌गाहन करते हुए दोनों एक हो जाते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

संसार की विषमताओं, विकटताओं एवं विवशताओं के प्रहार से आहत होकर जब दो लोग एक जैसी परिस्थिति में आ जाते हैं, तो एक दूसरे के मनोभावों को समझने वाले वे लोग एक जहाज पर दो पक्षियों की तरह हैं, जिनके लिए और कोई दिशा व दशा हो नहीं सकती।

सिंहसारिः[40]

संध्या के समय जावाद्वीप के सिंहसारि साम्राज्य की पट्टमहिषी राजप्रासाद के ऊपरी भाग में चिन्तामग्न बैठी है। सेविका आकर सूचना देती है कि सिंहसारिसम्राट कडिरी नरेश कृतजय को मारकर व विजयी होकर आए हैं और कनिष्ठा रानी के कक्ष में विश्राम कर रहे हैं।

साम्राज्ञी दिदिशा राजा की विजय से प्रसन्न है, परन्तु उनके कनिष्ठारानी के पास जाने के आहत है। अपने कक्ष में शय्या पर भावविह्वल दिदिशा को अपने जीवन रूपी पुस्तक के पृष्ठ खुलते हुए से प्रतीत होने लगे। अतीत उनके स्मृतिपथ में यात्रा करने लगा।

बारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में सम्पूर्ण यवप्रदेश पर उतुङ्गदेव का शासन था। यवद्वीप के पूर्व भाग में कवि पर्वत के पास तुम्पेल नामक एक छोटा राज्य था, जिस पर सामन्त अमृताङ्ग का शासन था। दिदिशा तुम्पेल शासक अमृताङ्ग के पुरोहित की कन्या थी।

पुरोहित कन्या की सुन्दरता पर अमृताङ्ग मुग्ध था, परन्तु वर्णाश्रम धर्म के अनुसार एक क्षत्रिय का ब्राह्मण से विवाह असम्भव था। अवसर पाकर अमृताङ्ग दिदिशा का अपरहरण कर अपने अन्तःपुर में ले आया। कन्या अपहरण से आहत दिदिशा के पिता ने मृत्यु का वरण कर लिया। तुम्पेल राज्य में जनाक्रोश फैल गया।

अमृताङ्ग ने शनै शनै पश्चाताप से, प्रणय निवेदन से, प्रशंसा से एवं अन्य तरीकों से दिदिशा को अपने वश में कर लिया। अमृताङ्ग के प्रेम व राज्य के भोग विलास से दिदिशा सब कुछ भूलने लगी, परन्तु फिर भी कभी कभी पिता की मृत्यु, स्ववंश का गौरव और उसकी समाप्ति का कारण स्वरूप अमृताङ्ग उसके मन में क्रोध, पश्चात्ताप व आत्मग्लानि को पैदा करता था। दुःख–सुख, घृणा–प्रेम, जीवन–मृत्यु के बीच दोलायमान दिदिशा का जीवन

गतिमान था। इस मानसिक द्वन्द्व के बीच उसने एक पुत्र अनूषपति को जन्म दिया। इसी बीच पिता समकक्ष नये पुरोहित अपने युवा पुत्र के साथ राजमहिषी दिदिशा के पास आए।

कर्णाङ्गारक नामक इस सुदर्शन युवक को देखकर दिदिशा के मन में दबी हुई पीड़ा फिर से सिर उठाने लगी कि यदि पिता जीवित होते तो कर्णाङ्गारक जैसे ब्राह्मण युवक से उसका विवाह हुआ होता। दोनों के बीच भावनात्मक सम्बन्ध बनने लगता है। कर्णाङ्गारक राजभवन में अपने सद्‌गुणों, प्रशासनिक क्षमता एवं सुदर्शन व्यक्तित्व से सबका प्रिय बन जाता है। राज्यलिप्सा एवं दिदिशा के प्रति अनुरक्ति ने कर्णाङ्गारक को साहस के लिए प्रेरित किया। अवसर पाकर कर्णाङ्गारक ने अमृताङ्ग को मारकर स्वयं को तुम्पेल राज्य का स्वामी घोषित कर दिया।

कर्णाङ्गारक का राज्याभिषेक हो गया तथा दिदिशा पट्टमहिषी बन गई। कर्णाङ्गारक ने अपनी राजधानी को **सिंहसारि** नाम से उद्‌घोषित किया।

यवद्वीप में अब कृतजय का साम्राज्य था। वह भी कर्णाङ्गारक से मन ही मन भयभीत था, परन्तु दोनों के बीच शत्रुता का कोई कारण भी न था।

दिदिशा के प्रति कर्णाङ्गारक का प्रेम दिन प्रतिदिन प्रगाढ़तर होता गया। क्रमशः उसने चार पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु वह आनन्द एवं उल्लास का समय ज्यादा नहीं चला। कर्णाङ्गारक ने किसी अन्य नवयौवना सुन्दरी से विवाह कर लिया और दिदिशा के सारे स्वप्न बिखर गये। पुरुष की सौन्दर्यलोलुपता से दिदिशा आहत है, परन्तु नियति के विधान को स्वीकारने के अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं है। नवागता राजमहिषी ने भी चार पुत्रों को जन्म दिया।

किसी दिन कडिरी देश से आगत बौद्ध भिक्षुओं ने यवद्वीप के राजा के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने की कर्णाङ्गारक से प्रार्थना की। कर्णाङ्गारक ने सेना सहित कृतजय पर आक्रमण कर, उसको मारकर सम्पूर्ण यव प्रदेश पर विजय प्राप्त कर ली।

अब कर्णाङ्गारक सम्पूर्ण यवप्रदेश का सम्राट है, परन्तु दिदिशा नाम मात्र की ही साम्राज्ञी है।

राजकुमार अनूषपति, जो पच्चीस वर्ष की अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं, धीर, गंभीर, शान्त प्रकृति के हैं। किसी समय आकर माँ से प्रश्न करते हैं कि पिता मुझसे स्नेह क्यों

नहीं करते। कोमल हृदय दिदिशा रहस्यगोपन नहीं कर सकी। उसने पूर्व पति विषयक संपूर्ण वृत्तान्त पुत्र के लिए प्रकट कर दिया।

उसी रात्रि में किसी राजपुरुष ने भोजन के समय कर्णाङ्गारक का वध कर दिया। उस राजपुरुष का पितृभक्त अनूषपति नें उसी समय वध कर दिया। वस्तुतः वह राजपुरुष कौन था, यह केवल दिदिशा को ही ज्ञात था। राजधानी सिंहसारि एवं पट्टमहिषी दिदिशा का यह द्वितीय वैधव्य था। इस प्रकार ऐतिहासिक विषयवस्तु पर आधारित यह कहानी दिदिशा की अर्न्तमनोदशा एवं राजनीतिक द्वन्द्वों का मार्मिक एवं यथार्थ वर्णन है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

प्रणय, समर्पण एवं विरक्ति की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि अत्यन्त उलझनपूर्ण है। प्रेम में पराजय मनुष्य को प्रतिशोध के लिए किसी भी सीमा तक पहुंचा सकती है। पुरुष के लिए सौन्दर्य व शरीर ही आकर्षण के केन्द्र है, परन्तु स्त्री का प्रेम हृदय से समर्पण करता है। प्रेम में आहत स्त्री का अहंकार घातक हो सकता है।

राङ्गडा[41]

बालीद्वीपप्रवास के दौरान कविवर अपनी अमरावती तीर्थयात्रा का वृत्तान्त अपनी दैनन्दिनी लेखन के माध्यम से साहित्य समाज से साझा कर रहे हैं।

बालीद्वीप के ग्यान्यारमण्डल में पकरिसान एवं पेतानून नदियों के बीच अमरावती तीर्थ है। अमरावती के प्रवेश द्वार पर देनपसार– ग्यान्यार राजमार्गके दक्षिणांश में कुतरी ग्राम में लघु पर्वत पर दुर्गामहिषमर्दिनी का मन्दिर है, जिसे राङ्गडा के नाम से जाना जाता है। राङ्गडा एक प्रेताधीश्वरी है, जो राङ्गडात्व की उत्पत्ति से पहले बालीनरेश धर्मोदयनवर्मा की धर्मपत्नी तथा यवद्वीप के सम्राट मुकुटवंशवर्धन की कनिष्ठा पुत्री थी।

कुतरीग्राम के कुछ पूर्व में मंदिर परिसर के दरवाजे पर नरकासुर (भौमासुर) की मुखाकृति सुशोभित है। अन्दर प्रवेश करके लगभग तीन सौ सीढ़ियां चढ़कर भगवती महिषमर्दिनी का मंदिर है जहाँ वो कात्यायनी (1. एक प्रौढ़ा या अधेड़ विधवा स्त्री जिसने लाल वस्त्र पहन रखे है, 2. पार्वती) हजारों वर्षो से विराजमान है।

कवि का मन मन्दिरप्राङ्गण से निकलकर यथार्थ को खोजने यवद्वीप के इतिहास में प्रविष्ट हो जाता है।

दसवीं शताब्दी में प्राच्य यवद्वीप में मतरामवंशीय धर्मोतुङ्गदेव शासक थे। उनकी पुत्री ईशानतुङ्गविजया ने लोकपाल राजा से विवाह करके मुकुटवंशवर्धन तथा साम्राज्य के उत्तराधिकारी पुत्र को जन्म दिया। उस राजा की भी दो पुत्रियां थी। ज्येष्ठ कन्या का विवाह धर्मवंश नाम के राजा के साथ करके यवनरेश को मुकुटवंशवर्धन कर दिया। कनिष्ठ कन्या महेन्द्रदत्ता को बालीद्वीप के सम्राट धर्मोदयनवर्मा को सौंपकर यवसाम्राज्य के अंगभूत बालीद्वीप को दहेज के रूप में दिया।

यवद्वीप सम्राट धर्मवंश ने अपने गुरू कुतुरान को महामात्य पद के निर्वहन के लिए बालीद्वीप पर भेजा। वेदशास्त्रपुराणमर्मज्ञ इन्होंने बालीदेश की अपनी प्रतिभा एवं राजनीति से सम्यक प्रकार से रक्षा की।

उदयन व महेन्द्रदत्ता के चक्रवर्ती लक्षणों से युक्त कुमार एरलङ्ग उत्पन्न हुए। उनके अवतरण के साथ ही यवद्वीप साम्राज्य ने सम्पूर्ण द्वीप मण्डल पर नायकत्व को प्राप्त किया। यवद्वीप सम्राट ने सुमात्राद्वीप के श्रीविजयसाम्राज्य को भी आक्रमण करके अपनी अधीन कर लिया। सोलह वर्ष की अवस्था में ही कुमार एरलंग अपनी मौसी व धर्मवंश की पुत्री से विवाह करके बालसूर्य की तरह सुशोभित हुए। धर्मवंश के जामाता एवं उदयन के पुत्र होने के नाते वह बालीद्वीप के भावी प्रशासक हो गए। कालान्तर में धर्मवंश श्रीविजयसाम्राज्य एवं सुमात्रा सम्राट से पराजित एवं दिवंगत हुए।

उत्तरी यवद्वीप में अब शैलेन्द्रवंश स्थापित हो गये थे। 1010 ईस्वी में यवद्वीपीय विद्वानों, पण्डितों, सामन्तों एवं प्रजा मुखियाओं द्वारा यवद्वीप की रक्षा के लिए प्रार्थना करने पर एरलंग ने राज्य भार को स्वीकार कर लिया। अब वहाँ दो भागों में विभक्त साम्राज्य था– शैलेन्द्र साम्राज्य एवं मतराम साम्राज्य। अन्य द्वीपवासी होने के कारण शैलेन्द्र सदैव शंकित ही रहते थे। कालान्तर में एरलङ्ग की अधीनता सबने स्वीकार की। बाली नरेश उदयन महामात्य कुतरान के हाथ में प्रजापालन सौंपकर साम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता के साथ आनन्दपूर्वक रहते हुए राजसुख का उपभोग कर रहे थे। साम्राज्य के उत्थान–पतन से अप्रभावित होते हुए भी राजा एरलङ्ग के प्रति चिन्तायुक्त रहते थे।

महेन्द्रदत्ता ने एरलंग के बाद क्रमशः मरकत एवं आनकवुंसु को जन्म दिया। किसी समय प्रजा के योगक्षेम जानने हेतु भ्रमण कर रहे धर्मोदयन को प्रजा में सर्वत्र दैन्य एवं विकलांगता दिखाई देती है। पीड़ित होकर राजा सोचते हैं कि कुतुरान जैसे महामात्य के

होते हुए ऐसा कैसे हो सकता है? उसे प्रजा से ज्ञात होता है कि सर्वत्र तन्त्राभिचार हो रहा है। पूछने पर महामात्य इसका कारण महेन्द्रदत्ता को बताते हैं। धर्मोदयन गर्भवती महेन्द्रदत्ता को महल से निष्कासित कर देते हैं।

समयचक्र गतिमान था। महल से निष्कासित महेन्द्रदत्ता ने जंगल में ही विलक्षण सौन्दर्यसम्पन्न एक कन्या को जन्म दिया। रत्नमंगली उसका नाम रखा गया। 1010 में एरलंग के राज्याभिषेक होने पर रत्नमंगली भी दस वर्षीय अवस्था में थी। वन में महेन्द्रदत्ता पश्चात्तापग्रस्त है। उधर साम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता को निष्कासित करने के पश्चात धर्मोदयन ने आज्ञादेवी से विवाह कर लिया। उनका शासन कठोर होता चला गया।

एरलङ्ग अब यवद्वीप सम्राट था। साम्राज्ञी, पुत्री के भविष्य के लिए एरलङ्ग के पास जाकर पिता को नियंत्रित करने के लिए प्रेरित करती है, परन्तु एरलङ्ग के असमर्थतता व्यक्त करने पर क्रोधित हो जाती है तथा एरलङ्ग के विनाश के लिए तांत्रिकों के साहचर्य से रक्तपिपासु पिशाचिनी हो जाती है।

1012 ईस्वी में बालीद्वीप उदयन रहित हो गया। पिता की इच्छानुसार एरलङ्ग ने उदयन का अंतिम संस्कार करके उदयन का जलतुण्डनामक समाधिभवन बनवाया। उदयन के दिवंगत होने पर एरलङ्ग के सहोदर ने शासनसूत्र ग्रहण कर लिया।

राङ्गडा (विधवा) महेन्द्रदत्ता बालीद्वीप में आतंक का कारण बन गयी। एरलङ्ग ने उसके विनाश के लिए महातांत्रिक म्पूभराड (भरटक) की शरण ली। भरटक ने स्वंय को कमजोर पाकर छल से अपने पुत्र का विवाह महेन्द्रदत्ता की पुत्री से करके, छल से उसकी विद्या का रहस्य जानकर युद्ध में उसे पराजित कर मार दिया। कहते हैं कि उसने पश्चात्ताप के लिए पुनः जीवित भी कर दिया। जब साम्राज्ञी ने स्वयं को प्रजासंहार के लिए धिक्कारा, पवित्र मन से पश्चात्ताप किया, तब भराड ने धर्म का उपदेश कर, उसे पवित्र कर, रत्नमङ्गली को पुत्रवधु के रूप में घोषित कर, पुनः तन्त्रप्रयोग से उसे मारा।

यह घटना 1022 से 1049 ईस्वी के बीच में कहीं घटित हुई। इस प्रकार साम्राज्ञी का करूण अंत हुआ। पुत्र के द्वारा श्रोत्रविधि से उसका अंतिम संस्कार किया गया। कुछ वर्षो पश्चात समीप के कुतरीग्राम में महिषासुरमर्दिनी के विग्रह में यवबालीद्वीपीय परम्परानुसार देवालय में वह स्थापित की गई।

राङ्गडा आज भी बालीद्वीप में प्रेताधीश्वरी के रूप में ओझाओं के द्वारा शक्ति, कृपा, करूणादृष्टि आदि की प्राप्ति के लिए पूजी जाती है।

राङ्गडाचरिताश्रित जलोनरंग नृत्य कई किंवदन्तियों से युक्त है। राङ्गडा के दैवीय एवं मानवीय दो स्वरूप प्रसिद्ध है। देवीरूप में तमोगुणी, प्रलयंकरशंकरप्रिया, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी तथा मानवीरूप में तंत्रमंत्रशक्तियुक्त साम्राज्ञी महेन्द्रदत्ता के रूप में प्रसिद्ध है। इसीलिए कहीं दिव्यविग्रहवती तथा कहीं मर्त्यविग्रहवती के रूप में पूजी जाती है।

बालीवासियों के लिए महिषासुरमर्दिनी एवं राङ्गडा वस्तुत एक ही है।

इण्डोनेशिया सरकार ने उदयन विश्वविद्यालय की तरह महेन्द्रदत्ता विश्वविद्यालय भी स्थापित करके साम्राज्ञी के प्रति सम्मान प्रकट किया है, ऐसा कवि का मानना है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

कुसंगति एवं अत्याचार का मार्ग विनाश की ओर ले जाता है। अनुचित मार्ग को किसी भी तर्क से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। मातृत्व का मूलस्वरूप अंत में अक्षुण्ण ही रहता है।

सङ्कल्पः[42]

'सङ्कल्प' कहानी हैदरपुर के समीपवर्ती दोनई ग्राम की चर्मकारों की बस्ती में रहने वाले दो युवकों रामदीन एवं मोगी की कहानी है। गाँव में एक रामदीन का परिवार है, जिसमें उसके पिता भूधर, माता जसोदा एवं पत्नी लखनी है। रामदीन के पिता पण्डित पारसनाथ के हलवाह है तथा माता भी पण्डित जी के गृहकार्यो को करके यथोचित पारिश्रमिक प्राप्त करती है, परन्तु सत्तालोलुप शासकों के द्वारा खड़े किए गए सवर्ण—अवसवर्ण संघर्ष के कारण चर्मकार युवक अपने पारम्परिक कार्य से विमुख हो रहे हैं, सामाजिक बन्धनों को दृढ़ करने वाले सेवकसेव्य सम्बन्ध टूट रहे हैं, युवक गाँव छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गाँव के कई युवक असमराज्य के गौहाटी नगर में जाकर बस चुके हैं। यद्यपि रातदिन परिश्रम के बावजूद उन्हें यथोचित पारिश्रमिक नहीं मिल रहा है तथा उनकी मूलभूत आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो पा रही हैं, परन्तु गाँव लौटने पर मिथ्या प्रदर्शन करते हुए परमसुखी एवं ऐश्वर्यसम्पन्न होने का अभिनय करते हैं। अपने असवर्ण होने के कारण शोषित होने का भाव मन में रखकर पलायन करने वाले युवकों में रामदीन भी सम्मिलित हो जाता है। उसके माता—पिता पारसनाथ का सेवा कार्य छोड़ देते है तथा घास आदि काटने जैसे खेती के कार्य करने लगते हैं।

भूधर का पड़ौसी निहोर अभी भी अविचलित एवं अपरिवर्तित है। वह पण्डित नन्दकिशोर का हलवाह है तथा उसकी पत्नी पण्डित जी के गृहकार्य करती है। निहोर प्रकृति एवं सृष्टि की विविधता के सहज रूप को स्वीकार करते हुए अपनी स्थिति से सन्तुष्ट है। उसका तीन कन्याओं से कनिष्ठ, मोगी नामक पुत्र है, जो दसवीं कक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सका तथा पण्डित नन्दकिशोर के चिकित्सक पुत्र के सहायक का कार्य करता है।

एक दिन रामदीन मोगी से मिलता है और 'सवर्णों के द्वारा शुद्रों का समाज में सदैव शोषण हुआ है' तर्क देते हुए उसे असमराज्य में जाकर कार्य करने के लिए सहमत कर लेता है। मोगी अपने पिता निहोर एवं माता बुटनी को अपने असमराज्य गमन की सूचना देता है। पिता के उचित अनुचित के विवेक देने का उस पर कोई असर नहीं होता।

एक सप्ताह के बाद रामदीन के प्रस्थान का दिन उपस्थित होता है। रामदीन के प्रस्थान के अवसर पर उसकी पत्नी लखनी के रूदन एवं वेदना को देखकर मोगी को अपनी पत्नी ममता का ध्यान आता है और एक–एक करके ममता से जुड़ी हुई स्मृतियां उसके मस्तिष्कपटल पर चित्रपट की तरह विचरण करने लगती हैं। अकस्मात् उसके हृदय में यह बात आती है कि ममता जैसी गुणी पत्नी के साथ रहने के स्वर्गीय सुख को छोड़कर नरकयन्त्रणा समकक्ष गौहाटी गमन का यह लक्ष्य मैंने कैसे कर लिया? अपनी जन्मभूमि के गहन एवं सुन्दर इन्द्रजाल को उसने महसूस किया। घर छोड़कर गौहाटी न जाने के संकल्प ने अपने माता–पिता एवं पत्नी को विरह व्यथा से एवं स्वयं को मिथ्या पलायनरूपी मृगमरीचिका से होने वाले संघर्षों से बचा लिया। उसका यहीं सङ्कल्प तार्किक एवं उचित था।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

शहरी चकाचौंध एवं भौतिक भव्यता की मृगमरीचिका से मातृभूमि के गौरव, आत्मसंस्कृति, आत्मसंतुष्टि एवं आत्मसम्मान से परिपूर्ण अपने गाँवों की ओर लौटने का संकल्प ही शुभ संकल्प है।

सपत्नी[43]

चालीस वर्षीय बुधनी के विवाह को बीस वर्ष हो गए है। बीस वर्षीय वैवाहिक जीवन के बाद भी संतान प्राप्ति न होने से बुधनी निराश एवं व्याकुल है। बुधनी का पति सुखराम कर्णपुर नगर में वस्त्र निर्माण कर्मशाला में लिपिक के पद पर कार्यरत है। उत्तरप्रदेश के जौनपुर जनपद के लक्षेश्वर नामक ब्राह्मणबहुल गांव में पैदा हुआ सुखराम शिक्षित नहीं है,

परन्तु सुशिक्षित ब्राह्मण मित्रों के साहचर्य से सुखराम अक्षरज्ञान प्राप्त है। विनम्रता, वृद्धोपसेवा आदि गुणों से सभी का आशीर्वाद प्राप्त करते हुए सुखराम अन्त्यजकुल में उत्पन्न होते हुए भी प्रतिभाशाली, व्यवहार वरिष्ठ एवं गुणों में गरिष्ठ है।

दशहरा आदि के अवकाश में गांव आने पर वह द्वार से द्वार बड़े, छोटे व हमउम्र मित्रों के साथ आत्मीय एवं स्नेहिल आचरण से उत्सव सा वातावरण कर देता था। सुखराम की माता कबूतरी अपने पुत्र के प्रयासों से बदले हुए जीवन में सुखी एवं गौरवान्वित है, परन्तु पौत्र का मुख देखने के लिए आतुर है। इसके लिए वह कुछ भी कर सकती है।

निराशा की पराकाष्ठा पर पहुंची बुधनी भी अपनी जिद पर अडिग है। एक रात्रि को वह अपने पति से आग्रह करती है कि वह उसके लिए सपत्नी ले आए,

उसके पुत्र को जन्म दे सके। सुखराम आश्चर्यचकित है, वह पत्नी के बात से असहमत है। बुधनी के वचनों को सुनकर वह भावविह्वल होकर सोचता है कि जहां अन्य स्त्रियां सपत्नी के नाम से विद्रोह कर देती है वहां यह जानबूझकर सपत्नी के विष को पीना चाहती है। वह बुधनी को समझाता है, परन्तु बुधनी के निरन्तर अनुरोध के कारण सुखराम अपनी कार्यालय सहचरी चम्पा से विवाह कर लेता है। बुधनी चम्पा का हृदय से सत्कार करती है, परन्तु चम्पा की प्रकृति भिन्न हैं। वह बुधनी को अपने और सुखराम के बीच का काँटा समझती है। चम्पा सुखराम को कहती है कि क्यों न बुधनी को गाँव भेज दिया जाए। बुधनी सास की सेवा के बहाने गाँव आ जाती है। गाँव में भी तरह तरह की बातों से उसको आहत किया जाता है, परन्तु निर्विकार भाव से तटस्थ रहते हुए सास की सेवा करती रहती है।

सात मास उपरान्त सुखराम का पत्र आता है। वह बुधनी को गाँव जाकर भूल जाने का उलाहना देते हुए चम्पा की बीमारी व घर की अव्यवस्था के बारे में बताता है और उसे वापस घर संभालने को कहता है।

बुधनी की देखभाल से चम्पा स्वस्थ हो जाती है। दो माह बाद बुधनी के पेट में दर्द उठने पर उसे अस्पताल ले जाते हैं। वहाँ जाकर पता लगता है कि बुधनी गर्भवती है और उसका प्रसव का समय आ गया है। पुत्र का जन्म होता है, परन्तु अधिक रक्तप्रवाह के कारण बुधनी की स्थिति खराब है। कक्ष के भीतर जाने पर सुखराम व चम्पा को देखकर एक बार मुस्कुराकर वह चिरनिद्रा में लीन हो जाती है।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

सपत्नी को लाना, पुत्र मोह की तृष्णा का समाधान नहीं है। विवाह में समर्पण, स्नेह एवं आपसी समझ से जीवन सार्थक होता है। संतति ही विवाह की सार्थकता नहीं है।

वाग्दत्ता[44]

'वाग्दत्ता' कहानी की शुरूआत उमाचरण शुक्ल व अमरीका से शोध करने के लिए आई जेनी की वार्ता से होती है। जेनी भारतीय दर्शन को भारतीय परिप्रेक्ष्य में जानना व समझना चाहती है। इसके लिए उसे उमाचरण शुक्ल सर्वाधिक योग्य, आत्मीय एवं मान्य प्रतीत होते हैं। 'वेदान्तदर्शन' के पञ्चीकरण के विषय में जेनी जिज्ञासा करती है। पण्डित उमाचरण शुक्ल उसकी भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के प्रति निष्ठा से प्रभावित है।

पण्डित उमाचरण शुक्ल भारतीय धर्म एवं दर्शन में लब्धप्रतिष्ठ आचार्य हैं। पुत्र गोविन्द अमेरिका में अध्ययनरत एवं पुत्री शेमुषी ससुराल में है। गोविन्द सुसंस्कारित, चरित्रवान युवा है, जो विदेश में भी भारतीय धर्म, दर्शन एवं जीवन पद्धति के अनुसार रहता है। इन पर केन्द्रित गोष्ठी आदि में भाग लेता है। इसी प्रकार की एक गोष्ठी में वह जेनी से मिलता है। जेनी अपने पिता फ्रेडरिक लाङ्गमैन के अनुकूल ही भारतीयता से ओत–प्रोत थी। शंकरवेदान्त पर शोधकार्य कर रही थी। गोविन्द एवं जेनी का संगोष्ठी का यह सामान्य परिचय प्रगाढ़ प्रेम से परिणत हो गया।

पिता को अनुकूल करने की योजना के तहत गोविन्द का मित्र मनोहर जेनी को लेकर भारत आया है। मनोहर जेनी का परिचय देता है। भारतीय धर्म व दर्शन के ज्ञानी फ्रेडरिक लाङ्गमैन महोदय की वेदान्त दर्शन का अध्ययन करने वाली, ये जेनी नामक पुत्री है। यह आपसे धर्म व दर्शन का ज्ञान चाहती है।

'जयिनी' नाम से सम्बोधित करते हुए उमाचरण शुक्ल उससे भारत के विषय में जानना चाहते हैं। जेनी भारत के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की व्याख्या करती है। उसकी भारतीयता के प्रति आदर की भावना से शुक्ल महोदय प्रभावित होकर कहते हैं कि तुम जैसी वधू को पाकर कोई भी धन्य हो जाएगा।

एक सप्ताह में ही जेनी अपने गुणों से शुक्ल दम्पती के मन में पुत्रवधु के रूप में स्थान बना लेती है। वह उसे पुत्रवधु के रूप में अपनाना चाहते है, परन्तु लोकमर्यादा के कारण संकोच में हैं।

शुक्ल दम्पती विचार करते हैं कि समाज का संशोधन व परिष्करण हमारा ही दायित्व है। समाज तो नदी के प्रवाह की तरह है, जो वर्षा में मलीन एवं शीत ऋतु में निर्मल हो जाता है।

गोविन्द की माँ के द्वारा विवाह की चर्चा करने पर शुक्ल महोदय कहते हैं कि अनेक रिश्ते आ रहे हैं, परन्तु निर्णय तो गोविन्द ही करेगा। गोविन्द कहता है कि मैंने तो कन्या अमेरिका में ही ढूंढ ली है। मनोहर कहता है कि उसे आपने छः माह पूर्व आशीर्वाद भी दे दिया है। वह आपकी वाग्दत्ता वधु हो गई है। शुक्ल महोदय समझ जाते है कि जेनी की बात हो रही है। मनोहर यह सत्य उद्घाटित करता है कि वह जेनी एवं उसके माता–पिता को लेकर ही आया है। जेनी के पिता भारतीय पद्धति से कन्यादान करना चाहते हैं। उमाचरण शुक्ल मन में कालिदास की पंक्ति याद करते है–

'आशंकसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।'

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

देश, जाति, वर्ण तथा संस्कृति वैचारिक श्रेष्ठता की आधार नहीं होती। श्रेष्ठ विचार व संस्कार, जो विवाह के आधार हैं, किसी भी देश में हो सकते हैं।

नर्तकी[45]

'नर्तकी' कथाकार की संस्मरणात्मक स्वरूप में लिखी गई, एक नर्तकी के बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूप की मार्मिक व्याख्या करने वाली कहानी है, जो कथाकार की अद्भुत अवलोकन, विश्लेषण क्षमता एवं संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करती है।

कथाकार का परिचय नर्तकी से अपनी बुआ के पुत्र प्रकाशचन्द की शादी में होता है। वह इक्कीस वर्षीया मुस्लिम नर्तकी कमरजहाँ थी, जो अद्भुत सुन्दरी एवं उत्तम नृत्यांगना थी।

कथाकार ने उस बालरम्भा को देखा। नर्तकी का नृत्य वस्तुतः दृष्टि को आनन्दित कर देने वाला था। विवाह के अवसर पर आगत अतिथियों के निवेदन पर कथाकार ने भी अपनी मधुर आवाज में छन्द, सवैया एवं सुन्दर गीतों को प्रस्तुत किया।

कमरजहाँ व उसकी माँ कथाकार से आकर मिलती हैं। वह उनके मधुर कण्ठ की प्रशंसा करती हैं। विदाई के समय कथाकार कमरजहाँ व उसकी माँ से मिलने जाते हैं। वह 'चाँदा' हाट (हट्ट) में आने का वचन लेती है।

कुछ माह पश्चात प्रयाग से गांव आया हुआ जानकर कथाकार के बहनोई स्मरण करवाते हैं कि कमरजहाँ की माँ हुस्नाबाई उन्हें याद करती है। बहनोई के साथ लेखक वहां जाते हैं।

स्नानगृह जाने के निमित्त मिले एकान्त में कमरजहाँ अपने प्रेम को अभिव्यक्त करती है, परन्तु लेखक संशय में है कि दो धर्मो के बीच प्रणय को कमरजहाँ की माँ स्वीकार नहीं करेगी। यदि वो ऐसा करे तो लेखक पूरे समाज का मुकाबला कर सकता है।

हुस्नाबाई कथाकार से एकान्त में कहती है कि वस्तुतः कमरजहाँ मुस्लिम नहीं बल्कि ब्राह्मण कन्या है। उससे जुड़ी कहानी सुनाते हुए वह कहती है कि जब मुम्बई अपनी बड़ी बहन को देखने गई थी तो वहां जँघई स्टेशन पर एक युवती रोती हुई मिली, जो प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार की कुलवधु थी। दुबारा ससुराल आने से पहले ही विधवा हो गई, परन्तु वह ससुराल आ गई। शैशव काल से ही काम कथाओं से आन्दोलित करने वाले अग्रजा के पुत्र की वासना उसके विधवा होने पर और अधिक बढ़ गई। उसके भ्रम में आकर स्वर्णाभूषण आदि लेकर उसके साथ जँघई स्टेशन आ गई। वह आभूषणपिटक लेकर उसे वहां बैठाकर गया तो आया ही नहीं। वह हुस्नाबाई से आग्रह करती है कि वह कहीं नहीं जाना चाहती। उन्हीं के पास रहना चाहती है। अन्यथा आत्महत्या कर लेगी। हुस्नाबाई उसे बम्बई ले आती है।

गर्भवती उस युवती ने प्रसव के समय अत्यधिक रक्तस्त्राव से एक बालिका को जन्म देकर मृत्यु को प्राप्त कर लिया। प्राण छोड़ते समय उसने मुझसे निवेदन किया कि 'मेरी इस कन्या को किसी भद्र पुरुष को देना, इसे गणिका मत बनाना।'

हुस्नाबाई कहती है कि मैंने उसके वचन की रक्षा की, परन्तु अब कामलोलुप नरभेड़ियों की कुदृष्टि को देख देख कर भय लगता है। वह कथाकार से कहती है कि 'तुम सत्कुल में उत्पन्न हुए हो। तुम्हारे बहुत सारे सहचर अविवाहित है। उनमें से कोई यदि कमरजहाँ का वरण कर ले तो कृतज्ञ रहूंगी।'

लेखक उस गणिका की संवेदनशीलता एवं वात्सल्य पर श्रद्धावनत है। वह उसे प्रणाम करते हैं तथा कहते हैं कि वह स्वयं कमरजहाँ से पाणिग्रहण करना चाहते हैं। यह सुनकर हुस्नाबाई गद्गद् हो उठती है। वह कहती है कि मेरी पुत्री भाग्यशालिनी है जिसे

तुम जैसा वरण करने वाला मिला। कमरजहाँ भावविह्वल है। एक ओर अपने प्रेम को पाकर प्रसन्न है तो दूसरी ओर माँ हुस्नाबाई को छोड़ते हुए उदास है।

नर्तकी कहानी जीवन की विकट परिस्थितियों में अंतिम विकल्प के रूप में नृत्य को आजीविका के रूप में चुनने वाली नर्तकी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को तो उजागर करती ही है, परन्तु एक नर्तकी के हृदय की संवेदनशीलता, ममत्व, स्नेह, दया, करूणा एवं स्त्रीत्व की गरिमा को भी गहराई के साथ वर्णन करती है। सौन्दर्य का व्यापार करने वाली हुस्नाबाई का ममत्व दर्शनीय है जिसके कारण वह उसे संसार की लोलुप दृष्टि से सुरक्षित रखती है और योग्य वर से उसका विवाह सुनिश्चित कर अपना दायित्व निर्वाह करती है। समाज की परित्यक्ता, छलिता एवं शोषिता स्त्रियों को हुस्नाबाई जैसी माँ एवं कथाकार जैसा वर मिल जाए तो कितने सुन्दर समाज का निर्माण होगा, कविवर की यह कहानी संकेतित करती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

व्यवसाय विशेष में होने से किसी के सदाचारी व दुराचारी होने का पता नहीं चलता। व्यवसाय किसी की विवशता हो सकता है, परन्तु चरित्र एवं नैतिक-मूल्य मानव के अन्तर्निहित मूल्य है।

न्यायमहं करिष्ये[46]

'न्यायमहं करिष्ये' कहानी भाई–भाभी पर आश्रित असहाय ननद के प्रति भाभी के दृष्टिकोण व उसके व्यवहार की मनोवैज्ञानिक व्याख्या है। मनोविज्ञान के सूक्ष्म वेत्ता कविवर ननद–भाभी के सम्बन्धों की जटिलता एवं उलझनों की मार्मिक स्तर पर जाकर व्याख्या करते हैं।

यह कहानी भवानी की मनोव्यथा है जिसके माता–पिता उसे असहाय छोड़कर परलोक सिधार चुके हैं। भाभी का दुर्व्यवहार, सहसा ही माता की मृत्यु के पश्चात बढ़ चुका है। अपनी पीड़ा को साझा करने के लिए भतीजी मुदिता के अतिरिक्त कोई सखी सहेलियां नहीं है, परन्तु भाभी को भवानी व मुदिता की मित्रता सह्य नहीं है। स्नातक के पश्चात व्ययभार के कारण शिक्षा भी अवरूद्ध हो गई।

किसी सम्बन्धी परिवार का सदस्य मनोरथ, जो बाल्यकाल से ही भवानी के परिवार में आता रहा है, भवानी से विवाह करना चाहता है। भाभी अकस्मात उससे अपनी पुत्री का विवाह तय कर देती है। मुदिता अपनी बुआ से पहले स्वयं के विवाह का विरोध करती है,

परन्तु माँ कोषागार में अधिकारी पद पर आसीन मनोरथ से अपनी पुत्री का विवाह करने की जिद पर अडिग है।

मुदिता अपनी माँ को समझाती है कि भवानी व मनोरथ एक दूसरे के प्रति अनुरागबद्ध है, परन्तु मुदिता की माँ अपने स्वार्थयुक्त दृष्टिकोण को पुत्रीहित चिन्तन की संज्ञा देते हुए कठोरता से पुत्री का मनोरथ के साथ विवाह करवाना चाहती है।

माँ के द्वारा उपेक्षा किये जाने पर पुत्री 'न्यायमहं करिष्ये' कहकर अपने कक्ष में चली जाती है। रात्रि को अपनी माँ को पत्र लिखती है कि 'माँ! तुम्हारा व्यवहार कैकयी के समान हो गया है। तुम्हारे पति की बहिन, तुम्हारी ननद, मेरी बुआ वह भी किसी की प्रेम से पाली गई पुत्री है। मनोरथ की वाग्दत्ता है। अपने पिता के निधन के बाद उसे तुमने भाई के स्नेह, शिक्षा, सुख, सौभाग्य सबसे वंचित कर दिया। घर को तुमने युद्ध का मैदान बना दिया। यह किस प्रकार की शिक्षा है, जो तुम मुझे दे रही हो। मुझे लगता है कि मैं ही विपत्ति का मूल हूँ। अतः न्याय मैं ही करूंगी। अपनी माँ के व्यवहार का कैकयी से साम्य करते हुए उसके विनाश को संकेतित करते हुए कहती है कि कैकयी ने भरत के लिए सुख चाहा, परन्तु भरत ने नन्दिग्राम को चुना। मैं भी नन्दिग्राम को चुनना चाहती हूँ। तुम्हारी अयोध्या में मेरा निर्वाह नहीं हो सकता।'

न्याय की घोषणा करके उसी रात्रि विष पीकर मुदिता शान्त हो गई। साकेत का वैभव त्यागकर वह कहीं पार्थिव नन्दिग्राम में अब विश्राम कर रही है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

संकुचित दृष्टिकोण अन्याय का जनक होता है। निष्पक्ष एवं उदार चिन्तन न्याय का आधार होता है। किसी की असहाय अवस्था का लाभ उठाना मानवोचित व्यवहार नहीं है।

ध्रुवस्वामिनी[47]

ऐतिहासिक पात्र समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ निर्वीर्य पुत्र की वधू 'ध्रुवस्वामिनी' अपने पति के द्वारा शकसेनापति को सौंप दिए जाने पर देवर के द्वारा रक्षित होती है तथा देवर द्वारा पति को भी मार दिए जाने पर देवर के प्रति ही समर्पित हो जाती है। इस ऐतिहासिक पात्र के समान चरित्र वाली रेवती को केन्द्र में रखकर यह कहानी लिखी गई है, परन्तु अन्त में कविवर ने नायिका को सन्मार्ग का चयन करवाकर पतित होने से बचा लिया है।

पण्डित श्रीधर के ज्येष्ठ पुत्र सुबोध की पत्नी तथा उसी घर के मझले पुत्र प्रबोध के बीच अनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके हैं। सुबोध जन्म से ही जड़ता व मन्दता से ग्रस्त एवं शारीरिक दृष्टि से कमजोर है। पत्नी के बहुत प्रयासों के बावजूद सुबोध पत्नी की शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक आंकाक्षाओं को पूरा करने में सक्षम नहीं हो सका। असंतुष्ट पत्नी सक्षम एवं समस्त कार्यो में सहायक बन रहे देवर के प्रति आसक्त है और देवर भी भाभी के प्रति आसक्त है। दोनों एक दूसरे के प्रति शारीरिक समर्पण कर देते हैं।

कुछ समय पश्चात् सुबोध के पिता श्रीधर सुझाव रखते हैं कि सुबोध को शहर अपने बड़े भाई के पास सपरिवार भेज दिया जाए। बच्चों की शिक्षा भी वहीं हो जाएगी। अपनी दशा से दुखी सुबोध शीघ्र ही जाने को तैयार हो जाता है। रेवती बच्चों की शिक्षा के बहाने रूक जाती है।

कुछ समय पश्चात् सुबोध लौटकर आता है। पुत्री सुनन्दा भी सम्पूर्ण परिस्थिति को ध्यान में रखकर पिता के समक्ष प्रस्ताव रखती है कि वो पिता के साथ शहर जाना चाहती है और माँ के साथ जाएगी। रेवती फिर रूकना चाहती है, परन्तु पुत्री उसे स्पष्ट शब्दों में बता देती है कि वो उसके नहीं जाने के कारण को समझती है। वह पुत्री को चांटा मार देती है तब सुबोध की माँ फटकारते हुए कहती है की उसके और प्रबोध के सम्बन्ध के बारे में सब जानते है और सब जानकर भी चुप है।

रेवती अपना रहस्य खुल जाने पर आत्मग्लानि एवं लज्जायुक्त है। रेवती की सास समझाती है कि अभी भी समय है। वह कहती है कि ध्रुवस्वामिनी बनकर विनाशकारी बनने से बचा जा सकता है।

पूरी रात रेवती सुबोध के साथ जाने की तैयारी करती है तथा प्रातःकाल सुनन्दा को जगाकर कहती है कि 'पुत्री तैयार हो जाओ रायगढ़ जाना है।' माँ की इस बात को सुनकर सुनन्दा के मनोमस्तिष्क में हर्ष की लहर दौड़ जाती है।

इस प्रकार कथाकार ने अपनी ध्रुवस्वामिनी को सही रास्ता दिखाकर मर्यादाभङ्ग होने से बचा लिया एवं कहानी को सकारात्मक मोड़ पर लाकर छोड़ा।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

स्वार्थ पर आधारित अनैतिक सम्बन्ध यदि आत्मबोध से सही दिशा में प्रवृत्त होकर नैतिकता की ओर मुड़ जाए तो पारिवारिक कल्याण सम्पन्न हो सकता है। शारीरिक तृप्ति पाशविक है। मानवीय सम्बन्ध संवेदनाओं पर टिके होते हैं।

वन्ध्या[48]

पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में वंशवृद्धि करने वाले, मुक्तिदात्ता, उत्तराधिकारी के रूप में परिकल्पित पुत्र का होना लगभग अपरिहार्य ही है। चाहे पुत्र अपना हो या दत्तक। सन्तान को जन्म न देने वाली स्त्री के प्रति परिवार व समाज का दृष्टिकोण नारी संवेदना को आहत करता है।

कहानी की नायिका रामदत्त की पत्नी भी सन्तानहीनता के कारण एवं परिवार के दृष्टिकोण के कारण विष पी लेती है। रामदत्त अपनी पत्नी के मनोभवों को समझता है, उसे समझाने की कोशिश भी करता है। रामदत्त अपनी पत्नी से आत्मीय स्नेह रखता है। केवल सन्तानोत्पत्ति ही विवाह का एक मात्र लक्ष्य नहीं है। सन्तति को जन्म देना स्त्री का ही दायित्व नहीं है। वह पीड़ित है कि सन्तानहीनता से पुरुष न केवल अप्रभावित एवं सुरक्षित है बल्कि दूसरे विवाह के लिए भी स्वतन्त्र है। उसे कोई वन्ध्य घोषित नहीं करता।

सौभाग्यवश समय पर उपचार से रामदत्त की पत्नी स्वस्थ हो जाती है। रामदत्त ह्रदय से उसकी सेवा करता है। पत्नी द्वारा विष पीकर जीवनलीला समाप्त कर लेने के निर्णय पर आक्रोश व्यक्त करता है। वह अपनी भाभियों पर क्रोधित होता है, परन्तु उसकी पत्नी उसे रोक लेती है। वह सारा दोष अपनी सन्तानहीनता को देती है।

रामदत्त अपने चार भाईयों में कनिष्ठ है। कृषि कार्य करने वाले अग्रज ज्ञानदत्त के तीन पुत्रियां हैं। शिक्षक का कार्य करने वाले द्वितीय कृष्णदत्त के तीन पुत्र है। तृतीय वकील का कार्य करने वाले श्यामदत्त के एक पुत्र एवं एक पुत्री है। रामदत्त सन्तानहीन है।

रामदत्त के विवाह को सात वर्ष हो गये है। इस अवधि में संतान के लिए किए समस्त प्रयत्नों की व्यर्थता के कारण जेठानियों ने रामदत्त की पत्नी को वन्ध्या घोषित कर दिया है तथा रामदत्त के भविष्य को लेकर चिन्तित है। परिवार में एक मात्र चर्चा है कि सन्तान को लेकर रामदत्त का निर्णय क्या होगा? क्या वो भाई के पुत्र को गोद लेगा? या किसी और को गोद लेगा? अपनी सम्पत्ति को जन कल्याण में लगा देगा? या श्यामदत्त की

गर्भवती पत्नी के होने वाले पुत्र को गोद लेगा? गृह सेविका कलावती की आत्मीयता एवं सहानुभूति रामदत्त की पत्नी के साथ है। वह सबको कहती है कि भगवान के घर देर है अंधेर नहीं, निश्चित ही भविष्य में सब अच्छा होगा।

कुछ समय बाद सरकार की तरफ से 'चकबन्दी' का कार्यक्रम चलता है जिसमें सभी की भूसम्पत्तियों का मूल्यांकन एवं अधिकार का आदेश जारी किया जाना लक्ष्य था। परिवार में सभी के मन में यह चल रहा था कि रामदत्त अपनी भूमि का उत्तराधिकारी किसे घोषित करेगा? सभी भाभियां रामदत्त की चापलूसी कर रही थी। भाईयों की भी मौन स्वीकृति थी। रामदत्त मन ही मन समझ रहा था तथा आहत भी था कि ये मेरे सन्तान न होने से दुखी नहीं बल्कि अपने स्वार्थ को लेकर आशान्वित है।

उस समय तक ईश्वर की कृपा से रामदत्त की पत्नी गर्भवती हो चुकी थी, परन्तु रामदत्त व उसकी पत्नी परिवार को सूचित नहीं करते।

चकबन्दी के लिए सरकारी कर्मचारियों के समक्ष ही रामदत्त रहस्योदघाटन करता है कि मेरी पत्नी गर्भवती है तथा मैं सन्तानहीन नहीं हूँ। भाभियों की सभी अपेक्षाओं पर पानी फिर जाता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

सन्तानहीनता अपमान अथवा तिरस्कार का आधार नहीं हो सकती। यह एक स्वाभाविक एवं दैवीय प्रक्रिया है, जिस पर मनुष्य का कोई वश नहीं।

न्यास-रक्षा[50]

'न्यास–रक्षा' एक सौतेली माँ द्वारा अपनी स्वर्गीय सपत्नी की सन्तान रूपी न्यास की रक्षा के लिए किए गए संघर्ष एवं त्याग को प्रस्तुत करने वाली, स्त्री के उदारहृदया स्वरूप को प्रकट करने वाली कहानी है।

उत्तरप्रदेश के पूर्वांचल में सुल्तानपुर नामक जनपद में राजमार्ग के निकट ही मलङ्गपुर नाम का ग्राम था। गांव में कुछ शासकीय कार्यो में उच्चपदस्थ सवर्ण तथा कुछ गोपालकों एवं कुम्भकारों के घर थे। वे सभी साम्प्रदायिक सद्भाव से रहते थे।

रविचन्द्र भी गांव में पैदा हुआ, पला, बड़ा हुआ। उसके पिता प्रधानाध्यापक थे तथा प्राध्यापक पुत्र रविचन्द्र पर गौरवान्वित थे। पति के मरने पर रविचन्द्र की माँ उसे देखकर ही जीवित थी, परन्तु रविचन्द्र की पत्नी प्रसव के दौरान मृत्यु को प्राप्त हो गई। रविचन्द्र व

उसकी माँ दोनो दुःखी है। माँ पुत्र से पुनः विवाह करने के लिए कहती है, परन्तु रविचन्द्र अपने पुत्र शरच्चन्द्र के लिए चिन्तित है कि दूसरी माँ उसके पुत्र का पालन पोषण सम्यक प्रकार से करेगी अथवा नहीं। रविचन्द्र के मान जाने पर नवागता वधु सुनन्दा सपत्नी के पुत्र से पुत्रवती हो गई और उसने अपने पुत्र की तरह हृदय से उसका ध्यान रखा। उसकी परवरिश के लिए पांच वर्ष तक स्वयं के पुत्र को जन्म नहीं दिया। पांच वर्ष पश्चात एक पुत्र, उसके दो वर्ष पश्चात एक पुत्री को जन्म दिया।

जब शरच्चन्द्र पच्चीस वर्ष, विनयचन्द्र बीस वर्ष एवं कन्या शची अठारह वर्ष के थे। तब रविचन्द्र सेवानिवृत्त हो गये। शरच्चन्द्र उसी विद्यालय में प्राध्यापक हो गये। विनयचन्द्र स्नातक कक्षा में पढ़ रहा था तथा शची स्नातक में प्रविष्ट हो चुकी थी कि अकस्मात रविचन्द्र भी सुनन्दा को अकेला छोड़कर चला गया।

विनयचन्द्र कुसंगति में पड़ गया है। उसके मित्र बहिन शची को भी परेशान करते हैं। उनमें से एक भुवनचन्द्र का पुत्र उसे विवाह का प्रस्ताव भी दे चुका हैं जिस पर विनयचन्द्र भी सहमत है।

शरच्चन्द्र अपनी बहिन शची का विवाह उससे नहीं करना चाहता।बड़े भाई के मना करने पर विनयचन्द्र अपने मित्रों के साथ बहिन का अपहरण कर, उसका विवाह भुवनचन्द्र के पुत्र से करवाना चाहता है। कालान्तर में अपहरण के लिए आए भुवनचन्द्र की गोली से बचाने के लिए माँ सुनन्दा बीच मे आकर शरच्चन्द्र के प्राणों की रक्षा करती है।

वह ज्येष्ठ पुत्र शरच्चन्द्र को यह रहस्य उद्घाटित करती है कि वह उसके गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ। उसकी माँ एक वर्ष का छोड़कर दिवंगत हो गई थी। विवाह होने पर तुम्हारे पिता ने न्यास के रूप में तुम्हें मेरे लिए समर्पित करते हुए तुम्हारी रक्षा का दायित्व दिया था। न्यास स्वरूप तुम्हारी मैंने प्राणपण से रक्षा की। अब तुम न्यासस्वरूपा बहिन शची की रक्षा करना। यह कहकर वह शान्त हो जाती है। वस्तुतः न्यासरक्षा रूपी उसका जीवन लक्ष्य पूर्ण हो जाता है।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

धरोहर की रक्षा के लिए प्राणप्रण से निष्ठावान होना मानवीय धर्म है। संकल्प की रक्षा के लिए दृढ़प्रतिज्ञ रहना श्रेष्ठता का परिचायक है। सपत्नी की संतान के प्रति उदारता वरेण्य है।

मरून्यग्रोधः[51]

'मरून्यग्रोधः' दयालु एवं श्यामा की कहानी है। कहानी का नायक दयालु समाज से उपेक्षित होता है, तिरस्कृत होता है, परन्तु श्यामा के लिए रेगिस्तान की तपती धूप में शीतल छाँव बन जाता है।

संपूर्ण गाँव को कालकवलित कर लेने वाले प्लेग रोग में सम्पन्न परिवार वाले दयालु के परिवार में केवल दयालु ही शेष रहा। स्वभाव से ही साहसी, परोपकारी एवं स्वाभिमानी दयालु पूरे गांव का मददगार था। अल्पशिक्षित परन्तु मानवीय गुणों से भरपूर था दयालु।

उसी गांव में सदानन्द का परिवार भी था। प्लेग में संतानहीन श्यामा घर में अकेली रह गई। श्यामल, सलोनी श्यामा समाजकण्टकों से बचने के लिए पण्डितगृह नाम से प्रसिद्ध देवकीनन्दन के घर में आकर रहने लगी। श्यामा देवकीनन्दन के मित्र वैकुण्ठशुक्ल की पुत्री थी। श्यामा व पड़ौसियों ने उसकी पूरी भूमि हड़प ली, जिसका न्यायालय में मुकदमा पन्द्रह वर्षों से चल रहा था। देवकीनन्दन का भतीजा महेश्वर यह मुकदमा लड़ रहा है। नगर का मुख्य चिकित्सक श्यामा को अवयस्क होने का प्रमाण पत्र देने के लिए श्यामा का शारीरिक शोषण करता है। श्यामा इस आधार पर मुकदमा जीत जाती है, परन्तु इस बात की उसे कोई खुशी नहीं है। यह जानते हुए भी कि उसकी शारीरिक प्रताड़ना में महेश्वर की स्वीकृति थी, जाग्रत काम भावना वाली श्यामा महेश्वर के लिए भी अपना शरीर समर्पित कर देती है। व्यवहार कौशल से सबकी सहानुभूति का पात्र भी बनी रहकर देवकीनन्दन के घर में स्थाई रूप से रह जाती है।

इसी बीच दयालु फिर से श्वास रोग से पीड़ित हो जाता है। श्यामा दयालु की सेवा के लिए दयालु के घर आ जाती है। दयालु हृदय से उसे चाहता है, परन्तु संकोचवश इसको प्रकट नहीं कर पा रहा है। अविवेक के प्रवाह में श्यामा एवं दयालु एक हो जाते हैं। दयालु के आत्मग्लानि युक्त होने पर श्यामा कहती है कि वह भी चाहती थी कि वह दयालु के प्रति समर्पित हो जाए क्योंकि वह महेश्वर के सम्बन्ध से गर्भवती है तथा वह इस बालक को जन्म देना चाहती है। श्यामा के अतीत को जानते हुए भी दयालु श्यामा को आश्रय देता है। दयालु जानता है कि श्यामा को अपनाने पर वह समाज की दृष्टि में अपराधी हो जाएगा

रेगिस्तान के बरगद (मरून्यग्रोधः) को ही राजमहल मानते हुए उसी मधुयामिनी में श्यामा अपने जीवन के अभिलषित को प्राप्त कर लेती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

रेगिस्तान का बरगद समाज से अलग-थलग, जो भी उसकी शरण में आता है, उसे छाया, विश्राम, संरक्षण एवं जीवन प्रदान करता है। इस समाज में भी कुछ लोग समाज के विरुद्ध जाकर आश्रयहीन लोगों को शरण देते हैं। ऐसे विरले लोग आदरणीय है।

पुनर्नवा[51]

कृष्णा पाँच भाईयों की इकलौती बहिन थी। ज्येष्ठ भ्राता कृषि कार्य करने वाले, द्वितीय स्थल सेना में, तृतीय वायुसेना में, चतुर्थ स्नातकोत्तर में अध्ययनरत एवं पंचम अनुज बाहरवीं कक्षा में अध्ययनरत था। यह मध्यमवर्गीय क्षत्रिय परिवार धर्माचरण व कुल परम्परा के कारण सम्पूर्ण क्षेत्र में सम्मानीय था।

ऐसे प्रसिद्ध परिवार में जन्मी कृष्णा अपनी दादी, माँ, भाभियों द्वारा संस्कारित है, बारहवीं तक पढ़ी है। पहले चूंकि विवाह के साथ ही वधू ससुराल नहीं जाती थी। पहले सिर्फ विवाह होता था। फिर कुछ समय पश्चात गमन द्विरागमन आदि। इसी परम्परा के चलते कृष्णा के विवाह के एक वर्ष पश्चात कृष्णा को भेजने का संकल्प भवानी सिंह ने किया, परन्तु दुर्भाग्यवश कृष्णा का पति सड़क दुर्घटना में दिवंगत हो जाता है। कृष्णा का जीवन भावशून्य हो जाता है। उसके पास तो अपने पति की स्मृतियां भी नहीं हैं। कोई सखी सहेली नहीं है। केवल समवयस्क चतुर्थ भाई शैलेन्द्र है।

समाज के आदर्शभूत, उच्चकुलीन परिवार से होने के कारण उसका पुनर्विवाह अविचारणीय है, परन्तु शैलेन्द्र को अपनी बहिन की यह स्थिति असह्य थी। वह बहिन को खुश रखने का प्रयास करता था। शैलेन्द्र अपने मित्र विनोद सिंह के साथ कृष्णा के विषय में चर्चा करता है।

शैलेन्द्र एवं विनोद न केवल नवीन दृष्टिकोण बल्कि प्राचीन मूल्यों को भी धारण करते हैं। द्विवर (देवर) शब्द की यास्ककृत व्याख्या 'द्वितीयोवरः' से स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में पति के भाई के साथ विधवा भाभी का विवाह होता था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने विभीषण के साथ मन्दोदरी एवं सुग्रीव के साथ तारा के विवाह का समर्थन किया था। विनोद कहता है कि 'अज्ञान एवं रूढ़ि के कारण यह परम्परा विस्मृत कर दी गई है। परम्पराएं धर्म का पर्याय हो गई है अन्यथा हमारे ऋषियों व स्मृतिकारों नें न केवल

विधवाओं, अपितु किसी भी कारण पति रहित हुई युवतियों के पुनर्विवाह का समर्थन किया हैं।

वे दोनों अपनी अपनी विधवा बहिनों का पुनर्विवाह करवाकर उनका कल्याण करना चाहते हैं।

वायुसेना में अधिकारी सोमेन्द्र की पत्नी दो बालकों को छोड़कर स्तनकैंसर के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गई। इसी बीच विनोद के बड़े भाई भी कम्प्यूटर शिक्षा पूर्ण करके अमरीका से लौटे। अनुरोध करने पर दीक्षागुरू महेश्वरानन्द भी आ गए।

किसी दिन विनोद के साथ महेश्वरानन्द शैलेन्द्र के घर आते है। शैलेन्द्र का परिवार उनका सत्कार करता है। पितामह कृष्णा एवं सोमेन्द्र की पीड़ा से व्यथित होते हैं। महेश्वरानन्द कहते हैं कि असहाय एवं विवश होकर निराशा के गर्त में जाना व्यर्थ है। वे कहते हैं कि 'कृष्णा का विवाह आप विनोद के अग्रज प्रमोद सिंह से कर दें तथा सोमेन्द्र का विवाह विनोद के पड़ौस में रहने वाली बाल विधवा सैनिक पत्नी से करवा दें।'

वे कहते हैं कि अभ्यस्त मार्ग पर तो साधारण जन चलते हैं। श्रेष्ठजन तो स्वयं अपना मार्ग बनाते हैं, जिस पर अन्य लोग चलते हैं। शास्त्रदत्त प्रमाणों एवं तर्को से महेश्वरानन्द यह सिद्ध कर देते हैं कि अक्षतयोनि बाला कन्या ही होती है तथा बलात् उपभुक्त अथवा विधवा स्त्री भी रजोदर्शन से शुद्ध हो जाती है। अतः दोनों ही स्थिति में विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह मान्य है।

पितामह महेश्वरानन्द के तर्कों से सहमत होते हुए उनसे कृष्णा एवं सोमेन्द्र के विवाह तक वहीं रूकने के लिए कहते हैं। इस प्रकार कहानी विधवा विवाह रूपी सोपान पर जाकर समाज को नवीन दृष्टि प्रदान करती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

बलात्कार-पीड़ित अथवा विधवा स्त्री को अपना जीवन पुनः नए सिरे से शुरू करना चाहिए। इससे जुड़े पवित्रता/अपवित्रता के भ्रामक मिथकों को तोड़ना चाहिए। मनुष्य की पवित्रता एक मानसिक अवस्था है, शारीरिक नहीं।

अनाख्याता-बाणभट्टाऽत्मकथा[52]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की बाणभट्ट की अनकही आत्मकथा की याद दिलाने वाली 'अनाख्याता–बाणभट्टाऽत्मकथा' कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के स्वप्नदर्शनानुभव के रूप में लिखी गई है।

कान्यकुब्जेश्वर को छोड़कर आने के बाद बाणभट्ट की प्रीतिकूट में व्यतीत की जा रही जीवनशैली एवं उनकी वो आत्मकथा, जो उन्होंने नहीं कही उसको, कवि ने उनकी संवेदनाओं के साथ एकाकार होते हुए लिखने का सार्थक प्रयास किया है।

कवि स्वाभाविक प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण प्रतिकूट पहुंचकर उनके पुत्र भूषणभट्ट से मिलते हैं व उनके पिता बाणभट्ट के बारे में पूछते हैं। बाणभट्ट दैनिक पूजापाठ से आकर कवि से मिलते हैं, तो कविवर उनके कान्यकुब्ज छोड़कर आने का कारण पूछते हैं। बाणभट्ट कहते हैं कि कि धर्मसभा में मैंने धर्मचर्चा की संसद में कान्यकुब्जेश्वर हर्ष को फटकार लगा दी थी। साकार की उपासना एवं कर्मकाण्ड का उपहास करने वाले राजा हर्षदेव को मैंने कह दिया कि 'वेदनिन्दा एवं सर्वशक्तिमान की निन्दा असहनीय हैं। संसार छोड़कर पलायन करने वाले तथागत भी सर्वथा दुर्गति को ही प्राप्त हुए हैं। किसी भी दृष्टि से तथागत सत्यमार्ग पर नहीं है। उनका मार्ग संसार को पलायनवादी, पुरुषार्थहीन एवं नपुंसक बनाने वाला है। कर्म संसार का धर्म है और कर्म से विमुख करता हो उस सम्प्रदाय को धिक्कार है, कर्म छोड़ कर प्रजा के धन पर आश्रित रहना धिक्कार है, एक सामान्य मनुष्य को ईश्वर के रूप में पूजना धिक्कार है, सर्वशक्तिमान का कुतर्कों से खण्डन करना धिक्कार है। मुझे आपका किसी प्रकार का भय नहीं है। दूसरे धर्म के प्रति आपकी द्वेषभावना असहय है। मैं आपके अधूरे चरित को पूरा नहीं करूंगा।' यह कहकर राजकवि का पद छोड़कर आ गया।

तदनन्तर घटित होने वाली घटनाओं के प्रति पराङ्मुखी होने के लिए ही मैं प्रीतिकूट आ गया। अब प्रीतिकूट मेरे लिए कान्यकुब्ज से बढ़कर है, क्योंकि प्रीतिकूट में कादम्बरी की विषयवस्तु है।

सारस्वत साधक के वंशाभिमान को देखकर कविवर की प्रीतिकूट की यात्रा सार्थक हो गई। वे बाणभट्ट के हर्षदेव को विदीर्ण कर देने वाले स्वभिमान को प्रणाम करते हैं।

भोजन के लिए जाते समय बाणभट्ट लेखक को कान्यकुब्ज रुकने का आग्रह करते हैं। लेखक कादम्बरी की उपादान सामग्री स्वरूप प्रीतिकूट को छोड़कर जाने की जल्दी में

भी नहीं हैं। बाणभट्ट भी भोजन के बाद विश्राम के लिए उनसे कहते हैं और संध्याकाल में पशुपति पूजा एवं दूसरे दिन विन्ध्याटवी एवं महाश्वेता के दर्शन करवाने की बात करते हैं।

भोजन के पश्चात कक्ष में विश्राम करते हुए लेखक दीवार पर माँ सरस्वती एवं बाणभट्ट के सारस्वत वात्स्यायनवंश के चित्रों को देखते ही रहे। संध्या समय शोणनद के किनारे मौखरि राजाओं द्वारा निर्मित मंदिर में आरती के लिए जाते हैं।

अगली प्रातःकाल लेखक बाणभट्ट से महाश्वेता के बारे में बताने को कहते हैं। बाणभट्ट कहते हैं कि यह काल्पनिक कथा नहीं अपितु जीवन्त घटना है। वे कहते हैं महाश्वेता उनकी बुआ की बेटी है। महाश्वेता के विवाह के एक माह के उपरान्त उसके ससुराल में शबर आक्रमणकारियों ने हमला बोल दिया। उस हमले में बाणभट्ट के बहनोई मारे गए। वह पिता के घर लौट आई। उसकी विपत्ति से पिता ने अपनी जीवनलीला को समाप्त कर लिया।

बाण कहते हैं कि हर्षदेव की बहिन राजश्री में महाश्वेता की छवि देखने के कारण ही उन्होनें हर्षदेव के राजकवि के रूप में प्रतिष्ठा को स्वीकार किया था। बाणभट्ट के पिता ने महाश्वेता के पति के घर लौटने की घोषणा की थी।

महाश्वेता की मुख्यकथा के समानान्तर पताका कथा के रूप में बाण स्वयं की कहानी सुनाते है। महाश्वेता के पड़ौस में रहने वाले मयूरभट्ट की पुत्री कदम्बप्रिया महाश्वेता की विश्वस्त सखी थी। उसके पिता ने बाणभट्ट को अपने जामाता के रूप में स्वीकार कर लिया था। बाद में विवाह हो गया। लेकिन कालान्तर में सात वर्षीय पुत्र को छोड़कर कदम्बप्रिया बाणभट्ट को छोड़कर चली गई।

बहिन महाश्वेता, पिता चित्रसेन एवं पत्नी कदम्बप्रिया के एक–एक करके संसार छोड़ जाने पर बाणभट्ट टूट गए। मित्रों द्वारा बाणभट्ट को ढांढस बंधाने के प्रयत्नों के दौरान नाट्यमंचन की चर्चा चलने पर बाणभट्ट के अन्दर का कलाकार अकस्मात् कौंध गया। वह शास्त्रमंथन का मार्ग छोड़कर लोकविनोदपरायण कलाजीवी बन गया। लाखों सहृदयों के हृदय को जीत लिया, परन्तु एक असहृदय का हृदय नही जीत पाया। इसीलिए कान्यकुब्ज छोड़कर लौट आया।

वेदत्रयी, शास्त्र, तंत्रमंत्र के साथ–साथ काव्य रचना एवं काव्य प्रकृति के प्रति विशेष आग्रह रहा। उन्हें अपने पिता की कही बात याद आती है कि 'जैसे नदी समतल भूमि पर शान्त, ढलवां जमीन पर तीव्र परन्तु पर्वतशिला की कगार से गिरती हुई भयंकर हो जाती है

वैसे ही काव्य प्रतिभा भी कोमल कान्त पदावली तथा ललित उदात्त संवेदनाओं को पाकर सहृदयहृदयावर्जक कविता कामिनी का रूप धारण कर लेती है और शास्त्रार्थ के प्रसंग में वही प्रतिभा छल, वितण्डा आदि से उपस्कृत होकर कुछ और ही प्रतीत होती है और फिर दूरारोह, क्लिष्ट शास्त्रमंथन से वह प्रतिभा रूक्ष अतिरूक्ष हो जाती है।' उन्हीं पिता श्री ने बाणभट्ट के श्लोक 'जयन्ति बाणासुर .... आदि को सुनकर प्रोत्साहित भी किया था।

पिता की अपेक्षाओं के अनुरूप वंश परम्परा को बाणभट्ट ने आगे बढ़ाया, परन्तु हर्षदेव को बाणभट्ट के विरूद्व अकारण शत्रुओं ने भङकाने का का कार्य किया। राजकृपा का वह प्रसङ्ग बाणभट्ट के लिए स्वप्न सदृश था। उस कृपा का प्रतिकार हर्षचरित था। अब बाणभट्ट प्रीतिकूट में रहकर प्रीतिकथा कादम्बरी को पूर्ण करना चाहते हैं। जिस कथा में महाश्वेता, उनके पति पुंडरीक, स्वयं कवि बाणभट्ट एवं उनकी पत्नी कदम्बप्रिया है। आक्रमणकारी शबर भी इस कथा में होगा। विन्ध्याटवी की पार्श्ववर्ती सारी जन्मभूमि इस कथा में प्रतिबिम्बित होगी। यथार्थ एवं कल्पना का मिश्रण होगी यह कथा।

बाणभट्ट कवि से कहते हैं कि प्रातःकाल महाश्वेता से मिलने उसके गाँव चलेंगे।

'उठिए न चाय ले आई हूँ' की आवाज से पत्नी द्वारा जगाए जाने पर लेखक हड़बड़ाकर उठ जाते हैं और तब उन्हें पता चलता है की बाणभट्ट के साथ साक्षात्कार का सम्पूर्ण वृत्तान्त एक स्वप्न था।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

बाणभट्ट की आत्मकथा के वो अंश भी हो सकते है, जो उन्होंने कहे नहीं हैं। उनके दृष्टिकोण को परिकल्पित करके उन अंशों को छुआ जा सकता है जैसे-बाणभट्ट का आत्मसम्मान, उनका पारिवारिक जीवन, उनकी भावनाएं, प्रेम आदि।

जामाता[53]

'जामाता' कहानी समाज में व्याप्त दहेज प्रथा एवं इसके समाधान को प्रस्तुत करने वाली एक लघुकथा है। विवाह योग्य कन्या वन्दना के पिता पुरन्दर की पाई–पाई कर जोड़ी गई दहेज की रकम, कोषागार से निकाल कर लाते समय कुछ लुटेरों ने मारपीट कर लूटने की कोशिश की। पुरन्दर के घर आने के बाद एक युवक आकर बताता है कि उसका नाम चन्द्रकान्त है और उसने उन लुटेरों से वह राशि बचा ली है। वन्दना के विवाह

व दहेज की समस्या को सुनने के बाद चन्द्रकान्त वन्दना से विवाह का निर्णय लेता है और दहेज के रूप में कन्या के अतिरिक्त कुछ नहीं लेता।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

गुणग्राही वर, दहेज समस्या का समाधान है।

अभिनयः[54]

'अभिनय' कहानी श्यामा नामक शिक्षिका के दोहरे चरित्र के अन्तर को प्रकट करने वाली कहानी है। कहानी में शिक्षिका, कक्षा में महादेवी वर्मा व घसीटा के संस्मरण को पढ़ाती है तथा उनकी तरह संवेदनशील व दयालु हृदय बनने की प्रेरणा देती है। कक्षा में पढ़ने वाली शिक्षिका की पुत्री मनोयोग से पढ़ती है, परन्तु घर आने पर घर की सेविका नौकरानी से काँच के बरतन टूट जाने पर सेविका की चोट के प्रति असंवेदनशील तथा बरतनों के नुकसान पर उसकी भर्त्सना करती अपनी शिक्षिका माँ के दोहरे अभिनयात्मक चरित्र को देखकर सन्न रह जाती है।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

सच्ची शिक्षा वही है, जो आचरण में दिखाई दे, अन्यथा वह पाखण्ड है।

प्रतिशोधः[55]

'प्रतिशोधः' कानपुर नगर में लखपति सेठ विभुराम के घर में नौकरी करने वाले सेवक के संकल्पित प्रतिशोध की कहानी है। विभुराम के घर में चोरी हो जाती है। शक के आधार पर उसे चोर समझकर दश वर्ष के लिए कारावास में डाल दिया जाता है। नौकर प्रतिशोध की आग में जल रहा है। विभुराम को मारना ही उसका एक मात्र लक्ष्य है। पत्नी पाँच वर्ष पूर्व ही मर चुकी है। दश वर्ष के कारावास के बाद वह सेठ के घर जाता है तो देखता है कि सेठानी ने उसके पुत्र का पालन–पोषण पुत्रवत किया है। यह देखकर वह द्रवित हो जाता है तथा सेठानी से क्षमा मांगता है। सेठानी पुत्र से उसके पिता के रूप में उसका परिचय करवाती है।

<u>कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन</u>

विवेकहीन एवं आधारहीन प्रतिशोध, आत्मग्लानि एवं अपराध बोध को जन्म देता है।

निर्णयः[56]

कथानायक पी.सी.एस. परीक्षा के अन्तिम अवसर में असफल होकर निराश है, किंकर्त्तव्यविमूढ़ है। कलंकित जीवन से मृत्यु श्रेयस्कर है, यह सोचकर ट्रेन से कटकर मरने के लिए रेल्वे स्टेशन के लिए रवाना होता है, परन्तु पास के ही गांव में एक परिवार में युवा पुत्र के दुर्घटनाग्रस्त होकर मरने के बाद हुई परिवार की दारूण स्थिति को देखकर उसे अपनी वात्सल्समयी माँ एवं वृद्ध पिता की स्मृति हो उठती है और वह घर लौट आता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

आत्महत्या असफलता रूपी समस्या का समाधान नहीं, अपितु आत्मीय जनों के लिए अधिक पीड़ादायक होता है।

आद्यन्तम्[57]

'आद्यन्तम्' कहानी नायक की प्रणयकथा के आदि से अन्त तक का वर्णन है। नायिका वन्दना नायक के विश्वविद्यालय की एम.ए. प्रथम वर्ष की छात्रा है व नायक स्वयं एम.ए. द्वितीय वर्ष का छात्र है। हनुमान जयन्ती पर हनुमान मन्दिर पर माँ के साथ नायिका से प्रथम साक्षात्कार से लेकर, तदनन्तर कटरा के बाजार में, पुस्तकालय में निरन्तर उनकी परस्पर बढ़ती प्रगाढ़ता नायक के पास वर्तमान में पत्नी व दो बालकों के रूप में परिणमित हो गई है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

विवाह में परिणत प्रेम सार्थकता को प्राप्त होता है।

दायित्वबोध:[58]

यह कहानी समाज में परस्पर करूणा, ममता एवं सहयोग के दायित्व के लिए प्रेरित करने वाली एक संस्मरण कथा है, जिसमें कथानायक एक समय अपने भार को विद्यार्थियों द्वारा बांटे जाने पर संवेदनशील हो जाता है। पत्नी से बात साझा करके वे सोचते हैं कि कलियुग में भी सत्युग के चिह्न शेष हैं। कालान्तर में रेल्वे स्टेशन से लौटते समय किसी महानुभाव के बोझ को स्वंय उठाकर अपने दायित्व का वहन करने से उनका हृदय शीतल हो जाता है, यही दायित्वबोध है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

परस्पर सहयोग व सहायता ही मानवीय दायित्व है।

द्विसंधानम्[59]

कथनी व करनी के दोहरे चरित्र को प्रकट करती हुई यह कहानी सामाजिक आचरण का प्रतिनिधित्व करती है। विश्वविद्यालय के शिक्षक महोदय को जब अपनी पुत्री के शशिशेखर के पुत्र रवि शेखर से विवाह पूर्व सम्बन्ध से गर्भवती होने का पता चलता है तो वह शशिशेखर से मिलने जाते हैं। वहाँ वकील महोदय को एक ग्रामीण से उसकी विधवा पुत्री के विवाह के लिए प्रेरित करते हुए सुनते हैं, परन्तु जब वह उसके पुत्र व अपनी पुत्री के बारे में बताते हैं तो वकील महोदय उनकी पुत्री को ही दोष देते हैं। बाद में प्रमाण देने पर दोनों के विवाह के लिए सहमत होते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

असली चेहरे पर लोग आदर्श का मुखौटा लगाकर चलते हैं। सत्य को अनावृत्त करना हमारा दायित्व है।

वरान्वेषणम्[60]

किसी दुर्घटना में अपने पति को खो देने वाली रूपलावण्यवती चालीस वर्षीया युवति, जब अपनी बीस वर्षीया पुत्री के लिए तीस वर्षीय एक डॉक्टर वर को देखने जाती है तो उसकी व्यथाकथा से द्रवित होकर वह डॉक्टर पुत्री के स्थान पर स्वयं उसी से विवाह को तैयार हो जाता है। इस प्रकार पुत्री का वरान्वेषण उसके स्वयं के लिए वरान्वेषण हो जाता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

जीवन में अप्रत्याशित एवं आशा से परे मोड़ भी आते हैं, जो सुखद हो सकते हैं।

साक्ष्यम्[61]

'साक्ष्यम्' कहानी में नन्दलाल ग्रामीणों का शोषण करने वाला एक नृशंस मनुष्य है। वह नोखईराम नामक हरिजन की जमीन पर सरसों का तैल निकालने का यंत्र लगाना चाहता है। नोखईराम द्वारा जमीन न दिए जाने पर वह धोखे से जमीन हड़प लेता है। मजबूर होकर नोखईराम न्यायालय में मुकदमा कर देता है। वहां गवाह के रूप में नन्दलाल का सम्बन्धी त्रिलोचन है। नन्दलाल आश्वस्त है कि वह उसके पक्ष में ही गवाही देगा, परन्तु त्रिलोचन दृढ़निष्ठ होकर सत्य बोलता है कि उसके मामा ने ही जमीन धोखे से हड़पी है। न्यायाधीश नोखईराम के पक्ष में निर्णय सुनाता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

साक्ष्य की दृढ़ता , धर्मभीरूता एवं सत्यवादिता ही निष्पक्ष न्याय के आधार है।

युद्धविरामः[62]

पति पत्नी में अपेक्षोचित एवं प्रणयाधारित लड़ाई झगड़े होते ही रहते हैं। ये झगड़े क्षणिक एवं स्नेहसूत्र को मजबूत करने वाले होते हैं। जिस घर की यह कहानी है, उसमें भी झगड़े अक्सर अलग अलग मुद्दो पर होते रहते हैं, परन्तु अल्पकालिक होते हैं।

इस बार झगड़े की अवधि बढ़ती जा रही थी। आठवें दिन पत्नी ने मायके जाने का निर्णय लिया। पुत्र पिता को रेलगाड़ी में आने का आग्रह कर रोने लगा। पिता ट्रेन में चढ़ गए। पत्नी मुस्कुराने लगी। गृहयुद्ध समाप्त हो गया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

दाम्पत्य में नोक-झोंक स्नेहमूलक एवं स्नेहफलदायी होती है।

नयनयोर्भाषा[63]

'मकरा' नामक बैल चिकनी सड़क पर गिर गया। पीछे का दांया पैर टूट गया। विशाल सींगों वाला, स्निग्ध दृष्टि वाला यह बैल कथानायक के पिताजी का प्रिय बैल है। पिछले पन्द्रह वर्षों में घर के सदस्य की तरह रहने वाला यह बैल परिवार का प्रिय है। उसकी दयनीय अवस्था को देखकर गांव वाले व परिवार वाले सभी विषादग्रस्त है। दादाजी

की गोद में सिर रखकर बैल मानो प्रार्थना कर रहा है कि 'मुझे बेसहारा मत छोड़ो, मैं मरना नहीं चाहता, स्वस्थ होकर पुनः सेवा करना चाहता हूँ।' पितामह ने बैल की नेत्रों की भाषा को पढ़ लिया और सान्त्वना देते हुए कहा कि मैं तुम्हारी नयनों की भाषा को समझता हूँ तथा मैं तुम्हारे उपकारों का प्रतिकार अवश्य करूंगा। इस प्रकार कहकर बैल की निःस्वार्थ सेवा में लग गये। लगभग पन्द्रह दिनों में ही मकरा (बैल) पुनः स्वस्थ हो गया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

निरीह एवं मुक पशु भी संवेदनाओं की भाषा समझते है।

दृष्टिलाभः[64]

यह कहानी अपने भाई के पुत्र से ईर्ष्याभाव रखने वाले एक भाई की आंखे खोल देने वाली घटना पर केन्द्रित कहानी है। भाई का पुत्र सर्वगुणसम्पन्न है, परन्तु वह सदैव उसकी निन्दा करता है। जब कभी उसकी प्रशंसा होती है वह बीच में अपने पुत्र की प्रशंसा करता है। उसका पुत्र बहुत प्रयास करने पर भी बाहरवीं कक्षा उत्तीर्ण न कर सका। अपनी दुर्दशा का कारण वह अपने पिता को समझता है। भाई का पुत्र, विजयदशमी के अवकाश में अपने ज्येष्ठ पिता के घर प्रणाम करने जाने पर जब पितृव्य पुत्र को ज्येष्ठ पिता पर प्रहार करते देखता है तो वह अपने ज्येष्ठ पिता को बचाते हुए उसकी भर्त्सना करता है। ज्येष्ठ पिता प्रसन्न होकर उसे गले लगा लेते हैं और कहते है कि 'मैं पुत्र मोह के कारण तुम्हारी निंदा करता रहा, परन्तु तुमने मेरी आंखे खोल दी है।' वह ज्येष्ठपितृव्य पुत्र को सुशिक्षित करने का निर्णय करता है। ज्येष्ठ पिता की आंखों की चमक लौट आती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

नेत्रों पर ईर्ष्या व मोह की पट्टी बांधने पर सत्य दिखाई नहीं देता।

वेतनम्[65]

'वेतनम्' कहानी पत्थर तोड़ने वाली एक युवति की विवशता को अभिव्यक्त करने वाली कहानी है, जो दैनिक वेतन भोगी कार्मिकों की दयनीय दुर्दशा को प्रकट करती है। यह श्रमिक युवति पत्थर तोड़ते–तोड़ते अचेत हो जाती है। प्रबन्धक को जब पता लगता है तो वह सौ रूपये देकर उसे स्वस्थ होने पर ही आने को कहता है। अधिकारी का अपने अधीनस्थ के साथ व्यवहार आदर्श है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों की अपरिहार्य विवशताओं के प्रति समाज को संवेदनशील होना चाहिए।

छागबलिः[66]

माँ शक्ति को प्रसन्न करने के निमित्त दी गई निरीह पशुओं की बलि की रूढ़ कुप्रथा पर प्रहार करने वाली इस कहानी में बताया गया है कि किस प्रकार लोग देवी के निमित्त स्वयं ही मांस भक्षण के लिए तत्पर रहते हैं। कथाकार का मित्र रामदीन जो पारिवारिक समस्याओं के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका, उससे मंदिर में मिलता है। वह वार्ताप्रसंगङ्ग में कहता है कि बकरे की बलि से देवी प्रसन्न होती है। कथाकार कहता है कि फिर मानव बलि से और भी ज्यादा प्रसन्न होंगी। रामदत्त वह कहता है कि उसे भी पशुहत्या अच्छी नहीं लगती है, परन्तु कुल परम्परा के कारण उसे निर्वहन करना पड़ता है। कथाकार समझाता है कि कीचड़ में पैर कैसे निर्मल हो सकते हैं। निन्दित कार्य से प्रशंसनीय फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। रामदीन पशुहत्या से निवृत्त हो जाता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

पशुबलि औचित्यहीन, तर्कहीन एवं वर्जनीय है।

वाहनसार्थक्यम्[67]

कथाकार जून मास में अपनी 'फीयेट' गाड़ी से अपने गांव जाते समय एक वृद्ध पुरुष को देखते हैं। वुद्ध के पैर में जूते नहीं है। वह पसीने से तरबतर है। कथाकार सोचते हैं कि इस वृद्ध पुरुष की यात्रा को अगर मैं सरल कर दूं तो मेरे वाहन की सार्थकता होगी। वृद्ध पुरुष को गाड़ी में बिठाकर गन्तव्य स्थान तक पहुंचा देते हैं। वृद्ध कृतज्ञ है, कथाकार भी आत्मसंतुष्ट है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

वाहन की सार्थकता दूसरों के काम आने में है।

वृद्धामहिषी[68]

पन्द्रह वर्षो तक दूध, दही, घी, छाछ आदि से परिवार को पोषित करने वाली महिषी जब निरिन्द्रिय एवं वृद्ध हो जाती है, अनुपयोगी हो जाती है, तब परिवार उसे बेचने की बात करता है। कथाकार के मन में आता है कि ऐसे तो पितामही (दादी) भी वृद्ध एवं अनुपयोगी है फिर दोनों की स्थिति में क्या अन्तर है? दोनों ने परिवार की सेवासुश्रूषा की है। अब दोनों को सेवासुश्रूषा की आवश्यकता है। यही मनोभाव पितामही के समक्ष प्रकट करने पर कथाकार के पिता भैंस को बेचने का निर्णय त्याग देते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

अनुपयोगी पशु त्याज्य नहीं, अपितु सेवा के योग्य है।

लयेरिका[69]

हिन्दी में लोरी तथा संस्कृत में लयेरिका कही जाने वाली लोरियां न केवल माँ के प्रेम की अभिव्यक्ति है बल्कि इन मधुर गीतिकाओं में पूरा का पूरा जीवन दर्शन है जैसे एक लोरी कहती है कि 'एक बालक दो कौड़ियां प्राप्त करता है, कौड़ियां वह गंगा को देता है, गंगा उसे बालू मिट्टी देती है, बालू मिट्टी वह भाड़ वाले को देता है, भाड़ वाला उसे लाज (खीलें) देता है, वह खीलें वह घसियारे को दे देता है, घास वाला घास देता है, घास वह गाय को देता है, गाय उसे दूध देती है, दूध से खीर बनाते है, खीर खाकर बालक खुश हो जाता है।' खीर भारतीय संस्कृति में समृद्धि का प्रतीक है।

यह पूरे जीवन की सफलता का रहस्य है। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। दान के बदले मिली वस्तु की महत्ता ही अलग है। दूसरी विशिष्टता यह है कि मूल्यहीन कौड़ी से भी खीर जैसी समृद्धि को पाया जा सकता है। यही जीवन की सार्थकता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

लयेरिका माँ के वात्सल्य, संस्कार, शिक्षा एवं प्रेम का प्रतिबिम्ब है।

नियुक्तिः[70]

पण्डित सुखानन्द की भारतीमहाविद्यालय में संस्कृत प्रवक्ता पद पर नियुक्ति होनी है। साक्षात्कार होते है, कई प्रतिभाशाली प्रतिभागी है, परन्तु शिक्षामन्त्री का साला जो दसवीं से एम.ए. तक तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण है तथा हिन्दी भी अच्छी तरह से नही जानता है,

उसकी नियुक्ति हो जाती है। सारी प्रक्रियाएं औपचारिक है। वस्तुतः निर्णय तो पूर्वनिर्धारित है। यह कहानी सम्पूर्ण नियुक्ति प्रक्रिया पर प्रश्नचिह्न एवं प्रहार है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

नियुक्ति का आधार योग्यता नहीं, अपितु प्रभावशाली लोगों द्वारा की गई अभिशंषा है। (व्यवस्था पर प्रहार) यह व्यवस्था टूटनी चाहिये।

मद्यनिषेधः[71]

सरकारी कार्यक्रमों की औपचारिकता व दोहरेपन को प्रकट करने वाली कहानी 'मद्यनिषेधः' प्रशासनिक वर्ग के दोगलेपन को अभिव्यक्त करती है। नगर निगम के सभाभवन में भारी भीड़ है। मद्यनिषेध विषय पर कार्यक्रम है। केन्द्रीय परिवहनमंत्री मुख्य अतिथि है। अपने उद्बोधन में भारतीय संस्कृति की पवित्रता व उत्कृष्टता का बखान करते हुए मद्यपान की घोर निन्दा करते हुए जन सामान्य का शराब छोड़ने के लिए आह्वान करते हैं, लेकिन सन्ध्याकाल में मंत्री महोदय मित्रों के साथ मद्यपान करते हुए प्रभावशाली भाषण के लिए बधाईयां ग्रहण कर रहे थे। कथनी एवं करनी में अन्तर पर कटाक्ष व्यक्त करते हुए यह कहानी परिवर्तन के प्रति इच्छाशक्ति की कमी को अभिव्यक्त करती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

अन्तश्चेतना से रहित सरकारी कार्यक्रम, औपचारिक एवं निरर्थक है।

गुरूदक्षिणा[72]

गुरूदक्षिणा कहानी गुरूशिष्य सम्बन्धों की गरिमा को प्रकट करती एक कहानी है जिसमें गुरूवर्य दूरभाष से सम्बन्धित बिल अधिक आने की समस्या से परेशान है। इधर उधर चक्कर लगाने के पश्चात् गुरू मण्डलप्रबन्धक के पास जाते हैं। मण्डलप्रबन्धक न केवल उनकी समस्या का उचित समाधान करता है, अपितु उनका आदर सत्कार कर यह याद दिलाता है कि वह उनका पूर्व शिष्य है। गुरूजनोचित सम्मान को दक्षिणा के रूप में पाकर गुरू कृतार्थ हो गए।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

शिष्य द्वारा प्रदत्त यथोचित सम्मान ही सच्ची गुरु दक्षिणा है।

कोऽनुकरणीयः[73]

दरवाजे पर किसी के आने की ध्वनि सुनकर अन्यमनस्क पिता अपने पुत्र से कहता है कि जाकर कह दो पिताजी घर पर नहीं है। पुत्र पिता से कहता है कि गुरूजन और आप तो सदा सत्य बोलने की बात कहते हैं। बालक की बात से पिता का विवेक जाग्रत हो उठता है। वह मन में सोचता है कि कौन अनुकरणीय है? असत्य बोलने वाला मैं ? अथवा सत्य का पक्षधर यह बालक? आदर्श एवं यथार्थ के अन्तर को प्रकट करती यह कहानी हमारे वास्तविक चरित्र को उजागर करती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

सत्य का पक्षधर ही अनुकरणीय है।

कल्पवृक्षः[74]

'कल्पवृक्षः' कहानी पुत्र को दुर्घटना में खो देने वाले वृद्ध पुरुष की कहानी है, जो एक अनाथ के लिए कल्पवृक्ष हो गया। भारतीय राजपूतवाहिनी में मेजर पद से सेवानिवृत्त कथाकार के पड़ौसी अपने पुत्र व पुत्रवधु के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे, परन्तु पत्नी को श्वसुराल ले जाते हुए दुर्घटनाग्रस्त होकर उनका पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया। पुत्र की मृत्यु के बाद उन्होंने कथाकार को ही पुत्र के रूप में माना। उन्होंने उसकी शिक्षा–दीक्षा एवं पालन–पोषण किया। कथाकार जब विदेश गए तो बैंक प्रबन्धक ने सूचित किया कि मेजर साहब तीर्थ यात्रा पर गए हैं। पढ़ाई के लिए निरन्तर पैसा आता रहा। भारत आने पर कथाकार को पड़ौसियों से ज्ञात हुआ कि वे उसके जाने के कुछ दिन बाद ही दिवंगत हो गए थे, परन्तु वे नहीं चाहते थे कि उसकी पढ़ाई बाधित हो इसलिए उसे नहीं बताना चाहते थे। बैंक प्रबन्धक से यह सब जानकर कथाकार भावुक होकर सोचते हैं कि अब वह वस्तुतः अनाथ हो गए है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

निस्वार्थ भाव से अपना सर्वस्व किसी की खुशी अथवा आवश्यकता के लिए समर्पित कर देने वाला सामाजिक जन ही साक्षात् कल्पवृक्ष है।

देवकृपाऽनुभवः[75]

यह कहानी, अलौकिक देवयोग से कैसे एक यात्री का जीवन बच जाता है, इसका साक्षात् अनुभव है। नर्मदा तट पर ओंकारेश्वर स्थित ज्योतिर्लिङ्ग पर, किसी पर्व पर तीर्थयात्री एकत्रित हुए। वे प्रातः कालीन रेलयान से इन्दौर नगर लौट रहे थे। अचानक एक सर्प ने एक यात्री को पैर से जकड़ लिया। सब यात्री घबराकर रेलगाड़ी से नीचे उतर गए। उस यात्री की मदद को डर के कारण कोई तैयार नहीं था। अब यात्री ने चालक से प्रार्थना की कि वह वाष्पयान को ले जाए। यह कहकर वह ट्रेन से उतर गया। यान के रवाना होने पर दीनतापूर्वक वह भगवान शिव को याद करने लगा। सर्प उसे छोड़कर चला गया। बाद में पता चला कि वह ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हो गई तथा चालक के अतिरिक्त सारे यात्री मृत्यु को प्राप्त हो गए।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

अलौकिक शक्तियों की कृपा का साक्षात्कार संसार में घटित घटनाओं में होता है।

परिवर्तनम्[76]

समाज के लम्पट युवाओं की मर्यादाहीनता के कारण बालिकाओं की मानसिक प्रताड़ना पर आधारित यह कहानी एक कटु यथार्थ को उद्घाटित करती है कि किस प्रकार पूरे समाज की युवतियों के साथ छेड़छाड़ करने वाले युवक की बहिन को जब कोई युवक छेड़ता है तो यह अनुभूति ह्रदय परिवर्तित कर देती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

अपनों की पीड़ा, परपीड़ा के प्रति संवेदनशील करते हुए ह्रदय परिवर्तित कर देती है।

न्यायाधीशः[77]

'न्यायाधीशः' कहानी सामाजिक चरित्र को प्रकट करने वाली कहानी है। युवावस्था में प्रेम में समर्पण के परिणाम स्वरूप गर्भवती कन्या विवशतावश कई व्यभिचारों एवं शरीर व्यापार में लिप्त हो जाती है, जेल में डाल दी जाती है,वह यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है कि जिस युवक ने उसका शीलभंग किया था वह, आज न्यायाधीश के रूप में उसके चरित्र का निर्णय करने वाला है। दण्ड का भागी स्वयं दण्ड दे रहा है। यही सामाजिक दोगलापन है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

चरित्र भ्रष्ट करने वालों के पास चारित्रिक निर्णय का अधिकार हो, यह एक सामाजिक विडम्बना है।

साध्वसम्[78]

यह कहानी पापों के फल के भय से कुपुत्र से सुपुत्र में परिवर्तित होने की कथा है। किस प्रकार जीवन पर्यन्त समस्त दुर्व्यसनों में लिप्त रहने वाला एक पुत्र माँ की मृत्यु पर गरूङ पुराण में वर्णित कर्मफल की गाथा को सुनकर परिवर्तित हो जाता है तथा वह कुमार्ग से निवृत्त होकर सुमार्गगामी हो जाता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

दुष्कर्मों के परिणाम का भय, मानव को सन्मार्गगामी बनाने में प्रेरक होता है।

वैराग्यम्[79]

कथाकार के घर में काफी समय से साफ सफाई का कार्य नहीं हुआ है। पुत्र का पाणिग्रहण संस्कार होना है। इस हेतु वास्तुकार को बुलाया जाता है। वास्तुकार कहता है कि ऐसा एक यन्त्र है जिसमें सारे कीट, कृमि आदि खिंच कर अन्दर नलिका में जाकर मर जाते हैं। लेखक पूजागृह में जाकर मकड़ी के तरह तरह के जालों को देख कर सोचता है कि एक तरफ तो हम शान्तिपाठ करते हैं, समस्त जीवों के कल्याण की कामना करते हैं दूसरी ओर निर्दोष प्राणियों की हत्या करते समय संवेदनहीन हो जाते है। समस्त कीट पतंगों के अपने–अपने प्राकृतिक आवासगृह हैं। हमें उनमें व्यवधान डालने का कोई अधिकार नहीं है। उनके निर्माण कौशल की प्रशंसा करनी चाहिए न कि दण्डित करना चाहिए। यह सोचकर वह गृहसंस्कार से निवृत्त हो जाता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशीलता कल्याणकारी है।

यशोलिप्सा[80]

'यशोलिप्सा' कहानी महत्त्वाकांक्षासरणि पर सतत गतिशील एवं रिश्तों को पीछे छोड़ते चरित्रों की प्रतिनिधि कहानी है। पत्नी व्याधिग्रस्त है, उसकी शल्य चिकित्सा होनी है, परन्तु पति महालेखा नियन्त्रक है, अपनी प्रबन्धसमिति की बैठक को छोड़कर पत्नी की शल्य चिकित्सा के समय नहीं आ पाता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

यशोलिप्सा के आगे मानवीय संवेदनाएं एवं सम्बन्ध गौण हो जाते हैं।

कृतज्ञः[81]

'कृतज्ञः' कहानी गुरूशिष्य सम्बन्धों की गरिमा को प्रतिष्ठापित करती है। आनन्दशुक्ल नाम का मेधावी, परिश्रमी, अनुशासित, स्वाभिमानी व निर्व्यसनी विद्यार्थी अपनी योग्यता से आई.पी.एस. परीक्षा पास करके, पुलिस अधीक्षक बनकर, अपनी कर्मस्थली इलाहाबाद नगर में ही पदस्थापित हो गया। विश्वविद्यालय छात्रसंघ चुनाव में छात्रों में आपस में झगड़ा होने पर आनन्दशुक्ल विश्वविद्यालय में जाता है। वहां अपने गुरू डॉ. भूदेव चौधरी को पहचान कर विनम्र अभिवादन करता है। अपने शिष्य की विनम्रता को देखकर गुरू भूदेव चौधरी गौरवान्वित हो जाते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

गुरूजनों के प्रति कृतज्ञता ही शिक्षा की सार्थकता है।

इदम्प्रथमतया[82]

जम्मु से बरोनी जाने वाली 'लोहित एक्सप्रेस' में लेखक यात्रा कर रहे थे। जब वे शौचालय में गए तो देखा कि किसी ने गन्दगी फैला कर छोड़ दिया है और पानी नहीं डाला, जिसके कारण कोई भी शौचालय का प्रयोग नहीं कर पा रहा है। लेखक सोचते हैं कि हरिजन, जो कि स्वयं एक मनुष्य है वह दूसरे की गन्दगी साफ कर सकता है तो हम क्यों नहीं। वह शौचालय की सफाई कर देते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

अच्छे कार्यों की पहल किसी न किसी को स्वयं ही करनी चाहिए।

ऊर्ध्वरेता[83]

दीर्घकाल से प्रतिष्ठा के शिखर पर विराजमान आश्रम के संस्थापक महान साधक लोकोपकारपरायण सर्वगुणानन्द के दिवंगत होने पर भवानन्द, कुलानन्द, लोकानन्द आदि के बाद मायानन्द आश्रम के अध्यक्ष बने। मायानन्द वस्तुतः कोई योग्यता नहीं रखते। उनमें कोई श्रद्धा नहीं है। केवल भक्तजनों के सामने दिखावे के लिए पूजादि करते हैं। आश्रम में पत्रिका सम्पादन के लिए एक युवति को रखा जाता है। बाद में पता लगता है कि वह

युवति गर्भवती हो गई। ब्रह्मचर्य का आडम्बर करने वाले मायानन्द के चरित्र की असलियत इस रूप में सामने आई।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

चारित्रिक अधः पतन से युक्त ऊर्ध्वरेता, धर्म एवं समाज पर कलंक है। इनसे मुक्ति में ही धर्म की उन्नति है।

आत्मविश्लेषणम्[84]

'आत्मविश्लेषणम्' कहानी में कथाकार का आत्मविश्लेषण वस्तुतः पूरे समाज का आत्मविश्लेषण है। कथाकार भगवान, मंदिर, दान–दक्षिणा आदि में विश्वास नहीं करता, परन्तु फिर भी वह अपनी बात में मजबूती पैदा करने के लिए भगवान का नाम लेता है। वह पूर्णरूपेण अवसरवादी, स्वार्थी एवं समयानुकूल व्यवहार करने वाला है, परन्तु समाज उसे सरल एवं शुद्ध हृदय वाले के रूप में जानता है। परीक्षा में अच्छे अंको के लिए परीक्षक के घर किसी अन्य बहाने से उपहार देता है। वह जानता है कि कलियुग में प्रचारतन्त्र ही सर्वस्व है। कथाकार का प्रचारतंत्र सफल भी है। जो लोग वस्तुतः स्वाभिमानी, चरित्रवान एवं गुणों से अलंकृत है, वे दुःख पा रहे है। यही समाज का आत्म चरित्र है। यह कहानी वर्तमान कलियुगी आडम्बर, पाखण्ड व दिखावे का प्रतिबिम्ब है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

आत्मप्रतिबिम्ब एवं यथार्थानुभूति के लिए आत्मविश्लेषण अनिवार्य है।

अभिरुचिः[85]

'अभिरूचिः' कहानी विवाह की सफलता के आधारभूत सूत्रों की व्याख्या करते हुए इस तथ्य को प्रतिपादित करती है कि विवाह में वर एवं कन्या की अभिरूचि का मिलना अत्यन्त आवश्यक है। सौन्दर्य, शिक्षा, आस्था, विश्वास, पारिवारिक परितोष की साम्यता से ही विवाह में दृढ़ता अथवा स्नेहिलता आती है। कथाकार के मित्र अपने इंजिनियर पुत्र, विपुल के लिए प्राध्यापक महोदय की कन्या देखने जाते है। वहां कन्या की कनिष्ठ बहिन उनका आदर सत्कार करती है। वह सुन्दर, सुशील, संस्कारित एवं मृदुभाषी है। ज्येष्ठ कन्या वेशभूषा, बातचीत एवं व्यवहार से धृष्ट एवं प्रगल्भ लगती है।

विपुल कनिष्ठ कन्या के संस्कारों को देखकर उसकी आंशिक विकलांगता को उपेक्षित करते हुए उसे अपनी जीवनसंगिनी बनाने का निर्णय करता है। वस्तुतः यही सही

निर्णय है क्योंकि विवाह की सफलता के लिए स्नेह, सामंजस्य, समर्पण, अनिवार्य है न कि शारीरिक सुन्दरता।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

सौन्दर्य की अपेक्षा शील, गुण, संस्कार एवं समर्पण भाव ही वैवाहिक सफलता के आधार हैं।

पितुर्हृदयम्[86]

डाकुओं के द्वारा बलात्कार एवं लूट के बाद पुत्री के आत्महत्या करने पर तथा पुलिस द्वारा उचित कार्यवाही न करने पर उद्वेलित एवं आक्रोशित होकर डाकू बने लाखन सिंह के द्वारा कालीदीन पाण्डेय के घर पर डाका डाला गया।

लाखनसिंह मूलतः एक अच्छा इंसान है और वह सज्जनों को कभी परेशान नहीं करता। कालीदीन यद्यपि सज्जन है, परन्तु उसके पुत्र ग्रामीणों का शोषण करते हैं। इसीलिए लाखन सिंह उनको सबक सिखाना चाहता है।

कालीदीन की नवविवाहिता पुत्री के भी सारे आभूषण छीन लिए जाते है। जब लाखन सिंह जाने लगता है तो कालीदीन की पुत्री को रोते हुए देखता है। वह उसके रोने का कारण पूछता है। वह कहती है कि आभूषणों के अभाव में ससुराल में बहुत अपमान होगा। लाखनसिंह सारे आभूषण देकर कालीदीन को भी बंधनमुक्त कर देता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

एक पिता का हृदय, दूसरे की संतानों की पीड़ा के साथ एकाकार होने की क्षमता रखता है।

मूल्याङ्कनम्[87]

मानवमूल्यों को निरूपित करने वाली यह कहानी एक रिक्शाचालक की सच्चाई व ईमानदारी को प्रकट करती है। कथाकार कर्नलगंज नामक बाजार में दरवाजे खिड़की आदि के उपयोगी सामान लेने गए थे। वापसी में उनका पैसों का पर्स कहीं गिर गया। दूसरे दिन रिक्शाचालक उनका पर्स देने आता है, जिसमें लगभग एक हजार रूपये थे। वह चाहता तो उसे रख सकता था, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। कोई पुरस्कार भी ग्रहण नहीं किया। कथाकार सोचते है कि मैंने स्वयं भी एक बार मिले पर्स को लौटाने में लोभवश लापरवाही की थी, तो उस रिक्शाचालक और मुझमें से ईमानदारी में, मैं ही कम हूँ।

ईमानदारी व नैतिकता का समृद्धि से कोई लेना देना नहीं है। कोई गरीब होकर भी ईमानदार हो सकता है और कोई अमीर होकर भी बेईमान हो सकता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

मनुष्य का मूल्यांकन उसकी अमीरी एवं गरीबी से नहीं, अपितु उसकी ईमानदारी एवं नैतिक मूल्यों से होता है।

राष्ट्रपतिपुरस्कारः[88]

पैंतीस वर्षो तक अध्यापन कार्य करने के अतिरिक्त कोई सारस्वत योगदान न देने वाले डॉ. ब्रजवल्लभ महोदय को पुरस्कार समिति के किसी सदस्य की कृपा से राष्ट्रपति पुरस्कार मिल जाता है। जगह–जगह उनके अभिनंदन समारोह आयोजित किए जा रहे हैं। एक सभा में अध्यक्ष के रूप में कथाकार जब उपस्थित होते हैं तो उनकी उपस्थिति में राष्ट्रपति पुरस्कार से पुरस्कृत डॉ.ब्रजबल्लभ महोदय किस प्रकार अपनी खोखली प्रशंसा से शर्मिन्दा महसूस करते हैं, इसका यथार्थ वर्णन कथाकार ने किया है। बिना योग्यता के ही जब पुरस्कार व सम्मान की प्राप्ति होती है तो भीतर का खालीपन चेहरे पर आत्मग्लानि व अपराधबोध के रूप में प्रकट होता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

खोखले पुरस्कार आत्मबल को कमजोर करते हैं।

दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति[89]

कभी कभी हमारे सारे आदर्श व्यर्थ हो जाते हैं। सत्यप्राण मनुष्य भी असत्य का आश्रय लेने लग जाते हैं। ब्रह्मचारी भी भोगकातर हो जाते हैं। कुछ ही लोग होते हैं जिनके सिद्धान्त एवं व्यवहार में अद्वैत होता है।

जिन महानुभाव की यह कहानी है वे सद्वंशुत्पन्न हैं, उच्च शिक्षित हैं, सत्य परायण हैं, परोपकारी हैं, उत्कोच विरोधी हैं, परन्तु विडम्बना यह है कि उनके चारों पुत्रों ने मिलकर उनके आस पास, असत्य, अन्याय, अत्याचार एवं रिश्वतखोरी का मजबूत वातावरण बना रखा है।

एक पुत्र वकील है, जो छल, षडयन्त्र आदि को ही जीने का सहारा मानता है। द्वितीय शल्य चिकित्सक व्याधिग्रस्त लोगों की विवशता का लाभ उठाकर चिकित्सा रूपी व्यापार करता है। इंजिनियर पुत्र अपने सेतु निर्माण के अनुबन्धकों से प्राप्त पाप के धन को

ही पुरस्कार मानता है। चौथा पुत्र, जो नेता है, सबसे बढ़कर है। सारे कार्यों के लिए रिश्वत लेता है। ऐसे जीवनादर्शो को क्षीण करने वाले पुत्रों के साथ ये महापुरुष जीवन निर्वाह करते है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

जीवनादर्शों को क्षीण करने वाले लोगों के बीच रहकर, आदर्शों पर चलना दुर्गम पथ है।

प्रेरणा[90]

वीरगाथा कालीन हिन्दी साहित्य में महाकवि जगनिकप्रणीत आल्हखण्ड की परम महत्ता है। बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में पृथ्वीराज चौहान के शासन करने पर महावती में राजा परमर्दिदेव शासक थे। उनके आल्हसिंह एवं उदयसिंह नाम के दो भाई सामन्त थे। आल्ह सिंह एवं उदयसिंह के पिता को कलिंगराय ने छलपूर्वक मार दिया। माता के द्वारा प्रेरित किए जाने पर आल्हसिंह एवं उदय सिंह ने कलिंगराय का सिर काटकर माँ को लाकर दिया। उनकी वीरता से प्रभावित होकर परमर्दिदेव ने दोनों भाईयों को सामन्त बना दिया। कालान्तर में परमर्दिदेव ने दोनों भाईयों को राज्य से निष्कासित कर दिया। उन दोनों से रहित परमर्दिदेव के राज्य पर पृथ्वीराज ने आक्रमण करके उनकी पुत्री चन्द्रावली का अपहरण करना चाहा। पृथ्वीराज का चरित्र पता लगने पर आल्हसिंह एवं उदय सिंह ने योगी की वेशभूषा में जाकर चन्द्रावली की रक्षा की। पृथ्वीराज के सामन्तों को मारते हुए स्वामी परमर्दिदेव के सम्मान की रक्षा करते हुए उदयसिंह तपस्या के लिए अरण्य में चले गए। यह सब आल्हखण्ड में वर्णित है, जिसके गायन को सुनकर आज युवा वीररस से भर जाते हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

जीवन को इस प्रकार जिएं व इस प्रकार मृत्यु का वरण करें कि दूसरों के लिए प्रेरणा बन जाएं।

प्रीतियोगः[91]

बञ्जारा जाति का एक समुदाय नगर के समीप बस्ती बनाकर रह रहा था। कुछ दिनों से एक युवक संध्या के समय बञ्जारा बस्ती के पास आता था। उसके आने का कारण बस्ती की एक अनुपम सुन्दरी युवति थी। उसके निरन्तर आने से बस्ती के सदस्य सावधान हो गए। बञ्जारा बस्ती के लोग मोहिनी कन्याओं से प्रणय नाटक करवाकर

अधिकाधिक धनराशि वसूलने का कार्य तो करते थे, परन्तु किसी भी कीमत पर अपने समुदाय की कन्या को समुदाय से बाहर प्रणय को अनुमति नहीं देते।

अपने पिता की इच्छा से वह युवति भी युवक के पास जाने लगी। आगे जाकर दोनों एक दूसरे को चाहने लगे और दोनों ने न्यायालय में जाकर विवाह कर लिया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

प्रेम किसी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र व स्तरगत भेद को स्वीकार नहीं करता।

अवमानना[92]

साक्षात्कार प्रक्रिया पर कटु प्रहार करते हुए यह कहानी, विश्वविद्यालय में आचार्य पद का साक्षात्कार देने वाले प्रेमनाथ शर्मा की कहानी है। विश्वविद्यालय में साक्षात्कार के लिए प्रोफेसर श्रीरंजन महोदय आने वाले है। श्री रंजन महोदय पहले भी उनका साक्षात्कार ले चुके है और उसकी योग्यता को नकार कर, उसके स्थान पर किसी और को नियुक्त कर चुके है। यद्यपि इस सम्बन्ध में अपनी विवशता प्रकट कर चुके है। वह रंजन महोदय को पत्र लिखता है, परन्तु फिर पूर्व अवमानना को याद कर पुनः अवमानना के भय एवं आत्मबोध के कारण पत्र को फाड़ देता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

भौतिक उपलब्धियों के लिए अवमानना सहन करना, आत्मसम्मान का हनन है। उससे बचना चाहिए।

पंचाशद्वर्षपरवर्ति पत्रम्[93]

यह कहानी पुत्र का पत्र है अपनी माँ के नाम, जो एक वर्षीय बालक की संवेदनाओं को परिकल्पित करके लिखा गया है। कहानीकार कहता है कि तब वह एक वर्ष का था, केवल रोने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता था, ज्वरग्रस्त होने पर अभावग्रस्त माँ ने हर संभव प्रयास किया उसका ध्यान रखने का। वह रात दिन आंसू बहाती थी, सीने से लगाकर सोती थी। एक रात्रि को जब पलंग से गिर गया तो बालक की मृत्यु के भय से किए गए माँ के करूण क्रन्दन को वह आज भी याद करता है। बालक को जीवित देख, जो माँ का असीम आनन्द था उसे वह आज भी याद करता है। शैशव की अनुभूतियों को पुत्र ने पत्र के रूप में लिखा है और माँ को अश्वस्त किया है कि अब वह उसकी सेवा के लिए तत्पर है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

शैशवकाल की स्मृतियां माँ की महत्ता एवं गरिमा को जीवन्त रखती हैं।

अभितप्तमयः[94]

यह कहानी सामाजिक शिष्टाचार एवं संवेदनाओं से रहित एक मनुष्य की कहानी है, जिसे ग्रामीण अशुभ व्यवहार के कारण धूमकेतु कहते है। गाँव में किसी बालक के पेड़ से गिरने पर वह कहता है कि ऐसे दुष्ट बालकों के साथ तो ऐसा ही होना चाहिए। अब जिंदगी भर पड़्गु होकर घूमेगा। गाँव वाले उसे तिरस्कृत करके घर भेजे देते हैं। कुछ समय पश्चात उस व्यक्ति की माँ की मृत्यु होने पर दूसरों के प्रति संवेदनहीन मनुष्य की कठोरता संवेदना में परिवर्तित हो गयी।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

अपनी तथा अपनों की विपत्ति, कठोरता को कोमलता में परिवर्तित कर देती है।

रक्षाकवचम्[95]

कार्यालय में अधीक्षक के पद पर कार्यरत उस पर कर्मशालाप्रबन्धक की अत्यधिक प्रीति थी। वह उस पर अत्यधिक स्नेह प्रदर्शित करता था, अपने घर बुलाता था, वह उसके घर आता था। घर में वृद्धा माँ एवं अविवाहित बहिन थी। बहिन के विवाह के उपरान्त प्रबन्धक महोदय का प्रेम और बढ़ गया। इस प्रेम के रहस्य को जब उसने जानने का प्रयत्य किया तो उसे घर के सेवक मनीराम से पता लगा कि प्रबन्धक महोदय अपनी अयोग्य व अक्षम कन्या का विवाह उससे करना चाहते है। जब प्रबन्धक महोदय ने अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव उसके समक्ष रखा तो उसने अस्वीकार कर दिया। प्रबन्धक ने भी उसे अयोग्य ठहराते हुए पद से हटा दिया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

स्वार्थ पर आधारित भ्रामक रक्षाकवचों का टूट जाना ही कल्याणकारी होता है।

दुस्सहम्[96]

गर्गगोत्र में उत्पन्न पद्माकर शुक्ल का रक्षाधिकारी पद के लिए चयन हो गया। वह प्रकारान्तर से पितामह की इच्छा को पूरा करने में लग गए। जाति, वर्ण, वंश आदि के गौरव को धारण करने वाले पद्माकर शुक्ल निष्कण्टक प्रशासन के कारण लोकप्रिय थे।

किसी समय जनपदीय पुलिस अधीक्षक क्षेत्र के निरीक्षण के लिए आए। पुलिस अधीक्षक रजक जाति से थे और स्वभाव से ही सवर्णविरोधी थे। सभी अधीनस्थ सवर्ण होने के बावजूद, वे वार्ताक्रम में वर्णव्यवस्था पर प्रहार करते हुए ब्राह्मणों की निन्दा करने लगे। उनके कटु व निंदनीय वचनों को सहन न करते हुए पद्माकरशुक्ल ने पुलिसाधीक्षक का भरसक प्रतिकार किया तथा पद से त्याग पत्र दे दिया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

आत्मसम्मान की रक्षा, आजीविका की सुरक्षा से अधिक वरेण्य है।

पितृभक्ति[97]

कथाकार का सहकर्मी व पड़ौसी उससे ईर्ष्याभाव रखता है। प्रसंग चलने पर अपने पिता की बढ़ाचढ़ा कर प्रशंसा करता है। कालान्तर में जब उसके पिता उसकी माँ की चिकित्सा के लिए उसके पास आना चाहते है तो वह उनके आने से प्रसन्न नहीं है, कहता है कि यदि वह आऐंगे तो पत्नी उसकी दुर्दशा कर देगी। इस प्रकार पितृभक्ति का दिखावा करने वाला उसका असली चेहरा मित्र के समक्ष आ चुका था।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

दिखावटी जीवन मूल्यों की सच्चाई अन्ततोगत्वा सामने आ ही जाती है। प्रदर्शन एवं आडम्बर से बचना चाहिए।

ज्यौतिष्माहात्म्यम्[98]

दो मित्र बिना आरक्षण के ट्रेन से अपने गृह नगर जा रहे हैं। ट्रेन में बहुत भीड़ है। एक नेता जी भी यात्रा कर रहे है। मित्र अवसर देखकर ज्योतिषज्ञानी होने का दिखावा कर, नेताजी पर मनौवैज्ञानिक प्रभाव बनाता है। नेता जी उसे आदरपूर्वक बैठने का स्थान देते है और इलाहाबाद तब उनका खूब सेवा सत्कार करते हैं। अवसरोचित बुद्धि प्रयोग से लाभ उठाने वाले लोगों का प्रतिनिधित्व करता मित्र इस बात को प्रतिपादित करता है कि लोगों की संवेदनाएं विशिष्ट लोगों के प्रति विशिष्ट होती हैं।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

सामान्यजनों एवं विशिष्ट जनों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण की भिन्नता का अवसरवादी लोग लाभ उठाते हैं।

पिशाचः[99]

मनुष्य जन्मना गुणी अथवा अवगुणी होता है अथवा परिवेश से गुणावगुणों को ग्रहण करता है। इस विषय पर कथाकार व उसके मित्र में परस्पर वाद–विवाद होता है। कथाकार अपने मित्र के स्वयं के चरित्र को आश्रय बना कर कहता है कि उसके पिता, पितामह आदि सुसंस्कारी है, परन्तु वह मांसभक्षण करता है। क्या यह गुण जन्मजात है? मित्र कुतर्क करता है कि प्राणियों की तरह गेंहू आदि में भी चैतन्य होता है अतः कोई दोष नहीं है। कथाकार कहते हैं कि पशुशव खाने वाला तो पिशाच होता है। असह्य प्रहार से उसे बात समझ में आती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

सामाजिक परिवेश एवं संगति मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में महती भूमिका निभाते हैं।

गौर्या वरः[100]

बजहा नामक क्षत्रियबहुल ग्राम में बचई सिंह का परिवार रहता है। बचई सिंह की एक चौदह वर्षीय सुन्दर सुशील गौरी नामक पुत्री है। उसके परिवार में उसका भतीजा तिलक सभी दुर्गुणों एवं व्यसनों में आसक्त है। उसके कारण बचईसिंह का परिवार भिक्षावृत्ति तक की दुर्दशा में पहुंच गया। बचई सिंह की पत्नी विक्षिप्तावस्था में है। पड़ौसी शिरोमणि सिंह के यहां शादी में बचई सिंह की विक्षिप्त पत्नी, पुत्री को लेकर पहुंच जाती है और कहती है कौन मेरी गौरी (पुत्री) से विवाह करेगा? एक युवक आगे आकर उससे विवाह करता है। इस प्रकार गौरी का विवाह सम्पन्न होता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

विवाह में धन की अपेक्षा गुणों का वरण करने वाले लोग समाज में आदर्श है।

कण्टकम्[101]

रास्ते में बबूल के काँटों का समूह कहीं से आकर गिर गया। पददलित होकर बिखर गया। लोग आ जा रहे थे, परन्तु किसी का ध्यान उस ओर नहीं था क्योंकि सबके पास पादत्राण (चप्पल) थे। एक वृद्ध नंगे पैर उधर से गुजरता है। वह मार्ग को सम्यक प्रकार से साफ कर मार्ग को निष्कण्टक कर देता है। पादत्राण विहीन वृद्ध ने पादत्राण विहीन लोगों के लिए मार्ग निर्विघ्न कर दिया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

हमारी सामाजिक जागरूकता, समाज में विद्यमान लोगों के जीवन को मंगलमय बना देती है।

पात्रत्वम्[102]

हैजे में पति के पंचतत्व में विलीन हो जाने पर धनिया अकेली है, परिवार द्वारा प्रताड़ित है, देवरों की दृष्टि उसके शरीर पर है। जैसे तैसे अपने चरित्र की रक्षा करती हुई धनिया रह रही है, परन्तु एक बार निर्दयता से मारी जाती हुई धनिया पड़ौसी रामदीन द्वारा बचा ली जाती है। रामदीन व धनिया पर चरित्रहीनता का आरोप लगाकर उन्हें पंचायत के अध्यक्ष गाँव से बाहर करना चाहते है। सभी ग्रामवासियों के धनिया–रामदीन के पक्ष में होने पर भी पंचायताध्यक्ष पूर्वाग्रहग्रस्त है, परन्तु जैसे ही उसकी दृष्टि स्वंय द्वारा बलात्कार की गयी स्त्री की तरफ पड़ती है, वह स्वयं निर्णय देने की पात्रता खो बैठता है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

स्वयं अनैतिकता के मार्ग पर चलने वाले लोग दूसरों के चरित्र के निर्णय के पात्र नहीं हो सकते।

लिखितमपि ललाटे[103]

अनुपमसौन्दर्यवती एक युवति, जिसके मन में प्राध्यापकों के लिए अरूचि का भाव था, का विवाह अन्ततोगत्वा एक प्राध्यापक से होता है। इतना ही नहीं वह स्वयं भी प्राध्यापक बनती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

भाग्य में लिखित अवश्यंभावी होता है।

पत्रसंवादः[104]

नायक–नायिका के बीच का औपचारिक पत्राचार प्रणयपूर्ण पत्राचार में परिवर्तित हो गया। दोनों को पता लगा कि दोनों अविवाहित एवं सहचर की प्रतीक्षा में है। दोनों एक दूसरे से मिलने का निर्णय करते है। नायक रामेश्वर उसे दिल्ली आने का आग्रह करता है। नायिका शुभदा उसे बैतूल आने का आग्रह करती है, परन्तु जिस समय नायक नायिका से

मिलने के लिए दिल्ली से बैतूल के लिए रवाना होता है उसी समय नायिका बैतूल से दिल्ली के लिए रवाना हो जाती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

प्रेम में दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए भावों, क्रियाओं, त्याग एवं समर्पण के लिए एक जैसा सोचते हैं।

काष्ठभाण्डम्[105]

बिना योग्यता के ही आजीविका व वधु प्राप्त कर लेने वाला मन्दबुद्धि युवक अब स्नातकोत्तर महाविद्यालय का प्रवक्ता है। समय–समय पर होने वाली संगोष्ठियों में अंग्रेजी भाषा में अपने शोध पत्र पढ़ता है। लोग आश्चर्यचकित है कि इतना भाषा ज्ञान एवं विषयज्ञान उसने कब अर्जित कर लिया। वह विद्वान माना जाने लगा, परन्तु काठ की हांडी बार–बार नहीं चढ़ सकती। एक बार जब उसने मित्र द्वारा अंग्रेजी में लिखा शोध पत्र पढ़ा तो अन्य लोगों ने पाश्चात्य लोगों के प्रश्नों के उत्तर देकर राष्ट्र का सम्मान बचाया। उसकी चालाकी सबको ज्ञात हो गई।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

झूठ व मिथ्या आचरण बार-बार सार्थक नहीं होता।

संस्कृतवर्षम्[106]

मार्च 1999 से मार्च 2000 तक सरकार ने संस्कृत वर्ष घोषित किया। विपुल धनराशि सरकार द्वारा आवंटित की गई। प्रोफेसर पाण्डेय महोदय विश्वविद्यालय में संस्कृतविभागाध्यक्ष थे। उन्होंने भी त्रिदिवसीय संगोष्ठी आयोजित की। उनकी विशिष्टता थी कि वे संस्कृत भाषा की प्रशंसा अंग्रेजी भाषा में ही करते थे। इस संगोष्ठी में भी उन्होंने संस्कृत एवं संस्कृति का सम्मान न करने वाले लोगों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से खूब आड़े हाथों लिया। उनको जानने वाले लोगों द्वारा उनके इस दोहरे चरित्र अथवा करनी व कथनी के अन्तर को देखकर उनका उपहास किया, तब उनका मुख स्वयं ही बन्द हो गया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मुद्दों पर औपचारिक व आडम्बरपूर्ण होने की बजाय गम्भीर व व्यावहारिक होने की आवश्यकता है।

आत्महत्या[107]

गृहस्वामी न्यायपथ से विचलित हो गया था। शराब, जुआ एवं वेश्यावृति में लीन था। गृहकलह में बार–बार आत्महत्या की धमकी देता था। परिवार के सदस्यों के प्रति उसका व्यवहार बदल गया था। किसी दिन भाईयों के साथ कलह होने पर जब उसने फिर से आत्महत्या की धमकी दी तो भाइयों ने कहा कि तुम्हारी आत्मा की हत्या तो उसी समय हो गई थी जब तुमने गलत मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया था। उसकी आंखे खुल गई और उसने धमकी देना बंद कर दिया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

अपने दुराचार को ढकने के लिए आत्महत्या जैसे मनौवैज्ञानिक एवं भावनात्मक दबाव का सार्थक प्रतिकार सम्पूर्ण परिवार के हित में है।

कं दारकं लालयेत्?[108]

महालेखाकार कार्यालय में अधीक्षक एवं यान्त्रिक पद पर कार्यरत दो योग्य पुत्रों का सेवानिवृत्त पिता अकेला है। पत्नी का पाँच वर्ष पूर्व निधन हो चुका है। वह अक्सर कहा करती थी हमारे दो पुत्र रत्न है। हमें चिन्ता की क्या आवश्यकता है, परन्तु आज हालत यह है कि दोनों में से जिसके बच्चों को वह खिलाने का कार्य करते हैं, वही पुत्रवधु उनके खाने–पीने का ज्यादा ध्यान रखती है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

वृद्धावस्था में पारिवारिक तिरस्कार एवं वृद्धों की उपयोगिता को देखना हमारे सांस्कृतिक मूल्यों की गिरावट है।

वाग्दत्ता[109]

आचार्य पुरुषोत्तम भारतीय संस्कृति एवं सनातन धर्म का पालन करने वाले शुद्ध भारतीय ब्राह्मण थे। उनका पुत्र बर्कले विश्वविद्यालय, अमेरिका में पढ़ रहा था। वहीं उसका जेनी से परिचय और फिर प्रेम हो गया। वह पिता के स्वभाव से परिचित था। उसके मित्र कमलाकर ने योजना के तहत जेनी को आचार्य पुरुषोत्तम से मिलवाया। वे उसकी भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था एवं आचरण को देखकर प्रभावित हुए। वे उसे अपनी पुत्रवधु के रूप में परिकल्पित करने लगे। कालान्तर में वह वाग्दत्ता जेनी उनकी पुत्रवधु बनी।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

संस्कार व सदाचार सर्वत्र लभ्य है, देशकाल की सीमाओं से परे भी।

भिक्षुकः[110]

अपनी मनोवृत्ति का अतिक्रमण करके वह वकील बन गया, परन्तु न्यायालय के छल–कपट एवं जीतने के लिए हर कुटनीति एवं कुतर्क का सहारा लेते वकीलों को देखकर उसे लगा कि इनके लिए धन ही माता, धन ही पिता, धन ही भाई एवं धन ही मित्र है। दोनों पक्षों से येनेकनापि प्रकारेण धन वसूलना ही उनका लक्ष्य है। भिक्षुक व वकील के जीवन में कोई अन्तर नहीं है। उसने वह कार्य छोड़कर पिता का औषधालय का दायित्व ले लिया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

नैतिक-मूल्यों से रहित वकालत, भिक्षाकार्य की तरह है। न्यायव्यवस्था में धन के स्थान पर सत्य का महत्त्व होना चाहिए।

अश्रुमूल्यम्[111]

ज्येष्ठमास की भीषण गर्मी में एक पथिक अत्यधिक संतप्त होकर एक कदम भी आगे नही चल पा रहा था। उसने एक आम्रवृक्ष का आश्रय लिया। वृक्ष के नीचे लेटते ही उसें नींद आ गई। स्वप्न में भी मानो वह जागते हुए सोच रहा था कि मैंने जीवन में एक वृक्ष के अस्तित्व के लिए प्रयास नहीं किया फिर भी जन्मजन्मान्तर के बन्धु की तरह आज इसने मुझे शीतलता, छाया एवं जीवन प्रदान किया है। उसके नेत्रों से अश्रु बहने लगे। वृक्ष मानो उससे कह रहा था कि इन अश्रुओं से ही तुमने कृतज्ञता प्रकट कर दी है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

पर्यावरण के प्रति सचेत एवं कृतज्ञ होना चाहिए।

प्राणभयम्[112]

चूहे के घर में उत्पात मचाने पर उसे मारने के लिए सारे घर वाले प्रयासरत हो गए। चूहा इधर–उधर भाग रहा था और घर वाले पीछे। अचानक कथानायक के मन में

चूहे के प्रति संवेदना जाग्रत हुई और संवेदनशील होकर उसने बालकों से उसके वध से विरत होने का कहा।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशीलता अहिंसा का आधार है। प्राणभय सबको होता है।

वात्सल्यामृतम्[113]

गुजरात में भूकम्प आने पर एक परिवार भवन की तीसरी मंजिल पर फंस गया। वृद्धा माँ नीचे उतर नहीं सकती। परिवार वाले भी उसे छोड़कर नहीं जाना चाहते, यद्यपि माँ उन्हें जाने को कहती है। अचानक पांचवी मंजिल से सीढ़ियों से उतरने वाले अनेक लोग मृत्यु को प्राप्त हो गए। वात्सल्य रूपी अमृत ने उन्हें जीवन प्रदान किया।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

वात्सल्य एवं आशीर्वाद हमारा सुरक्षाकवच होता है।

नियतिकौशलम्[114]

नियति के चमत्कार संसार में अनेक स्थानों पर देखने को मिलते हैं। जैसे खाण्डवन के दहन के समय शाङ्र्गपक्षी का परिवार बच गया उसी प्रकार एक वाष्पयान, जो दुर्घटनाग्रस्त होकर गहरे गर्त में गिर गया था, उसमें सिपाहियों को एक दिन की बच्ची जीवित मिली जबकि शेष सारे यात्री मारे गए थे। यही नियति कौशल है।

कथा का मूलमंत्र एवं जीवनदर्शन

विकट व विध्वंसक परिस्थितियों में भी जीवन का बच जाना नियतिकौशल ही है।

3) संस्कृतेतर (हिन्दी) भाषा में रचित कथा-साहित्य का संक्षिप्त परिचय

समकालीन साहित्य संसार के मूर्धन्य सृजनहार, त्रिवेणी कवि, विविधविधापारंगत अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने संस्कृत के साथ–साथ हिन्दी एवं भोजपुरी में भी अपनी लेखनी को गति दी है। हिन्दी कथा साहित्य में उनकी निम्न कृतियों का उल्लेख किया जा सकता है–

देवरा हजारी - (कथा-संग्रह)

अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने प्रथम कहानी 'गृहकलह' 1960 में लिखी। उसके पश्चात् 1960 से 1970 तक उनकी टर्लिन की शर्ट, डूबता कण्ठ, शर्बत का मूल्य, भवानी तथा

देवरा हजारी कहानियां अस्तित्व में आई। कालान्तर में इन सभी कहानियों का संग्रह 'देवरा हजारी' कथा संग्रह के रूप में आया जिसमें एक पौराणिक कथा 'अधमर्ण' तथा शेष मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत कहानियां है जिनके नाम देवरा हजारी, आखिरी चिट्ठी, शर्बत का दाम, भवानी, धोख तथा संकल्प है।

रक्तवैतरणी-(कथासंग्रह)

इक्षुगन्धा, जिजीविषा, शतपर्विका, सौत, महानगरी, हाथी के दांत, वाग्दत्ता, वाडवाग्नि, रक्तवैतरणी तथा बाणभट्ट की अनकही आत्मकथा नामक दश कथाओं का संग्रह 'रक्तवैतरणी' नाम से प्रकाशित हुआ है।

विधवा - (आंचलिक-उपन्यास)

वैधव्य की त्रासद विसंगतियों को शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत करता 'विधवा' उपन्यास शाकम्भरी में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो चुका है।

बालोपयोगी साहित्य -

इसके अतिरिक्त हिन्दी में अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने बालोपयोगी साहित्य का सृजन कर बालमनोविज्ञान को स्वस्थ दिशा देने का पुनीत कार्य किया है। उनका बाल–साहित्य निम्न प्रकार है–

बच्चों के पाहुन

पञ्चतन्त्र की सचित्र कथाएं

पढ़ो और बनों (सचित्र कथाएं)

महाभारत की किशोर कथाएं

इस प्रकार कविवर संस्कृत साहित्य शिरोमणि होने के साथ–साथ हिन्दी साहित्य के भी श्रेयस्कर कवि है। उनका हिन्दी साहित्य भी जनमङ्गल की साधना में निरत है।

इस प्रकार इस अध्याय में अधुनातन समयानुकूल कथाविधा के भेदों का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए अभिराज राजेन्द्रमिश्र के अनुसंधेय कथासंग्रहों (2009 ईस्वी तक ग्रथित) इक्षुगन्धा, राङ्गडा, पुनर्नवा एवं चित्रपर्णी की कथाओं का सारसंक्षेप प्रस्तुत किया है। आशा है यह कवि के कथासंसार की समीक्षा में प्रवेश की भावभूमि सिद्ध होगा।

सन्दर्भोल्लेख

1. वामन, अग्निपुराण, 337.12
2. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, 406.8
3. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–26
4. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–27
5. वही, अभिराजयशोभूषणम्, पृष्ठ–228
6. वही, वही, वही
7. वही, वही, पृष्ठ–231
8. वही, वही, पृष्ठ–231
9. वही, वही, पृष्ठ–232
10. वही, वही, पृष्ठ–233
11. वही, वही, पृष्ठ–235
12. वही, वही, पृष्ठ–237
13. वही, वही, पृष्ठ–239
14. राधाबल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालङ्कार, 03.01.14
15. वही, वही, 03.01.15
16. वही, वही, 03.01.16
17. वही, वही, 03.01.17
18. वही, वही, 03.01.18
19. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–30
20. वही, वही, पृष्ठ–31
21. वही, चित्रपर्णी, पृष्ठ–
22. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–35
23. वही, वही, पृष्ठ–36
24. राधाबल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालङ्कार, 03.01.12

इक्षुगन्धा-कथासंग्रह

25 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, जिजीविषा, पृष्ठ—9—15

26 वही, सुखशयितप्रच्छिका, पृष्ठ—16—25

27 वही, अनामिका, पृष्ठ—25—30

28. वही, एकहायनी, पृष्ठ—31—36

29. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, शतपर्विका, पृष्ठ—37—43

30. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—44—50

31. वही, भग्नपञ्जरः, पृष्ठ—51—56

32. वही, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी, पृष्ठ—57—64

राङ्गडा-कथासंग्रह

33. वही, कुलदीपक, पृष्ठ—1—6

34. वही, अधमर्ण, पृष्ठ—7—16

35. वही, कुक्की, पृष्ठ—17—24

36. वही, चञ्चा, पृष्ठ—25—42

37. वही, महानगरी, पृष्ठ—43—50

38. वही, एकचक्र, पृष्ठ—51—61

39. वही, पोतविहगौ, पृष्ठ—62—81

40. वही, सिंहसारि, पृष्ठ—82—90

41. वही, राङ्गडा, पृष्ठ—91—109

पुर्ननवा-कथासंग्रह

42. वही, संकल्पः, पृष्ठ—45—54

43. वही, सपत्नी, पृष्ठ—55—64

44. वही, वाग्दत्ता, पृष्ठ—65—74

45. वही, नर्तकी, पृष्ठ—75—85

46. वही, न्यायमहं करिष्ये, पृष्ठ—86—90

47. वही, ध्रुवस्वामिनी पृष्ठ—91—100

48. वही, वन्ध्या, पृष्ठ–101–108

49. वही, न्यासरक्षा पृष्ठ–109–117

50. वही, मरून्यग्रोध, पृष्ठ–118–124

51. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–125–131

52. वही, अनाख्याता–बाणभट्टाऽत्मकथा, पृष्ठ–132–144

चित्रपर्णी-कथासंग्रह

53. वही, जामाता, पृष्ठ–10–12

54. वही, अभिनय, पृष्ठ–13–14

55. वही, प्रतिशोध, पृष्ठ–15–16

56. वही, निर्णयः, पृष्ठ–17–18

57. वही, आद्यन्तम्, पृष्ठ–19

58. वही, दायित्वबोधः, पृष्ठ–20

59. वही, द्विसन्धानम, पृष्ठ–42

60. वही, वरान्वेषणम्, पृष्ठ–24

61. वही, साक्ष्यम्, पृष्ठ–26

62. वही, युद्धविरामः, पृष्ठ–28

63. वही, नयनयोर्भाषा, पृष्ठ–29

64. वही, दृष्टिलाभः, पृष्ठ–31

65. वही, वेतनम्, पृष्ठ–33

66. वही, छागबलिः, पृष्ठ–34

67. वही, वाहनसार्थक्यम्, पृष्ठ–36

68. वही, वृद्धामहिषी, पृष्ठ–58

69. वही, लयेरिका, पृष्ठ–39

70. वही, नियुक्तिः, पृष्ठ–41

71. वही, मद्यनिषेधः, पृष्ठ–43

72. वही, गुरूदक्षिणा, पृष्ठ–44

73. वही, कोऽनुकरणीयः, पृष्ठ–46

74. वही, कल्पवृक्षः, पृष्ठ–47

75. वही, देवकृपाऽनुभवः, पृष्ठ–49

76. वही, परिवर्तनम्, पृष्ठ–51

77. वही, न्यायाधीशः, पृष्ठ–53

78. वही, साध्वसम्, पृष्ठ–55

79. वही, वैराग्यम्, पृष्ठ–57

80. वही, यशोलिप्सा, पृष्ठ–58

81. वही, कृतज्ञः, पृष्ठ–60

82. वही, इदम्प्रथमतया, पृष्ठ–63

83. वही, ऊर्ध्वरेता, पृष्ठ–65

84. वही, आत्मविश्लेषणम्, पृष्ठ–66

85. वही, अभिरूचिः, पृष्ठ–68

86. वही, पितुर्हृदयम्, पृष्ठ–70

87. वही, मूल्यांकनम, पृष्ठ–73

88. वही, राष्ट्रपतिपुरस्कारः, पृष्ठ–75

89. वही, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति, पृष्ठ–77

90. वही, प्रेरणा, पृष्ठ–79

91. वही, प्रीतियोगः, पृष्ठ–81

92. वही, अवमानना, पृष्ठ–83

93. वही, पंचाशद्वर्षपरवर्ति पत्रम्, पृष्ठ–85

94. वही, अभितप्तमयः, पृष्ठ–87

95. वही, रक्षाक्रवचम्, पृष्ठ–89

96. वही, दुस्सहम्, पृष्ठ–91

97. वही, पितृभक्तिः पृष्ठ–94

98. वही, ज्योतिषमाहात्म्यम्, पृष्ठ–96

99. वही, पिशाचः, पृष्ठ–98

100. वही, गौर्यावरः, पृष्ठ–100

101. वही, कण्टकम्, पृष्ठ–102

102. वही, पात्रत्वम्, पृष्ठ–103

103. वही, लिखितमपि ललाटे, पृष्ठ–105

104. वही, पत्रसंवादः, पृष्ठ–107

105. वही, काष्ठभाण्डम्, पृष्ठ–108

106. वही, संस्कृतवर्षम्, पृष्ठ–110

107. वही, आत्महत्या, पृष्ठ–112

108. वही, कं दारकं लालयेत्, पृष्ठ–114

109. वही, वाग्दत्ता, पृष्ठ–115

110. वही, भिक्षुकः, पृष्ठ–116

111. वही, अश्रुमूल्यम्, पृष्ठ–117

112. वही, प्राणभयम्, पृष्ठ–118

113. वही, वात्सल्यामृतम्, पृष्ठ–119

114. वही, नियतिकौशलम्, पृष्ठ–120

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

मिश्र जी के कथा-साहित्य में लोक-चेतना

अभिराज राजेन्द्रमिश्र का कथा साहित्य उनकी अन्तश्चेतना का लोक की अन्तश्चेतना से साक्षात्कार है। उनकी कथाओं में लोक, लोक की पीड़ाएं, संवेदनाएं, समस्याएं, अनुकूलताएं व प्रतिकूलताएं प्रतिबिम्बित होती हैं। लोकचेतना पर शोधपरक दृष्टिपात करने से पूर्व यह प्रतिपादित करना समीचीन प्रतीत होता है कि वस्तुतः लोकचेतना का निहितार्थ क्या है?

लोकचेतना अर्थात लोक की अथवा लोक के प्रति चेतना। 'लोक पद व्याकरणिक दृष्टि से **लोक् धातु से भावार्थक घञ्** प्रत्यय से निष्पन्न होता है। **'लोक्यते असौ इति लोकः'** के अनुसार लोक पद निम्न अर्थ अभिव्यक्त करता है :–

1. दुनिया, संसार, विश्व का एक प्रभाग,
2. भूलोक,
3. मानवजाति,
4. प्रजा, राष्ट्र के व्यक्ति,
5. समुदाय, समूह, समिति,
6. क्षेत्र, इलाका, जिला, प्रान्त,
7. सामान्य जीवन, सामान्य व्यवहार,
8. सामान्य लोक प्रचलन,
9. दृष्टि या दर्शन।'[1(अ)]

इस प्रकार लोक पद से प्रसूत अर्थो से समस्त चराचर जगत लोक की परिधि में आ जाता है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रंथ अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र में 'लोक' को काव्य का सारतत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है– **'लोकानुकीर्तनं काव्यम्।'**[1(ब)] लोक का

अनुकीर्तन अर्थात प्रकाशन ही काव्य हैं। यह काव्यलक्षण कहता है कि, जो कुछ लोक में है उसी का प्रकाशन अथवा कथन काव्य में है। स्वाभाविक है कि लोक की चेतना काव्य की आत्मा है। इस अवसर पर राधावल्लभ त्रिपाठी ने लोक पद को व्याख्यायित किया है। वे कहते हैं–'लोकाशब्दस्तु लोकृ–धातोर्घञि प्रत्यये योजिते निषपद्यते। लोकयति भासते लोकते पश्यति वा इति लोकः। तत्र यदेव भासते प्रकाशमायाति तल्लोक इत्येवार्थोऽत्र ज्यायान्। तेन 'लोको नाम जनपदवासी जनः। जनपदश्च देश एव'। इत्यभिनवभारत्यां लोकधर्मिनिरूपणप्रसङ्गेऽभिनवगुप्तस्य, स्थावरजङ्गमात्मको लोक इति काव्यहेतुनिरूपणे मम्मटस्य च लक्षणे इह अग्राह्ये। लोक इति कथनेन न केवलं जनोऽपितु चराचरं जगदपि गृह्यत एव।'[1(स)] राधावल्लभ जी के अनुसार केवल जन अथवा स्थावर–जङ्गम ही लोक नहीं, अपितु चेतना से विभाव्यमान समग्र भुवन ही लोक है। यह लोक प्रतिक्षण परिर्वतनशील है। आधिमौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक के रूप में विभाजित तीनों लोक परस्पर सम्बद्ध है। इन तीनों का पूर्ण आनन्द ही जीवन है तथा वह पूर्णानन्दस्वरूपी जीवन साहित्य में प्रतिफलित होता है।

यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य में लोक पद एक वर्ग विशेष के रूप में संकुचित अर्थ देता है। डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय लोक को परिभाषित करते हुए कहते हैं– 'आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते है, जिनका आचार, विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियन्त्रित होता है।'[2] लोकगीत, लोकनृत्य, लोकभाषाा, लोक–वाद्य, लोकवेशभूषा आदि शब्द लोक के इसी अर्थ को प्रतिभासित कराते है।

प्रतिष्ठित अंग्रेजी शब्दकोष में लोक के पर्याय Folk को परिभाषित करते हुए कहा गया है :– 'Particular community of feeling of the ordinary people there'[3] :

एक अन्य शब्दकोष में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है :–'Treated as people in general or a specified class'[4]

ये दोनों परिभाषाएं लोक को एक संकुचित वर्ग से जोड़ती है। जब हम लोक चेतना की बात कर रहे है, तो हम राधावल्लभ जी के विराट लोक की ही बात कर रहे हैं। परिवार, समाज, राष्ट्र एवं इसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय आयामों को लोक में सम्मिलित किया जा सकता है।

'चेतना' पद देखना, सोचना, मनन करना, सकंल्प करना, अभिप्रेत या अभिलाषा अर्थ वाली **चित्** धातु से भावार्थक **ल्युट्** तथा स्त्री प्रत्यय **टाप्** से निष्पन्न है। जिसके व्युत्पेत्ति–परक अर्थ निम्न प्रकार है–

1. ज्ञान, संज्ञा, प्रतिबोध,
2. समझ, प्रज्ञा,
3. जीवन, प्राण, सजीवता,
4. बुद्धिमत्ता, विचार–विमर्श आदि।'[5]

अंग्रेजी में चेतना के समानार्थक Consciousness का अर्थ यही द्योतित करता है – 'The state of being conscious awake and aware of one's surroundings and identity'[6]

चेतना के अन्य समानार्थक शब्द feelings, understanding, intellect, sentiency, life, sensibility, sentiment, vitality, sense, sensation, wisdom आदि भी लगभग उन्हीं पूर्वोल्लेखित अर्थों को संकेतित करते हैं।

इस प्रकार अर्थ–निर्वचन से प्रतिपादित होता है कि लोकचेतना अर्थात् **दृश्यमान चराचर जगत् के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता, विचार-विमर्श, संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता को समष्टि रूप में लोकचेतना कहा जा सकता है।**

अभिराज राजेन्द्रमिश्र का सम्पूर्ण कर्तृत्व लोकचेतनामय है। वाणीत्रिवेणी में सिद्धहस्त कवि, काव्य की सभी विधाओं के माध्यम से लोककल्याण के पावन लक्ष्य को सम्पादित कर रहे हैं, परन्तु यहां कथासाहित्य के संदर्भ में उनके लोकचेतनामय दृष्टिकोण की समीक्षा की जा रही है। लोकचेतना के अन्तर्गत लोक के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक पक्षों तथा स्त्री व दलित के प्रति कवि के दृष्टिकोण की व्याख्या है, जिनको निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया गया है–

1) सामाजिक-चेतना

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। इस साहित्य रूपी दर्पण में समाज प्रतिबिम्बित होता है। साहित्यकार समाज का हृदय होता है। वो समाज को महसूस करता है व उसे दिशा प्रदान करता है। समाज के प्रति संवेदनशीलता कवित्व का मूलमंत्र है।

कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र समकालीन सामाजिक विसंगतियों एवं सुसंगतियों पर सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं। उनके साहित्य में समसामयकि समाज चलता–फिरता महसूस होता है।

सामाजिक चेतना अर्थात् समाज से सम्बन्धित चेतना, ज्ञान, समझ, बोध, प्रज्ञा, संवेदनशीलता, विचार–विमर्श अथवा जागरुकता। सामाजिक पद **'समाजः समावेशनं प्रयोजनमस्य ठञ्'**[7] से बना है और समाज पद **'सम** उपसर्ग (साथ–साथ, के साथ, मिलकर) पूर्वक **अज्** धातु (जाना) से भावार्थक **घञ्** प्रत्यय'[8] से निष्पन्न है, जिसका तात्पर्य है सभा, मिलन, मण्डल गोष्ठी, समिति, परिषद्, संख्या, समुच्चय, संग्रह अथवा आमोद प्रमोद विषयक मिलन। इस शाब्दिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि समाज साथ साथ मिलकर गति करने वाले लोगो के समूह में रहने का भाव, संकल्प अथवा सहमति है। मनुष्यों का एक ऐसा समूह, जो परस्पर सहमति से साथ में रहते हुए अपने जीवन के लक्ष्यों को पूरा करता है, उसे समाज कहा जा सकता है।

समाज का पर्याय अंग्रेजी Society शब्द भी लगभग इसी अर्थ को द्योतित करता है। 'Society means 'The Sum of human conditions and activity regarded as a whole functioning interdependently or a social community or a social model of lite or the customs and organization of an ordered community or the socially advantaged or prominent members of a community or participation in hospitality; other people's homes or company or companionship, company or an association of persons united by a common aim or interest or principle'[9].

इस असीम संसार में कवि ही प्रजापति होता है। यह पूरा का पूरा समाज उस रूप में परिणत हो जाता है, जिस रूप में कवि चाहता है। यही कारण है कि मम्मट ने कवि की सृष्टि को विधाता की सृष्टि से श्रेयस्कर बताया है। अग्निपुराण में कहा गया है–

'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथैतत् परिवर्तते।।'[10]

त्रिकालदर्शी कवि भूत को प्रत्यक्ष करवाने की, वर्तमान को संवेदित करवाने की एवं भविष्य की यथार्थ कल्पना करवाने की अद्भुत सामर्थ्य रखता है। वह चेतन–अचेन के स्वभाव में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। वह देव को दानव और दानव को देव बना सकता है। इसी ओर संकेत करते हुए कहा गया है–

'भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत्।

व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया।।'[11]

इतिहास में विद्यमान भूतकाल का समाज, प्रत्यक्ष, चलता फिरता जीवन्त यथार्थ वर्तमान समाज एवं हमारा परिकल्पित, निर्दोष, सुन्दर एवं स्वस्थ आने वाल समाज कविवर की दृष्टि में क्या है? कैसा है? कैसा होना चाहिए? उसकी सुसंगतियां एवं विसंगतियां क्या हैं? उसकी समस्याएं क्या हैं? और उनके समाधान क्या है? इन जिज्ञासाओं पर एक संवेदनशील ह्रदय एवं गहन दृष्टि से कविवर ने, जो समाज का सहज साक्षात्कार किया है वह अतुलनीय है। वे समाज में घट रही सुसंगतियों अथवा विसंगतियों को ह्रदय के अन्तरतम में महसूस करते हैं। उनकी निर्मल मनोभूमि मे सम्पूर्ण समकालीन समाज स्फटिक के समान प्रतिबिम्बित होता है।

सांस्कृतिक-संक्रमण के इस दौर में मानव मन किंकर्त्तव्यविमूढ़ है। एक तरफ विरासत में मिले जीवन मूल्य एवं संस्कार है दूसरी और भौतिकता की तरफ चल रही अंधी दौड़ है। सृष्टि मंगल के लिए निजी हितों की बलि देने वाला भारतीय समाज आज स्वार्थ के लिए शोषण करने के लिए आमादा है। नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। इसी पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कविवर कहते हैं—'समाजोऽयं न शीलमपेक्षते, न सौन्दर्यमाद्रियते, न वैदुषीं प्रशंसति, न धनवैभवं गणयति, न चरित्रे स्निह्यति, न दुराचाराय कुप्यति। विचित्रा खल्वस्य मूल्याङ्कन पद्धतिः। स्वार्थानुकूलं अवसरमात्रं निभालयत्ययं समाज।'[12]

सामाजिक-दिशाहीनता, स्वछंदता, अवसरवादिता एवं संवेदनहीनता पर प्रहार करते हुए वो कहते हैं कि समाज केवल असहाय, विवशः, कमजोर लोगों पर प्रभुत्व स्थापित करता हैं। एक ऐसी विचार परम्परा, नैतिक नियमावली अथवा सिद्धांतसरणि नहीं है, जो पूरे समाज को दिशा निर्देश देती हो। धनी और निर्धन, सशक्त और निशक्त, स्त्री और पुरूष, सबके लिए अलग—अलग नियम संचालित हो रहे हैं। समाज की इस विसंगति पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं—

'का कथा ज्ञानमौढ्यजडताग्रस्तस्य समाजस्य? विमुक्तनासारज्जुरिव क्रमेलको नायं पन्थानं समीक्षते। न तस्य कापि विचारसरणिः न वा स्थिरो निर्णयाधारः। समाजस्तु स्वार्थान्धः क्वचिदमृतमपि विषं घुष्यति क्वचित्पुनर्विषमप्यमृतं किं वेश्यागामिनो मन्दिरप्रवेशान्निवार्यन्ते?

किं वा पत्नीभिः शरीरभोगान्निषिध्यन्ते? समाजोऽयं केवलमसहायानां दोषान् पश्यति। अयन्तु शातयति केवलमार्जवोपेतान, न तावद् रावणजरासंधकंसप्रभृतीन्।'[13]

सुखशयितप्रच्छिका का नायक किसी भद्र पुरूष की अपने प्रति सद्भावना को देखकर आश्यर्य व्यक्त करते हुए कहता है कि 'अत्र सहस्त्रमिते रोगव्याधिग्रस्ते जनसमुदाये कः कं पृच्छति?................नवतिवर्षदेशीयाऽपि मम पितामही यथाकथञ्चिदपि जीवेत्............परन्तु पार्श्ववर्तिपर्यङकरस्थितः कस्यचिद् दीनजनस्य दुग्धमुखोऽपि गृहान्धकारदीपकभूतोऽपि बालको यदि रक्ताभावे रक्तक्रयोचितधनाभावे वा म्रियेत तर्हि म्रियतामिति मन्वाना एव स्वार्थान्धा विवेकशून्या जना अत्र वर्तन्ते।'[14]

एकचक्रः का नायक सामाजिक विषमता, दारिद्रय की विडम्बना एवं स्वार्थपरक समाज पर प्रहार करते हुए कहता है– 'सुभगम्मन्यो धनाढ्यो मुक्तहस्ताभ्यां रूप्यकाणि बण्टयति................ .... परन्तु निर्वराटिकस्य पुनः का कथा?........................ स्वार्थान्धोऽयं लोकः। स्वार्थसिद्धया सर्वमङ्गीकरोति स्वार्थविनाशेन च सर्वं तिरस्करोति।'[15]

वन्ध्या कहानी के निस्संतान रामदत्त के प्रति पूरे परिवार का दृष्टिकोण अचानक परिवर्तित हो जाता है जब 'भूमि चकबन्दी' का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है। परिवार की वे सभी भाभियां, जो उसकी पत्नी के सन्तानहीन होने पर दिन–रात ताने देती हैं, वे ही अब आवभगत में लगी हैं। 'सर्वासां भ्रातृजायानां बलवदमृतं निस्यन्दते स्म। लोचनेषु च सर्वासां कुसुमम्भररमणीयकं समुच्छलदलक्ष्यत।'[16]

सांस्कृतिक संक्रमण के परिणाम स्वरूप आए समाज के दोहरेपन को, कथनी और करनी के अंतर को नैतिकता और भौतिकता के बीच की दुविधा को चित्रपर्णी की छोटी–छोटी कहानियां एक क्षणिक कौंध के रूप में हमारे मस्तिष्क में प्रस्फुटित करती है। अभिनयः, द्विसन्धानम, पितृभक्तिः, काण्ठभाण्डम्, संस्कृतवर्षम्, पिशाचः, राष्ट्रपतिपुरस्कार, पात्रत्वम्, आत्मविश्लेषणम् मद्यनिषेधः आदि लघुकथाएं सामाजिक खोखलेपन दिखावे, आडम्बर, ढोंग एवं पाखण्ड को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त करती हैं।

काष्ठभाण्डम् कहानी में अयोग्य व्यक्ति के पद प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण अयोग्यताएं तिरोहित हो जाती हैं। इस विसंगति पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं कि 'सामाजिकदृष्टया या काऽपि पदोन्नतिर्जायते मानवस्य तया पदोन्नतया कामं तस्य पदमुन्नतं भवेत् परन्तु सांस्कारिका गुणा दुर्गुणाश्च अपरिवर्तितास्तिष्ठन्ति।'[17]

वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, सवर्ण-अवर्ण जैसे विषयों को भी कथाकार ने प्रसङ्गानुसार उठाया है। अनामिका कहानी में परित्यक्ता, नवजातकन्या को अपनाने के प्रश्न पर उसकी जाति का प्रश्न पहले पैदा होता है– 'साम्प्रतं प्रश्नोऽयं समुज्जृम्भते यदसौ जन्मदात्री यवनी उताहो हिन्दुगृहिणी यद्वा शिष्यधर्मावलम्बिनी!'[18]

हजारो वर्षो से जड़े जमाए हुए जाति व्यवस्था से जुडी हुई ऊंच–नीच की अवधारणाएं समाज की गहराई में बैठ चुकी हैं। सवर्ण अर्थात् उच्चकुलीन व संस्कारित तथा अवर्ण अर्थात् निम्नकुलीन व असंस्कारित अपराधी जैसी धारणा आज भी जनमानस में जड़ें जमाए हुए है। कुलदीपकः कहानी में लब्धप्रतिष्ठ अधिवक्ता अपने पुत्र के मित्र के फल विक्रेता पिता को आदतन अपराधी मानता है और कहता है कि सामान्यतया ये लोग अपराधी होते है तथा उनकी संगति में रहना लाभदायक नहीं है। ''तन्मते सामान्यजातिकाजना निश्चप्रचं नृशंसा अपराधपरायणाश्च भवन्ति। फलविक्रेतारः खटिकास्तु मनागपि न रोचन्ते तस्मै। यतोहि ते सर्वविधमपराधं कुर्वन्ति। चौर्यं क्रौर्यं हत्या लुण्ठनं प्रवञ्चनं, ग्रन्थिच्छेदनं, भित्तिभेदनं, मदिरानिर्माणम्, अवैधमद्यविक्रयम् इत्येतान सर्वानपि अपराधान् एते खटिकादिका एव कुर्वन्ति।''[19]

संकल्प कहानी में कविवर ने वर्णव्यवस्था को तार्किक दृष्टि पर औचित्यपूर्ण प्रतिपादित किया है, परन्तु उससे जुड़े कार्यो के साथ ऊंच–नीच का भाव जुड़ जाने से इन दोनों वर्गो के बीच एक खाई बन गई है, यह ठीक नहीं हैं। कर्मकार अपने पेशेवर कार्यो को छोड़ रहे हैं। राजनीतिक वर्ग इस भेद को मतलोलुपता के कारण बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं। वे कहते हैं–'पराकाष्ठामधिरूढे सति मतसंग्रहलोलुपशासनोत्थापिते सवर्णाऽसवर्णसंघर्षे सम्प्रति कोऽपि युवा चर्मकारः पारम्परिकं ग्रामकार्यं कर्त्तुं नेच्छति।'[20]

वर्णव्यवस्था, जो वस्तुतः जाति व्यवस्था नही है। प्रकृतिप्रदत्त गुणों एवं योग्यता के अनुसार कार्य चयन की व्यवस्था है। प्रत्येक प्राणी प्राकृतिक रूप से भिन्न होते हुए भी महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य है। इसी को प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं कि– 'प्रकृतिः स्वयमेवभिद्यते।................, चटको, मयूरः, पिकः, पारावतष्टिट्टिभश्चातक इति शतमिताः पक्षिणः। परस्परं भिन्नास्ते। परन्तु तेषां भिन्नत्वेऽपि वर्तते किञ्चिद् विलक्षणमेव रहस्याकर्षणम्।.............. ...तर्हि मानवानां भिन्नता कथं निन्द्यते।'[21]

प्रत्येक युग में अत्याचारी मनुष्य रहे हैं, परन्तु ऐसे मुट्ठीभर लोगों के लिए पूरे समाज को दोषी नहीं बनाया जा सकता। इन अपवादों को छोडकर अन्य हजारों लोग कल्याणकारी, दयाशील एवं सज्जन होते हैं। उन्हें भूलाया नही जा सकता। संकल्प कहानी का नायक कहता है कि 'कस्मिन् युगेऽत्याचारिणो नासन?...................परन्तु मुष्टिमितास्ते आसन् प्रत्येकस्मिन युगे। मुष्टिमितैस्तावत्समाजो न सुखं दुखं वाऽनुभवति। मुष्टिमिता उपेक्ष्यन्ते। समाजस्तु समाजनैव धार्यते। ग्रामेऽपि यदि द्वित्रा बर्बरा दुष्टाः सन्ति तर्हि सहस्त्रमिता अन्येऽनुकम्पाशीला सत्पुरुषाश्चापि। एतैः सहस्त्रमितैः सत्पुरूषैरेव समाजो ध्रियते चिरञ्जीवति च।'[22]

समाज कभी एक जैसा नहीं हो सकता। सब समान नही हो सकते। समाज का अस्तित्व इसकी भिन्नता एवं परस्पर पूरकता में है। इसकी सार्थकता इसी में है कि हम एक दूसरे को पूरा करते हुए समाज को पूर्णता प्रदान करें। जिस प्रकार शरीर के सभी अंग मिलकर शरीर के लिए कार्य करते है। उसी प्रकार समाज के सभी अंग मिलकर समाज एवं सामाजिक विकास के लिए कार्य करते हैं। शारीरिक, आर्थिक, भावनात्मक स्तर पर सब समान नहीं हो सकते, परन्तु हृदयों की समरसता हो सकती है, उसके लिए सार्थक प्रयास शासन के द्वारा किए जाने चाहिए—'को विशेषः सवर्णाऽसवर्णयोः यदि नामोभयोः हृदयं समरसं तर्हि न कोऽपि भेदस्तयो सवर्णेष्वपि किमसवर्णकल्पा निर्धना न वर्तन्ते? किं सवर्णेष्वसवर्णेषु वा सर्वेऽपि समाना एव। अर्थसाम्यप्रयासापेक्षया हृदयसाम्यस्थापनाप्रयासः सुकरः उपादेयश्च प्रतिभाति। हन्त, तदेव कार्यं शासनेन, न च क्रियते।'[23]

समाज बदल रहा है, लोग बदल रहें हैं, कार्यशैली बदल रही है, लोगों की मानसिकता बदल रही है। अब मनुष्य की जाति (जन्म से) से पहचान नही होकर उसके कार्य, गुण, योग्यता व क्षमता से पहचान बन रही है, यही वर्ण व्यवस्था है, जहां मनुष्य अपना कार्य अपनी रूचि एवं योग्यता के दृष्टिकोण से चुनता है। पैतृक अथवा जन्मजात कार्य उस पर थोपा नहीं जाता। वर्णव्यवस्था, जो कालान्तर में जाति व्यवस्था में रूपान्तरित हो गई, अब पुनः वर्णव्यवस्था में ढलती जा रही है। यह बदलता समाज कविवर की कहानियों में परिलक्षित होता है। संकल्प कहानी में असवर्ण, अस्पृश्य एवं शूद्र कहलाये जाने की पीड़ा से ग्रस्त और पलायन का रास्ता अपनाने को आतुर अपने पुत्र मोगी को समझाते हुए निहोर कहता है—''पुरावृत्तमिदं जातम्। सम्प्रति समुज्जृम्भते नूतनस्समाजों यत्र मानवः स्वगुणैरव

प्रतिष्ठितो, न पुनः स्वजात्या। त्वमेव ब्रूहि। किं नाद्रियते त्वां डॉक्टरराकेशः? किं त्वया सह चायं न पिबति? किं रोगोपचारप्रसङ्गे गन्तुमनास्त्वामनुजकल्पं स्कूटरयाने पश्चात्समारोह्य न नयति? कुत्रापि सवर्णगृहे किं जातस्तेऽपमानः?'[24]

भारतीय संस्कृति के स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठापित विवाह संस्कार के प्रति कविवर का सहज, सन्तुलित, समन्वित एवं आदर्श दृष्टिकोण है। प्रकृति प्रदत्त गुणों के साथ एक दूसरे के पूरक बनकर परिवार एवं समाज को पूर्णता प्रदान करते स्त्री–पुरूष अपने अपने स्वाभाविक अधिकारों एवं सम्मान के साथ समाज में जीवन व्यतीत करें। परिवार की एक इकाई के रूप में दोनों का महत्त्व एवं अनिवार्यता बराबर है। अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना वाली संस्कृति में शिव एवं शक्ति के प्रतीक पुरूष एवं स्त्री किसी भी दशा में कम या ज्यादा नहीं है। अपनी कोमलता–कठोरता, आदर्श–व्यावहारिकता, परिवार एवं बाह्य कर्त्तव्यों के साथ दोनो महत्त्वपूर्ण हैं। पति–पत्नी अपने–अपने प्राकृतिक गुणों, अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के साथ अपनी स्वाभाविक जिन्दगी को आनन्दपूर्वक जीते हुए अपना एवं समाज का कल्याण करें। इसी आदर्श परिकल्पना को प्रतिपादित करते हुए कवि कहते हैं, 'दाम्पत्यं नाम किम्? मिथः प्रणयनिबद्धयोर्द्वयोः स्त्रीपुरूषयोर्नैष्ठिकसंयोगः। निष्ठैव दाम्पत्यमूलम्। इयं निष्ठाऽप्युभयपक्षीयैव। यथा पत्न्या निष्ठा पतिं प्रत्यपेक्ष्यते तथैव पत्नीं प्रति पत्युरपि। एवं ही दाम्पत्ये न कोऽपि कमपि कथमप्यनुगृहणात्युपकारोति वा। आत्मकर्त्तव्यनिर्वहणे दाम्पत्योचितनिष्ठापरिपालने वा कीदृशः उपकारभावः? कीदृशी अधमर्णतोत्तमर्णता वा?'[25]

दाम्पत्य जीवन का यह आदर्श सन्तुलन जब कभी बिगड़ता है, गृहस्थी की गाड़ी की गति बिगड़ जाती है। समाज में अक्सर ऐसे असंतुलन देखने को मिल जाते हैं। एक ऐसा संयोग या कहें कि दुर्योग जिससे दो ऐसे लोग वैवाहिक सूत्र में बंध जाते हैं, जिनका कोई मेल नहीं है तो यह विडम्बना दो लोगों के जीवन को नष्ट कर देती है। इस विषमता को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं– 'तुल्यगुणं वधूवरं विधाता क्व समानयति? दुष्यन्तशकुन्तलां संयोजयन्नसौ कामं चिरस्य वाच्यं न गतः। परन्तु अस्मिन्ननेहसि तु पदे पदे विषमसाहचर्यं दृश्यते।'[26]

बाल-विवाह जैसी सामाजिक समस्या को भी कविवर ने किचिंत रेखांकित किया है। बाल सुलभ क्रीड़ाओं में रत अबोधमना बालकों को विवाह जैसी गम्भीर जिम्मेदारी में बांध देना, जब इसका तात्पर्य भी पता नहीं होता, उनके साथ अन्याय है। ऐसे में उसका

स्वाभाविक विकास एवं बचपन तो रुकता ही है, अपितु वह उपहास का पात्र भी बनता है। बाल्यकाल से ही विवाहित सात कन्याओं के पिता रामलाल के बारे में कवि कहते है कि–'श्मायाजन्मकाले रामलालः पंचदशवर्षेदेशीय एवासीत। पितृत्वाभिप्रायमपि न दृढ़ ज्ञातवान्। पत्न्या सार्धं संक्रीडन्नेव तनयोपायनं लेभे। सर्वेऽपि तस्योपहासं कृतवन्तः प्रजननत्वरार्थम्। इदानीं तु सप्त जाताः। न कोऽप्युपहसति साम्प्रतम्। परन्तु रामलालस्यान्तरात्मेदानी स्वयमेव तस्योपहासं विदधाति।'[27]

विवाह एक पवित्र सम्बन्ध है, जो जीवन को संचालित करने के लिए अपरिहार्य तो नहीं, परन्तु महत्त्वपूर्ण एवं सार्थकता प्रदान करने वाला संस्कार है। इसके बिना जीवन अपूर्ण व एकांगी है। प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन अपने तरीके से तथा अपने द्वारा चयनित साथी के साथ जीने का अधिकार है। इसी दृष्टिकोण से कविवर **विधवाविवाह,** किसी भी कारण से एकल हुई महिला का **पुनर्विवाह, अर्न्तजातीय-विवाह एवं प्रेमविवाह** का समर्थन करते हैं, साथ ही उसका औचित्य भी सिद्ध करते हैं। भग्नपञ्जर, मरून्यग्रोध, पुनर्नवा जैसी कथाओं में कवि ने विधवाविवाह के द्वारा नायिकाओं को अपने सपनों में रंग भरने का अवसर प्रदान किया है। वे कहते हैं कि 'सर्वा अपि स्मृतयः सर्वेऽपि महर्षयो विधवा विवाहं समर्थयन्ते।'[28]

जहां वाग्दत्ता, प्रीतियोगः, पत्रसंवादः, आद्यन्तम् कथाएं प्रेमविवाह के समर्थन में खड़ी दिखाई देती हैं, वहीं जामाता, गौर्यावरः जैसी कथाएं **दहेज-समस्या** का समाधान हैं।

विवाहेतर सम्बन्धों से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पोतविहगौ कथा सम्यक प्रकार से करती है। सामाजिक मान्यता प्राप्त विवाह एवं जीवन साथी छोडकर जब दो लोग विवाह से इतर सम्बन्ध में बंधते हैं, तो जहाज के पक्षी की तरह दोनों एक दूसरे के शरणस्थली हो जाते हैं। पोतविहगौ का नायक निहाल अपनी प्रेमिका महुली से कहता है–'मुग्धे पोतविहगावावाम्। परस्परं प्रविहाय नावयोः काप्यन्या गतिः। महुलि! यथा जलपोत–विहगोऽनन्ताकाशे प्रोड्डीय परिश्रम्य च विवशीभूय पुनस्तत्रैवागच्छतिशरणमन्विच्छम् आवयोऽपि सैव स्थितिः।'[29]

चञ्चा एवं नर्तकी कहानी वेश्याओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के साथ ही वेश्याओं अथवा नर्तकियों के मानवीय स्वरूप को भी प्रतिपादित करती है।

समाज में असहाय एवं एकाकी जीवन जी रहे **वृद्धजनों की पीड़ा** पर भी कथाकार की दृष्टि गई है। बदलते सामाजिक परिवेश में, जहां जीवन गतिशील एवं व्यस्त हो रहा है। हमारी नई पीढ़ी भौतिकता की दौड़ में भाग रही है। पुराने जीवन मूल्य फीके पड़े रहे हैं। पुराने लोग एवं नयी पीढ़ी के बीच वैचारिक अन्तराल की खाई पैदा हो रही है। इस समस्या पर एकचक्रः कहानी ध्यान आकर्षित करती है। कथा का नायक वर्णान्तर कन्या से विवाहोपरान्त उत्पन्न पिता से मतभेद को व्यक्त करते हुए कहता है–'शास्त्रप्रमाणोऽसावासीत्। लोकप्रमाणश्चाहम्। शेमुषीसञ्चालितोऽसावासीत्। हृदयंसंचालितश्चाहम्। परम्परापालकोऽसावासीत्। परम्पराप्रवर्तकश्चाहम्। भावशबलता पक्षधरोऽसावासीत्। अहं पुनः करूणामेव समग्रजीवनासेचनवल्लीं मन्यमानः।'[30] यह विश्लेषण पीढ़ियों के मानसिक संघर्ष को रूपायित करता है। वृद्धावस्था की पीड़ा के साथ एकाकार होते हुए कवि कहते हैं–'गृहे एक एव लघुकक्षो मत्पदगतिनियन्ता। नान्यत्र कवचिद् गच्छामि। तत्रैव सर्वं वस्तुजातं निदधे। तथापि कक्षोऽसौ सम्प्रति ग्रहनक्षत्राकाशगङ्गोल्कापिण्डादिसमन्वितो जटिलजटिलो ब्रह्माण्ड एव प्रतीयते।'[31] और भी 'एकचक्रोऽधुनायं जीवनरथस्तथापि संकल्पाश्वैर्यथायथमाकृष्यत एव। यात्रैव जीवनरथस्य लक्ष्यम्।'[32]

इस प्रकार कविवर समाज के हृदयों की गहराई में उतरकर उनकी पीडा को अनुभव करते हैं, अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देते हैं तथा साथ ही समाधान भी।

उनका लघुकथासंग्रह चित्रपर्णी छोटी–छोटी सामाजिक संवेदनाओं का तानाबाना है। इसमें एक कौंध के साथ संवेदनाएं आती हैं और हमें जगा कर चली जाती हैं। वे हमारे भीतर प्रेरणा का संचार करती हैं, हमारा दिग्दर्शन करती है।

इसकी अभिनयः, द्विसन्धानम् पितृभक्तिः आत्मविश्लेषणम्, मद्यनिषेधः, राष्ट्रपति पुरस्कारः, काष्ठभाण्डम्, संस्कृतवर्षम्, पिशाचः, पात्रत्वम् जैसी कथाएं समाज के दोहरे चरित्र, को प्रकट करती हैं। वे कहते हैं–'कलियुगेऽस्मिन् प्रचारतन्त्रमेव जीवितसर्वस्वम्।'[33]

अपि च–

'अस्माकम् प्रेष्ठा अपि जीवनादर्शाः प्रायेण खली भवन्ति।..................... एवं हि केषाचिंदेव मुष्टिमितानां जीवनं सिद्धान्तैर्व्यवहारैश्चाद्वैतं भजते।'[34] छागबलिः, वृद्धामहिषी, कुक्की, कृतज्ञ, अश्रुमूल्यम्, प्राणभयम्, इदम्प्रथमतया, नयनयोर्भाषा, वैराग्यम् आदि कथाएं

कविवर की पशुपक्षियों एवं समस्त पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता के प्रकट करती है। इस प्रकार कवि की कथाओं में समाज का ताना–बाना झलकता है।

2) स्त्री-चेतना

अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना, भारतीय संस्कृति के दर्शन की अभिव्यक्ति है। स्त्री व पुरूष परस्पर पूरकता प्रदान करने वाले सृष्टि के दो अंश हैं। दोनों अपनी अपनी विलक्षण विशिष्टताओं के साथ संसार को पूर्णता प्रदान करते हैं। एक ही शरीर के दो अंशों के रूप में परिकल्पना ही इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि भारतीय संस्कृति स्त्री एवं पुरूष को समान महत्ता देती है। उन दोनो में से कोई भी आगे या पीछे, ऊपर या नीचे, श्रेष्ठ या हीन, स्वामी या सेवक भोगी या भोग्या नहीं हो सकते, परन्तु विडम्बना यह है कि कालान्तर में सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक व राजनैतिक कारणों से स्त्री मनुष्यता के स्तर से च्युत कर दी गई। उसके अधिकारों एवं दायित्वों को घर की चारदीवारी तक सीमित कर दिया गया। आर्थिक, मानसिक व शारीरिक स्वतंत्रता छीन ली गई और समाज में उनकी स्थिति दूसरे दर्जे की हो गई। शारीरिक, मानसिक व आर्थिक मजबूती ने पुरूष को प्रथम स्थान पर लाकर, उसको प्रधान बना दिया। स्त्री की कोमलता, ममत्व, सहिष्णुता, उदारता, समर्पण उसकी कमजोरी बन गए। इस स्थिति से सारे सामाजिक समीकरण बिगङ गए। धीरे–धीरे स्त्री उन समस्त अधिकारों से वंचित होती चली गई, जो उसे मनुष्य होने के नाते मिलने चाहिए। उसकी निर्णय क्षमता, स्वतंत्रता, आत्मविश्वास, स्वाभिमान पुरूष प्रधान समाज की धरोहर हो गए। वह पुरूष के उपभोग की वस्तु हो गई। परिवार, समाज एवं राष्ट्र में उसकी सक्रियता गौण हो गई। उसे सिर्फ कर्तव्यों से लादा गया। प्राकृतिक रुप से कोमलता, वात्सल्य, ममता, उदारता, सहनशीलता जैसी प्रकृति प्रदत्त विलक्षणाओं के कारण स्त्री को मातृत्व की गरिमा एवं पारिवारिक संरक्षण जैसा महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व प्राप्त हुआ और पुरूष को उसकी कठोरता, व्यावहारिकता, तार्किकता एवं शक्ति के कारण अर्थोपार्जन एवं सुरक्षा का दायित्व प्राप्त हुआ। इस चराचर जगत की प्रत्येक इकाई का अपना स्थान एवं महत्त्व है। इस सम्पूर्ण श्रृंखला में एक का भी अस्तित्व नष्ट या क्षीण होता है तो समस्त जङजंगम जगत दोलायमान हो जाता है, परन्तु इस सृष्टि के सर्वाधिक विवकेशील प्राणी से यहाँ चूक हुई और उसने स्त्री की कोमलता को कमजोरी मानते हुए उसे मानवोचित पद से पतित कर, उसकी क्षमताओं, एवं संभावनाओं

को नष्ट प्राय कर सृष्टि के आधे भाग को जीर्णशीर्ण एवं खोखला कर दिया। इस प्रकार पूरी दुनियां को अपने भीतर आकार प्रदान करने वाली, उसको परवरिश एवं संस्कार देने वाली स्त्री को भावहीन एवं शुष्कप्राय करने का प्रयास किया गया। यह प्रयास एक सामाजिक विकृति का रूप धारण कर गर्भ से लेकर कब्र तक स्त्री के साथ अन्याय का आधार बना। इस **सामाजिक संरचनागत दोष के कारण कन्याभ्रूण/शिशु हत्या, लिङ्ग भेद, बालिका-अशिक्षा, बेमेल विवाह, बलात्कार, यौन उत्पीडन, बहुविवाह, वन्ध्यत्व की अवधारणा, विधवा-दुर्दशा, वेश्यावृत्ति, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, दहेज प्रथा एवं स्त्री के भोग्या स्वरूप की अवधारणा जैसे विकार उत्पन्न हुए।**

समकालीन समाज सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं को सुरक्षित रखते हुए स्त्री के अस्तित्व के लिए निरन्तर प्रयासरत है। स्वाधीन भारत में स्त्री–पुरूष को समान संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए है, परन्तु सुविधा, स्थान, गरिमा एवं अधिकार प्राप्ति की दृष्टि से वह समाज में अभी भी कमजोर स्थिति में है।

समाज में, जो भी कुछ विद्यमान है, वह सब कुछ साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। समाज में विद्यमान स्त्री–पुरूष का बिगडता असंतुलन भी कवि की दृष्टि से बचा नहीं रह सकता। साहित्य के क्षेत्र में स्त्रीविमर्श अथवा **नारीचेतना** की बात करना अर्थात **आधी दुनियां के माध्यम से पूरी दुनिया के कल्याण की बात करना है।**

कविवर ने सम्पूर्ण कथा साहित्य को स्त्री चेतना के केन्द्र पर एकाग्र करते हुए जनकल्याण के मांगलिक लक्ष्य को सार्थक रूप से प्रतिपादित किया है। समसामयिक संदर्भो में नारी मुक्ति एवं नारी उत्थान के ध्वज को लेकर चलने वाली नेतृत्वशक्ति सम्पूर्ण सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन मूल्यों को तहस–नहस कर, सभ्यता को भयावह संघर्ष की दिशा में धकेल रही है, परन्तु कविवर जैसे मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, **तार्किक एवं भावनात्मक धरातल के चिंतक एक तरफ भारतीय संजीवनी स्वरुप जीवन मूल्यों को संरक्षित कर रहे है, वहीं दूसरी ओर सड़ी-गली, जीर्ण-शीर्ण शाखाओं एवं पत्तियों की कटाई छंटाई कर प्रासंगिक जीवन मूल्यों की अमृतधारा व चिंतन एवं तर्क के खाद-पानी से सिंचन कर समसामयिक संदर्भो में सृष्टि-मंगल करने वाले संस्कृति-वृक्ष को पुष्पित एवं पल्लवित करने का पावन यज्ञ कर रहे हैं।**

कविवर ने नवीन समय एवं नवीन विचार–सरणि के अनुकूल नवीन समाधान प्रस्तुत करते हुए 'पुराणमित्येव न साधुं सर्वम' की विचारधारा पर चलते हुए नवीन एवं प्राचीन का

सामंजस्य कर नवीन प्रासंगिक जीवन मूल्यों की सर्जना की है। स्त्री परिवार, समाज एवं राष्ट्र की मेरूदण्ड है। उसका विकास राष्ट्र का विकास है। अतः कविवर उसके सपनों आकांक्षाओं, कल्पनाओं को पंख देने के पक्षधर हैं, परन्तु स्त्री अस्मिता एवं सुरक्षा के दृष्टिकोण से मर्यादा के अतिक्रमण के पक्ष में बिल्कुल नहीं हैं। इक्षुगन्धा की नायिका बिट्टी अपने प्रिय युवक को वर के रूप में न पाकर अन्यत्र ब्याह दी जाती है। भविष्य में उसी युवक को अपने पति के अधिकारी के रूप में पाकर भी वह सर्वात्मना अपनी मर्यादा की रक्षा करती है। दोनों के मन में झंझावात उठ खड़ा होता है, परन्तु सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का विवेक उस पर बांध बन जाता है और दोनों की संतान उस स्नेह सूत्र का पावन सेतु बन जाती है। उनका प्रेम उनकी संतति में फलित होता है–

'यत्प्रेम केनचित्लोकप्रत्यवायेन वा कुटुम्बिमौढ्येन
वाऽवयोर्न फलितं तद्यदि वत्सयोः फलेत्।'[35]

अवांछित वर को पाकर भी नायिका विमला अपने गृहस्थ धर्म को निभाती है तथा मधुप में अनुरक्त अपने मन को नियन्त्रित करती है।

वैधव्य भारतीय समाज में एक विडम्बना है। चूंकि स्त्री को भोग्या, रमणी, काम्या स्वरूपों में परिकल्पित किया जाने लगा, तब किसी के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही उसे उपभुक्त माना जाने लगा। सामान्यतया भारतीय समाज में विधवा स्त्री जो वैवाहिक जीवन बिता चुकी है अथवा जिसका विवाह हो चुका है, उसे पुरूष, विवाह के लिए वरेण्य नहीं मानता। पुरूष के मरते ही उसका समस्त श्रृंगार/सौभाग्य चला जाता है। उसके जाने पर स्त्री के जीवन में श्रृंगार, रंग, हंसी, उत्साह, उमंग, स्वप्न, महत्त्वाकांक्षाएं, भावनाएं इन सबका कोई औचित्य नहीं है। ऐसी विकृत अवधारणा रूपी सामाजिक रोग के चलते विधवा स्त्री का जीवन चलता–फिरता निष्प्राण शरीर है, परन्तु कविवर ने अपनी कथाओं में विधवा स्त्री को पुनः जीवन यात्रा शुरू करने का पथ प्रशस्त किया है। उनकी भग्नपञ्जर, पुनर्नवा, मरून्यग्रोध जैसी कहानियां वैधव्य के दंश से मृतप्राय विधवा स्त्रियों के हृदय के अन्तःस्थल तक जाकर उनकी पीड़ाओं के साथ एकाकार होती है तथा उन्हें उज्ज्वल भविष्य का समाधान देती हैं।

भग्नपञ्जर की नायिका वन्दना पति के मरते ही ससुराल से निकाल दी जाती है, पिता के घर में अवांछित उपस्थिति से सबके तिरस्कार का पात्र बनती है, पिता उसे विरक्त

रहकर भगवद्भक्ति में मन लगाने का उपदेश देते है, परन्तु वन्दना एक जीती जागती इंसान है, उसकी कामनाएं मरी नही हैं, उसका जीवन समाप्त नही हुआ है, उसके अपने सपने हैं, उम्मीदे हैं, आकांक्षाएं हैं। तथाकथित उच्च संस्कार सम्पन्न परिवार विधवा विवाह को निन्दनीय मानते हैं। वंदना के पिता कहते हैं– 'न वयं संस्कारहीना निम्नजातीया वा। पुनरपि त्वां पाणिभ्यां ग्राहयितुं न वयं समर्थाः। एवं सति व्रतोपवासैः धर्माचरणैश्चैव जीवनयात्रा सम्पादयितुं शक्ष्यते।'[36]

समाज यह अपेक्षा रखता है कि पति के मरते ही विधवा स्त्री की संवेदनाएं भी मर जानी चाहिए। उसे प्रस्तरवत हो जाना चाहिए, परन्तु किसी के चाहने से ऐसा होता नहीं है। हर इंसान की तरह विधवा स्त्री के भी सपने हैं, कामनाएं हैं, भोगेच्छा है। उसका मन या तो कुण्ठित या विद्रोही हो जाता है। **विधवा स्त्रियों के हृदयों का प्रतिनिधित्व** करते हुए **वंदना की विचार शृंखला में** कविवर कहते हैं– 'माँ पुनरभिशप्तां पाषाणीमहल्यां जानाति? भस्मीभूतं मदीयं सौख्यसंसारं तृणकमपि नं स्मरति? ननु कस्मात्? किम्ममपघनेषु चेतना नास्ति? किम्ममपि बलीयसी सुखेच्छा, भोगेच्छा वा नास्ति? ममापि क्रोड़े कोऽपि बन्धुरश्चन्दिरो निर्भरं क्रीडतु। ममापि वक्षस्थले क्षीरभारभङ्गुरा मन्दाकिनी मन्दं मन्दकतु। ममापि कोऽपि जीवनसूत्रधारः स्यात् यस्य वक्षसि शीर्ष निधायाहमपि स्वातीतं विस्मरेयम्।'[37]

संयोग या दुर्घटनावश पति की मृत्यु के लिए पत्नी के जीवन को भारस्वरुप कर देना प्राकृतिक न्याय के खिलाफ है। प्रत्येक मनुष्य का अपना जीवनकाल है, पाप है, पुण्य है, कर्म है, कर्मफल है, मृत्यु है। दो लोग, जो साथ–साथ जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेते है, उनमें से किसी एक का चले जाना दूसरे के लिए घातक, दुःखमयी एवं असहनीय होता हैं, परन्तु परमात्मा प्रदत्त सांसो को किसी के जाने से रोका नहीं जा सकता। विधवा होना अपराध नहीं है। इसी मनोदशा को अभिव्यक्ति देते हुए कविवर ने वन्दना की मनोव्यथा में व्यक्त किया है। वह सोचती है– 'विधवास्मि जाता। किमपराद्धम्मया? जीवनमिदं विधात्रा जीवनाय दत्तम्। अहं भृशं जीवामि। किमपराद्धं मया? यो मामसहायां विहायोपद्रुतः मां विधवामङ्गलकरीञ्चोद्घोष्य पलायितः मम सौख्यसौधं भस्मसात् कृत्य विलीनः किन्तेन नापराद्धम्? किं पतिवियोगेऽपि जीवत्या कुन्त्याऽपराद्धं दुर्गावत्यापराद्धं देव्या इन्दिरयाऽपराद्धम्?'[38]

पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री का जीवन रूपी सूर्य अस्त हो जाता है जिसके फिर कभी उदय होने की आशा नहीं है। पुनर्नवा की नायिका कृष्णा के पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्थिति को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है –'शुक्लपक्षीया चन्द्रकलेवोत्तरोत्तरं वृद्धिमुपगच्छन्ती कृष्णायाः सौभाग्यलेखापर्वणि परां काष्ठामवाप्यापि प्रतिपद्यपरेद्युरेव क्षीणतामुपगता अमायाञ्च परमार्थत एवं विलीनाऽनन्ततमसि।'[39]

पति मृत्यु के उपरान्त अनघा भी कृष्णा की स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया गया है– 'हा हन्त, देवचरणार्पणात्प्रागेव पुष्पमाला कर्दमे निपत्य मलीमसा जाता। कर्मानुष्ठानात्प्रागेव गोमयोपलिप्ता पूजाभूमिः कोलदलसंचक्रमणैरपवित्रा जाता। धवप्राप्ते पूर्वमेव वैधव्यम्।'[40] वैधव्य अर्थात भावशून्यता 'भावशून्यं जातं कृष्णाया जीवनम्।'[41]

समाज में वैधव्य सहानुभूति का कारण नहीं, अपितु तिरस्कार, अपमान एवं संवेदनहीनता का कारण है। समाज की इसी विवेकहीन, तर्कहीन एवं अन्यायपूर्ण दृष्टि को व्यक्त करते हुए पुनर्नवा की नायिका कृष्णा के बारे में कविवर कहते हैं – 'समाजदृष्याऽसाविदानीं नासीत्सहानुभूतिपात्रम्। प्रत्युत् सर्वविधाऽमङ्गलानां हेतुः पत्युश्चापि जीवनसूत्रोच्छेत्री आसीत्।'[42]

हमारी भारतीय पारम्परिक सामाजिक मान्यताओं के अनुसार पति, पत्नी का आश्रय, जीवनाधार एवं स्वामी है। पति की मृत्यु होते ही वह शरणहीन, आश्रयहीन, बेसहारा एवं असहाय है। यह **समाज उसे अकेली पाकर सर्वसुलभ भोग्या वस्तु की दृष्टि से देखता है।** मरुन्यग्रोध की नायिका श्यामा के परिवार को प्लेग नामक रोग ने लील लिया। सन्तानहीन सदानन्द की पत्नी घर में अकेली रह गई। उसके पड़ौसी उसकी भूमि के बाद अब उसके शरीर को भी हथियाना चाहते हैं– 'ते तस्याश्चरित्रमपि सुरसरित्परिपुतमाविलयितुं बद्धपरिकरा आसन्।'[43] चरित्र प्रमाण पत्र देने के बदले में चिकित्सक ने भी उसका शारीरिक शोषण किया 'एकान्तकक्षे स्वकीये विविधपरीक्षाव्याजेन वराकीं भोगतृष्णोन्मथितां श्यामामनुकूलयित्वाऽसौ स्वैरं भुक्तवान्।'[44] इस रहस्य को जानने वाले महेश्वर के साथ भी उसके शारीरिक सम्बन्ध बने। पड़ौसी दयालु भी उसके प्रति भोगेच्छा रखता था – 'यद्यपि भोगम्बुधिसमुच्छलनं दयालुहृदयेऽप्यासीत्। तथाप्यज्ञातश्यामाचौर्यसुरतवृत्तोऽसौ श्यामां परमासाध्वीमेव मन्वानस्तस्मात्प्रसङ्गादविरत एवाऽसीत।'[45] यही सामाजिक विडम्बना है।

पुरूष प्रमुख सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक भोग–लोलुप मनुष्य आश्रयहीन एवं सुलभ स्त्री को अपनी वासना पूर्ति का आधार बनाने की अन्तर्निहित कामना रखता है।

कविवर वैधव्य की सम्पूर्ण विडम्बना, समाज के इसके प्रति अनौचित्यपूर्ण दृष्टिकोण एवं विधवा की मानसिक स्थिति के प्रति संवेदनशील हैं। वे जानते हैं कि तथाकथित उच्च वर्गीय संस्कार सम्पन्न परिवार सभ्यता, धर्म और संस्कृति की दुहाई देकर पुनर्विवाह का निषेध करते है। भग्नपञ्जर की नायिका वन्दना के पिता कहते है– 'न वयं संस्कारहीना निम्न जातीया वा। पुनरपि त्वां पाणिभ्यां ग्राहयितुं न वयं समर्थाः।'[46] पुनर्नवा की नायिका कृष्णा के पति के मरने के पश्चात् समाज की दृष्टि से उसका पुनर्विवाह अचिन्तनीय है, 'उच्च्कुलोत्पन्नत्वात् तस्याः पुनर्विवाहोऽप्यचिन्तनीय एवासीत् एवं कृते सति दुर्निवारमेवासीत्कुल मार्यादाविनाशभयम्। .... अस्मादेव कुलान्मर्यादा– नद्यः प्रभवन्तिस्म।'[47]

तार्किक, मनौवैज्ञानिक एवं शास्त्रीय चिन्तन के धनी अभिराज राजेन्द्रमिश्र नारी हृदय की पीड़ा के साथ एकाकर होते हुए उसे **नया जीवन देने के पक्षधर हैं।** 'भग्नपञ्जर' की नायिका वन्दना के हृदय की पीड़ा पूरे समाज की विधवाओं की पीड़ा है। उसका समाज से प्रश्न पूरे समाज से प्रश्न है। उसकी विचारधारा में नई संभावनाओं की तलाश है। पुनर्विवाह रूपी संस्कार विधवा के जीवन में उम्मीद की नई किरण है। वन्दना का विचारमन्थन दर्शनीय है–'किं पुनर्विवाहो में पापायैव प्रभविष्यति न पुण्याय? वात्याध्वस्तं कुटीरं सर्वे पुनर्व्यवस्थापयन्ति। मलीमसं जलं निर्मलीकृत्य पिबन्ति। रोगग्रस्तं शरीरमौषधोपचारैः स्वस्थं विदधाति। तत् किं वैधव्यमेव निरौषधम्?,[48] कितना सटीक प्रश्न है कि यदि समस्त सांसारिक वस्तुएं पुनरुद्धार के योग्य है तो सजीव, सप्राण, संवेदनशील, हतभाग्य स्त्री का पुनरुद्धार क्यों नहीं हो सकता।

वन्दना अपनी **अन्तरात्मा** की आवाज सुनती है, जो उसे समस्त **बन्धनों व रूढ़ियों की बेड़ियों को तोड़कर अनन्त आकाश में विहरण का स्वप्न देती है-** 'उत्तिष्ठ भद्रे! भग्नपंजरोऽयं पितृगेहः। मुञ्चेमम्। प्रतीक्षते त्वां जयदेवः। .... विजहि भग्नपंजरमिमं सारिके! विहर नीलनभोमण्डले। तत्रास्ति जीवनम्! तत्रास्ति ते कांक्षित सहचरः! तत्रास्ति ते चिरवाञ्छितं कल्पनासाम्राज्यम्।'[49]

हर किसी को अपना जीवन नए सिरे से शुरू करने का अधिकार है। मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक वरदान को, मानव जीवन को, भावनाओं को उमंगों को, आशाओं को, उम्मीदों को जीने का अधिकार है। यह कार्य स्त्री को स्वयं ही करना है। क्योंकि यह उसका जीवन है, अतः उस जीवन के बारे में निर्णय उसे ही करना है। ईश्वर भी उसी की मदद करता है, जो स्वयं की मदद करता है। आत्मकल्याण हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। भग्नपञ्जर की नायिका वन्दना निर्णय करती है–'स्वभविष्यपथनिर्माणं मयैव करणीयं। मत्सतीर्थ्यो जयदेव इदानीमपि मत्पाणी याचते। तेन सार्धं निवसन्ती भार्याधर्मञ्च पालयन्त्यहं सर्वमैहिकमामुष्यिकञ्च कल्याणं प्राप्स्यामि।'[50]

देवर शब्द की महर्षियास्ककृत व्याख्या 'देवर इति कस्मात? देवरः द्वितीयोवरो भवतीति।'[51] से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में पति के अनुज से विधवा भाभी के विवाह की व्यवस्था थी। राम ने मन्दोदरी का विभीषण से तथा तारा का सुग्रीव से विवाह करने का समर्थन किया था।

कालान्तर में यह परम्परा समाप्तप्राय हो गई। इसका कारण समाज का अज्ञान अथवा रूढ़िवादिता है। जिस प्रकार अवरुद्ध प्रवाह वाले सरोवर का जल सड़कर अपेय हो जाता है, उसी प्रकार छोड़ दी गई अथवा भुला दी गई परिपाटियां अधर्म की पर्याय हो जाती है, अन्यथा उदारचित्त वाले महर्षियों एवं स्मृतिकारों ने मुक्त कंठ से न केवल विधवाओं, बल्कि किसी भी कारण से पतिहीन युवतियों के विवाह का समर्थन किया है। नवीन कौटिल्य आदि ने भी पुनर्विवाह अथवा विधवा विवाह का समर्थन किया है।

पुनर्नवा की नायिका कृष्णा का भाई शैलेन्द्र एवं उसका मित्र विनोद शास्त्रों का प्रामाणिक ज्ञान रखने वाले और पुनर्विवाह का समर्थन करने वाले हैं। विनोद की बहिन, जो एक पुत्री के जन्म के बाद विधवा हो गई थी। उसका उनके दीक्षागुरू महेश्वरानन्द के मार्गदर्शन के कारण पुनर्विवाह हुआ है। उन्हीं की सहायता से कृष्णा का एवं उसके विधुर भाई का वे विवाह करवाना चाहते हैं। महेश्वरानन्द के मुख से कविवर **पुनर्विवाह का शास्त्रीय आधार** पर औचित्य प्रस्तुत करते हैं –

'सर्वा अपि स्मृतयः सर्वेऽपि महर्षयो विधवा विवाहं समर्थयन्ते। यथा वर्षाजल परीवाहेनाऽपेयसलिलाऽपि वापी परमार्थतः शुध्यति। तथैव प्रत्येकं रजोदर्शनेन नारी शुध्यतीति

स्मृतयस्समुपदिशन्ति। ब्रह्मर्षिर्वशिष्ठ एवं कथयति – तस्मान्निष्कलुषा स्त्रियः .... पुनश्चासौ व्रवीति –

'स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता।
बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगतापि वा।।
न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।
पुष्पमासमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।।'[52]

प्रसंगान्तर में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ कहते हैं कि बलात् अपहृत अथवा मन्त्रविधिपूर्वक अपरिणीता कन्या, कन्या ही होती है। विधिपूर्वक विवाहित, परन्तु अक्षतयोनि कन्या का पुनर्विवाह हो सकता है –

'बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिना देया यथा कन्या तथैव सा।।
पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मन्त्रसंस्कृता।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति।।'[53]

कविवर कहते हैं कि धर्मशास्त्रीय परम्पराओं की पुनः स्थापना होनी चाहिए – ''तिरोहितं धर्मशास्त्रं प्रकाशयतु भवान्। .... वैधव्यमात्रं न भवति विधवाया नियतिः। तन्नियतिस्तु तत्सौभाग्यम्।[54]

विधवा विवाह, पुनर्विवाह अथवा संकटापन्न स्त्री का पुनरुद्धार उसके परिजनों के द्वारा ही किया जाना चाहिए– 'तत्सौभाग्यसम्पादनायैव संरक्षकैः स्वजनैः कुटुम्बिभिर्लोकैश्च प्रयतनीयम्।'[55]

चूंकि नारी की स्थिति पुरूष के अधीन अथवा पुरूष के लिए होती चली गई, अतः उसके जीवन का प्रयोजन पुरूष की सन्तुष्टि पर ही आकर टिक गया। कालान्तर में पुरूष ने उसे केवल अपनी भोग्या के रुप में ही परिकल्पित किया और परिणामस्वरूप स्त्री की गुणवत्ता उसके शारीरिक सौन्दर्य अथवा आकर्षण से आंकी जाने लगी। नारी के इस स्वरूप को प्रमाणित करने वाले अंसख्य उदाहरण साहित्य, व्यापार तथा समाज में देखने को मिलते हैं। पूरा का पूरा फिल्म जगत, पूरा साहित्यसंसार एवं सम्पूर्ण उत्पादनों का प्रचार–प्रसार साहित्य स्त्री की उसी भोग्या छवि को प्रस्तुत कर रहा है। हमारी एक सामाजिक इकाई (स्त्री) इसी भोग लोलुप दृष्टि के कारण अपने ही समाज में सुरक्षित नहीं है।

कविवर नारी के उस **भोग्या स्वरूप के प्रति संवेदनशील हैं** और वे न केवल इस स्वरूप का वर्णन करते हैं, अपितु वे इसके समाधान का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। जिजीविषा की तपती बाल्यावस्था में पिता को खो चुकी है, भाई भूख से व्याकुल है, वह अपने परिवार को सहारा देना चाहती है, परन्तु समाज में उसके गुणों के बदले उसे कोई कार्य नहीं देना चाहता। आजीविका के बदले सबकी दृष्टि उसके यौवन पर है। कवि कहते हैं–'न कुत्रापि गुणशिक्षाशीलमूल्यम्। सर्वत्रैव यौवनमूल्यम्। क्व गोपयेद् वराकी स्वकीयां तप्तकाञ्चन्देहयष्टिम्।'[56] उसकी विवशता एवं सामाजिक मानसिकता को मार्मिकता से प्रकट करते हुए तपती के मुख से कवि कहलवाते हैं–'यौवनम्मे सोदरमरणात् समधिकगरीयः किम?'[57]

कविवर की कहानी कुक्की भोगलम्पट बिलाव की कुक्की के प्रति संवेदनहीनता की चरम परिणति है। जब मार्जारी वृद्धा हो जाती है तो वह अपनी पुत्री के साथ सम्बन्ध बना लेता है और मार्जारी का वध कर देता है।

वेश्यावृत्ति स्त्री की भोग्या स्थिति को प्रमाणित करने वाला एक सशक्त प्रमाण है। प्राचीन काल से स्त्रियां अपने शरीर के व्यापार को जीविकोपार्जन के रूप में अपनाती रही हैं, चाहे वो विवशता में स्वयं उठाया गया कदम हो अथवा दूसरे के द्वारा विवश कर धकेला गया कदम हो, अन्यथा कौन स्त्री होगी, जो अपनी इच्छा के बिना किसी को अपने शरीर के साथ खिलवाड़ करने देगी। वेश्यालय भारतीय पुरूष समाज के लिए सदैव आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। यह इसी तथ्य का प्रभाव है कि स्त्री सामग्री की तरह बाजार में बिकती है। चञ्चा कहानी में मकरककथ्या का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं–'भारते यथा दिव्योद्भवा भाषा, दिव्योद्भवं नाट्यं, दिव्योद्भवो नृपतिश्श्रूयते सर्वथा तथैव वेश्यावृत्तिरपि दिव्योद्भवा।'[58] प्राचीन काल से अद्यपर्यन्त भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति किसी न किसी रूप में प्रचलित है। शरीर व्यापार अवैध घोषित हो जाने पर अब बड़े–बड़े पाँच सितारा विश्रामालयों में कलाप्रदर्शन के बहाने नृत्य प्रदर्शन हो रहा है–'पुराचीनैव मदिराऽभिनवेषु गोलकेषु वर्तते इति दिक्।'[59] इसी बात को नर्तकी कहानी में वे कहते हैं–'वेश्योन्मूलनान्दोलने बहुचर्चिते सति प्रायेण सर्वा अपि नर्तक्य आत्मानं नर्तकीमात्रं घोषयन्ति स्म तथापि खल्वासामनेका सम्प्रत्यपि शरीरव्यापारं सम्पादयन्ति स्म।'[60]

ये **वेश्यालय पुरुष के भोगास्वादन परिवर्तन की उत्कटाकांक्षा के परिणाम** स्वरूप ही बाजार में अपना अस्तित्व बनाए हुए है। पवित्र दाम्पत्य जीवन जब केवल शारीरिक भोग का आधार बन जाते हैं तो सामाजिक विकृति का रूप धारण कर लेते है। इस मनोविकृति का मानसिक विश्लेषण कवि इस प्रकार करते है–'नाऽत्राऽनुरागस्य प्रश्नः। भोगास्वादपरिवर्तनं को नरः, का वा नारी न समीहते समीहन्ते सर्वे एव। परन्तु क्षमन्ते केचिदेव। ये क्षमन्ते त एव प्रशंसिताः सन्तो नागराश्छविल्ला वेति, गर्हिताश्च सन्तो लम्पटाः खण्डितवृत्ता वाऽभिधीयन्ते। .. .. महेश्वरोऽपि रतिस्वादं परिवर्तयितुं मां भुक्तवान्। स्वपरिश्रमस्य मूल्यं गृहीतं तेन।'?[61]

लैंगिक-असमानता को कविवर ने अपनी कहानियों में स्थान दिया है। कई कहानियों में तो मुख्य विषय–वस्तु का आधार बनाया है। भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में पुत्र को वृद्धावस्था का सहारा, मोक्षप्रदायक, मुक्तिदाता आदि रूपों में रूपायित किया है। कन्या सन्तति से जुड़ी हुई अनेक समस्याएं है जैसे– दहेजप्रथा, यौन उत्पीडन, बलात्कार, असुरक्षा आदि। पुत्र की उपयोगिता व पुत्री के कारण उत्पन्न समस्याओं के परिणामस्वरूप समाज में कालान्तर में पुत्र कामना प्रमुख हो गई और कानीन शिशु उपेक्षित हो गए। एकहायनी में प्राड्विवाक देवेशधवन की पत्नी तीन पुत्रियों के बाद पुत्र के लिए दुःखी है– 'देवेशस्य कुटुम्बे पत्नी माधुरी पुत्र्यः कमला विमला सरला चेत्यासन्। नासीत् कोटिमनोरथाकांक्षितः कोऽपि पुत्र इति पत्यपेक्षया पत्नी नितरां शोकस्फोटकष्टमनुभवति स्म।'[62]

कन्यासन्तति की संवेदनशीलता, सेवाभाविता के प्रति आंखे खोल देने वाली कहानी शतपर्विका में सात कन्याओं का पिता कन्या सन्तति से दुःखी है। उसकी मनोभूमि को अभिव्यक्ति देते हुए कवि कहते हैं–'स्वकीयं कन्यासैन्यं दृष्टवैव रामलालो दुस्सहवेदनामेति। नितरां चिन्तयति ममैव भालपट्टे कथमिमा लिखिताः? पुत्रमेकं कामये। सप्तसंख्याका इमे जाताः। केन याचिताः? मृत्युचीत्कृतय इव नक्तन्दिवं मां पारितः कथमेताः क्रीडन्ति? कथं न म्रियन्ते? किमर्थं सर्वा अक्षता जीवन्ति? किमेतासां कृते न कृतो रोगो व्याधिर्वा भगवता महिषवाहनेन?'[63]

स्त्री एवं पुरूष के लिए पाप एवं पुण्य की परिभाषाएं नितान्त अनौचित्यपूर्ण, तर्कहीन एवं अमानवीय है। समान रूप से नैतिकता हनन का दोषी होते हुए भी स्त्री को ही प्रताड़ित एवं दण्डित किया जाता है। उसके पक्ष को सुनने वाला कोई नहीं। पौतविहगो

कहानी का नायक अपनी धर्मपत्नी को छोड़कर अन्य स्त्री को घर में लेकर आता है, पत्नी के द्वारा अस्वीकार किये जाने पर भी उसे घर में रखता है। एक पत्नी की पीड़ा, उसके आक्रोश, उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति को क्या परिवार का एक भी सदस्य समझने की कोशिश करता है? बल्कि कालान्तर में निहाल की मां भी महुलि के पक्ष में हो जाती है तथा महुलि की प्रशंसा करते हुए कहती है–'निहाल! मत्पुत्रक! तव परिणीता भार्या महुल्याश्चरणप्रक्षालनजलसमतामपि न विभर्ति।'[64]

बालिका-शिक्षा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण अत्यधिक संकुचित एवं भेदभाव पूर्ण है। पुत्र एवं पुत्री की शिक्षा में पुत्र की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। कन्या को चुंकि घर संभालना होता है तो उसकी शिक्षा पर व्यय क्यों किया जाए? न्यायमहं करिष्ये कथा में भवानी की भाभी उसकी उच्च शिक्षा को रोकते हुए तर्क देती है कि 'किमभिनवं संयोजयिष्यते एम.ए. परीक्षोत्तरणेन। यावती शिक्षाऽपेक्षिता तावती समवाप्ता भवान्या। सम्प्रति न तथाऽपेक्षिता तदुच्चशिक्षा यथाऽपेक्षित परिणयः।'[65]

प्रणय में दोनों समान रूप भागीदार होते हुए भी **स्त्री को पराजित होना पड़ता है।** चञ्चा की नायिका मुन्नी बाई अपनी पुत्री को समझाते हुए कहती है– 'वत्से! प्रणयसूत्रे विच्छिन्ने सति नार्येव पराजयं पश्यति न पुरूषः। प्रकृत्या शरीरेण समाजदृष्ट्या च नारी परमनिर्मला। वत्से! यतो हि उभयसाधारणे सत्यपि सम्भोगसुखे गर्भं नार्येव धारयति न पुरूषः .... कलंकित जीवनं सैवदुर्वहति न खलु पुरूषः।'[66]

ध्रुवस्वामिनी की नायिका अनिन्द्यसुन्दरी व लावण्यवती कन्या का विवाह एक मंदबुद्धि व अल्प विकसित युवक के साथ कर दिया जाता है। विवाह में कन्या के समरूप, समयोग्य वर के बारे में विचार नहीं किया जाता है। इक्षुगन्धा की नायिका बिट्टी का विवाह उसकी इच्छा के विपरीत कहीं और कर दिया जाता है। भग्नपञ्जर की विधवा नायिका वन्दना अपने सतीर्थ्य जयदेव से विवाह करना चाहती है, परन्तु उसके पिता इसे उचित नहीं मानते। सिंहसारिः की नायिका अमृताङ्ग के द्वारा बलात् अपने नियन्त्रण में कर ली जाती है।

सन्तान होना अथवा न होना एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। शारीरिक संरचनागत दोष है। मनुष्य का इसमें कोई दोष नहीं। सन्ताहीनता में स्त्री एवं पुरुष किसी का भी शारीरिक विकार कारण हो सकता है, परन्तु परिवार अथवा समाज स्त्री को ही वन्ध्या संज्ञा देकर उसे उस

दोष के लिए दण्डित करता है, जो उसने किया ही नहीं। कविवर की वन्ध्या और सपत्नी कहानी इसी सामाजिक विकृति का प्रतिबिम्ब है।

भग्नपञ्जर की नायिका वन्दना पिता की विद्वत्ता तथा व्यावहारिक संवेदनहीनता से व्यथित है। वह सोचती है– 'कस्मात् कन्याऽस्मै न रोचते? प्रारम्भत एव कन्यां भारभूतां मन्यते। पण्डितोऽयं विविधविद्यानाम्। शासनाधिष्ठाने बहुवर्षाणि यावत् सेवां सम्पाद्य शतमिता अनुभूतीः स्वायत्तीकृत्यं निवृत्तोऽस्ति जातः। परिपक्वमेधोऽयं जनः। हन्त! तथापि ईदृशी निघृणता?'[67]

वन्दना का व्यथित मन समझ नहीं पा रहा है कि किस गुण के कारण पुरूष विद्वान माना जाता है? धर्मग्रन्थों में जो वह पढ़ता है, क्या वह आचरण में उतारता है?– 'केन गुणेन पुरूषो विद्वान भवति? केन नयनेन तातो मां पश्यति? केन हृदयेन मामनुभवति? केन विवेकेन वा मामुपदिशति?'[68]

वन्ध्या कहानी में रामदत्त की पत्नी विष पीकर मूर्च्छित हो जाती है। रामदत्त जानता है कि परिवार की अन्य स्त्रियों के विषदग्ध वचनों से पीड़ित होकर ही उसने ऐसा किया है। रामदत्त की पत्नी परिवार में सर्वाधिक शिक्षित एवं रूपसौन्दर्यशीलवती है, प्रख्यात कुलोत्पन्ना है, पति की प्रिया है, परन्तु सन्तानहीन होने के कारण ईर्ष्या व द्वेष रखने वाली घर की स्त्रियों के द्वारा तिरस्कृत की जाती है। कहानी का नायक पत्नी से कहता है–'तव सन्ततिहीनतैव सर्वाऽनर्थकारणं प्रतिभाति। तेनैव वृत्तेन कुटुम्बेऽस्मिन् त्वमात्मानं गर्हितां, तिरस्कृतां, महत्त्वहीनां निरर्थकजीवितां, भारभूताञ्च मन्यसे।'[69]

सपत्नी की नायिका बुधनी सन्तानहीन होने के कारण अपने जीवन को निरर्थक मानती है–'धिङ् मम गर्भम् अजागलस्तनकल्पम्।'[70] सन्तानहीन स्त्री की मनोदशा का वर्णन करते हुए कविवर कहते हैं– 'वन्ध्यादोषोऽपि स्त्रीणां नयननिद्राहरः। कारागरायते स्वामिभवनमपि। न क्वचिज्जायते जिगमिषा। न किञ्चिज्जागर्ति चिकीर्षा। सपत्नायते हासः। आकाशकुसुमायते मानसोल्लासः। महोत्सवे कस्मिश्चिद् विद्यमानायामभितः परितः सन्दृश्यन्ते आरभटीमुपस्थापयन्तः, प्रतिवेशिनीतिर्यक्ककनीनिकोद्गताः शूलदप्रश्नाः। एवं सति नोपस्थिति रोचते, नो वा प्रस्थान मार्गोऽवाप्यते। सर्पगन्धमुषिकयोरिव दुर्दशाऽनुभूयते।'[71]

सामाजिक असंवेदनशीलता को सहते–सहते **वन्ध्या स्त्री स्वयं संवेदनहीन हो जाती है।** 'भृशं सोढं–सोढं बुधनी सम्प्रति पाषाणशिलेव असंवेदनवती जाता।'[72]

कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र नारी हृदय के साथ एकाकार हुए हैं, उसके स्वभाव को हृदय के अन्तरतम से महसूस किया है तथा उसे अपनी कथाओं में कुशलता से अभिव्यक्त किया है। उनकी कथाओं की नायिका विभिन्न रूपों में प्रकट होती हैं एवं समाज को उसका दर्पण दिखाती है।

एकहायनी की नायिका पत्नी के रूप में असंतुष्ट होते हुए भी मातृत्व रूप में वात्सल्यपूर्ण एवं कोमलता से युक्त है–'इदानीं गतम्मे कौमार्यम्। विलुप्तं प्रेम। साम्प्रतं मातृभावो में प्रभवति।'[73]

स्त्री एक परिवार को, घर को व मित्रगणों को छोड़कर नये घर में अपने आपको स्नेहसूत्र में बांध लेती है। भग्नपंजर की नायिका वंदना इच्छा के विपरीत विवाह होने पर भी स्वयं को पति के घर में स्थापित कर लेती है– 'सर्वमसन्तोषं ज्वालामुखमिव अन्तर्निगृह्य धरासदृशी सा पत्युः सुखं एव सर्वमात्मसुखं मेने।'[74]

खरीदारी स्त्री की कमजोरी है। इसको कविवर अच्छी तरह समझते हैं। मीरगञ्ज का वर्णन करते हुए वे कहते हैं– 'निखिलमपि हट्टं पतिवेतनमुषितैरल्पधनैः क्रेतुकामा आदिवसमापणादापणं परिभ्रमन्त्यो गृहसेविकोत्सेकिन्यः।'[75]

पति के प्रेम में असुरक्षा को महसूस करती हुई, सहज नारी सुलभ ईर्ष्या का स्वाभाविक वर्णन करते हुए कविवर कहते हैं–'नारी न कथमपि नार्यन्तरं सहते। पतिःकामपि यूवतिं कियद्भिरेव कौशलैः प्रख्यापयेन्।......................परन्तु निसर्गादेव सापत्नयभीता पतिचरतिशङ्किनी भार्या तां वल्लभाङ्कशायिनीमेव मन्यते। का कथा पुनः प्रोषितस्य।'[76]

स्त्री के संकुचित, असहिष्णु एवं छलकपटयुक्त व्यवहार का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं– परसुखासहिष्णवो हि नार्यः। सौहार्दमभिनीय रहस्यानि निर्गमयन्ति पश्चाच्च तैरेव दिव्यास्त्रभूतै प्रहृत्य मर्माणि भिन्दन्ति।'[77]

अपि च–'नारीणां रोदनं बलम्। जयस्स्यात्पराजयो का। सर्वोऽपि व्यवहारस्तासां नेत्रजलेष्वेव पर्यवस्यति,'[78] परन्तु यही ईर्ष्यासुलभ स्त्री पतिकल्याण एवं **परिवारकल्याण के लिए सपत्नी तक को स्वीकार** कर लेती है–'मम सपत्नी सा। मह्यं कुप्यति सा।...........तथापि ममजीवनसूत्रधारं सुखयति, रमयति, रञ्जयति च साः।............मातः! आशिषं देहि, यच्चम्पा मम पत्युवंशदीपकं जनयेत्।'[79]

स्त्री के कोमल, स्वरूप के अतिरिक्त संकुचित, ईर्ष्यायुक्त एवं क्रूर स्वरूप को भी व्यक्त करते हुए वे कहते हैं– 'आत्मशावभक्षिणी सिंही अपि जनन्येव भवति। निजाण्ड भक्षिणी–भुजङ्ग्यपि जनन्येव भवति।'[80]

स्त्री स्वभाव की एक अन्य विशिष्टता है, बात को बढ़ा–चढ़ा कर बोलना। कविवर स्त्री के इस स्वभाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं– 'यावन्ति मुखानि तावन्ति वचनानि'[81] बुधनी के गांव की समस्त स्त्रियां संकटापन्न हैं, परन्तु फिर भी परछिद्रान्वेषण में उनका उत्साह दर्शनीय है– 'प्रायेण सर्वा अपि ग्रामस्त्रियः संकटापन्ना एवासन्। तथापि बुधनीसमीक्षाप्रसङ्गे तासामुत्साहो दर्शनीय आसीत्।'[82]

स्पष्ट है कि कविवर स्त्री की सामाजिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक स्थिति के साथ एकाकार हुए है। उन्होनें स्त्री की पीड़ा को न केवल देखा है, महसूस किया है, उसको अभिव्यक्ति प्रदान की है, अपितु अपने साहित्यसुधीसमाज को मार्गदर्शन एवं समाधान भी प्रदान किया है। अनामिका कथा में उन्होने अनाथ कन्या शिशु को अपना कर समाज के लिए एक आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत किया है। शतपर्विका कथा कन्या की अपेक्षा पुत्र की कामना करने वाले अभिभावकों के लिए एक प्रेरक संदेश है। इस कथा में न केवल बेटियों के हृदय को टटोला है, बल्कि उनको बेटों से ज्यादा संवेदनशील एवं श्रेयस्कर बताया है।

मरून्यग्रोध, पुनर्नवा, एवं भग्नपञ्जर कथाएं विधवाविवाह एवं पुनर्विवाह के रूप में स्त्री के जीवन को गति एवं दिशा देने की प्रेरणा है। बलात्कार पीड़िता एवं शारीरिक शोषण की शिकार स्त्रियां त्याज्य नहीं, वे अपवित्र नहीं, बल्कि वे प्रत्येक रजोदर्शन में शुद्धि को प्राप्त कर लेती हैं। मरून्यग्रोध, पुनर्नवा, भग्नपञ्जर, जिजीविषा जैसी कहानियों में पुरूषों के वरेण्य उदारमना स्वरूप को प्रकट किया है।

विवाह में स्त्री की इच्छा की उपेक्षा करने वाले समाज के लिए कविवर सुखशयितप्रच्छिका, चञ्चा, पोतविहगौ, वाग्दत्ता, नर्तकी, आद्यन्तम्, प्रीतियोगः आदि कहानियों में प्रेमविवाह, अन्तर्जातीय–विवाह यहां तक कि अन्तर्देशीय–विवाह को भी स्वीकृति प्रदान करते हैं और संदेश देते हैं कि **विवाह के लिए जाति नही, अपितु भावनाएं एवं विचार मिलना महत्त्वपूर्ण है।**

दहेज समस्या को प्रस्तुत करने वाली जामाता, गौर्या वरः जैसी कहानियां आदर्श समाधान प्रस्तुत करती है। समाज में ऐसे आदर्श युवक भी है, जो गुणों एवं **योग्यता को ही महत्त्व देते है, दहेज को नहीं।**

एकचक्र कहानी आदर्श दाम्पत्य जीवन की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहती है कि गृहस्थ जीवन में स्त्री एवं पुरूष का स्थान समान है। गृहस्थी रूपी गाड़ी में पति–पत्नी दो चक्र हैं। एकचक्र से गाड़ी चल नही सकती। वे कहते हैं– 'दाम्पत्यं नाम किम्। मिथः प्रणयनिबद्धयोर्द्वयोः स्त्रीपुरुषयोर्नैष्ठिकस्संयोगः। निष्ठैव दाम्पत्यमूलम्। इयं निष्ठाऽप्युभयपक्षीयैव। यथा पत्न्या निष्ठा पतिं प्रत्यपेक्ष्यते तथैव पत्नीं प्रति पत्युरपि। एवं हि दाम्पत्ये न कोऽपि कमपि कथमप्यनुगृहणात्युपकरोति वा। आत्मकर्त्तव्यनिर्वहणे दाम्पत्योचितनिष्ठा परिपालने वा कीदृश उपकारभावः? कीदृशी अधमर्णोत्तमर्णता वा?'[83]

सन्तानहीनता अपराध बोध का कारण नहीं हो सकता। सन्तान न होने पर भी पति–पत्नी का प्रेम, जो विवाह का आधार है, समाप्त नहीं होना चाहिए, बल्कि उन्हे एक दूसरे का मानसिक सम्बल बनना चाहिए। सन्तान तो दत्तक भी हो सकती हैं अथवा उसके अन्य विकल्प भी हो सकते हैं। **सन्तति न होना हमारा दोष नहीं, वह विवाह का मूल उद्देश्य नहीं, प्रेम ही मूल उद्देश्य है।** इसी को व्यक्त करते हुए कहते हैं–'सन्तति प्रजननं नाम न केवलं पत्नया दायित्वम्। वस्तुतः उभयसंविभक्तमिदं दायित्वम्। तर्हि कोऽयं न्यायो यद्यया सन्ततिविरहघटनया वराकी नारी समाजे सर्वजनतिरस्कृता जायते, वन्ध्या कथ्यते तथैव घटनया न केवलं पुरूषोऽप्रभावितस्सुरक्षितश्च तिष्ठत्यपितु द्वितीयोद्वाहार्हताञ्चापि बिभर्ति। तं न कोऽपि वन्ध्यमुद्घोषयति।'[84] कविवर की दोनो ही कथाओं सपत्नी एवं वन्ध्या में सामाजिक तिरस्कार के समय नायिकाओं को पति का भावनात्मक सहारा मिला है।

वेश्यावृत्ति की समस्या को भी कविवर ने नर्तकी कथा के माध्यम से उठाया है। नर्तकी के मनोभावों व उसके मानवीय स्वरूप को प्रकट किया है। नर्तकी कमरजहाँ का विवाह करवाकर उसे समाज की मुख्यधारा में समाहित किया है।

स्फुट रूप से बाल विवाह को भी शतपर्विका कहानी में रामलाल की पीड़ा के रूप में व्यक्त किया हैं।

इस प्रकार कविवर ने स्त्री से जुडी समस्त सामाजिक विकृतियों एवं समस्याओं को अनुभव किया है, उसे शब्दार्थ रूप में सम्यक अभिव्यक्ति प्रदान की है तथा उस विकृति का

सम्यक, सकारात्मक समाधान भी प्रदान कर एक **अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना से पूरित सुन्दर, सन्तुलित, सामंजस्यपूर्ण, विकसित एवं गतिशील समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर लोककल्याण का कार्य किया है।**

3) दलित-चेतना

'दलित पद **दल्** धातु से **क्त** प्रत्यय लगकर बना है।'[85अ] दल् धातु टूटना, फटना, दरार आ जाना, काटना, टुकड़े–टुकड़े करना, कुचलना, पीसना आदि अर्थ देती है। दलित शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ कुचला हुआ, पिसा हुआ, टूटा हुआ, निकलता है। समाज के सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि समाज का वह वर्ग, जो दबा हुआ, कुचला हुआ, पिसा हुआ, शोषित है।

अंग्रेजी में इसी दलित वर्ग को depressed class के रूप में परिभाषित किया गया है। 'depress का अर्थ Push or pull down; lower, make dispirited or dejected और depressed का अर्थ है dispirited or miserable, suffering from depression (based on latin pressare' to keep pressing')'[85ब]

हम कह सकते है कि यही मनोवैज्ञानिक अर्थ to keep pressing दलित का पर्याय है। समाज का एक ऐसा वर्ग जिसे निरन्तर दबाया गया हो, कुचला गया हो अथवा मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक स्तर पर तोड़ा गया हो। दलित या कमजोर वर्ग के अन्तर्गत समाज के उस वर्ग को सम्मिलित किया जाता है, जो सामाजिक, आर्थिक सुविधाओं से वंचित, शोषित, पिछड़ा हुआ हो। इन मानदण्डों के आधार पर अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, लघु तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन, मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर, शोषित अथवा दलित वर्ग में माना गया है।

रूचि, क्षमता, योग्यता, प्रतिभा, आयु, ज्ञान एवं चयन पर आधारित तार्किक एवं व्यवस्थित सामाजिक वर्णव्यवस्था से समन्वित भारतीय संस्कृति में कालान्तर में वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था में परिणत हो गई। वर्ण पद में स्थित 'वृ' धातु वरण अथवा चयन को द्योतित करती है। इसका अन्तर्निहित अर्थ यह निकलता है कि पुराकाल में मनुष्य अपने कार्य अथवा वर्ण का चयन करता था तथा इन वर्णों में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में प्रवेश का मार्ग खुला रहता था। शनै–शनै पारिवारिक वातावरण, वंशपरम्परागत कार्य कुशलता तथा एक पीढी से दूसरी पीढी में पैतृक व्यवस्था के हस्तान्तरित होते रहने के कारण रोजगार, व्यवसाय

अथवा कार्य, योग्यता एवं क्षमता से हटकर जन्मना प्राप्त होने लगे। जाति पद, जन्मना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र होने की ओर संकेत करता है, जबकि ये पद स्वयं कर्मपर आधारित ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व अथवा वैश्यत्व होने की ओर संकेत करते हैं।

जब से इस सामाजिक वर्गीकरण का आधार योग्यता न होकर जन्मना हो गया वहीं से विडम्बना प्रारम्भ हो गई। व्यर्थ श्रेष्ठता के अभिमान रूपी रोग ने निम्न वर्ग में जन्म लेने वाले व्यक्ति के साथ हेय व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणााम स्वरूप श्रेष्ठ वर्गो में गिने जाने वाले लोग अयोग्य होते हुए भी उस वर्ग से बाहर आना नही चाहते थे तथा हीन वर्गो में, जो श्रेष्ठ लोग थे, उनको श्रेष्ठ वर्ग में आने नही देते थे। जन्मगत श्रेष्ठता जन्मगत हीन वर्ग के शोषण का आधार बन गया। इस प्रकार समाज में दो वर्ग हो गए–सवर्ण और अवर्ण अथवा शोषक और शोषित। सवर्णो के द्वारा निरन्तर शोषण एवं अमानवीय व्यवहार से शूद्रों अथवा अवर्णों में हेयता का भाव घर करने लगा। वर्ण व्यवस्था में जहां सद्भाव एवं सदाचार के साथ सभी वर्ग अपने–अपने वर्ग में रहते हुए सामाजिक विकास एवं कल्याण का कार्य करते थे, वहीं अब सवर्ण एवं अवर्ण के बीच एक गहरी खाई बन गई। धीरे–धीरे लोग अपने परम्परागत कार्यो अथवा व्यवसाय को छोडकर पलायन का रास्ता अपनाने लगे। सवर्ण एवं अवर्ण का संघर्ष एवं द्वेष निरन्तर बढता जा रहा है।

कविवर ने समाज की इस विसंगति पर प्रहार करते हुए सही दिशा देने का प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रजातंत्र में वोटों की राजनीति ने स्वार्थपरता के कारण इस मतभेद को ओर गहराने का प्रयास किया है। इसी पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं– 'पराकाष्ठामधिरूढे सति मतसंग्रहलोलुपशासनोत्थापिते सवर्णाऽसवर्णसंघर्षे सम्प्रति कोऽपि युवा चर्मकारः पारम्परिकं ग्रामकार्यं कर्तुं नेच्छिति।..........त्रुटिताः सम्प्रति सेव्यसेवकसम्बन्धाः। समुच्छिन्नाः समाजबन्धनक्षमा मिथःस्सहयोगप्रणयादिमर्यादाः।'[85स]

वर्ण-व्यवस्था इस बात की प्रतीक है कि सम्पूर्ण सृष्टि में प्रकृति प्रदत्त भिन्नता है, कहीं भी साम्य अथवा अद्वैत नहीं है। समस्त प्राणियों के रंग, वर्ण, गुण एवं विशिष्टिताएं अलग–अलग है। सकल वनस्पतिसमुदाय विलक्षण विशेषताओं के कारण विधर्मा है, तो फिर मनुष्यों में विद्यमान भिन्नता की निन्दा क्यों की जाती है? क्या शासन सभी पशुओं, पक्षियों, वनस्पतियों, मनुष्यों को समरूप करने में समर्थ है? राजनैतिक स्वार्थपरता पर प्रहार करते हुए कविवर कहते हैं–'असवर्णान् मृषावादैरूद्दीप्य सवर्णविरोधिनश्च तान् विधाय शासनं

मतसंग्रहव्याजेन स्वार्थं साधयति। परन्तु चिरकालादखण्डितम् अविद्धम् अविपर्यस्तं विश्वसनीयं संवादिञ्च प्रणयसम्बन्धं द्राग् विच्छिन्नं दृष्ट्वा न जायते तस्य कापि चिन्ता?'[86]

हर काल में अत्याचारी एवं क्रूर शासक हुए हैं। रावण, कंस, शिशुपाल, औरंगजेब, नादिरशाह आदि नाम आतातायी शासकों में आते है, परन्तु ये अपवादस्वरूप है। **शेष असंख्य शासक दयालु, उदार एवं सत्पुरुष हुए हैं।** इन बहुसंख्यक सज्जन पुरूषों के द्वारा ही समाज का निर्माण होता है, न कि मुट्ठी भर लोगों से। कवि की दृष्टि में सवर्ण असवर्ण में कोई भेद नहीं है। सभी वर्गो में अमीर–गरीब, सम्पन्न–विपन्न, अच्छे बुरे मनुष्य मिलते हैं। आर्थिक व शारीरिक दृष्टि से सभी मनुष्य समान नही हो सकते, हाँ मानसिक एवं हार्दिक साम्य हो सकता है। कवि कहते हैं–'का विशेषः सवर्णऽसवर्णयोः? यदि नामोभयोः हृदयं समरसं तर्हि न कोऽपि भेदस्तयोः। सवर्णेष्वपि किमसवर्णकल्पा निर्धना न वर्तन्ते? किं सवर्णेष्वसवर्णेषु वा सर्वेऽपि समाना एव? अर्थसाम्यप्रयासापेक्षया हृदयसाम्यस्थापनप्रयासः सुकरः उपादेयश्च प्रतिभाति।...................... प्रेम समग्रपि भेदं समापयति। प्रेमद्रुमः पीयूषफलं जनयति। नात्र कश्चित्सन्देह।'[87]

संकल्प कथा में अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर पलायन कर रहे, अन्य युवकों की तरह निहोर का पुत्र मोगीराम भी शहर जाना चाहता है। उसे लगता है कि शहरों में सम्मान हैं। गांवो में उनकी पहचान केवल शूद्र अथवा असवर्ण के रूप में ही होती है। उसका मन इस जाति व्यवस्था के बन्धन को तोड़कर जाना चाहता है, परन्तु निहोर कहता है कि ऐसा नहीं है, समाज बदल रहा है, लोगों का दृष्टिकोण बदल रहा है। अब कार्य के आधार पर ऊंच नीच का व्यवहार नहीं होता है। निहोर के शब्दों में बदलते सामाजिक दृष्टिकोण की झलक है। वह कहता है– 'सम्प्रति समुज्जृम्भते नूतनस्समाजो यत्र मानवः स्वगुणैरेव प्रतिष्ठितो न पुनः स्वजात्या।'[88]

कुलदीपक कथा में वकील महोदय की **जाति से जुड़ी भ्रामक अवधारणा को निर्मूल सिद्ध** करते हुए उनकी पत्नी कहती है–'अपराधस्तु न जातिं कुलं वाऽश्रयन्ति। किं सर्वेऽपि दस्यवः खटिका एव? किं सर्वेऽपि चम्बलदस्यवः खटिका एव? न ब्राह्मणाः? न क्षत्रियाः? न वैश्याः? कोऽयं भवतां व्यामोहः? यदि खटिककुलात्पन्नोऽपि सोमधरो मेधावी सुशीलः सद्गुणसम्पन्नः किं तर्हि नासौ अभिनन्दनीयः?'[89]

अभिनय लघुकथा महादेवी द्वारा घसीटा नामक किसी दरिद्र बालक के पालन पोषण की प्रशंसा तथा साथ ही शिक्षिका जैसे गौरवमय पद को धारण करने वाली श्यामा के अपनी गृहसेविका के प्रति कठोर व्यवहार की भर्त्सना करते हुए उसके कपटाभिनय का रहस्यभेदन करती है।

प्रतिशोध लघुकथा का स्वामी बिना किसी जाँच–पडताल के सन्देह के आधार पर अपने सेवक विभुराम को जेल जाने देता है। यही अन्याय पूर्ण व्यवहार प्रतिशोध का आधार बनता है।

कवि की एक और लघुकथा **वेतनम्** एक दैनिक वेतन भोगी मजदूर की विवशता, दयनीयता, को मार्मिक रूप से व्यक्त करती है।

इस प्रकार अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाएं समाज के दलित वर्ग के प्रति संवेदनशील हैं, उनकी पीडाओं को महसूस करती हैं, उनके हृदयों का रहस्योदघाट्न करती हैं, उन भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं, उस पर प्रहार करती हैं, परन्तु साथ ही बदलते सामाजिक परिदृश्य को पहचानती हैं और **उज्ज्वल भविष्य एवं वर्गभेद रहित समाज की परिकल्पना** प्रस्तुत करती हैं। कविवर जानते हैं कि समाज में भेदभाव है, शोषण है, वर्गभेद है, परन्तु तार्किक आधार पर वो समाज को दिशा देते है कि मनुष्य के साथ व्यवहार का आधार उसके गुण, कर्म एवं संस्कार होने चाहिए, जाति नही । हमें समाज के रत्नों का अन्वेषण कर उनका संवर्धन एवं परिरक्षण करना चाहिए। –'अनेनैव प्रकारेण रत्नान्वेषणं करणीयम्। सर्वेऽपि बालका, भगवत्स्वरूपाः। न कोऽपि सुदर्शनो रूपहीनो वा। न कोऽपि समृद्धो दरिद्रो वा। न कोऽप्यनाथस्सनाथो वा! प्राप्ते खलु सम्बले सरंक्षणे निर्गुणोऽपि सगुणो जायते। दरिद्रोऽपि समृद्धो भवति। अनाथोऽपि सनाथो जायते।'[90]

4) सांस्कृतिक-चेतना

सांस्कृतिक अर्थात् संस्कृति से संबंधित। संस्कृति शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से निष्पन्न है। **सम् अर्थात् सम्यक् कृति अर्थात् क्रियाकलाप।** इस व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृति शब्द उन समस्त आचार–विचारों ए161 बवहयाकलापों के समूह का प्रतिनिधित्व करता है, जिनको सभ्य एवं श्रेष्ठ मनुष्य आदर्श एवं अनुकरणीय व्यवहार के रुप में अपनाते रहे हैं। संस्कृति मानव के जीवन दर्शन की संवाहिका है, राष्ट्र की जीवनधारा का प्राणस्रोत है।

श्री राजगोपालाचारी के शब्दों में– 'किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का, जो व्याप्त रहना है, उसी का नाम संस्कृति है।'[91]

रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि– 'संस्कृति एक ऐसा गुण है, जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। यह एक आत्मिक गुण है, जो मनुष्य स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युगयुगान्तर में होता है।'[92]

भारतीय-संस्कृति मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की बात करती है। यह आत्मा, मन, बुद्धि एवं कर्म के विकास का पथ प्रशस्त करती है। सनातन काल से चली आ रही **भारतीय-संस्कृति, कर्मप्रधान संस्कृति है।** इसमें पुरुषार्थ चतुष्ट्य, वर्णाश्रम व्यवस्था, पंचमहायज्ञ, ऋणत्रय, पुनर्जन्म एवं मोक्ष, आध्यात्मिकता, समन्वयशीलता, त्याग, तपस्या, तपोवन रूप तीन तकार, ज्ञान, कर्म व भक्ति मार्ग से मोक्ष, भाग्य एवं पुरुषार्थ, परोपकार, पाप–पुण्य की परिकल्पना एवं विश्वबंधुत्व आदि विलक्षण तत्त्व विराजमान हैं।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र भारतीय संस्कृत साहित्य सरिता के साथ ही भारतीय संस्कृति के भी संवाहक एवं संरक्षक हैं। प्रो. पुष्पा दीक्षित उनके कथा साहित्य के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहती हैं– 'उनकी कथाओं का उद्देश्य प्रायशः वर्तमानकालिक सामाजिक समस्याओं का विस्फोरण करते हुए उनका समाधान करना है, किन्तु यहां यह द्रष्टव्य है कि वह भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के समान स्वप्न में भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते, जो भारतीयता के प्रतिकूल हो। अतः आधुनिक युग के अनुरुप अपना वैचारिक विकास करते हुए, भारतीय संस्कृति की सर्वात्मना रक्षा ही उनका मुख्य उद्देश्य है और नारी इसका केन्द्र बिन्दु है।'[93]

एक बहुत बड़ी टिप्पणी, जो वे उनके बारे में कहती हैं– 'जो भारतीय ग्रामों के परिवेश में पले–बढ़े हैं, सर्वशास्त्र विचक्षण है, शास्त्र मर्यादा, काव्य मर्यादा और समाज मर्यादा को सर्वथा सर्वात्मना जानते हैं, अतः समुद्र के समान वे त्रिकाल में भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते हैं। असहाय, विधवा, परित्यक्ता और व्यभिचारिता नारियां भी सौभाग्यमण्डित गार्हस्थ्य में प्रतिष्ठित होकर रहें, यह संदेश देकर वे भारतीय गार्हस्थ्य धर्म की विश्वजनीनता का उद्‌घोष कर रहे हैं। अतः आधुनिकता का पोषण करते हुए भी ये मर्यादा का ही पोषण कर रहे हैं।'[94]

कविवर की कथाओं की विषयवस्तु उनकी भारतीय संस्कृति की पोषक विचारधारा को प्रमाणित करती है। सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रासंगिक पुरातन सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को संरक्षित करते हुए समसामयिक संदर्भों के साथ उनका समयोजन करते हुए नवीन जीवन मूल्यों को भी आत्मसात करते हैं। पुरातन एवं अधुनातन सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का आदर्श संतुलन है, कविवर का कथा साहित्य।

आध्यात्मिकता, सर्वोच्च शक्तिमान परमेश्वर में आस्था एवं श्रद्धा भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक शक्तिशाली पक्ष है। आस्था मनुष्य की निराशा अथवा हताशा को दूर कर जीवन में नवाशा का संचार करती है। जीवन को नई दिशा, नई गति, नया उल्लास, नया उत्साह, नई स्फूर्ति देती है। कविवर की कथाओं में यह आस्था व विश्वास सर्वत्र दिखाई देता है। उनकी कथाओं के पात्र परमेश्वर से अपने मन की व्यथा साझा करते हैं। जिजीविषा में तपती की माँ आजीविका के बदले शीलभंङ्ग होने पर परमात्मा को उलाहना देते हुए कहती है– 'अर्न्तयामिन्! दृष्टम्मया भवन्न्यायः। उत्थितान् पातयसि! पापान् प्रवर्धयसि! साधून् सर्वथा खलीकरोषि।'[95]

सुखशयितप्रच्छिका में नायक शुभदा की करुण कथा को सुनकर सोचता है– 'हन्त भोः करुणावरुणालय! अनन्तोऽपरिमेयश्च ते महिमा।'[96]

राङ्गडा कथा में कवि स्वयं सर्वशक्तिमान् माँ पराम्बा से कहते हैं 'हा मातः! केयं ते दुःस्थिति? या त्वं भारते विन्ध्यकामाख्यामैहरार्बुदाचलशिखरेषु काञ्चीमदुरामहावतीप्रभृतिसुरालयेषु महता सम्भारेण त्रिसन्ध्यं समर्च्यसे प्रभूतभक्तवृन्दैः सा त्वमत्र बालीद्वीपीये कुतरीग्रामे राङ्गडाभूता श्मसानभूमौ पशुपतिविरहिता कथमेकाकिनी तिष्ठसि?'[97]

भारतीय संस्कृति में **शक्ति-पूजा** की परम्परा रही है। यह हमारी वो अन्तर्निहित शक्ति है, जो सृजनधर्मा एवं क्रोधित होने पर विनाशकारी स्वरुप में परिकल्पित है। इसकी परिकल्पना को अभिव्यक्त करते हुए कविवर कहते हैं– 'राजराजेश्वरि! भ्रूभंङ्ग मात्रेणैव त्रिलोकं विदधती विनाशयन्ती च या त्वं हरिहरविरञ्चिसेव्यमाना सर्वोपरि राराज्यसे।'[98]

पुनर्जन्म एवं मोक्ष भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है। कविवर इसका समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के द्वारा अभिशप्त वसुओं को आत्मोद्धार के लिए

गंगा के गर्भ से जन्म लेना पड़ता है— 'ब्रह्मर्षि वशिष्ठाभिशप्तैरष्टवसुभिः स्वोद्धारार्थं जन्मदात्रीत्वभारं निर्वोढुं भृशमभ्यर्थिताऽहम्।'[99]

मनुष्य का स्वभाव एवं संस्कार पूर्वजन्म के संस्कारों से अनुप्राणित होते हैं, इसी बात का समर्थन करते हुए कवि कहते हैं— 'पुर्वजन्मार्जित संस्कारानुप्राणितो भवति मानवनिसर्गः।'[100]

कुक्की कथा में कुक्की (मार्जारी) के नायिकावत् व्यवहार को देखकर कवि सोचते हैं कि संभवत अतीत के जन्मों की प्रणय भावना को पशुयोनि में उत्पन्ना यह मार्जारी कर रही है। वे कहते हैं— 'विचित्र एव भवति कर्मविपाकः। सकृद्वियुक्तो जीवोऽपरस्मिन् जीवने कुत्र, कदा किं वा भूत्वा जनि लभत इति को वेद?'[101]

पूर्वजन्म के संस्कार ही थोड़े प्रयत्नों अथवा उत्प्रेरक पाकर मुखरित हो उठते हैं। एकचक्रः कथा में वे कहते हैं— 'वल्लकीतन्त्रकल्पा मे प्राक्तनजन्मार्जितसंस्काराः पितृचरणप्रयत्नस्पर्शैरेव मुखरीभूताः।'[102]

भारतीय संस्कृति की परिकल्पना है कि जीवन में प्रत्येक कृतकर्म का फल सद्य अथवा कालान्तर में अथवा दूसरे जन्म में अपरिहार्य रुप से मिलता ही है। सौभाग्य के रुप में अच्छे कार्यों का अच्छा फल तथा बुरे कार्यों का दुर्भाग्य के रुप में बुरा फल। इस कर्मफल के सिद्धान्त से ही जुड़ा हुआ दर्शन है— पुनर्जन्म, भाग्य एवं मोक्ष। इसी पर प्रकाश डालते हुए कविवर कहते हैं—'तच्चिन्तितं कर्मविपाकरहस्यं को नु जानाति? परन्तु निश्चितमिदं यत्प्रत्येकं घटनायाः सूत्रं तेनैव नियन्त्रितम्। इदमपि सुनिश्चितं यन्न किमपि निष्प्रयोजनं घटते। केन दुःखेन किं सुखमुत्पद्यते, कस्य वा दुःखेन कस्याऽन्यस्य सुखं विधीयते इति परमेश्वरः प्रागेव जानाति। घटिते सति लोकोऽपि जानीते। विचित्रं विस्मयावहञ्च नियतिजनितं घटनाचक्रम्।'[103]

मधुप एवं विमला के परिस्थिति जन्य वियोग एवं विमला के अन्यत्र विवाह के बारे में वे टिप्पणी करते हैं 'बलीयसी भवितव्यता।'[104]

इक्षुगन्धा की नायिका बिट्टी का विवाह अल्पयोग्य वर से होने पर नायक के मुख से कहलवाते हैं— 'ईदृशैरेव विपर्ययैः सृष्टिः प्रवर्तते। सर्वेऽपि प्राणिनः पूर्वजन्मार्जितान्येव पापपुण्यानि भुञ्जन्ति। सुखस्य दुःखस्य वा न कोऽपि दाता।'[105]

आशावादिता भाग्यवाद का ही दूसरा पहलू है। जो ईश्वर पर भरोसा करता है, वह कर्म भी करता है और निराश नहीं होता। पिता के कठोर एवं संवेदनहीन व्यवहार के बाद भी रमा आशान्वित है कि पिता एक दिन जरूर उनके प्रति संवेदनशील हो जाएंगे। वह सोचती है– 'पाषाणेऽपि राजतेऽग्निः।'[106] दीक्षागुरुमहेश्वरानन्द शैलेन्द्र के पिता को कहते हैं– 'भवत्सुखं भवदधीनमेव! पितामह! अलमसहाय इव, विवश इव, हतभाग्यं इवात्मानं विनिन्द्य, नैराश्यसागरे वा निपात्य।'[107] श्रीकृष्ण भी भगवद्गीता में किंकर्त्तव्यविमूढ़ एवं हताश अर्जुन से कहते हैं 'नात्मानमवसादयेदिति।'[108]

भारतीय-संस्कृति विश्व वरेण्य संस्कृति है। हर्षदेव के द्वारा सनातन वैदिक धर्म का विरोध करने पर तथा बौद्ध धर्म के पक्षधर होने पर बाणभट्ट उनको फटकार लगाते हुए कहते हैं– 'राजन! विद्वेक्षि तं शाश्वतं सनातनं वेदधर्मं यो विनिर्ममे विश्ववारां संस्कृतिम्।'[109]

वसुधैव कुटुम्बकम् की संकल्पना से पूरित भारत भूमि की पवित्र धरा समस्त संसार को चरित्र की शिक्षा देने की पात्रता धारण करती है। वाग्दत्ता की नायिका जेनी कहती है– 'वसुधैव कुटुम्बकम् इति भारतराष्ट्रमेव समग्रविश्वमध्यापयत्। कृण्वन्तो विश्वमार्यमिति संङ्कल्पनाऽपि भारतवर्षस्यैव। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा इत्येवं समुद्घोष्य भगवान् मनुरेव समस्तमपि संसारमामन्त्रितवान् भारतमागन्तुं स्वचरित्रं शिक्षितुञ्च।'[110] जेनी के मुख से कवि भारतीय संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ, वरेण्य, अनुकरणीय, सभ्य एवं शिक्षणीय प्रमाणित करते हैं।

षोडश-संस्कार भारतीय संस्कृति की एक अद्भुत विशेषता है। गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्तिम संस्कार तक मानव जीवन के आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक कल्याण के लिए, शारीरिक एवं मानसिक परिष्कार एवं पवित्रीकरण के लिए सोलह संस्कारों का विधान स्मृति आदि ग्रंथों में किया गया है। इन सोलह संस्कारों में पाणिग्रहण संस्कार अतिमहत्त्वपूर्ण संस्कार है, जिसे विवाह अथवा उद्वाह संस्कार भी कहते हैं। विवाह के आठ प्रकारों को संस्कृति में स्थान मिला है।

अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना से पूरित भारतीय संस्कृति में कविवर की सम्पूर्ण आस्था है। दाम्पत्य जीवन की अत्यन्त सुन्दर परिकल्पना कविवर ने एकचक्रः कथा में की है, दाम्पत्य जीवन एक गाड़ी के दो पहियों की तरह समगति, सामंजस्य, समझ व संतुलन से चलता है। वे दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं, दोनों की महत्ता समान है, दोनों की निष्ठा, कर्तव्य,

समर्पण एवं प्रणयपरिपूर्णता समान रुप से अपेक्षित है। वे कहते हैं– 'दाम्पत्यमधिकृत्य मदात्मचिन्तनं सर्वथा नूतनमेवासीत्। दाम्पत्यं नाम किम् ? मिथः प्रणयनिबद्धयोर्द्वयोः स्त्रीपुरुषयोर्नैष्ठिकस्संयोगः। निष्ठैव दाम्पत्यमूलम्। इयं निष्ठाऽप्युभयपक्षीयैव। यथा पत्न्या निष्ठा पतिं प्रत्यपेक्षते तथैव पत्नीं प्रति पत्युरपि। एवं हि दाम्पत्ये न कोऽपि कमपि कथमप्यनुगृह्णात्युपकरोति वा। आत्मकर्तव्यनिर्वहणे दाम्पत्योचितनिष्ठापरिपालने वा कीदृशः उपकारभावः? कीदृशी अधमर्णतोत्तमर्णता वा ?'[111]

स्पष्ट है कि कविवर दाम्पत्य जीवन की उस लोक प्रचलित रुढ़ परम्परा के पक्षधर नहीं है जिसमें स्त्री का आत्मसम्मान व अस्मिता धूलधूसरित हो जाती है तथा पति ही उसके सम्पूर्ण अस्तित्व का स्वामी एवं निरंकुश शासक होता है। कवि नारी को दोयम दर्जे पर नहीं, बल्कि परिवार की मेरुदण्ड के रुप में स्वीकार करते हैं।

विवाह, समर्पण एवं स्नेहसार से सार्थकता को प्राप्त करता है, अन्यथा दो भिन्न–भिन्न परिवारों, संस्कारों एवं विचारधाराओं में सामंजस्य बिठाना अत्यन्त कठिन है। योग्य एवं अनुकूल वर एवं वधु का समागम लगभग असंभव है। इसी बात को संकेतित करते हुए वे कहते हैं– 'तुल्यगुणं वधूवरं विधाता क्व समानयति।'[112]

विवाह में स्त्री स्वातंत्र्य एवं अधिकार के पक्षधर होते हुए भी कविवर **मर्यादा के अतिक्रमण के पक्ष में नहीं हैं,** क्योंकि इससे सुरक्षा बाधित होती है और संरचनागत कारणों से स्त्री को ही इसके दुष्परिणाम सहने होते हैं। चञ्चा की नायिका मुन्नी बाई अपनी पुत्री को जो शिक्षा देती है, उसे प्रो. पुष्पा दीक्षित ने कन्याओं के लिए उपनिषद् कहा है। वो कहती हैं–'प्रणयसूत्रे विच्छिन्ने सति नार्येव पराजयं पश्यति न पुरुषः। प्रकृत्या शरीरेण समाजदृष्टया च नारी परमनिर्बला वत्से! यतो हि उभयसाधारणे सत्यपि सम्भोगसुखे गर्भं नार्येव धारयति न पुरुषः। कुलटा व्यभिचारिणी वा सैव ख्याप्यते न पुरुषः। कलङ्कितं जीवनं सैव दुर्वहति न खलु पुरुषः। येनाचरणेन वराकी नारी निखिललोकतिरस्कारं भजते तेनैव पुरुषः प्रशाशस्यते छविल्लप्रकृतिरसाविति समुद्घोष्य।'[113] इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की नूतन परिकल्पना करते हुए भी भारतीय सांस्कृतिक मर्यादाओं के भञ्जन को अभिराज राजेन्द्रमिश्र सर्वात्मना प्रतिषिद्ध करते हैं।

भारतीय-संस्कृति में प्रतिपादित पुनर्विवाह व विधवाविवाह को भी कविवर ने संस्कृति सम्मत प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में अनेकों उदाहरण विधवा

विवाह, पुनर्विवाह, गन्धर्वविवाह आदि के मिलते हैं, परन्तु कालान्तर में भ्रामक व्याख्याओं एवं संकुचित मानसिकता के कारण ये परम्पराएं विस्मृत कर दी गई। इन परम्पराओं का अधुनातन समाज में अभिनन्दन क्यों नहीं होता, इसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं– 'अज्ञानवशात्। रूढ़िवशात्। बन्धो! यथाऽवरुद्धप्रवाहस्य तडागस्य जलमपेयं पूतिमच्च जायते तथैव परिच्युता विस्मृता वा परिपाट्योऽपि संजायन्तेऽधर्मपर्यायभूताः।'[114]

उदार हृदय महर्षियों तथा स्मृतिकारों ने मुक्त कण्ठ से विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह का समर्थन किया है। न केवल प्राचीन, अपितु नवीन चिन्तकों कौटिल्य आदि ने भी पुनर्विवाह का समर्थन किया है। स्त्री से जुड़ी अपवित्र–पवित्र की भ्रामक अवधारणा को वे निर्मूल सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार वर्षाजल के प्रवाह से अपेयजल से युक्त बावड़ी भी शुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक रजोदर्शन से नारी शुद्ध हो जाती है। ऐसा स्मृतियां उपदेश देती है। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ कहते हैं कि 'न स्त्री दुष्यति जारेणेति' और भी कहते हैं–

'स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता।
बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगतापि वा।।
न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।
पुष्पमासमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।।'[115]

बलात्कार पीड़ित, अक्षतयोनिबाला एवं सद्यविवाहिता बाला यदि उसका पति मर जाए तो उसका पुनः विवाह किया जा सकता है। ये हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं–

'बलाच्चेत् प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिना देया यथा कन्या तथैव सा।।
पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मन्त्रसंस्कृता।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति।।'[116]

कविवर **पूरे समाज को उपदेश देते हैं कि जो धर्मशास्त्र तिरोहित हो गए हैं, उनको अपने व्यवहार से आप्तजन पुनः प्रतिष्ठापित करें।** समाज के आदर्शभूत मनुष्य वास्तविक सनातनधर्म की प्रतिष्ठापना करें। ऐसा करने पर अज्ञानग्रस्त भारतीय समाज हमारा ऋणी रहेगा। विधवा एवं एकाकी स्त्रियों का पुनरुद्धार होगा। वे समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित होगी। पुनर्नवा कथा में कृष्णा के पिता को दिया गया उपदेश वस्तुतः सम्पूर्ण समाज के

कर्णधार बुद्धिजीवियों एवं मनीषियों के लिए उपदेश है। वे कहते हैं–'राजन्! तिरोहितमिदं धर्मशास्त्रं प्रकाशयतु भवान् प्रतिष्ठापयतु भवान् स्वव्यवहारेण। भवादृशा निष्कलङ्ककाञ्चनसदृक्षाः समाजादर्शभूता आप्तजना एव वास्तविकसनातनधर्मं प्रतिष्ठापयितुं क्षमाः। अज्ञानग्रस्तोऽयं भारतीय समाजो, भविष्यति भवदधमर्णः। कियत्य एव दुःखदैन्यव्यथासागरनिमग्नाः कृष्णाः समुद्धृता भविष्यन्ति। वैधव्यमात्रं न भवति विधवायाः नियतिः। तन्नियतिस्तु तत्सौभाग्यम्।'[117]

पुरुषार्थ-प्रशंसा एवं अकर्मण्यता-निंदा भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है। कविवर ने अपनी कथाओं में पुरुषार्थ एवं कर्मवाद का समर्थन किया है। पुनर्नवा में शैलेन्द्र के पिता से वे कहते हैं कि प्रचलित मार्ग से तो साधारण जन चलते हैं क्योंकि वे अपने मार्ग का निर्माण करने में असमर्थ होते हैं। सिंह, सत्पुरुष एवं कविजन तो स्वयं अपने मार्ग का निर्माण करते हैं– 'राजन! चिराभ्यस्तेन क्षुण्णेन मार्गेण साधारणजनाः गच्छन्ति, ये स्वकीयं मार्गं निर्मातुमक्षमा अज्ञा वा। परन्तु केसरिणः कवयः सत्पुरुषाश्च न प्रवर्तन्तेऽभ्यस्तवर्त्मना! ते स्वकीयां सरणिं स्वयमेव विदधाति।'[118]

नूतन समाज के निर्माण का आश्रय महापुरुष ही होते हैं। जिस मार्ग से महापुरुष निकलते हैं, अन्य जन उसी का अनुसरण करते हैं– 'नूतनसमाजसरणिं निर्मातु। भवन्निर्मितेयमेवसरणिरन्येषां कृतेऽनुकरणीया भविष्यति। यतोहि–

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तत। (श्रीमद्भगवद् गीता)'[119]

सामान्य प्रचलित सामाजिक रुढ़ियों एवं मान्यताओं की परवाह न करते हुए प्रासंगिक एवं औचित्यपूर्ण जीवनमूल्यों की स्थापना की जानी चाहिए। इस तथ्य को प्रतिपादित करते हुए वाग्दत्ता में उमाचरण शुक्ल कहते हैं– 'समाजस्तु नदीप्रवाहकल्पो, यो हि प्रावृषि मलीमसश्शीततौं च स्वच्छतरोजायते।'[120]

<u>5) राजनीतिक-चेतना</u>

राजनीतिक शब्द **राजपूर्वक नीति शब्द से क प्रत्यय** से बना है। राज अर्थात् राजा तथा नीति अर्थात निर्देशन, दिग्दर्शन, प्रबन्ध, आचरण, चालचलन, व्यवहार, कार्यक्रम, औचित्य, शालीनता, नीतिकौशल, नीतिज्ञता, बुद्धिमत्ता योजना, उपाय, कूटयुक्ति। इस प्रकार राजनीति से तात्पर्य निकलता है कि राजा के द्वारा स्थापित नियम, निर्देशन, दिग्दर्शन, कार्यक्रम, योजना, आचार, व्यवहार, उपाय, नीति कौशल को राजनीति कहते हैं और इस राजनीति से संबंधित ज्ञान को ही राजनीतिक ज्ञान कहा जाता है।

राजनीतिक के अंग्रेजी पयार्य Political पद का तात्पर्य है– 'of or concerning the statye or its government, or public affairs generally' अथवा of relating to or engaged in politics अथवा belonging to or forming part of a civil administration'[121] अर्थात् सरकार जनकल्याण को लेकर, जो सामान्य प्रशासनिक नियमावलि निर्मित करती है, वह Politic और इससे संबंधित कार्य Political अथवा राजनीतिक कार्य है।

राजनीति राजा की इस प्रकार की नीति को कह सकते हैं, जिससे प्रजा की सुरक्षा हो, समाज व राष्ट्र की उन्नति हो, शत्रुओं का नाश हो। प्रारम्भिक अवस्था में क्षत्रिय अथवा राजन्य वर्ग का कर्तव्य था, प्रजा की रक्षा करना, आहत एवं असुरक्षित वर्ग को सुरक्षा व संरक्षण देना, परन्तु कालान्तर में जन्मजात ऐश्वर्य व प्रभुत्व ने राजा को निरंकुश, अहंकारी एवं स्वार्थी रुप प्रदान कर दिया। राजा का व्यक्तित्व व दृष्टिकोण राजनीति के निर्धारण का आधारभूत तत्त्व है। राजनीति अनेकरूपा हो सकती है। इसी पर प्रकाश डालते हुए भर्तृहरि कहते हैं–

'सत्याऽनृता च परूषा प्रियवादिनी च,
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च,
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा।।'[122]

कवि के कथा साहित्य की आत्मा नारी चेतना है। उनकी समस्त कहानियों में स्त्री केन्द्र में हैं, तथापि समाज के सभी विषयों को कवि ने समेटने का प्रयास किया है। राजनीति समाज के बाहरी स्वरुप को, व्यवस्थाओं को अनुशासित करती है। अतः राजनीति भी प्रसंगानुसार कवि की कथाओं का विषय बनी है। कुछ कथाओं की विषयवस्तु राजनीति

पर आश्रित है तो कुछ में प्रसंगानुसार कवि का राजनीतिक ज्ञान प्रतिबिम्बित हुआ है। राजनीति का ऐतिहासिक स्वरुप हो अथवा वर्तमान स्वरुप कविवर इसकी गहरी समझ रखते हैं। वे न केवल राजनीति के भूत एवं वर्तमान स्वरुप को वर्णित करते हैं, बल्कि इसके उज्ज्वल भविष्य के लिए आदर्श स्थापित भी करते हैं।

अतीत में **राजाओं के दरबार में कवियों एवं विद्वानों का न केवल स्थान था, बल्कि उनका समुचित सम्मान था।** विद्वानों को अपना मत रखने का अधिकार था। विद्वज्जन राज सेवा एवं संतुष्टि से ऊपर अपने स्वाभिमान को रखते थे। यह इस बात का भी प्रमाण है कि राजसभा में बुद्धिजीवियों को अपनी बात रखने का अधिकार था, भले ही वह बात राजा के विरुद्ध हो। राज्याश्रय छोड़ देने पर भी वे स्वाभिमान से रह सकते थे। अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा में बाणभट्ट कान्यकुब्जेश्वर से असहमत होते हुए उनको फटकार लगाते हैं। वे कहते हैं– 'धर्मचर्चासंसद्येव कान्यकुब्जेश्वरो हर्षो मयाऽधिक्षिप्तः। परधर्मासहिष्णुरसौ सगुणोपासनां देवविग्रहमस्यां शास्त्रकर्मकाण्डञ्च नृपत्वाभिमानजनितनिर्भयत्वगर्वितस्सन् खलीकुर्वन् परिलक्षितो मया। सर्वेऽपि त्रयीश्रद्धालवस्सभास्तारश्चित्रतुरगीभूतास्तितिक्षामनुमोदनञ्चनाट्यन्तस्तूष्णीमुपगताः.................. मध्येव्याख्यानमेव तं साटोपं संस्थगय्य निर्भयोऽहमकथयम्–राजन्! अलमनर्गल प्रलापेन! नाऽहं तव करद सामन्तः। नाऽहं त्वदनुग्रहोपस्कृतजीवितः। न चाप्यहं भवत्सारस्वत्वैदग्ध्याऽधमर्णः।'[123]

यह प्रसंग प्रमाणित करता है कि पुराकाल में भले ही चापलूस लोग होते थे, जो भयभीत होकर बोल नहीं पाते थे, परन्तु बाणभट्ट जैसे आत्मसम्मानी लोग भी विद्यमान थे, जो आश्रयदाता राजा के समक्ष तर्क कर सकते थे, वाद–विवाद कर सकते थे, विचारणीय विषयों पर निर्भयतापूर्वक अपनी बात रख सकते थे।

प्राचीन राज्यसभाओं में प्रजातांत्रिक वातावरण था। सभा में विद्वज्जन अपना विरोध प्रदर्शित कर सकते थे, चाहे वह राजा के साथ ही क्यों न हो। कान्यकुब्जेश्वर के द्वारा सगुणोपसना, कर्मकाण्ड तथा वेदत्रयी का तिरस्कार करने पर बाणभट्ट कान्यकुब्जेश्वर से कहते हैं– 'अस्मान् वेदमतनिष्ठान् विजानताऽपि भवता यथाकथञ्चित्सन्दर्भमुत्पाद्य वयमुपहसिताश्चेष्टेङ्गिताकारादिभिः। तदपि मया सोढ्म्। परन्तु कान्यकुब्जेश्वर! न सहिष्ये सम्प्रति सर्वेश्वरावमानम्! न सहिष्ये त्वत्कृतां वेदनिन्दाम्।'[124]

प्राचीनकाल में विद्वान, कवि, साहित्यकार सभा में सम्मानप्राप्त होते थे। राजप्रशंसा, राजस्तुति अथवा राजा का पथ प्रदर्शन करने का दायित्व पूरा करते थे। हर्ष देव की सभा में उनके कृपा प्राप्त बाणभट्ट ने कृपा के प्रतिकार में हर्षचरितम् लिखी।

राजनीतिक आदर्श स्थापित करने वाली राजनीतिपरक कथाओं में प्रतिपाद्य विषयवस्तु, यह प्रतिपादित करती है कि सत्ता अथवा राजैश्वर्य का मद समस्त अनिष्टों को उत्पन्न करने वाला है। बाणभट्ट ने कादम्बरी में शुकनास के मुख से, जो चन्द्रापीड़ को उपदेश किया है– 'गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा। सर्वा अविनयानामेकैकमप्येषामायतनम् किमुत समवायः।'[125]

कवि इस **राजैश्वर्य के मद के दुष्परिणाम से भलीभांति परिचित हैं।** वे कुलशेखरपाण्ड्य के राजकवि हस्तिमल्ल के मुख से कहलवाते हैं, जब राजा का अपना पुत्र सुन्दरपाण्ड्य प्रभुत्व एवं सत्ता से वंचित होने पर उनका वध कर देता है– 'हा दुर्दैव! पुत्र एव पितरं गुणकदम्बतरुभूतं घातयतिस्म। धिगेतं नाटकीयं राजमदम्। भैक्ष्यमपि वरं न खलु राजैश्वर्यम्।'[126]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र कहते हैं कि यदि जिसे सहारा देना है वही गिराने का कार्य करे, जिसे रक्षा करनी है वही भक्षक का कार्य करे, यदि बाँस की अग्नि ही बाँस को जलाने का कार्य करे, लहरे ही जलयान को डुबाने का कार्य करे तो पृथ्वी के समस्त चराचर जगत का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। राजसिंहासन को संरक्षण देने वाला ही उसका घातक बन जाए तो राज्य की रक्षा कौन करेगा? वर्तमान काल में भी हम देख रहे हैं कि सत्ता, साम्राज्य, अनुशासन, व्यवस्था, कानून, न्याय व्यवस्था को बनाए रखने की जिम्मेदारी जिन कन्धों पर हमने डाल रखी है, वे अनुशासन एवं व्यवस्था को भंङ्ग कर रहे हैं।

यदि **आश्रयदाता,** संरक्षक, खुशियां देने वाला, कल्याण करने वाला, उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने वाला ही **विनाशक बन जाए तो उस राज्य की स्थिति विधवा स्त्री की तरह है,** जो शरणहीन है तथा जिस पर झपटने के लिए हजारों हाथ हैं। 'ताम्बूललकरङ्कवाहिनी' कथा में सुन्दर पाण्ड्य के द्वारा अपने ही पिता को मार दिए जाने पर वे कहते हैं– 'हा कर्णाटवसुन्धरे! इदानीं विधवासि जाता! विधाविनयचरित्र्यादिगुणाः कोऽवलम्बः सम्प्रति भवताम्?'[127]

यदि **राजा योग्य एवं समर्थ हो,** प्रजा के लिए समर्पित हो, प्रजा को उस पर भरोसा हो, **तो भय, दण्ड व युद्ध का प्रयोग लगभग अनावश्यक है।** राङ्गङा कथा में धर्मोदयनदेव के शासक होने पर, प्रजा के द्वारा उनको हृदय से स्वीकार कर लिए जाने पर, निर्विघ्न एवं अनायास संचालित राज्य व्यवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं 'नाम्नाऽपि प्रशासति तस्मिन् महाविक्रमशालिनि भूभुजि असत्यं नर्मवाक्येषु वा स्त्रीषु वा, भयं राजदण्डेषु वाऽधर्माचरणेषु वा, आसक्तिः पुत्रकलत्रेषु वा देवताषु वा, रतिः स्वप्रमदाषु वा परोपकरणेषु वा, पराक्रमः कर्तव्यनिर्वहणेषु वा समराङ्गणेषु वा परिनिष्ठित आसीत्।'[128]

राजा के समर्थ एवं योग्य होने के अतिरिक्त उसके **मंत्री, सलाहकार, गुरु अथवा नीतिनिर्देशक का भी योग्य एवं सक्षम होना आवश्यक है।** धर्मवंश का राजगुरु कुतुरान, जिन्हें वे बालीद्वीप में महामात्य के पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए भेजते हैं, समस्त आदर्श राजगुरुओं के धर्मों को धारण करते हैं। राजगुरु कविवर की दृष्टि में किस प्रकार का होना चाहिए उसकी एक झलक, उनके इस वाक्य में प्रतिबिम्बित होती है–'वेदशास्त्रपुराणमर्मज्ञो राजनयपटुरसौ भारतवर्षे समुन्त्रो दशरथमिव विदुरो युधिष्ठिरमिव यौगन्धरायणो वत्सराजमिव, हरिषेणश्चन्द्रगुप्तमिव, विद्यारण्यो माधवो हरिहरबुक्काविव बालीनरेशमुदयनदेवं स्वप्रतिभया राजनयेन च सम्यग् रक्षितवान्।'[129]

राजा के आदर्श को स्थापित करते हुए कविवर मानते हैं कि राजा चूंकि प्रजा की रक्षा एवं पालन–पोषण के लिए होता है। अतः प्रजा के प्रति प्रेम अथवा **प्रजावात्सल्य राजा का सर्वोच्च गुण होना चाहिए।** प्रजा के कल्याण के लिए, उनकी उन्नति के लिए राजा का प्रजा के बीच में जाना, उनकी अवस्था का अवलोकन करना, उनके विचारों को जानना और यदि कोई समस्या है तो उसका निदान एवं निस्तारण करना राज्य एवं प्रजा के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। बाली नरेश धर्मोदयनवर्मदेव प्रजा के योग एवं क्षेम जानने के लिए जब सामन्तों के साथ विचरण करते हैं, तो सर्वत्र हाहाकार दिखाई देता है– 'न कुत्रापि भूपतिः हर्षामोदसंभारं ददर्श। सर्वत्रापि हाहाकारः। ग्लानिदैन्य विषादरेखाङ्किकतानि प्रजाजनमुखमण्डलानि। शून्या देवालयाः। शून्या ग्रामाः। मृत्युविभीषिकेव सर्वत्र तामसी व्यथा प्राभवत्।'[130]

प्रजा की दुर्दशा को देखकर प्रजावत्सल धर्मोदयनदेव पीड़ा एवं पश्चात्ताप से व्याकुल हो उठते हैं। वे मन में सोचते हैं कि राजा के होने पर भी प्रजा की यह दयनीय दशा

लज्जा का कारण है–'हा दैव! अन्तःपुरप्रकोष्ठनिरुद्धः कन्दर्पकेलिव्यापृतचित्तवृत्तिरहं न कदापि प्रजावर्गान् अपश्यम्।.... हन्त! चन्द्रोदयेऽपि सङ्कुञ्चन्ति कुमुदानि? वर्षत्यपि बलाहके प्रज्वलन्ति भूधराः? सूर्योदये सत्यपि प्रभवति तमस्काण्डम्।'[131] राजा धर्मोदयनदेव का यह अपराध बोध एवं प्रजा के प्रति संवेदनशीलता यह भी प्रमाणित करती है कि **इतिहास में जब-जब भी सत्ता एवं ऐश्वर्य के वशीभूत राजशक्ति, भोग एवं विलासिता के मार्ग पर चल पड़ी, तब-तब प्रजाओं को यह दुर्भाग्य के दिन देखने पड़े हैं।** यदि राजा को विलासिता एवं विषयवासनाओं से अवकाश नहीं है, तो प्रजा के कार्यों के लिए समय कहां से मिलेगा।

प्रजा के भय, दैन्य एवं विषाद के कारणों को धर्मोदयनदेव सम्यक रुप से जानते हैं, इसीलिए राज्यभ्रमण के समय प्रजा की दयनीयावस्था को देखकर पूछते हैं– 'कस्मादहं सर्वत्रापि दैन्यं भयं विषादञ्च पश्यामि? किं तस्कराः प्रभवन्ति? किं लुण्ठाका दस्यवो वा बाधन्ते आहोस्वित् किमप्यन्यत् दैहिकं दैविकं वा भयं मत्प्रजावर्गंशातयति?'[132]

केवल अधीनस्थ सेवकों, कर्मचारियों, अधिकारियों, मंत्रियों अथवा सामन्तों पर **आँख बंद कर भरोसा करना और स्वयं क्रियाशील न रहना** सम्पूर्ण अव्यवस्थाओं एवं **अराजकता के लिए उत्तरदायी है।** इसी को बताते हुए राजा धर्मोदयन देव कहते हैं– 'प्रायेण प्रणिधिसामन्तपुरोहितवचनेषु विश्वस्य सर्वमेव समञ्जसं मत्वा न मयाऽवेक्षिता प्रजाजना प्रत्यक्षम्। तन्न युक्तमासीदिति सम्प्रत्यनुभवामि। आत्मानं महान्तमपराधिनं मन्ये।'[133]

प्रजा के प्रति करुणहृदय होना, उनकी पीड़ाओं के साथ एकाकार होना, उनकी भावनाओं को अनुभव करना, उनके प्रति संवेदनशील होना राजा की सार्थकता को सिद्ध करता है। प्रजा की दशा को जानकर धर्मोदयन देव मर्माहत होते हैं– 'प्रजाजनव्यथामश्रुतपूर्वामाकर्ण्य धर्मोदयनदेवः परमकारुणिको मर्माहतो जातः।'[134]

प्रजा की वस्तुस्थिति को, राज्य की अवस्था को, राजा के प्रति प्रजा के विचारों को **सम्यक रुप में पहुंचाना दूतजनों का कार्य है** और उन्हें वह कार्य सम्यक रुप से सम्पादित करना ही चाहिए, चाहे यह तथ्य राजा को कटु अथवा अप्रिय ही क्यों न लगे। किरातार्जुनीयम् में भारवि ने युधिष्ठिर द्वारा दूतकार्य के लिए नियुक्त वनेचर के मुख से कहलवाया है–

'प्रजासु युक्तै नृप चारचक्षुषो न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।'[135]

मन्त्रिगणों एवं गुप्तचरों की इस असावधानी को राजा को सहन नहीं करना चाहिए। बाली प्रदेश की दुर्दशा को देखकर क्रोध एवं आवेग से कांपते हुए बाली नरेश सामन्तों एवं सेवकों को तिरस्कार के साथ कहते हैं– 'अतिसन्धानपरायणाः शठाः! इदमेवास्ति प्रजायोगक्षेमवृत्तं यद्युष्माभिरनवरतं मया पृष्टैर्निवेदितम्? धिङ्मां प्रजाविपत्तिकारणभूतम्! यूयं सर्वेऽपि दण्ड्याः। राजधानीं प्रतिनिवृत्त्य समेषां भाग्यानि मया निर्णेतव्यानि।'[136]

इस प्रकार की कठोरता एवं दण्ड व्यवस्था शासन को सुचारु रुप से चलाने के लिए अनिवार्य है, अन्यथा नियंत्रणहीन होकर सम्पूर्ण शासकीय व्यवस्था शिथिल हो जाती है। समय एवं परिस्थिति के अनुसार कठोरता आवश्यक है। यही महापुरुषों के लक्षण होते हैं कि वे समय एवं परिस्थिति को आत्मसात् कर लेते हैं– न्यायात् पथः प्रविचलन्ति न धीराः।'[137]

राजा धर्मोदयनदेव भी श्रेष्ठवंशीय एवं आर्यधर्म मर्यादा के पक्षधर हैं– 'धर्मोदयनदेववर्माऽहम्! सूर्यवंशीया अस्मत्पूर्वजाताः आर्यधर्ममर्यादापक्षधराः।'[138]

दण्ड-व्यवस्था प्रजा के कल्याण के लिए है, प्रजा की विपत्तियों के प्रतिकार के लिए है। **यह कोई प्रतिशोध अथवा पक्षपात का माध्यम नहीं बननी चाहिए।** किरातार्जुनीयम् में भारवि भी दुर्योधन की न्याय व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि–

'वसूनि वांछन्नवशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरुपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।।'[139]

राजा धर्मोदयन देव अपनी प्राण प्रिया पत्नी के तंत्राभिचार प्रयोग एवं कापालिक क्रियाओं में लिप्त होकर, प्रजा के साथ अन्याय करने की बात जानकर, बहुत आहत होते हैं, स्वयं को तिरस्कृत महसूस करते हैं, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उनकी दोलायमान मनस्थिति का वर्णन कविवर करते हैं– 'आः सम्राज्ञि महेन्द्रदत्ते! गुणप्रियधर्मपत्नि! मुकुटवंशवर्धन नन्दिनी! यवराजलक्ष्मि! हृदयवल्लभे! त्वय्यपि सुचरितनन्दिन्यामेवं नाम नारकीयो विकारः? राक्षसीभूताऽसि? नासि त्वं राजसौधगौरवाभिमानभूता राजमहिषी। श्मसानसुन्दरीजाताऽसि! अतएव नार्हसि क्षणमपि त्वं सुरगृहोपमराजप्रासादवासम्।'[140]

अपनी भावनाओं से ऊपर उठकर धर्मोदयनदेव ने राजधर्म का पालन करते हुए राजमहिषी महेन्द्रदत्ता को गर्भावस्था में भी राजप्रासाद से निष्कासित कर दिया।

प्रजावत्सलता एवं प्रजापक्षधरता के लिए अपने **व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर समर्पित होना प्रमुख राजधर्म है।** धर्मोदयनदेव के इसी गुण से सभी सामन्त एवं पुरजन श्रद्धावनत हो गये– 'धर्मध्वजभूतस्याश्चर्यकर्मणोऽवनिपालस्य प्रजापक्षधरत्वं विलोक्य राजगुरु सेनापतिसामन्तश्रेष्ठिवर्गाः श्रद्धातिशयप्रणता जाताः।'[141]

इसी राजधर्म का उनके पुत्र एरलङ्ग ने भी कठोरता से पालन किया। कालान्तर में महेन्द्रत्ता अपने पुत्र के समक्ष धर्मोदयनदेव को नियंत्रित करने का प्रस्ताव रखती है और उसके किए गये अन्याय का प्रतिकार करने को प्रेरित करती है, परन्तु एरलङ्ग धर्मोदयनदेव के न्याय को औचित्यपूर्ण ठहराते हुए कहते हैं– 'पत्नीं राजकन्योचिताचारमर्यादाशीलसमुदाचारमतिक्रान्तां प्रजाशातयित्रीं दण्डयन् बालीनरेशः कथम्मया दण्ड्यः।'[142]

पुनर्नवा कथासंग्रह चूंकि समसामयिक विषयों को समेटे हुए है। अतः उसकी कथाओं **में आज का समाज, आज की राजनीतिक-स्थिति प्रतिबिम्बित होती है।** अधुनातन समय में राजनीति केवल सत्ता में बने रहना है। समस्त विषय जिनका आश्रय लेकर नेतृत्वशक्ति कुर्सी पर विराजमान रह सकती है, राजनीति के वे अधुनातन विषय है भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, उग्रवाद, आतंकवाद, नक्सलवाद, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, अशिक्षा, बेरोजगारी, जनसंख्यावृद्धि, पर्यावरणप्रदूषण, लैंगिक–असमानता, बाल–विवाह, बालापचार, यौन–उत्पीड़न, भ्रष्टाचार आदि। देश के संविधान की रक्षा करने की सौगन्ध लेने वाले, नीति–निर्माण का दायित्व वहन करने वाले, कानून एवं न्याय व्यवस्था की रक्षा करने वाले, देश में शीर्षस्थान पर विराजमान, हमारे नेतागण सामंजस्य स्थापित करने के बजाय वर्गभेद एवं वर्गसंघर्ष को बढ़ावा दे रहे हैं। संख्याबल पर आधारित प्रजातंत्र में मतलोलुप सत्तातंत्र, वोटों के लिए राष्ट्रीय हितों के साथ समझौता कर रहा हैं। संकल्प कथा में असवर्णों की पीड़ा एवं पलायन को अभिव्यक्ति देते हुए वे कहते हैं कि सृष्टि की स्वाभाविक विशिष्टता है विविधता।

सृष्टि में प्राणी अपनी विलक्षण क्षमताओं एवं योग्यताओं के साथ पैदा होते हैं। वे सब अपनी–अपनी विशिष्टताओं के साथ सामञ्जस्य एवं सद्भाव से रह सकते हैं परन्तु सत्ता लोलुप ताकतें ऐसा होने नहीं दे रही। वे कहते हैं– 'अर्थसाम्यप्रयासापेक्षया

हृदयसाम्यस्थापनाप्रयासः सुकरः उपादेयश्च प्रतिभाति। हन्त, तदेव कार्यं शासनेन न चक्रियते।'[143]

संकल्प कथा में निहोर कहता है– 'प्रकृतिः स्वयमेव भिद्यते। नाहं क्वचिदपि साम्यमद्वैतं वा पश्यामि।'[144]

और भी

'संसारेऽस्मिन् वैविध्यमेव व्यवस्थामूलं सर्वजनशरणञ्च।'[145]

कविवर प्रश्न उठाते हैं कि क्या शासकीय प्रयासों से सभी को समान किया जा सकता है ? वे कहते हैं कि 'किं शासनं वामनं प्रांशुं, प्रांशुं वा वामनं विधातुं शक्तम्? किं शासनं सुकण्ठमकण्ठं अकण्ठं वा सुकण्ठं कर्तुं शक्ष्यति? किं किं साम्यं व्यवस्थापयिष्यति शासनतन्त्रम्?'[146]

सनातनकाल से प्रकृति प्रदत्त रुचियों, कार्यों एवं व्यवसाय की विविधता के बीच सद्भाव एवं सामंजस्य से रह रहे समाज में वोटों की राजनीति के वशीभूत **द्वेष व भेद उत्पन्न करने का कार्य सत्तान्ध लोग कर रहे हैं।** कवि कहते हैं–'असवर्णान् मृषावादैरुद्दीप्य सवर्णविरोधिनश्च तान् विधाय शासनं मतसंग्रहव्याजेन स्वार्थं साधयति।' परन्तु चिरकालादखण्डितम् अविद्धम् अविपर्यस्तं विश्वसनीयं संवादिनञ्च प्रणयसम्बन्धं द्राग् विच्छिन्नं दृष्ट्वा न जायते तस्य कापि चिन्ता?'[147]

सामाजिक कुरीतियों एवं विकारों को रोकने का प्रयास एवं समाज के मुख्य धारा से कटे लोगों को मुख्य धारा में लाने का कार्य राजनीति के जिन धुरन्धरों पर है, उन्हें जनकल्याण एवं समाज कल्याण में कम तथा **सत्ता-सुलभ ऐश्वर्यों का भोग करने में ज्यादा रुचि है।** नर्तकी कथा में वेश्योन्मूलन के प्रसंग में वे कहते हैं कि लोकनायक नेतागण, वेश्यावृत्ति उन्मूलन के औपचारिक आन्दोलन तो चलाते हैं, परन्तु वेश्वावृत्ति छोड़ने के पश्चात् उनके जीवनयापन की व्यवस्था एवं सामाजिक स्वीकरण के संदर्भ में वे गंभीर नहीं है। यदि वेश्यावृत्ति का कारण दूर नहीं होगा और समाज उन्हें उदार हृदय से स्वीकार नहीं करेगा तो यह सिर्फ कागजों में सिमट कर रहने वाला औपचारिक कार्यक्रम होगा और वही हो रहा है। कवि कहते हैं –'लोकनायकाः नेतारो मन्त्रिणोऽधिकारिणो न्यायाधीशा महामण्डलेश्वराः सर्वेऽपि दृढ़समर्थका आसन् अस्यान्दोलनस्य! परन्तु वेश्यावृत्तिमपहाय

साध्वीजीवनं यापयन्तीनामासां नर्तकीनां का नु भविता जीवनयापनव्यवस्थेत्यस्मिन् विषये न कोऽपि चिन्तयति स्म।'[148]

प्रशासनिक अथवा सरकारी कार्यक्रमों के खोखलेपन पर प्रहार करती कविवर की मद्यनिषेध कथा भी इसी विसंगति पर प्रहार करती है। नगर निगम के सभा भवन में मद्यनिषेध विषय पर आयोजित सभा में मद्यपान की बुराईयों का वर्णन कर इसका विरोध करने वाले केन्द्रीय परिवहन मंत्री महोदय संध्याकाल में स्वयं मद्यपान का आनन्द लेते हुए देखे जाते हैं–

'सन्ध्याकाले मन्त्रिमहोदयोऽसावेव निजातिथिकक्षे मित्रैः सह मद्यपानं कुर्वाणः प्रभावशालिभाषणार्थं मित्राणां वर्धापनं स्वीकुर्वन् आनन्दमनुभवति स्म।'[149]

चित्रपर्णी की छोटी–छोटी लेकिन मस्तिष्क में कौंध जाने वाली लघुकथाओं में कविवर ने राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियों पर तीक्ष्ण प्रहार किया है। कविवर की काष्ठभाण्डम्, संस्कृतवर्षम्, राष्ट्रपति पुरस्कारः, पात्रत्वम्, नियुक्तिः आदि लघुकथाएं भिन्न–भिन्न विभागों में पक्षपात, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद एवं निजी स्वार्थों की राजनीति पर सटीक प्रहार करते हुए समाज को राजनीति का यथार्थ बिम्ब दिखाती हैं।

हम कह सकते हैं कि कविवर राजनीति, राजधर्म एवं राजनीतिक विसंगतियों की गहरी समझ रखते हैं। वे अपनी कथाओं के माध्यम से इन विसंगतियों पर प्रहार करते हैं तथा अनुकरणीय मार्ग का आदेश भी करते हैं। **बाणभट्ट जैसे स्वाभिमानी सभासद, हस्तिमल्ल जैसे शुभेच्छु-अमात्य, एरलङ्ग व धर्मोदयनदेव जैसे प्रजावत्सल राजा एवं राजा में विश्वास एवं भरोसा रखने वाली बाली प्रदेश जैसी प्रजाएं संप्रति समाज के लिए वरेण्य है।**

6) धार्मिक-चेतना

धार्मिक पद **धर्म पद से ठक् प्रत्यय** से निष्पन्न है जिसका तात्पर्य है धर्म से युक्त। धर्म पद **'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा'** अर्थ में धृ धातु से मन् प्रत्यय से निष्पन्न होता हैं। संसार को धारण करने वाले अथवा संसार की सत्ता के आधारभूत गुण धर्म कहलाते हैं।

धर्म समाज की आत्मा है, प्राण है, जीवनधारा है, आत्मालोचन है, जीवन की सार्थकता है, कर्म की सार्थकता है। धर्महीन जीवन पलायन की ओर प्रवृत्त करता है। कविवर की दृष्टि में निष्काम कर्मयोग ही वीरों का मार्ग है। पलायन, कायरों द्वारा चुना गया विकल्प है। धर्म के इसी स्वरूप को विस्तारपूर्वक अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा में प्रस्तुत करने का

सफल प्रयास कविवर ने किया है। हर्ष के सनातन वैदिक धर्म का तिरस्कार कर बौद्धधर्म का पक्षधर होने पर बाणभट्ट प्रतिपादित करते है कि सनातन वैदिक धर्म ही सांसारिक कल्याण का मार्ग है, बुद्ध का मार्ग पलायन का मार्ग है। स्वप्नदर्शन के रूप में बाणभट्ट की अनकही आत्मकथा कविवर की स्वयं की चिन्तनधारा एवं दृष्टिकोण है। ईश्वर, ब्राह्मणधर्म एवं वेदनिन्दा कविवर के लिए असहनीय है–'न सहिष्ये त्वत्कृतां वेदनिन्दाम्। न सहिष्ये त्वदुत्थापितं नित्यं नैमित्तिकञ्च ब्राह्मणधर्मविद्वेषम्।'[150]

बौद्धधर्म का जन्म वैदिक कर्मकाण्ड के विरोध में हुआ है। बौद्ध धर्म वेदों की निन्दा करता है। जबकि वेद अथवा सनातन धर्म, तर्क, विज्ञान एवं पर्यावरणीय चिन्तन पर आधारित ज्ञान का अवतरण है। वेद ईश्वरीय वरदान है। यदि इसमें कोई विकार भी आया है तो मनुष्यकृत भ्रामक व्याख्याओं के परिणामस्वरूप आया है। वेद कर्म का मार्ग है, सन्तुलन का मार्ग है, सम्पूर्ण ज्ञान का कोष है। **वेदनिन्दक नास्तिक है।**

तथागत का मार्ग पलायनवाद का मार्ग है, कायरता का मार्ग है, कर्महीनता का मार्ग है, दायित्व–निवृत्ति का मार्ग है, पुरूषार्थ हीनता का मार्ग है। जंगल में छिपकर संसार की रक्षा नहीं हो सकती। संसार की रक्षा संसार में रहकर ही हो सकती है। वे कहते है– 'हन्त, कियदुपहासास्पदमिदं तथ्यम्? यस्य संसारस्य रक्षा काम्यते, तत एवं पलायनं क्रियते? संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा? समरं विहाय समरविजयः? दायित्वं विहाय दायित्वपूर्तिः?'[151]

कवि कहते हैं कि जिन चार आर्यसत्यों की बात सिद्धार्थ करते है, वे आर्यसत्य अधम प्राणियों से लेकर विद्धज्जन तक सभी जानते हैं। ये चारो आर्यसत्य वेदोपनिषदों में कहे गए हैं। तापत्रय का निवारण सांख्यदर्शन में पहले से ही उपस्थित है। जिस अज्ञान निवृत्ति की बात सिद्धार्थ करते है वह वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद में निहित है। दुःखमुक्ति के उपाय समस्त ऋषिमुनियों ने बताए हैं। वैदिकधर्म अथवा सनातन धर्म में सम्पूर्ण ज्ञान निहित है। पलायनवाद इस लोक एवं परलोक दोनो की दुर्गति करता है।

संसार से भागकर वनों में भ्रमण एवं आत्ममुक्ति के प्रयास को कविवर नही मानते। सिर मुंडवा कर पृथ्वी पर भार स्वरूप, सांसारिक दायित्व–निर्वहन से भागे, हजारों निरर्थक परजीवी मनुष्यों को सामान्य लोग क्यों ढोने का काम करें? जो लोककल्याण का कार्य नही करते वे धर्म का नहीं, अधर्म का मार्ग अपना रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भी वेदान्त के उस स्वरूप का समर्थन कभी नहीं किया जिसमें संसार से पलायन कर आत्ममुक्ति का

प्रयास किया जाए। परोपकार के लिए पशुवत जीवन भी जीना पड़े तो भी वह धर्म है। संसार में रहकर सम्पूर्ण संसार का कल्याण ही धर्म है। क्योंकि कहा भी गया है –

'अयं निज परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।'[152]

कृषि प्रधान जिस देश में आबालवृद्ध पसीना बहाते है, वहां निर्वाण एवं मोक्ष की कामना करने वाले हृष्ट–पुष्ट मनुष्य बिना परिश्रम किए स्वादिष्ट भोजन करें, यह कैसा धर्म है? ये कैसा न्याय है? इसका क्या औचित्य है? पशुपक्षी भी मेहनत करके अपना पेट भरते हैं तो ऐसा धर्म किस काम का जो पराश्रित होना सिखाता है। कवि कहते हैं कि हमारे शास्त्रों ने सदैव हमें कर्म का उपदेश दिया है, वे कहते है –

'अहो, यस्मिन् कर्मयोगपक्षधरे राष्ट्रे समुदघोषयन्त्युपनिषदः कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा इति। योगेश्वरो भगवान्मधुसूदनोऽपि नियतं कुरू कर्म त्वमित्यादि यत्र समुपदिशति ।'[153]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र **ऐसे किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा पंथ को अनुकरणीय नहीं मानते, जो समाज को पुरुषार्थहीन कर दे,** सांसारिक कर्मों से विमुख कर दें, संसार को पराश्रयी, परोपजीवी एवं परमुखापेक्षी बना दे तथा सम्पूर्ण दायित्वों से मुक्त कर दे। सांसारिक कर्मो से निवृत्ति निर्वाण नहीं है, अपितु दायित्व निर्वहन में ही निवृत्ति है। कवि की दृष्टि में जब यह सम्पूर्ण सृष्टि कर्ममयी है। देवता, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी आदि सब ही गतिमय है। गति अथवा कर्म ही सृष्टि के अस्तित्व का रहस्य है। वे कहते हैं–

'धिक्तं धर्मं, धिग्धिक्तं सम्प्रदायं यस्समाजं क्लीबं विदधाति, यो लोकं कर्मपराङ्मुखं कुरूते, यो लोकं पराश्रयिणं परोपजीविनं परमुखापेक्षिणञ्च विधन्ते। ....

निवार्णं न तिष्ठति दायित्वनिवृत्तौ। निर्वाणं विलसति दायित्वसम्पादने यदर्थं पञ्चयज्ञाः समुपदिष्टाः। कर्ममयीयं सृष्टिः। देवा अपि नितरां कर्मरताः। सूर्यस्तपति प्रतिक्षणं चन्द्र आह्लादयति प्रतिक्षणम्। अग्निर्ज्वलयत्यहोरात्रम्। प्रवहति वातस्सततमेव। सर्वात्मा त्रिगुणात्मा सर्वदेवमयो हरिरपि न तिष्ठत्यकर्मकृत् क्षणमपि। इदमेव सृष्टिरहस्यम्। इदमेव यज्ञरहस्यम्।'[154]

सनातन वैदिक धर्म, भारतीय विश्ववरेण्यसंस्कृति एव परमपिता परमेश्वर से द्वेष वही मनुष्य कर सकता है, जो इनके वास्तविक स्वरूप एवं महत्ता से अपरिचित है। वह

परमशक्तिमान् परमात्मा ही सृष्टि का कारक, पालक एवं संहारक है। उसी से संसार का जन्म हुआ है, उसी में यह संसार है और उसी तक यह संसार है। उस सर्व शक्तिमान् परमात्मा तक पंहुचने का मार्ग कर्म ही है। श्रीमद्‌भगवदगीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है–

'न कर्मणामनारम्भानैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति'[155]

कृष्ण यह भी कहते हैं –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।'[156]

इसी तथ्य को कवि बाणभट्ट से कहलवाते हैं– 'राजन्! विद्वेक्षि तं शाश्वतं सनातनं वेदधर्मं यो विनिर्ममें विश्ववारासंस्कृतिम्। विद्वेक्षि तं जगदीश्वरं यः प्रजानां जन्मनि रजोजुट्, परिपालने सत्त्ववृत्ति, प्रलये च तमः स्पृक् परिलक्ष्यते। विद्वेक्षि तं परमेश्वरं यतोऽयं निसर्गः यस्मिन्नयं निसर्गः यदवध्ययं निसर्गः?'[157]

स्पष्ट है कि कविवर वैदिक धर्म, वेद्वान्त के अद्वैतदर्शन, उपनिषद् एवं कर्मयोगीश्वर श्रीकृष्ण के कर्मवाद में असीम श्रद्धा, आसक्ति एवं निष्ठा धारण करते है। किसी भी स्थिति में अकर्मण्यता, पलायनवाद, वन्यगुफाओं में रहकर आत्ममुक्ति के लिए प्रयास, भिक्षुकत्व, वेदनिन्दा, अनास्था के मार्ग का वे समर्थन नही करते। पुरूषार्थहीनता का वे दृढ़ता से विरोध करते हैं।

कवि कहते हैं 'नात्मानमवसादयेत्'[158]। पुनर्नवा में कृष्णा के पिता के द्वारा जन सामान्य को उपदेश देते हैं कि अर्जुन की तरह द्वन्द्व के समय मोहविद्ध न हो जाएं–'पार्थ इव क्वचिन्मध्येमार्गं भूयोऽपि मोहविद्धो न भवेयम्।'[159]

चित्रपर्णी की छोटी–छोटी कहानियों में भी धर्म के आडम्बर एवं विकारों पर प्रहार किया है। छागबलिः, ऊर्ध्वरेता जैसी कहानियां पाखण्ड पर प्रहार करते हुए समाज को नई गति प्रदान करने का प्रयत्न है।

समसामयिक समाज में जहां धर्म में आडम्बर एवं पाखण्ड की पराकाष्ठा हो गई है। धर्म के ठेकेदार धर्म की दुकानें खोल कर बैठ गए हैं, धर्म एक व्यवसाय बन गया है। युधिष्ठिर द्वारा संकेतित 'दम्भ धर्मध्वजोच्छ्रयः' में निहित धर्म में दम्भ सर्वत्र विराजमान है। सभी अपने–अपने धर्म का ध्वज लेकर चल रहे हैं। **वस्तुतः यह पूर्णतः पाखण्ड का काल है।**

लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल गए हैं। धर्म के नाम पर हिंसा, आतंक, वर्गभेद, वर्गसंघर्ष बढ़ रहा है। ऐसे में शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म की परिभाषा, लक्षण, विशिष्टताओं एवं स्वरूप से सामान्य मनुष्य को परिचित करवाना, माँ सरस्वती के वरद पुत्रों का पुनीत कर्त्तव्य है और कविवर वही कर रहे हैं। अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा एवं पुनर्नवा में मुख्य रूप से उन्होनें अन्धानुकरण एवं रूढिवादिता पर प्रहार करते हुए निष्काम कर्मयोग से आत्मकल्याण एवं सृष्टि के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। निश्चित ही धर्म की यह शिक्षा, सनातन वैदिक धर्म का यह नूतन दृष्टिकोण नितान्त प्रासंगिक एवं कल्याणकारी है।

7) आर्थिक-चेतना

पुरूषार्थ–चतुष्ट्य की परिगणना करते समय भारतीय दार्शनिकों ने धर्म के पश्चात् अर्थ को स्थान दिया है अर्थात् मनुष्य के अस्तित्व के कारणस्वरूप धर्म के उपरान्त जीवन में अर्थ ही वो महत्त्वपूर्ण कारक है, जो जीवन के संचालन के लिए अपरिहार्य है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, सामाजिक मान प्रतिष्ठा के लिए, सामाजिक अग्रगण्यता के लिए धन की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए भर्त्तहरि अपने नीतिशतक में कहते हैं–

'यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः।
स पण्डितः सः श्रुतवान्गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ते।।'[160]

इस अतिशयोक्ति पूर्ण धन की महत्ता को यदि हम न भी स्वीकारें अथवा धन को सर्वोपरि न भी माने तो भी जीवन की मूल आवश्यकताएं रोटी, कपडा और मकान अर्थ के बिना पूरी नहीं होती। जठराग्नि जब प्रज्वलित होती है तो जब तक शान्त नहीं हो जाती तब तक मनुष्य को शान्ति से बैठने नही देती। इसे शान्त करने के लिए मनुष्य कुछ भी करने को विवश हो जाता है। आदर्श स्थिति, सैद्धान्तिक स्वरूप चाहे जैसा हो, परन्तु यह कटु सत्य है कि समाज में जितने अपराध होते हैं, उनमें से अधिकतम के मूल में आर्थिक व्याकुलता होती है।

व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं उन्नति के लिए आर्थिक स्थिति सुदृढ़ एवं संतुलित होना जरूरी है। किसी भी समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति, राजनीतिक स्थिरता, सामाजिक

समरसता एवं शांतिपूर्ण वातावरण के लिए उस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का आर्थिक स्तर संतुष्टिजनक होना जरूरी है।

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र की कथाओं की विषयवस्तु यद्यपि मानव मनोविज्ञान एवं भावनात्मक संवेदनशीलता को केन्द्रीय विषय बनाती है, परन्तु सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश उनकी सूक्ष्मेक्षिका से अछूता नहीं रह सकता। आर्थिक विषय कविवर की कथाओं के मुख्य विषयवस्तु न होते हुए भी **आर्थिक व्यवस्था के प्रति उनका दृष्टिकोण कथाओं में अनायास एवं प्रकारान्तर से प्रकट होता है।**

आर्थिक विवशता में मनुष्य किस प्रकार असहाय हो जाता है, उसका उदाहरण जिजीविषा कथा की नायिका तपती है। तपती के पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी मां दयनीयावस्था में है, भाई भूखा है, छोटी बहिन की शिक्षाव्यवस्था की समस्या है। सारी समस्याओं का समाधान तपती को करना है। 'मातुर्दैन्यम्। अनुजस्य स्तनंधयस्य पोषणम्। अनुजायाश्च शिक्षाप्रबन्धः। एतत् सर्वमपि तपत्यैव करणीयमासीत्।'[161] वह नौकरी करना चाहती है, आजीविका के लिए सब जगह भटकती है, परन्तु सब अर्थ के बदले उसके यौवन को चाहते है–'न कुत्रापि गुणशिक्षाशीलमूल्यम् सर्वत्रैव यौवनमूल्यम्।'[162]

आर्थिक स्तर मानवीय सम्बन्धों में दूरियों एवं उलझन का भी बहुत बडा कारण है। समाज में आर्थिक रूप से सक्षम लोग गरीब एवं निम्न स्तरीय लोगों के प्रति संवेदनहीनता का व्यवहार करते हैं, उसे छोटा एवं अयोग्य आंकते हैं। इस दृष्टिकोण को कवि ने इक्षुगन्धा कथा में प्रकट किया है। कथा का नायक बिट्टी से प्रेम करता है, बिट्टी भी उसे चाहती है, कथानायक गुणी एवं योग्य है, परन्तु निर्धन एवं भूमिहीन है। अतः बिट्टी के पितामह उसका विवाह कथानायक से नहीं करते –'तस्याः पितामहो मां दरिद्रं प्रख्याप्य भूमिहीनञ्च संघोष्य केनचित् धनिकपुत्रेण सार्धं तद्विवाहं निश्चितवान्।'[163] इस प्रकार दो प्रेमियों का समर्पण, निष्ठा एवं स्नेह आर्थिक स्तर की भेंट चढ़ गया।

ताम्बूलकरङ्कवाहिनी कथा में **राजा को मालिनी से मिलाने में उसकी आर्थिक विपन्नता ही साधक बन जाती है।** मालिनी के पिता जयवर्मा के अनुचर थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् परिवार विपत्ति में है। मालिनी की माँ कहती है– 'मालिन्याः पितरि दिवङ्गते महती विपत्तिरस्माभिस्सोढा'[164] उसकी इसी आर्थिक विपन्नता को जानकर हस्तिमल्ल मालिनी की मां के समक्ष मालिनी को ताम्बूलकरङ्कवाहिनी बनाने का तथा परिवार के अन्य सदस्यों की

आजीविका का प्रस्ताव रखता है। बाद में मालिनी कुलशेखर की जीवनसहचरी बन जाती है।

कुलदीपक कथा उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग के मानसिक पूर्वाग्रहों की प्रतिनिधि-कथा है। समाज का धनिक एवं अभिजात्य वर्ग निर्धन एवं दलित वर्ग के प्रति क्या सोच रखता है, इस तथ्य के प्रति कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र सावचेत हैं। समाज में अमीर एवं गरीब के बीच एक दीवार विद्यमान है। अमीर उस दीवार को पार करके उस पार जाना नहीं चाहता तथा गरीब को अपनी तरफ आने नहीं देना चाहता। आर्थिक श्रेष्ठता का अभिमान मनुष्य को, कुछ और ही स्वरूप में परिवर्तित कर देता है। अर्थ के आने और जाने पर मानव का रूप किस प्रकार बदल जाता है। उस विषय में कवि भर्त्तहरि भी कहते हैं–

'तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
स बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरूषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।।'[165]

आर्थिक स्तर की भिन्नता को कविवर कुलदीपक कथा में प्रकट करते है। कथा में सिन्धु के पिता सोमधर के बारे में अपने पुत्र से कहते हैं कि –'अधिवक्तुः पुत्रस्त्वम् सामान्यफलविक्रेतुश्च पुत्रः सोमधरः। त्वं चौधरी स च खटिकः। उभयोः किं सामञ्जस्यम्? किं तव कक्षायाम् उच्च्जातिका विद्यार्थिनो न वर्तन्ते?'[166]

चञ्चा कथा में, जो **नायिका मुन्नी बाई को संघर्ष देखना पड़ा, वो सब सामाजिक असमानता का ही परिणााम है।** मुन्नीबाई (श्यामा) निरंजन की गृहसेविका थी, उसके यौन–शोषण का शिकार हुई, परित्यक्त हुई, अभावग्रस्त हुई, निम्नश्रेणी का व्यापार करने को बाध्य हुई। ये सब इसलिए हुआ क्योंकि वह आर्थिक रुप से पराश्रित थी। निरजन धनिक एवं पाखण्डी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

आर्थिक अभावों एवं **आजीविकाहीनता के कारण गांवो से शहरों की ओर पलायनवाद** पर कवि ने गम्भीरता से चिन्तन किया है। यद्यपि संकल्प कथा में कवि ने पलायन का कारण सामाजिक वर्ण व्यवस्था की विच्छिन्नता बताया है। गांव के लोग बदलते परिवेश में अपने पारम्परिक कार्य को नहीं करना चाहते, परन्तु यह भी एक सत्य है कि यदि वे कोई और कार्य चुनना चाहते हैं, अपनी रूचि एवं क्षमता के कारण वर्ण परिवर्तित करना चाहते हैं तो

उनके पास यह अवसर नहीं है। अब या तो वो अपना पारम्परिक कार्य करे, चाहे वो उन्हें पसंद है या नहीं या तो वह आजीविकाहीन हो जाए। दोनो विकल्पों से हीन मनुष्य को गाँव से पलायन करना पड़ता है। उसे लगता है कि शहर में वो अपनी जातिगत पहचान से रहित जीवन बिताएगा। प्रत्यक्ष रूप से वर्ण व्यवस्था, जो अब जाति व्यवस्था में परिणत हो गई है, आगे जाकर आर्थिक असमानता एवं पलायन का आधार बनती है।

संन्यास अथवा भिक्षावृत्ति रूपी पलायनवाद का अभिराज राजेन्द्रमिश्र दृढ़ता से विरोध करते हैं। वे कर्मवाद के सिद्धान्त के पक्षधर हैं और मानते हैं कि सृष्टि की प्रत्येक इकाई गतिशील है। गति ही विकास का आधार है। यदि समाज का एक पक्ष गतिहीन, कर्महीन होकर बैठता है तो उसका आर्थिक बोझ समाज के दूसरे वर्ग पर पड़ता है तथा राष्ट्र की आर्थिक उन्नति रूकती है। इसी को संकेतित करते हुए वे कहते हैं– 'हन्त! वृद्धा स्वेदाञ्चितवपुषोऽहोरात्रं सश्रमं कृषिकर्म सम्पादयन्तु।..................यस्मिन् कर्मयोगपक्षधरे राष्ट्रे समुद्घोषयन्त्युपनिषदः कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा इति। योगेश्वरो भगवान्मधुसूदनोऽपि नियतं कुरू कर्म त्वमित्यादि यत्र समुपदिशति, तस्मिन्नेव भारतराष्ट्रे कर्मणोऽयमधरीभावः?'[167] वन्ध्या कथा में भी समाज में विद्यमान उत्तराधिकारी के रूप में पुत्र की महत्ता को बताते हुए, उत्तराधिकारी के न होने पर गिद्ध की तरह दृष्टि लगाए बन्धु बान्धवों की चापलूसी, अर्थ के लिए ही है। धन–सम्पत्ति व जमीन–जायदाद के उत्तराधिकारी के रूप में **पुत्र की महत्ता** एवं उसके अभाव में होने वाले संघर्ष **का मूल अर्थ ही है।** प्रकारान्तर से दहेज समस्या, भ्रष्टाचार, नियुक्ति प्रक्रिया एवं सामाजिक दोहरे चरित्र को प्रकट करने वाली जामाता, गौर्यावरः प्रतिशोधः, वेतनम्, यशोलिप्सा, नियुक्तिः, आदि कथाएं आर्थिक विकारों को इंगित करते हुए सामाजिक प्रेरणा का कार्य करती हैं।

कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अभिराज राजेन्द्र मिश्र **जीवन के अर्थपक्ष के महत्त्व, उसके कारण तथा उसके अभाव से उत्पन्न विकृतियों के प्रति सावचेत है तथा संतुलन के मार्ग का उपदेश देते हैं। आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान, कर्मण्यता, ईमानदारी के मार्ग का उपदेश करते हुए एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण चाहते हैं।**

8) ऐतिहासिक-चेतना

कान्तदर्शी अभिराज राजेन्द्रमिश्र के विशाल कथा संसार में जहां एक ओर समकालीन समाज स्फटिक के समान प्रतिबिम्बित होता है, वहीं व्यापक संस्कृति एवं सभ्यता को अपने

अंक में समेटे हुए पुरातन कालीन समाज की झलक भी उनके कथा संसार में दिखाई देता है।

कविवर की ऐतिहासिक कथाएं घटना–प्रधान अथवा विवरण प्रधान न होकर भावप्रधान अथवा संवेदनाप्रधान है। वे काल की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए पुरातनकालीन समाज में जाकर मानो उन पात्रों के चरित्र को जीते हैं, उनके भावों को महसूस करते हैं, उन्हें अभिव्यक्त करते हैं। उनकी कथाएं हमें तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण, विचारधारा, जीवन–दर्शन, जीवन–पद्धति, चिन्तन, मनन एवं संवेदनाओं से रूबरू करवाती हैं।

ताम्बूलकरङ्कवाहिनी कथा कर्नाटक राज्य के पाण्ड्यवंश के इतिहास की झलक है। चोलवंश के राजाओं ने पाण्ड्यवंश को नष्ट करने का अत्यधिक प्रयास किया। दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही चोल नरेश परान्तक प्रथम ने पाण्ड्यसाम्राज्य को उखाड़ दिया। पाण्ड्यवंश ने उसे प्राप्त करने का पूर्ण प्रयास किया, परन्तु वे पुनः पुनः पराजित हुए। कुलोत्तुङ्गजतृतीय ने जटावर्मा को जीतकर ट्रावनकोर पर अधिकार कर लिया। भाग्य क्रम से चोलवंश के साम्राज्य का भी पतन हुआ। तभी से पाण्ड्यवंश के पास राजलक्ष्मी हैं। चोल राजाओं द्वारा निरन्तर प्रयत्न करने पर भी वे अपना साम्राज्य स्थापित नहीं कर पाए। इन राजवंशों का संघर्ष बारम्बार नवीन होता रहा, परन्तु जटावर्मा सुन्दरपाण्ड्य नें चोलवंश को नामशेष कर दिया। जटावर्मा के राजकवि थे हस्तिमल्ल के पिता गोविन्द भट्ट। जटावर्मा के पुत्र मारवर्मा कुलशेखर पाण्ड्य के साथ हस्तिमल्ल का जीवन बीता। कुलशेखर पाण्ड्य के दक्षिणापथ में निष्कण्टक राज्य करने पर राज्य में निर्बाध शान्ति थी। कांचीप्रदेश पर भी उनका साम्राज्य था। श्रीरंगक्षेत्र एवं चिदम्बरतीर्थ में स्वर्णशिखर देवालय निर्मित करवाए गए। कुलशेखर ने वेल्लोर तक विजयध्वज फहराया। सिंहलद्वीप के सम्राट को पराजित किया तथा विजयाभियान में भगवान तथागत के पवित्र दन्तावशेष को बलपूर्वक लेकर आए। सिंहल विजय समारोह पर वेनिस नगर से आए मार्को पोलो ने भी वहां की सौन्दर्यश्री को देखकर उसे भूतल पर सर्वाधिक सुन्दर बताया।

सिंहलविजय से लौटते हुए शिवाराधना के लिए कुलशेखर रामेश्वरतीर्थ गए। रामेश्वरतीर्थ से लौटते समय दिवङ्गत सामन्त की स्वागत करती हुई पुत्री मालिनी से उनका साक्षात्कार हुआ।

मुख्य रूप से ताम्बूलकरङ्कवाहिनी मालिनी एवं मारवर्मा कुलशेखर की प्रणयकथा है और उसमें **भावपक्ष ही प्रधान है।** यह कथा इतिवृत्त प्रधान न होकर संवेदना प्रधान है। मारवर्मा कुलशेखर सामन्त पुत्री मालिनी से कैसे मिले, प्रणय के बीज का कैसे प्रस्फुटन हुआ ? मालिनी से पाणिग्रहण के लिए हस्तिमल्ल के सहयोग से किस प्रकार सार्थकता को प्राप्त किया और मारवर्मा की उसके पुत्र सुन्दरपाण्ड्य के द्वारा सत्ता के लिए हत्या किए जाने पर अकेली रही मालिनी एवं उसके पुत्र वीर पाण्डय की रक्षा कैसे करनी है? यही मुख्य कथावस्तु है। यद्यपि कथानक प्रणय केन्द्रित है, परन्तु प्रकारान्तर से दसवीं शताब्दी में चलायमान चोलवंश एवं पाण्ड्यवंश के संघर्ष को यथाक्रम वर्णित किया है। यह तथ्यात्मक वर्णन यह प्रमाणित करता है कि कविवर इस तथ्य से सुभिज्ञ हैं कि किसी भी समय की संस्कृति, विचारधारा, परम्पराओं, दृष्टिकोण एवं सभ्यता को सम्यक् रूप समझने के लिए तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थिति को हृदयंगम करना प्राथमिक आवश्यकता है।

यह कथा दक्षिणीं प्रदेश की प्रणयकथा है। कविवर न केवल प्रणयकथा, अपितु तत्कालीन राज्यव्यवस्था, राजनीतिक संघर्ष, सत्तालिप्सा, ऐश्वर्य, राजाओं की बहुविवाह प्रथा, सामन्तों की स्वामिभक्ति, राजकवियों की साम्राज्य में महत्ता को भी परोक्ष रूप से उद्घाटित करते हैं। यद्यपि 'प्रबन्धकल्पना कथा' परिभाषा के अनुसार कथा काल्पनिक होती है, परन्तु कविवर ने कल्पना में यथार्थ को पिरोकर कथावस्तु को प्रभावशाली बनाया है।

ऐतिहासिक विषयवस्तु पर ही आधारित **सिंहसारिः** कथा वस्तुतः दिदिशा की अर्न्तमनोदशा एवं तत्कालीन राजनीतिक द्वन्द्वों के ताने–बाने को प्रकट करती कल्पना मिश्रित यथार्थपरक कथा है। यह कथा कवि के **जावाद्वीपप्रवासप्रसूता है।** जावाप्रवास में कवि की वहां की सभ्यता, संस्कृति, इतिहास एवं राजनीति के प्रति रूचि के परिणामस्वरूप प्रस्फुटित विशाल साहित्य भंडार में से एक कथा सिंहसारिः भी है।

बारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यवप्रदेश पर उतुङ्गदेव का शासन था। यव प्रदेश मे ही कविपर्वत के पास तुम्पेल नामक एक छोटा राज्य था, जिस पर सामन्त अमृताङ्ग का शासन था। पुरोहित की कन्या दिदिशा के सौन्दर्य पर अमृताङ्ग आसक्त था। वर्णाश्रमधर्म की वर्जना के कारण विवाह न होने की दशा में, वह दिदिशा का अपहरण कर लेता है। आहत पिता आत्महत्या का मार्ग चुनता है। दिदिशा आत्मग्लानि, आक्रोश एवं पश्चात्ताप से व्याकुल थी, परन्तु शनै–शनै प्रणयानुरोध, पश्चात्ताप, प्रशंसादि व्यवहार से दिदिशा

अनुकूलता को प्राप्त हो जाती है। उनके एक पुत्र अनूषपति पैदा होता है। नवागत पुरोहित पुत्र कर्णाङ्गारक के व्यक्तित्व से उसके अन्तर्मन में शमित, योग्य ब्राह्मण पुत्र से विवाह करने का उसका स्वप्न पुनर्जीवित हो जाता है। कर्णाङ्गारक दिदिशा से प्रणय एवं अपनी महत्त्वाकांक्षा के कारण अमृताङ्ग की हत्या कर देता है और तुम्पेलाधिपति बन जाता है। दिदिशा पट्टमहिषी बन जाती है। वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल विवाह से प्रजा भी प्रसन्न है, परन्तु कालान्तर में अन्य स्त्री में आसक्त होकर दूसरा विवाह कर लेता है और दिदिशा से विरक्त हो जाता है। पिता के रूक्ष व्यवहार से आहत अनूषपति को दिदिशा रहस्योद्घाटन करती है। उसी रात्रि कर्णाङ्गारक का वध हो जाता है।

यह कथा **जावाद्वीप के बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की ऐतिहासिक स्थिति को प्रकारान्तर से प्रकट करती है।** इतिहास के उस काल में वर्ण व्यवस्था का उल्लंघन सरल नही था। **वर्ण अथवा जाति-व्यवस्था की शृंखलाएं बहुत मजबूत थीं।** सामाजिक संरचना सुदृढ़ थी। उसमें लचीलेपन का अभाव था। यह कथा सुदृढ़ वर्णव्यवस्था से उत्पन्न आत्मग्लानि एवं पश्चात्ताप का परिणाम है। तत्कालीन परिस्थितियों में समाज में अर्न्तवर्णीय विवाह का विचार भी सामाजिक दण्ड के योग्य था। सामन्त अथवा राजा को भी इसके लिए पश्चात्ताप करना पड़ा।

सुविदित **बहुविवाहप्रथा** उस समय प्रचलित थी। एक रानी से मन विरक्त होने पर अन्य विवाह करने को राजा स्वतंत्र था।

राजनीतिक-संघर्ष, सत्ता के लिए आक्रमण, हत्या आदि अस्थिरताएं विद्यमान थी। **स्त्रियों का पुनर्विवाह भी संभव था।**

सिंहसारिः ऐतिहासिक कथ्य को साथ लेकर चलते हुए भी मुख्य रूप से दिदिशा के अर्न्तद्वन्द्व, उसकी पराजय, विवशता में आत्मसमर्पण, अन्तर्दमन, पुनःप्रणय, पुनःपराजय पुनःदमित भावनाओं एवं हृदय में आन्दोलित पराजय के प्रतिशोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। यह कथा तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति को दिदिशा के माध्यम से प्रतिबिम्बित करती है। हर बार वो असहाय है– अमृताङ्ग द्वारा अपहरण में, पिता की मृत्यु में, कर्णाङ्गारक द्वारा अमृताङ्ग के वध में, उसके पुनर्विवाह में, वो केवल विधाता के हाथ में पुत्तलिका की तरह नर्तन करती रहती है। कमोबेश आज से नौ सौ वर्ष पहले भी

राजनीतिक संघर्ष, समाज में स्त्री की दशा, सत्ता का उलट–पलट वैसा ही देखने को मिलता है जैसा वर्तमान काल में। हाँ, वर्णाश्रम व्यवस्था का वैसा दृढ़ बंधन अब देखने को नहीं मिलता। इस समय सामाजिक संरचनागत शिथिलता एवं उदारता दिखाई देती है।

ऐतिहासिक कथाओं की शृंखला में एक और कथा **राङ्गडा** है, जो कवि की इतिहास के प्रति रूचि को प्रकट करती हैं। राङ्गडा एक प्रेताधीश्वरी है, जो बाली नरेश धर्मोदयन वर्मा की धर्मपत्नी एवं यवद्वीप सम्राट मुकुटवंशवर्धन की पुत्री है।

दसवी शताब्दी मे प्राच्य यवद्वीप मे मतरामवंशीय धर्मोतुङ्गदेव का शासन था। उनकी पुत्री ईशानतुङ्गविजया ने लोकपालराजा से विवाह करके मुकुटवंशवर्धन के उत्तराधिकारी को जन्म दिया। उनके दो पुत्रियां थी। उनमें से ज्येष्ठ कन्या का विवाह यववंश के धर्मवंश एवं कनिष्ठ कन्या का विवाह बालीद्वीप के सम्राट धर्मोदयनवर्मा से कर साम्राज्य के अंगभूत बालीद्वीप को दहेज के रूप में प्रदान किया। धर्मोदयन एवं महेन्द्रदत्ता का पुत्र एरलङ्ग उत्पन्न हुआ। कालान्तर में अपने पराक्रम से एरलङ्ग ने सुमात्रा के राज्य को भी अपने अधीन कर लिया। उसने अपनी मौसी व धर्मवंश की पुत्री से विवाह किया और बालीद्वीप का भावी प्रशासक हो गया।

ग्यारहवीं शताब्दी का यह समय ज्ञान, विज्ञान, कला एवं स्थापत्य के उन्नयन का काल था, परन्तु पूर्व में पराजित श्री विजयसाम्राज्य के सम्राट ने शक्ति संचय करके आक्रमण कर दिया। असावधान यवाधिपति को पलायन कर अपने प्राणों की रक्षा करनी पड़ी। शैलेन्द्रवंशीय सुमात्राद्वीप के शासक ने भी राजधानी को भस्मसात् कर अपनी पराजय का प्रतिकार किया। पराजय संतप्त धर्मवंश दिवंगत हो गए।

उत्तरी यवद्वीप में शैलेन्द्रवंश स्थापित होने पर एरलङ्ग सामन्तों के साथ अवसर की प्रतीक्षा करता रहा, परन्तु पण्डितों, विद्वानों, सामन्तों एवं प्रजामुख्यों के अनुरोध पर राज्यभार को स्वीकार कर लिया। यवद्वीप अब दो भागों में विभक्त हो गया–शैलेन्द्रवंश एवं मतरामवंश। कालान्तर में चोलराज के द्वारा शैलेन्द्रवंश को नष्ट करने पर, उसकी पत्नी भागकर यवद्वीप में एरलंग की राजमहिषी बन गई। उत्तरी यवद्वीप में भी शैलेन्द्रवंश का शासन समाप्त हो गया। एरलंग ने दिग्विजय कर एक एक कर सभी राजाओं को पराजित कर दिया। बहुरिपन नामक राजधानी बनाने के बाद विद्या, धर्म, कला, संस्कृति आदि की प्रचुर उन्नति हुई। कलिंग, गौड़, चोल, केरल, पाण्ड्य, द्रविड़ सब एरलंग के द्वारा जीत लिए

गए। धर्मोदयन–महेन्द्रद्रत्ता के दो और पुत्र मरकत व आनकवुंसु जन्म लेते हैं। कालान्तर में प्रजा में सर्वत्र दैन्य व पीड़ा देखने पर तथा महेन्द्रदत्ता की तांत्रिक एवं कापालिक क्रियाओं को इसमें कारणभूत जानने पर, धर्मोदयन उसे गर्भावस्था में निष्कासित कर देते हैं। कुछ समय पश्चात् पुत्री को जन्म देने वाली महेन्द्रदत्ता एरलङ्ग से अपने अधिकारों की मांग करती है। उसके मना करने पर वह प्रजा की पीड़ा का कारण बन जाती है। एरलङ्ग कुतुरान के भाई भराड़ एवं उसके पुत्र म्पूबहुल की सहायता से उसका वध करवा देता है। पुनः जीवन एवं तंत्रप्रयोग से पुनः वध होने पर, वह देवालय में स्थापित होती है।

रांङ्गडा कथा ऐतिहासिक घटना क्रम को प्रकट करते हुए, बाली, जावा, सुमात्रा द्वीपों की संस्कृति एवं सभ्यता की झलक भी प्रस्तुत करती हे। ग्यारहवीं शताब्दी में बालीद्वीप में कला, साहित्य, संगीत, नृत्य, संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान स्थापत्य के उत्थान का समय था। साथ ही यह कथा इस बात को भी इंगित करती है कि उस समय **तांत्रिक एवं कापालिक क्रिया जैसी अतिप्राकृतिक क्रियाओं का बोलबाला था। दहेज के रूप में राज्यादि दिए जाते थे। स्त्रियां शासक हो सकती थी।**

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह कि उस समय बालीद्वीप में **सम्बन्धियों में विवाह संभव था।** एरलङ्ग का विवाह अपनी मौसी की पुत्री से ही हुआ।

राजनीतिक दृष्टि से दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी का यह काल अत्यधिक अस्थिरता एवं संघर्ष का रहा।

यह कथा नारी के उस रूप को प्रकट करती है जब वह अपनी शक्तियों को विनाश के कार्यो में लगाती है तो हाहाकार मचा सकती है।

रांङ्गडा का कथानक लगभग पूरा ही ऐतिहासिक, राजनीतिक संघर्ष एवं सत्ता की महत्त्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने वाला है, परन्तु फिर भी कापालिकों के कुसंग से कुमार्ग पर चली गई महेन्द्रदत्ता के नारी हृदय का रहस्योद्घाटन करना ही कवि का केन्द्रीय लक्ष्य है। पुत्री के भविष्य के लिए वह एरलङ्ग से प्रार्थना करती है और अन्त में पुत्री के भविष्य के लिए ही प्राण त्याग देती है। उसके ममत्व का स्वरूप कवि ने पहचाना है। अपने किए का पश्चात्ताप करते हुए प्रकट किया है। रांङ्गडा (महेन्द्रदत्ता) मां के रूप में ही पूजी जाती है, जो अपनी संतान के लिए युद्ध भी कर सकती है और प्राण भी दे सकती है। इस

प्रकार **यह ऐतिहासिक कथा बालीद्वीप की तत्कालीन राजनीति, समाज, संस्कृति, जीवनमूल्यों, परम्पराओं एवं सभ्यता को प्रकट करती हुई एक संवेदनशील कथा है।**

अनाख्याता-बाणभट्टाऽत्मकथा किञ्चित् ऐतिहासिक है। संस्कृत साहित्य के पौराणिक साहित्य में अधिकांश कवियों का काल निर्धारण एक प्रयाससाध्य लक्ष्य है, परन्तु बाणभट्ट राजा हर्ष के समकालीन है। बाणभट्ट की हर्षचरितम् एवं कादम्बरी अमरकृतियां हैं। हर्षचरितम् में हर्ष का चरित पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में विभाजित है, जिसका उत्तरार्द्ध संभवतः बाणभट्ट के पुत्र पुलिनभट्ट ने लिखा है। कादम्बरी की पृष्ठभूमि कान्यकुब्ज में हैं। कादम्बरी यद्यपि कल्पनाश्रित है, परन्तु उसके पात्र इतिहास में मिलते है। यह कथा कविवर की स्वप्नावस्था में इस कल्पना कर आश्रित है कि कवि बाणभट्ट के गाँव जाते हैं, उनसे मिलते हैं, उनके हर्ष के दरबार से आने का कारण पूछते है, बाणभट्ट के स्पष्टीकरण को सहृदयों के समक्ष रखते है, जो शायद बाणभट्ट नहीं रख पाये थे।

इस कथा में वात्स्यायन वंश का उल्लेख है। कान्यकुब्ज, प्रीतिकूट, शोणनद, मौखरि राजाओं के मंदिर का उल्लेख है। वे स्वयं कहते है कि कादम्बरी काल्पनिक कथा नहीं है। कादम्बरी की महाश्वेता बाण की बुआ की बेटी है। उसके पति शबर आक्रमणकारियों द्वारा मार दिए गए। वह पिता के घर लौट आई। बाण के पिता महाश्वेता के पति पुण्डरीक के घर लौटने की घोषणा करते हैं। महाश्वेता की सखी कदम्बप्रिया से बाणभट्ट का विवाह होता है। उसकी मृत्यु हो जाती है। **कादम्बरी** बाण की स्वयं की, कदम्बप्रिया की, महाश्वेता की एवं पुण्डरीक की **कल्पनामिश्रित इतिवृत्ताश्रित कथा है।**

मुख्य इतिवृत्त जिसका इस कथा में उल्लेख है कि हर्ष का बौद्ध धर्म का समर्थन करना। बौद्ध धर्म, जो वैदिक कर्मकाण्ड की नकारात्मक प्रतिक्रिया के रूप में प्रतिफलित हुआ था। कर्म के मार्ग से पलायन की तरफ प्रवृत्ति की कवि घोर निन्दा करते है। वे पराश्रितता के विरोधी है। हर्ष के काल में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, इसका संकेत मिलता हैं। राजदरबार में कवि आश्रय से ज्यादा आत्मसम्मान को महत्त्व देते थे।

इस प्रकार इस कथा में कल्पना के साथ–साथ ऐतिहासिक तथ्यों को समायोजित करते हुए तत्कालीन समाज की प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित किया है।

कथा (कल्पनाश्रित) के सृजनहार होते हुए भी अभिराज राजेन्द्रमिश्र इतिहास अथवा प्रामाणिकता से परे नहीं है। उनकी कथाओं में दक्षिणी भारत, बालीद्वीप, जावाद्वीप, सुमात्रा,

कान्यकुब्ज आदि भौगोलिक क्षेत्रों के इतिहास की सुन्दर एवं यथार्थपरक झलक दिखाई देती है। इतिवृत्ताश्रित उनकी कथाओं में तद्देशीय एवं तत्कालीन सभ्यता, संस्कृति, राजव्यवस्था, सामाजिक संरचना एवं जीवन दर्शन का बोध सम्यक एवं सहज रूप से होता है।

हम कह सकते हैं कि अभिराज राजेन्द्रमिश्र का काव्य डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के काव्यलक्षण **'काव्यं लोकानुवर्तनम्'** की कसौटी पर शत प्रतिशत खरा उतरता है। उनके कथाकाव्य में आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक जगत की व्याख्या है। **कविराज की कथाओं में सम्पूर्ण चराचर जगत रूपी लोक का प्रकाशन है। लोक उनके कथाकाव्य की आत्मा है। उनकी लोकचेतना श्रेष्ठता के चरम शिखर पर विराजमान है।**

सन्दर्भोल्लेख

1 (अ) वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दीशब्दकोष, पृष्ठ–882–83

1 (ब) डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, पृष्ठ–03

1 (स) वही, वही, 04

2. मघुमती, दिसम्बर, 2005, पृष्ठ–46
3. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ–472
4. कॉम्पेक्ट ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ–472
5. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दीशब्दकोष, पृष्ठ–386
6. इल्यूस्ट्रेटेड ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ–178
7. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दीशब्दकोष, पृष्ठ–1098
8. वही, वही, पृष्ठ–1076
9. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ–788
10. वामन, अग्निपुराण, अ. 339
11. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, उद्योत 3
12. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–51
13. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–126
14. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–17
15. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–51
16. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–106
17. वही, चित्रपर्णी, पृष्ठ–108
18. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–28
19. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–02
20. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–45
21. वही, वही, पृष्ठ–47

22. वही, वही, वही
23. वही, वही, वही
24. वही, वही, पृष्ठ–51
25. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–59
26. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–45
27. वही, वही, पृष्ठ–38
28. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–130
29. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–81
30. वही, वही, पृष्ठ–58
31. वही, वही, पृष्ठ–61
32. वही, वही, वही
33. वही, चित्रपणी, पृष्ठ–66
34. वही, वही, पृष्ठ–77
35. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–50
36. वही, वही, पृष्ठ–54
37. वही, वही, पृष्ठ–55
38. वही, वही, वही
39. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–126
40. वही, वही, वही
41. वही, वही, वही
42. वही, वही, पृष्ठ–127
43. वही, वही, पृष्ठ–120
44. वही, वही, पृष्ठ–121
45. वही, वही, पृष्ठ–122
46. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–54
47. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–127
48. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–55

49. वही, वही, पृष्ठ–56
50. वही, वही, वही
51. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–127
52. वही, वही, पृष्ठ–130
53. वही, वही, पृष्ठ–131
54. वही, वही, वही
55. वही, वही, वही
56. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–12
57. वही, वही, पृष्ठ–14
58. वही, राङ्गडा पृष्ठ–26
59. वही, वही, वही
60. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–75
61. वही, वही, पृष्ठ–123
62. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–32
63. वही, वही, पृष्ठ–37
64. वही, राङ्गडा पृष्ठ–79
65. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–87
66. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–29
67. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–54
68. वही, वही, वही
69(अ) वही, वही, पृष्ठ–101
69(ब) वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–103
70. वही, वही, पृष्ठ–55
71. वही, वही, वही
72. वही, वही, वही
73. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–36
74. वही, वही, पृष्ठ–52

75. वही, राङ्गडा पृष्ठ—25

76. वही, वही, पृष्ठ—71

77. वही, वही, पृष्ठ—77

78. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—57

79. वही, वही, पृष्ठ—62

80. वही, वही, पृष्ठ—102

81. वही, वही, पृष्ठ—60

82. वही, वही, पृष्ठ—61

83. वही, राङ्गडा पृष्ठ—59

84. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—101

85(अ) वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ—45

85(ब) ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ—219

85(स) वही, वही, पृष्ठ—45

86. वही, वही, पृष्ठ—47

87. वही, वही, वही

88. वही, वही, पृष्ठ—51

89. वही, राङ्गडा पृष्ठ—04

90. वही, चित्रपर्णी पृष्ठ—12

91. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, पृष्ठ—02

92. वही, वही, वही

93. प्रो. पुष्पा दीक्षित, पुनर्नवा, पृष्ठ—03

94. वही, वही, पृष्ठ—10

95. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—14

96. वही, वही, पृष्ठ—21

97. वही, राङ्गडा, पृष्ठ—92

98. वही, वही, वही

99. वही, वही, पृष्ठ—11

100. वही, वही, पृष्ठ—15

101. वही, वही,पृष्ठ—20

102. वही, वही, पृष्ठ—53

103. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—128

104. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—35

105. वही, वही, पृष्ठ—45

106. वही, वही, पृष्ठ—39

107. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—129

108. वही, वही, पृष्ठ—130

109. वही, वही, पृष्ठ—135

110. वही, वही, पृष्ठ—70

111. वही, राङ्गडा पृष्ठ—59

112. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—45

113. वही, राङ्गडा पृष्ठ—29

114. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—128

115. वही, वही, पृष्ठ—130

116. वही, वही, पृष्ठ—131

117. वही, वही, वही

118. वही, वही, पृष्ठ—130

119. वही, वही, वही

120. वही, वही, पृष्ठ—71

121. इल्यूस्ट्रेटेड ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ—633

122. भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लोक सं. 47

123. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ—133

124. वही, वही, पृष्ठ—134

125. डॉ. चन्द्रशेखर द्विवेदी, शुकनासोपदेश, पृष्ठ—02

126. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—58

127. वही, वही, पृष्ठ–58

128. वही, राङ्गडा पृष्ठ–93

129. वही, वही, पृष्ठ–93

130. वही, वही, पृष्ठ–96

131. वही, वही, वही

132. वही, वही, वही

133. वही, वही, वही

134. वही, वही, पृष्ठ–97

135. भारवि, किरातार्जुनीयम्, 1/4

136. वही, राङ्गडा पृष्ठ–97

137. भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लोक सं. 84

138. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा पृष्ठ–99

139. भारवि, किरातार्जुनीयम्, 1/13

140. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा पृष्ठ–99

141. वही, वही, वही

142. वही, वही, पृष्ठ–102

143. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–47

144. वही, वही, वही

145. वही, वही, वही

146. वही, वही, वही

147. वही, वही, वही

148. वही, वही, पृष्ठ–75

149. वही, चित्रपर्णी, पृष्ठ–43

150. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–134

151. वही, वही, वही

152. नारायणपण्डित, हितोपदेश, 1/69

153. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–135

154. वही, वही, वही

155. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/4

156. वही, 2/47

157. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ—135

158. वही, वही, पृष्ठ—134

159. वही, वही, पृष्ठ—131

160. भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लोक सं 41

161. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—12

162. वही, वही, वही

163. वही, वही, पृष्ठ—49

164. वही, वही, पृष्ठ—63

165. भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लोक सं. 40

166. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा पृष्ठ—03

167. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—135

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

मिश्र जी की कथाओं की आलंकारिकी-समीक्षा

क्रान्तदर्शी कवि जब सत्य का साक्षात्कार करता है तो ऋषित्व के धर्म को साधते हुए जनमङ्गल का साधक बनता है। यथार्थ सत्य का साक्षात्कार करने में सक्षम, दिव्यज्ञान से परिष्कृत कवि, सत्य रूपी अनुभूति को अपनी सहज प्रतिभा से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। सत्यार्थ से लोककल्याण का पथप्रशस्त करने वाला कवि इस संसार का पथप्रदर्शक होता है, शिक्षक होता है, समीक्षक होता है। वह समाज का दर्पण होता है, अतः यह अपेक्षा है कि जन्मजात सहज काव्यप्रतिभा के साथ ही उसे विविधविषयपारैंत, संवेदनशील, मनोवेत्ता, काव्यसौष्ठव एवं सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से समन्वित होना चाहिए। वह अपनी दृष्टि एवं काव्यसृष्टि से जनसमाज एवं साहित्यसमाज दोनों का परिष्कार करता है।

कवि के कर्तृत्व के भावसौन्दर्य से जनहृदय आह्लादित होकर ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्द को प्राप्त होता है तथा अनायास ही सत्य का साक्षात्कार करता है, वहीं उसका शिल्पसौन्दर्य साहित्य एवं भाषा को परिष्कार एवं विस्तार प्रदान करते हुए उसका उपकार करता है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र अर्वाचीनयुग के सशक्त साहित्यकार हैं। उनके भावपक्ष एवं कलापक्ष की समीक्षा करना सुधीसमाज के लिए उपादेय होगा। आलोचना (आ+लोच्+ल्युट्,युच् वा) अर्थात दर्शन करना, विचार करना, सर्वेक्षण करना, समीक्षा करना, अथवा विचार–विमर्श करना अर्थ को प्रतिपादित करता है। काव्य की समस्त विधाओं में सिद्धहस्त त्रिवेणी कवि के कथासाहित्य का समीक्षण यहां शिल्प–सौन्दर्य के सन्दर्भ में ही किया जाना हैं। अभिनव–कालिदास अभिराज जी का काव्य भाषा एवं साहित्य की समृद्धि में किस प्रकार कल्याणकारी सिद्ध होगा, इसकी समीक्षा निम्न बिन्दुओं में की जा रही है।

1) कथाओं में रस-निष्पत्ति

काव्य आनन्दानुभूति का कारक है तथा आनन्दानुभूति स्वास्वादनमूलक है। वस्तुतः रसानुभूति ही ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्द की पर्याय है, इसलिए मम्मट प्रकारान्तर से

काव्यप्रयोजन को 'सद्यपरनिवृत्तये' से काव्य का अंतिम लक्ष्य रसानुभूति अथवा आनन्दानुभूति को स्वीकार करते है तथा आचार्य विश्वनाथ उसके स्वरूप की धारणा करते हुए ही 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'[1] कहते हैं। रस ही है आत्मा जिसका ऐसा वाक्य काव्य कहलाता है। रस को सार रूप में धारण करने वाला वाक्य ही काव्य है। तो फिर रस क्या है? काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में रस को भिन्न–भिन्न शब्दों में परिभाषित किया है, परन्तु रस सिद्धान्त के मूल प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि कहते हैं–

'रस इति कः पदार्थः? उच्यते आस्वाद्यमानात्। कथमास्वाद्यते रसः ? यथा हि नानाव्यञ्जनसंस्कृतन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति, तथा नानाभावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्गसत्वोपेतान स्थायिभावान् आस्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षका हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति।'[2]

रस को ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रमाणित करते हुए अभिराज राजेन्द्रमिश्र कहते हैं कि जैसे लोक में जीवात्मा से श्रेष्ठ होता है मोक्ष, उसी प्रकार काव्य में काव्यात्मभूत व्यंग्यार्थ से श्रेष्ठ है रस, क्योंकि वह व्यंग्यार्थ का लक्ष्य है। प्रतीयमानार्थ के लक्ष्य के रूप में वह रस ध्वनि के रूप में प्रतिष्ठित है, ऐसा आनन्दवर्धन का मानना है– 'वस्तुतः यथा लोके जीवात्मनोऽपि परतरो भवति मोक्षसतल्लक्ष्यभूतत्वात तथैव काव्येऽपि रसः काव्यात्मभूताद् व्यंग्यार्थलक्ष्यभूत एवासौ रसध्वनिरिति ध्वनिकारः।'[3]

'गद्यपद्यमयं श्रव्यं मिश्रंचेति त्रिधास्थितम्'[4] अर्थात् गद्य, पद्य तथा मिश्र (चम्पू) को काव्य कहा गया है और काव्य का गद्य स्वरूप ही कवियों की कसौटी है– 'भाववैशिष्ट्यं, कल्पनावैचित्र्यं, प्रौढ़ा प्राञ्जला शैली, सरसं वस्तु, वकोक्तिप्रधाना भणितिः, शब्दसौष्ठवम्, भावसौन्दर्यम्, अभिव्यक्तेः रम्यत्वं च गद्यकाव्य सहृदयाह्लादकारित्वं लोकोपसेव्यत्वं च गुणं प्रथयति। एतद् ध्यायं ध्यायं कविभिरिदमुदीर्यते यद्–गद्यं कविनां निकषं वदन्ति।'[5]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र भी कहते हैं– 'भरताभिमतस्य पूर्णबन्धस्याऽनियताक्षरापरनामधेयस्य चर्चा प्राक् कृतैवतिष्ठति। तदेव गद्यमित्युच्यते।'[6]

गद्य–पद्य एवं चम्पू में विभक्त शब्दार्थरुपी शरीर में 'रस' आत्मतत्त्व है। सभी काव्यशास्त्रियों ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रुप से रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है।

उपनिषदों में भी रस को ही आनन्दानुभूति का स्रोत एवं आत्मास्वरुप प्रतिपादित किया गया है– 'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दो भवति।'[7] आचार्य भरत भी कहते है– 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।'[8] रसों की संख्या के विषय में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं–

'श्रृंगार हास्य करूण रौद्र वीर भयानकाः।
बीभत्सोऽदभुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथामतः।'[9]

इस रस की अनुभूति, रसनिष्पत्ति अथवा साधारणीकरण ही काव्य का मूल लक्ष्य है। जहाँ स्व तथा पर का भेद मिट जाता है। काव्य के पात्रों के साथ सहृदय एकाकार हो जाता है। वह उनके हृदयों को अनुभूत करता है। काव्य चरित्रों के साथ हंसता है, बोलता है, रोता है, प्रेम करता है, घृणा करता है, युद्ध करता है, क्रोध करता है, भाव वत्सल हो जाता है अथवा श्रद्धा धारण करता है। जब यह घटित हो जाता है वहीं काव्य सार्थक हो जाता है।

कविवर की कथाओं में प्रसंगानुसार सभी रसों की उपस्थिति है, परन्तु चूंकि उनकी कथाओं की केन्द्रीय विषयवस्तु स्त्री एवं उससे जुड़ी संवेदनाएं ही है, इसीलिए मुझे प्रतीत होता है कि उनके कथा साहित्य में करूणरस ही मुख्य है। भवभूति उत्तररामचरित में करूण रस की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं –

एको रसः करूण एवं निमित्त भेदाद्,
भिन्न पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुद्तरंगमयान् विकारान्–
अम्भो यथा सलिलमेव तु तत् समग्रम्।।'[10]

जैसे एक ही जल कभी तरंग, कभी भंवर, तथा कभी बुद्बुदों के रूप को धारण करता है। उसी प्रकार करूण ही सब रसों की प्रकृति है। अन्य सभी रस उसकी विकृति है।

उनकी कथाओं में तपती का पिता को, विमला का मधुप को, बिट्टी का नायक को खोना, वन्दना का पति को खोना, कुक्की का बिलाव से वियोग, चञ्चा का प्रणयी द्वारा ठगा जाना, महानगरी में पराई कन्या के साथ सौतेला व्यवहार, एकचक्रः में नायक द्वारा नायिका को खोना, निहाल की पत्नी एवं नायिका दोनों की करूणामयी स्थिति, दिदिशा की अन्तर्व्यथा, प्रेताधीश्वरी का पति व संतान से वियोग, सपत्नी की त्रासदी, वन्ध्या की व्यथा,

कमरजहाँ का अपनों द्वारा ही शोषण, श्यामा की दयनीयता सब कुछ करूणामय अनुभूति में प्रमाण है।

महानगरी में भूख से व्याकुल द्वादशवर्षीय कन्या की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं– 'सम्यग्दृष्टम्मया यदप्रसुप्ता द्वादशवर्षीयाऽसौ कन्यका सम्प्रति बाहुभ्यां मुखमाच्छाद्य व्याजेन भोजनपिठरद्वयं पश्यन्ती स्थिता। कियान् निर्बन्धो वेति को नु खलु जानाति? अन्यदुहिता सा। तस्या वेदनां तज्जन्मदैव ज्ञातुं शक्नोति स्म। चिन्तितम्मया यत्कस्माज्जनाः स्व सन्ततिं शुनश्शेपीकृत्यान्येभ्यः समर्पयन्ती।'[11]

पति को खो देने के पश्चात् वन्दना के जीवन में कभी शुक्लपक्ष नहीं आया। समय के क्रम में दिन और रात क्रमशः परिवर्तित हो रहे हैं, परन्तु विधवा के जीवन का अंधेरा कभी नहीं छँटता। उसमें खुशी का सूरज कभी उजाला नहीं बिखेरता। इसी दारूण व्यथा का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं– 'वन्दनाया जीवनशर्वर्यां शुक्लपक्षो नायातः। कुटुम्बिनस्तु ललाटं वक्षश्चाहत्य वन्दनां वा निर्भत्स्य विधिं वा विनिन्ध्य शान्ता जाताः। परन्तु वन्दनायाः कृते सुखमभूत् मृगमरीचिकायमाणम्। .... भ्रातृजाया तां क्षीरमक्षिकां मन्यते। सोदरोऽपि तां सुखान्तरायं जानाति। पिताऽपि तां दुर्भाग्यशालिनीं कुलक्षयकरीमनुभवति।'[12] वंदना की मनोदशा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं– 'मां पुनरभिशप्तां पाषाणीमहल्यां जानाति? भस्मीभूतं मदीयं सौख्यसारं तृणकमपि न स्मरति ? ननु कस्मात्? किम्ममापघनेषु चेतना नास्ति ?'[13]

मानवीय संवेदनाओं के कुशल चित्रकार कवि ने कुक्की के मन की बातों को साकार रूप प्रदान किया है। कुक्की भोग–लम्पट बिडाल के समक्ष ठगा हुआ महसूस करती है, जब उसे पता लगता है कि विडाल उसके परिवार में उसके लिए नहीं, बल्कि यौवन की देहली पर स्थित शाविका (मार्जारी) के लिए आया है। अब कुक्की को हृदय को संभालना है, दूसरी ओर उसे अपनी शाविका (कन्या शावक) की रक्षा करनी है। उसकी करूणामयी दशा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं– 'कुक्की कियत् दौवारिकत्वं निर्वहेत्। .... हन्त, तदेव संवृत्तं यदनभीष्टमासीत् कुक्क्याः। मर्यादावाटीं कदाचारमतङ्गजः क्षपयांचकार। शीलकौमुदीं कलङ्कसैंहिकेय उपजग्राह। दग्धमार्जवम्। गतं गौरवम्। विलुलितं वैभवम्। विनष्टो विश्वासः। कलंकितोऽनुरागः। जितमसाम्प्रतकारिणा पंचशरेण। कुक्कीकन्यका पितुरेवाङ्कशायिनी संजाता।'[14]

मित्र को खोकर राजकवि हस्तिमल्ल शोकाकुल है, व्यथित है, भावविह्वल है। उनका करूण क्रन्दन दर्शनीय है– 'निजभुजदण्डावलम्बीकृत कर्णाटवनिमण्डल! हा महाराज मारवर्मन् कुलशेखरपाण्डय!! स्वबालमित्रं हस्तिमल्लं मामकस्मादेव विहाय क्वोपद्रुतोऽसि? हा कर्णाटवसुन्धरे! इदानीं विधवासि जाता! विद्याविनयचरित्र्यादिगुणाः! कोऽवलम्बः सम्प्रति भवताम्? हन्त भोः कीचकाग्निरेव वेणुवनं विदहतिस्म? तरंगमालैव जलपोतं निमज्जितवती?'[15]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं में चूंकि नारी प्रधान है तो स्वाभाविक रूप से माँ प्रधान है। अतः वात्सल्य, जो नारी की कोमलता, ममत्व एवं स्नेह का मिश्रित स्वरूप है, का बहुलता से वर्णन पाया जाता है। तपती के पिता स्नेह से साड़ी लेकर आते हैं। पिता के अपनी पुत्री के लिए देखे गए सपनों का साकार रूप है यह उपहार। इसका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं– तपति! वत्से! विलोकय तावत्। त्वदर्थं किमानीतम्मया? मयाऽदृश्यत! तातहस्ते शुकोदरहरिता दुकूलशाटिकाऽऽसीत्। वाराणसेयीं शाटिकां दृष्ट्वैव न जाने कथं क्षपिता मे मन्दाक्षलीला। प्रभवति स्म प्रागल्भ्यकाण्डताण्डवपरायणम्।'[16]

एकहायनी कथानिका में **विमला के अन्दर की माँ** व प्रेमिका में से माँ **जीत जाती है।** पुत्री की पुकार माँ को भावविह्वल कर देती है। वह अपने प्रेम को भूल जाने को तत्पर हो जाती है। निरपराध कन्या को अकारण दण्ड देने से माँ विरत हो जाती है। विमला कहती है–'इदानीं गतम्मे कौमार्यम्। विलुप्तं प्रेम। साम्प्रतं मातृभावो मे प्रभवति। नायं मातृहृदयोचितो व्यवहारः।'[17]

लवकुश का लालन–पालन करते **वाल्मीकिवत कविवर भी** परित्यक्ता कुक्की के शावकों की देखरेख कर रहे हैं। उनके प्रति **वात्सल्ययुक्त हैं।** उनकी बालक्रीड़ाओं का आनन्द लेते कथाकार कहते हैं–'मदुत्सङ्गकस्थिते सत्येकस्मिन्नपरईर्ष्याकषायितलोचनाभ्यां सकैतवं निपुणं निरीक्ष्य वात्यारयेणाक्रम्य सहोदरं च नखराघातैर्दूरं प्रक्षिप्य स्वयं तिष्ठति स्म। रात्रावापि मयि निकामं प्रसुप्तेऽतर्कितमेव समागत्य तौ सगाढोपगूढं मत्कुक्षिसंलग्नौ निभृतमशयाताम्।'[18]

शतपर्विका में सात पुत्रियों का पिता **रामलाल** यद्यपि पुत्रियों के प्रति निष्ठुर एवं असंवेदनशील व्यवहार करता है, परन्तु रमा की सेवा से अंततोगत्वा उसके अंदर का पिता एवं **पुत्रियों के प्रति स्नेहिल संवेदनाएं जाग जाती हैं।** वह कहता है– 'मया नृशंसेन पुत्रलोभवशात् स्वकन्यकाः भृशं समुपेक्षिताः।..................... यदि नाम मत्कन्यकाः प्रारम्भादेव मद्वात्सल्यलालिता अभविष्यन् अवश्यमेवासां सद्गुणविकाशोऽभविष्यत्।'[19]

चञ्चा की **मुन्नीबाई** ने दुनिया की अपवित्र दृष्टि से सुरक्षित रखकर पुत्री को पाला है। वह उसके प्रति असुरक्षा के भाव से ग्रस्त है। उसका **मातृत्व गरिमामय है।** अपनी पुत्री के प्रति उसका स्नेह अतुल्य है। उसका अपनी पुत्री को दिया उपदेश समस्त शिक्षाओं का सार है। संसार की सारी बेटियों के लिए ग्राह्य है। माँ का हृदय अनिष्ट की आशंका से जो आशंकित रहता है, उसमें भी उसका असीम स्नेह ही है। उस वात्सल्य को परिभाषित करते हुए कवि कहते हैं– 'मातृहृदयं घासबीजसङ्कुलभूतलमिव भवति। निदाघे भूतलं शुष्कं शून्यञ्चावलोक्यते। परन्तु वर्षत्येव जलदागमबलाहके निरन्तरालशतसहस्त्रतृणाङ्कुरनिचितं जायते।'[20]

माँ की गोद में विलाप करती पुत्री सोमा को अपने स्नेह की सुरक्षा व सान्त्वना प्रदान करते हुए मुन्नीबाई कहती है–'वत्से! मयि जीवन्त्यां वेदनालवोऽपि त्वां स्प्रष्टुं न शक्नोति। त्वमसि ममः पर्णशालाया दीपशिखा मम जीवनस्याशा, मम स्वप्नानां जागरणपरिणतिः।'[21] इन शब्दों में कविवर ने **माँ के भावों को वाणी प्रदान की है।** प्रत्येक माँ अपनी संतान के बारे में यही भाव रखती है। माँ अपनी जान देकर अपनी संतान की वेदनाहरण करती है। माँ के जीवन की आशा, उसकी कुटिया का प्रकाश, उसके सपनों का साकार रूप होती है संतान। माँ का अपने बच्चों से रिश्ता निस्संदेह समस्त शंकाओं एवं स्वार्थो से ऊपर है। संतान उसके जीने का कारण है, उसके जीवन का प्रकाश है।

अपनी सपत्नी के पुत्र की रक्षा के संकल्प से उदारहृदया सौतेली माँ कैसे एक पुत्र की रक्षा के लिए प्राण दे देती है। उसका उदाहरण 'न्यासरक्षा' की नायिका है, जिसके हाथों में उसकी सास एक शिशु को सौंपते हुए कहती है कि 'यह तुम्हारी सपत्नी का शिशु है। इस अबोध संतान के लिए यह पुनर्विवाह किया गया है।' पुत्र के संरक्षण का दायित्व पाकर उदारहृदया सौतेली माँ के हृदय में, जो वात्सल्य जाग्रत होता है उसका वर्णन करते हुए कविवर कहते हैं– 'नवागता वधूः सहर्षं साभिनिवेशं दारकमज्जुकाया हस्ताभ्यां स्वोत्सङ्गे कृत्वा सप्रणयं चुम्बितवती। सत्यमेव क्रीडनककल्प एवासीच्छरदिन्दुवदनोऽयं जातकः। सञ्जनभ्रमं जनयति लोचने, कृष्णमेषशावककुञ्चितचिकुरराशिरीव शीर्षचिकुरराशिः निमीलितशंङ्कुमुखशुक्तियुगलीव नयनयुगली, हैयङ्गवीनसंहतिरिव कपोलपाली। जातकं क्रोड़े कृत्वैव वधूः सस्मितमञ्चलं प्रसार्य श्वश्र्वाश्चरणौ स्पृष्टवती।'[22]

श्रृंगार रसराज है। **सहृदय कवि का हृदय रसराज में रमता है।** प्रणयी के हृदय के अन्तःस्थल तक जाकर कविवर ने उसके भावों के साथ संवाद किया है तथा उन्हें अपनी कथाओं में वरेण्य स्थान प्रदान किया है। कवि ने संयोग एवं वियोग दोनों अनुभूतियों का सजीव चित्रण किया है। **प्रणय का आदर्श चित्रण** कविवर ने किया है। निस्वार्थ प्रेम, समर्पण, त्याग एवं गुणानुराग प्रेम के आधार सूत्र है। सच्चे प्रेम की परिभाषा देते हुए कविवर कहते हैं– 'मिथः प्रणयनिबद्वयोर्द्वयोः स्त्रीपुरूषयोर्नैष्ठिकस्संयोगः। निष्ठैव दाम्पत्यमूलम्। इयं निष्ठाऽप्युभयपक्षीयैव।'[23] प्रेम जीवन भर का सार है। वह समय एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित नहीं होता। एकचक्रः का नायक, नायिका के स्नेह समर्पण को याद करते हुए कहता है–'साऽऽजीवनं मां पर्यपूपुजत् प्रेमाश्रुपादोदकैः स्निग्धदृष्टिनीराजनाभिः श्रद्धानुरागकुसुमैः हृदयविष्टरैरात्मसमर्पणैश्च।'[24]

राम के प्रेम में प्रेममय, राजकीय सुखों का त्याग कर वन में जाती, उत्तररामचरित की सीता साक्षात् करूणा की मूर्ति तथा शरीरधारी विरहव्यथा ही प्रतीत होती है–

करूणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव वनमेति जानकी।'[25]

प्रेम पूर्णता प्रदान करता है। अर्द्धनारीश्वर स्वरूपा सृष्टि में स्त्री जहां कोमलता, ममत्व, उदारता, सहिष्णुता समर्पण एवं संवेदनशीलता की प्रतीक है, वहीं पुरूष कठोरता एवं व्यावहारिकता का समन्वय है। वे दोनों एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करते है। स्त्री की अनुभूतियां अभिव्यक्ति पा जाती है जबकि पुरूष अपने भावों को प्रकट करने में सदैव पीछे रह जाता है। कवि ने स्त्री के प्रेम को साकार उपासना एवं पुरूष के प्रेम को निराकार उपासना के रूप में परिभाषित किया है। एकचक्रः का नायक कविता में अपनी जीवनसूत्रधारिणी की आराधना करते हुए कहता है –

'राशीभूतविशदहिमधवले
क्षीरसागरे सुतरां विमले!
शेषशायितनुलेखाललिता
विलसति कनीनिका सन्तुलिता!!
पवनविधूत बलाहकतरले
नभसि कौमुदीशकलकोमले!

अधरसंयता नयनविगलिता
कीलितहासकलानुबिम्बिता!!
तव नयनाकलिता!
नामरूपसंबोधनरहिता
भवति नवा कविता!!'[26]

कवि की विलक्षण कल्पनाशीलता में **कुक्की** (मार्जारी) **को भी नायिका के पद पर प्रतिष्ठित** कर उसे मानवीयसंवेदनाओं से ओत–प्रोत कर दिया है। कवि कल्पना करते हुए कहते हैं कि मानो यह मार्जारी पशु–योनि में उत्पन्न पुर्वजन्म की प्रणयिनी ही हैं। वे कहते हैं– 'मार्जारी सम्प्रत्यपि प्रणयोद्गारान् सहेलं सनाट्यं प्रकटयन्ती मामेवानन्यत्राबद्धदृष्टिपातेन पश्यन्ती दुर्मनायमानेव नायिका तिष्ठति स्म।'[27]

प्रेमियों के मन में पल रहे सपने कल्पना के पंख लगाकर उड़ान भरते हैं तो उनकी अपनी एक अलग ही दुनिया बस जाती है। जिसमें बस वे, उनके सपने, उनका स्नेह, उनकी खुशियां, उनकी उदासियां बसती हैं। इस सपनों की दुनियां का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

'बिट्ट्या सार्धं निवसतो मम निखिलमेव दिनमस्मिन्नेव इक्षुगन्धावने व्यतीतमासीत। इक्षुगन्धामुत्पाट्य छदिर्निर्मीयते स्म। इतस्ततः प्ररूढ़ान् बेहयेति ख्यातनाम्नां क्षुपाणां दण्डान् भूमौ संयम्य तदुपरि इक्षुगन्धाछदि चारोप्य पर्णशाला निर्मीयते स्म। तस्यामेव पर्णशालायाम् एकस्मिन् कोणे रसवती अन्यस्मिन् कोणे वासकक्षव्यवस्था च क्रियते स्म, तत्रैव बिट्टी कदाचित् विरहधिुरां नायिकामभिनयति स्म कदाचिच्चाहं प्रवासिनं नायकम्।'[28]

मानिनी नायिका का मान निश्चित रूप से रतिसुखान्त होता है। प्रणय के मनोविज्ञान से एकाकार होते हुए कवि ने निहाल और उसकी पत्नी के मनोभावों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। महुली परदेश मे निहाल के सम्पर्क में आती है। निहाल के व्यवहार से उसे लगता है कि निहाल अविवाहित है। दोनों के मन में प्रेम का बीज अंकुरित होता है। अनायास ही रखे गए भारत चलने के निहाल के प्रस्ताव को स्वीकार कर सखीभाव से महुली भारत आ जाती है। निहाल विवाहित है। पत्नी इस अप्रत्याशित प्रसंग से हतप्रभ व्यथित एवं आक्रोशयुक्त है, परन्तु दीर्घप्रवासान्तराल के उपरान्त पत्नी के मानभंग के लिए अनुनय–विनय करते हुए सोचता है –

'भार्याप्यवश्यमेव मदङ्गसङ्गसुखमवाप्य महुलीवृत्तं विस्मरिष्यति। नूनं रतिसुखान्तो मानिनीनां मानः। .... निहालः श्लक्ष्णया रसपेशलया वाण्या कोपनां दयितां प्रसादयितुकामस्तदालिंगनार्थं बाहुप्रसार्य जगाद। भवतु। एहि तावत्। पल्यङ्कोपरी शयित्वैव सर्वं ते सशपथं कथयिष्यामि।'[29(अ)]

पत्नी से तिरस्कृत निहाल महुली के पास आकर विश्रान्ति को प्राप्त करता है। प्रेम में आहत विरहविदग्ध व काम संतप्त निहाल महुली से प्रणय प्रस्ताव रखते हुए कहता है– 'प्राणवल्लभे! निर्वापय दाहाग्निमिमम्। सम्प्रति त्वामन्तरेण नाहं जीवितु शक्नोमि। अद्यप्रभृति त्वमेव मम प्रिया, मम भार्या, मम राजमहिषी, मम जीवनसर्वस्वम्। महुलि मामात्मीयं कुरू।'[29(ब)]

षोडशी नायिका का वर्णन करते हुए इक्षुगन्धा में नायिका की गम्भीरता एवं विलक्षण सौन्दर्यशीलता का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि 'बिट्टी षोडशी जातासीत्। .... दृष्टम्मया यत् बिट्टी सम्प्रति गभीरजला पुष्करिणीव शान्ताऽऽसीत्। बन्धुजीवारूणाधरा त्रपाभारावनतभ्रूलता मृदुमन्थरगतिर्मितभाषिणी विलुप्तचाञ्चल्यां यत्नावगुण्ठितकलेवरा बिट्टी मामामूलचूडं विकलयन्त्यपि विलक्षणैव संवृत्तासीत्।'[30]

श्यामल सौन्दर्य के आकर्षण का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं–

'ईषच्छ्यामो वर्णः जम्बूफलसदृशे पृथुलपृथुले कज्जलाभनयने प्रावृण्नदीप्रवाहकल्पं समुच्छलद्यौवनं तदुपरि च स्त्रियोचितत्रपासंगकोचावरणम्।'[31]

गंगा के किनारे शान्तनु जब किसी सुकुमार युवति को देखते हैं, तो उससे एकान्त वन में विचरण करने का कारण पूछने पर भाव भंगिमाओं से प्रणय स्वीकृति देती नायिका का वर्णन दर्शनीय है–

'निर्वागवतस्थे रमणी। चरणनखैरसौ धरणीमृदां लिखितुमारेभे। असंस्तुतमपि प्रगाढ़ानुरक्तम्मनः कुमारस्य रमण्यां इमां निर्व्याजमुग्धतां दर्शं दर्शं प्रह्वीभूतम्।'[32]

संयोग-शृंगार का जितना मनोरम एवं चित्ताकर्षक वर्णन कवि ने किया है उतना ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी वर्णन विरहावस्था अथवा **वियोग-शृंगार** का किया है।

एकचक्रः में नायिका के चले जाने पर नायक को लगता है कि जीवन शून्य एवं निरर्थक हो गया है। जीवन साथी के बिना जीवन, जीवन नहीं है, बल्कि मृत्यु ही है। सीता के बिना जैसे राम का जीवन है वैसे ही नायिका के बिना नायक का जीवन सारहीन हो

गया है। नायक की विरहावस्था का वर्णन करते हुए वे कहते हैं– 'ह्यस्तनो योऽसौ मम कामनासंसारः सर्वैनिर्भरं व्यलोकि, स एवेदानीं हृदयगह्वरे मदीये क्वचिच्छनकैर्निलीनस्तिष्ठति। जीवनं धारयामि। प्राणाञ्जीवामीति प्रत्ययो लोकस्य। परन्तु सत्यमवैम्यहमेव। वस्तुतो मृत्युं धारयामि। मृत्युमेव जीवामि! बिना सीता देव्या किन्नु खलु जिजीव दयिताप्राणो रघुनन्दनः? जीवनं मृत्युं वा? व्यथाकथेयमहो मामको पुरावृत्त। अनिर्व्यथे हि भवे वाचिकं ददे कस्मै?'[33]

जीवन यात्रा में जीवन–सहचर के वियोग में जीवन का लक्ष्य ही अदृश्य हो जाता है, जीने का उत्साह क्षीण हो जाता है, खुशी खो जाती है उमंग एवं आशा धुंधली पड़ जाती है, यात्रा निरीह एवं नीरव हो जाती है। प्रिय के खो जाने पर हुई मनोदशा का मार्मिक वर्णन करते हुए कविवर कहते हैं–

'निरीहयात्रा यदांङ्गीकृता
मयैकाकिना नियति कल्पिता!
जनसंङ्कुलकोलाहलकलिता
केवलनिराकारता फलिता!!
बहुधा परिचितनवपरिवेशं
मयि सरसञ्च तवाभिनिवेशं
स्मरति तथाशेषं
स्वान्तः प्रकाशिता
रजनी नीरवता!!'[34]

सहचर के चले जाने पर स्मृतियां ही शेष रह जाती है। उन स्मृतियों के सहारे यात्रा तय करनी है। ऐसी यात्रा जिसका लक्ष्य यात्रा ही है – 'एकचक्रोऽधुनायं जीवनरथस्तथापि संकल्पाश्वैर्यथायथमाकृष्यत एव। यात्रैव जीवनरथस्य लक्ष्यम्।'[35]

बाण की जीवन सहचरी के चले जाने पर बाण के जीवन से मानो रोशनी ही चली जाती है, हृदय विदीर्ण हो जाता है, जीने की आकांक्षा नष्ट हो जाती है– 'जीवनदीपशिखायाः परिनिर्वाणम्। हृदयं विशीर्णमिव जातं धातुर्नृशंसतामवेक्ष्य। जिजीविषैव प्रणष्टा। क्व गन्तव्यम्! किं करणीयम्? कथमात्मा विपन्नोऽवलम्बनीयः? न किञ्चिदपि निश्चेतुं शक्यमासीत्।'[36]

इस प्रकार श्रृंगार के दोनों पक्षों का कविवर ने हृदयावर्जक वर्णन किया है।

विषय एवं सन्दर्भ की अपेक्षा के अनुसार तथा स्वाभाविक रूप से सभी रसों का समावेश कवि के कथाकाव्य में जीवन के सभी रंगों की भांति शोभायमान है।

जीवन में, दर्शन में, उसकी नश्वरता में व वैराग्य में शान्त रस की छवि देखते ही बनती है। एकचक्रः कथा में नायक जीवन की चंचलता, परिवर्तनशीलता उसकी नश्वरता को केन्द्र में रखकर कहता है– 'हन्त गुरूत्मान् कालविहगः। कियद्वेगेन झम्पते जीवनाकाशे! ह्य एव सर्वमारब्धमासीत्। अद्य पुनः सर्वं परिसमाप्तम्।'[37]

'सुखशयितप्रच्छिका में वृद्ध पुरूष नायक को धैर्य प्रदान करते हुए कहता है कि जीवन यात्रा अनिश्चित है। जीवन के रास्ते में कब कौन साथ छोड़ कर चला जाए निश्चित नहीं है, परन्तु फिर भी जीवन यात्रा चलती ही है– 'वत्स! अनिश्चितेयं जीवनयात्रा। कतिपये जना युगपत् प्रतिष्ठन्ते। परन्तु मध्ये मार्गं कस्य श्वासतन्तुः कुत्र त्रुटिष्यतीति को वेत्ति?'[38] सांसारिक जीवन चक्र की ही विषमता, जटिलता एवं दुःखात्मकता पर विचार व्यक्त करते हुए पुनर्नवा कथा में वे कहते है 'विचित्रं विस्मयावहञ्च नियतिजनितम् घटनाचक्रम्।'[39]

प्रकृति के विलक्षण दृश्यों में अद्भुत रस की झलक कहीं कहीं देखने को मिलती है। मिर्जापुर जनपद के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि उसे एक स्वर्गखण्ड की संज्ञा देते हैं। इसके अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं –

'क्वचिन्निरन्तरालवशंगुल्ममण्डितं क्वचिदुच्चावचशिलाखण्डशर्करिलं क्वचिल्लघुपल्वलनिचितं क्वचिद्विपुलमालक्षेत्रसंवलितं क्वच्चिच शोणजलप्रवाहपावितं वर्तते। .. .. बहव प्रपाता नयनाभिरामां जनपदशोभां वर्धयन्ति।'[40]

ग्रामीण परिवेश के चमत्कृत कर देने वाले विलक्षण वातावरण का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं– 'स्वजन्मभूमिस्तदन्तराले गुढ़मिन्द्रजालमिव कृतवती। सघनाम्रवाटी, ग्रामदेवताचत्वरम् शस्यहरितानि क्षेत्राणि, पाण्डुरमृत्तिकोपलिप्तानि लघुकुटीराणि, स्वगृहद्वारे निर्बद्धा कर्बुरा छागी तच्छावकाश्चेति सर्वमपि मोगीहृदयाश्च्योतनमिव चकार।'[41]

प्रीतिकूट में बाणभट्ट के गृह सौन्दर्य का मनोहारि वर्णन अद्भुत है – 'रत्नशलाकाखचितविलम्बिपञ्जरेषु सत्यमेव प्रवेशद्वारमभितो विविध वाचिकांङ्गिकाभिनयवन्तः शुकाः सारिकाश्च विराजन्ते स्म। तच्चंचुपुटाग्रविलूननिपतितफलशाकादिशकलानश्नन्त्यो गृहवर्तिकाः कलघण्ट्यश्च मधुरकलरवैः परिवेशं मुखरयन्ति स्म।'[42]

अच्छोदसरोवर का वर्णन अद्‌भुत अनुभूति देता है। यह सरोवर समस्त ग्राम की गति है। शरद ऋतु में इसका सौंदर्य दर्शनीय है– 'समागतप्राय एव शरदृतौ पुष्करमिदं विकसितकोकनदैः मधुपानलम्पटभ्रमरैः रिरंसावर्धितप्रणयिनीप्रसादनोपायै राजहंसैः मत्स्यभक्षणलोलुपैः कारण्डवैः सचीत्कारं गगनमण्डलचङ्क्रमणलीलां नाट्यद्भिष्टिट्टिभैश्च कामप्यपूर्वामेव सुषमां धारयन्ति स्म।'[43]

किञ्चित स्थानों पर **रौद्र-रस की निष्पत्ति भी अवलोकनीय है।** वेदों की व सनातन धर्म की निन्दा कर बौद्ध धर्म को समर्थन करने पर बाण का रौद्र रूप कान्युकब्जेश्वर के प्रति दिखाई देता है– मध्येव्याख्यानमेव तं साटोपं संस्थगय्य निर्भयोऽहमकथयम् राजन्! अलमनर्गलप्रलापेन! नाऽहं तव करदसामन्तः। नाऽहं त्वदनुग्रहोपस्कृतजीवितः। न चाप्यहं भवत्सारस्वतवैदग्ध्याऽधमर्ण.........।'[44] 'अन्धस्य क्व पुनर्बोधनीयं प्रतिभाति? डॉक्टर! वर्तते किमप्यौषधम्?'[45], 'विमले! पुत्री केयं ते मौढ्ये त्वामप्यतिशेते।'[46] जैसे छोटे–छोटे वाक्यों में **सहज हास्य के रंग भी कविवर ने बिखेरे हैं।**

इस प्रकार कविवर की कथाओं में विविध रसों की स्थिति स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होती है। करुण एवं श्रृंगार मुख्य रुप से तथा प्रसङ्गानुसार अन्य समस्त रसों की स्थिति कवि के कथा साहित्य में विराजमान है।

2) कथाओं की अलंकार-योजना

काव्यगत सौन्दर्य की कसौटी अलंकार हैं। सर्वप्रथम आचार्य **वामन** ने अलंकार को परिभाषित करते हुए कहा कि **'सौन्दर्यम् अलंकारः'**[47] अर्थात् सौन्दर्यबोध ही अलंकार है। सौन्दर्यबोध, जो काव्य की आत्मा है, उसको काव्य की शोभा बढ़ाने के कारण अलंकार कहा गया है। अलंकार वाणी को सामर्थ्य प्रदान करते हैं, उसकी प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करते है तथा चमत्कृत कर देने वाले ढंग से सम्प्रेषणीयता प्रदान करते है। आचार्य **विश्वनाथ** कहते हैं–

'शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः। रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।'[48]

सौन्दर्य अर्थ को बोध कराने में **'अलङ्कृतिरलङ्कारः'** तथा अलंकृति का माध्यम मानने पर **'अलंक्रियतेऽनेन'** इस प्रकार से व्युत्पत्तिपरक अर्थ प्रतिपादित किया जा सकता है।

प्राचीन आचार्यो के काव्य शास्त्रीय ग्रंथों का नामकरण अलंकारशास्त्र करने के पीछे काव्य में अलंकार का प्राधान्यतया स्थित होना ही है, परन्तु कालान्तर में ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार किए जाने के कारण 'रस' को अलंकार्य तथा अलंकारो को अलंकरण का माध्यम माना जाने लगा। तब काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मो को अलंकार कहा जाने लगा –

'काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।'[49]

वेदों एवं उपनिषदों में उपमा, रूपक आदि अलंकारों की स्थिति यह प्रमाणित करती है कि प्राचीन काल से ही अपनी बात को अलंकृत अथवा चमत्कृत ढंग से कहने की प्रवृत्ति रही है।

अलंकार शास्त्र के प्रथम आचार्य भामह से लेकर अद्यावधि अलंकार निरूपण के अनेक ग्रंथ लिख जा चुके हैं और लिखे जा रहे हैं। अलंकारों की काव्य में स्थिति को स्पष्ट करते हुए आचार्य **मम्मट** कहते हैं–

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।।'[50]

अर्थात् जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा के कारण होते हुए भी आत्मा का उत्कर्ष करते हैं, उसी प्रकार उपमादि अलंकार काव्य के शरीर रूप शब्दार्थ को अलंकृत करते हुए भी काव्य की आत्मा रस का उत्कर्ष करते हैं। हम कह सकते है कि अलंकार, शब्द और अर्थ के अनित्य धर्म है। अधुनातन शास्त्रीय दृष्टिकोण से अलंकार काव्य में वर्णन की चमत्कारपूर्ण प्रणाली है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के विलक्षण साहित्यकार अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं में आलंकारिक वर्णन सहज एवं स्वाभाविक रूप से उपस्थिति पाकर उनके कथा–काव्य की शोभा एवं प्रभावोत्पादकता बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षाएं, अनुप्रास, परिसंख्या आदि अलंकारों ने उनकी भाषा को तो समृद्व किया ही है, भावों को भी सम्बल प्रदान किया है।

क्रान्तदर्शी कवि का हृदय मानवीय संवेदनाओं, प्रकृति की छटाओं एवं परिवेशगत दृश्यों के साथ एकाकर हुआ है। उसने चराचर जगत के अन्तःस्थल को छुआ है, महसूस किया है एवं अपनी शाब्दिक परिकल्पना तथा लेखनी से साकार व सजीव रूप प्रदान करते

हुए, अपने मन्तव्यों को सार्थकता प्रदान की हैं। गद्य को प्रभावशाली एवं मनोरम बनाकर संप्रेषणीयता प्रदान करना कवियों की कसौटी होता है। कवि इस कसौटी पर पूर्णतः खरे उतरे हैं। उनके काव्य में अलंकारों ने शब्द एवं अर्थ को सम्यक पूरकता प्रदान की है।

कवि की सूक्ष्म एवं नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा उनकी सटीक एवं सार्थक **उपमाओं** में प्रतिबिम्बित होती है। उनकी उपमाओं में उनका गहन ज्ञान, अनुभव एवं सूक्ष्मेक्षिका की झलक सहज ही दिखाई पड़ती है। उपमाएं तार्किक, मार्मिक एवं सटीक है। वे हमें दृश्यों का साक्षात्कार करवाने में समर्थ है। उनकी उपमाओं से हमारा संवेदनाओं का संसार चलायमान हो उठता है। तपती की पीड़ा भ्रमरों को अपने भीतर समेट लेने वाले शेफाली पुष्प की तरह प्रयत्नपूर्वक अन्तरस्थ है, परन्तु सुर्योदय से प्रस्फुटित पुष्पों की तरह ही माँ की ममता का ताप पाकर तपती का शोक भी आंसुओं के रूप में प्रवाहित हो उठता है – 'पुटपाप्रतीकाशमन्तश्शोकं सयत्नमुपगूह्य तपती दृष्ट बालार्कोदया शेफालीव नयनजलपुष्पाणि पातयति स्म।'[51]

तपती के पिता के अकस्मात् प्रकट हुए हृदयरोग की कितनी सटीक तुलना दीवार भेदकर घर में घुसे चोर से की है–

'सन्धिभेदकः पाटच्चर इव रोगोऽयं न जाने कुतः प्रकटित।'[52]

तपती की कोमलता बन्धुजीव के पुष्प सी है–'बन्धुजीव कुसुममृदवी मे दारिका'[53]

संकोचवश कठिनाई से बोलने वाली शुभदा के वचनों को अधखिले कुसुमों के उपमान ने साकार रूप प्रदान कर दिया है–'तदवचने ईषद्विकचकुसुमविकासोपमं स्मितं तदधरपटले प्रावर्तत्।'[54]

पिता की मृत्यु के पश्चात् संताप से पल–पल क्षीण होती माँ की मृत्यु की तुलना कवि ने शनै शनै क्षीणता को प्राप्त करते अमावस्या को पूर्ण अस्त चन्द्रमा से की है– 'उपक्षीयमाणा चन्द्रमूर्तिरिव एकस्मिन् दर्शदिवसे साऽपि शयाना नोदतिष्ठत्।'[55]

दो विपरीत स्वभाव वाले मित्रों के प्रातः कालीन भ्रमण को दो विपरीत प्रकृति वाले पशुओं बैल एवं भैंस से तुलना कर पारस्परिक मतभेद से उत्पन्न स्थिति को स्फुटता प्रदान की है –'वृषभमहिषयुगलीव दुर्गतिर्भवति।'[56]

अनामिका में संवेदनहीनता के साथ फेंके गए कानीन शिशु की सुन्दरता, कोमलता व निर्दोषता के प्रति हृदयों को संवेदनशील करते हुए वे कहते हैं कि शिशु पाटलवृक्ष के पुष्प की तरह कोमल एवं सुन्दर है। इसे फेंकने वाला कितना क्रूर रहा होगा –

'पाटलपुष्पसन्निभा वर्तते सा ईषदुद्भिन्नकमलपुष्पमिव नयनयुगलम्। मन्ये साक्षात् भगवती भागीरथ्येव कन्याभावमुपगम्य प्रयागवासिनां सहृदयत्वं परीक्षते'[57] उपमा एवं उत्प्रेक्षा की संसृष्टि कवि के लक्ष्य को प्रतिपादित करने में सुन्दर माध्यम बन पड़े हैं।

बढ़ती उम्र से शरीर में आए परिवर्तनों का हमें अहसास ही नहीं होता। उम्र कब चुपके से अपने निशान छोड़ जाती है इसका बहुत सुन्दर तरीके से सात पुत्रियों के पिता रामलाल के चेहरे पर उगी दाढ़ी का वर्णन करते हुए संकेत किया है। कब शिलीन्ध्रपादप के अंकुरसदृश रोमावलि पुष्पितकाशवनिका सी छवि वाली हो गई, इसका पता ही नहीं चला – 'कदा चन्द्रतलमसृणकपोलमण्डलं शिलीन्ध्राङ्कुरसन्निभरोमराजिभिः शबलितं कदा च पुष्पितकाशवनिकेव तच्छविः सिताऽसिता जातेति सर्वमेव रामलालस्यागोचरीभूतम्।'[58]

कन्या सन्तति घर की रौनक है, वे घर की शोभा सवंर्धित करती है, घर में खुशियों के रंग भरती है, वो घर को सुकून देती है, आनन्द देती है। अरक्षित, अपोषित एवं असिंचित होते हुए भी अपने आत्मबल से पुनः नवता को प्राप्त कर लेने वाली शतपर्विका घास की तरह बेटियां होती हैं, परन्तु फिर भी समाज में उपेक्षित है। कितनी सुन्दर एवं समीचीन उपमा है – 'शतपर्विका इव में तनूजाः। यथा हरितवर्णा शतपर्विका .... तथैव पुत्र्योऽपि में वर्तन्ते।'[59]

अनामिका के कोमल कपोलों पर बहते अश्रुबिन्दुओं का नीलकुमुददल पर पतित ओस की बूंदों का उपमान कितना सुन्दर बन गया है– 'कुवलयदलपतित नीहारकणसन्निभा अश्रुबिन्दवो वन्दनाया नेत्रकोणयोः पुञ्जितपतिताः।'[60]

कुक्की कथा में पूरा का पूरा **मानवीकरण** है। यह कवि की विलक्षण संवेदनशीलता, सूक्ष्म, अवलोकनक्षमता एवं उत्कृष्ट कल्पनाशीलता है कि 'मार्जारी कुक्की' जैसा मानवेत्तर प्राणी सीता समकक्ष तपस्विनी के पद पर विराजमान हो जाती है। **कुक्की-शावक लव-कुश एवं कवि स्वयं कवि वाल्मीकि समकक्ष** होकर हमें **वाल्मीकीय रामायण की कथा को साकार रूप** प्रदान करते हुए कथा के पात्रों को अलौकिकता प्रदान करने में सक्षम होते हैं। कुक्की कथा एवं रामायण कथा का सादृश्य बिम्ब दर्शनीय है –'निर्वासिता वैदेहीव कुक्की निर्निमेषनयनाभ्यां शावकयोः .... विलसितानि पश्यन्ती वाल्मीकिसदृशाय मह्यं .. .. व्यथावृत्तं निवेदितवती।'[61]

कुक्कीशावकों के कोमल एवं सुन्दर नखों की चन्द्र बिम्ब से तुलना देखिए– 'बालचन्दकलोपमैर्मसृणनखरैः।'[62]

बादलों से रहित आकाश में चांदनी की छटा का फूटे हुए पात्र से बिखरी दुग्धधारा से तुलना बलात् चांदनी रात के दृश्य को अक्षिगोचर कर देती है– 'निर्मुदिरामुदी नवम्बरमासस्य भग्नभाण्डात्परितो व्याकीर्णा क्षीरधारेव सर्वत्र वितताऽसीत्।'[63]

'जलपोतसन्निभमिदं लघुकुटीरम्। इदमेव अस्माकं शरणस्थलम्। इदमेव अस्माकं प्रणयमन्दिरं प्रिये! यत्रावाभ्यां प्रणयाधिष्ठातृदेवो भगवान् रतिनायकस्समर्चितः। नैतत् परित्यज्य क्वाप्यन्यत्र गन्तव्यम्'[64] में पोतविहगौ के नायक–नायिका की मनोदशा का कितना सार्थक औपम्य है।

विश्वयुद्ध में जर्मनी, इटली एवं जापान की भूमिका की तुलना शरीर में समस्त उत्पातों एवं विकारों के कारणस्वरूप त्रिदोषों से करना कितना प्रासंगिक एवं औचित्यपूर्ण है– 'त्रिदोषा इव सन्निपातहेतवो जर्मनीटलीजापानदेशा निहतपौरुषाः संजाताः।'[65]

अपने ही विचारों में उलझी सपत्नी की नायिका की मनोदशा अपने ही निर्मित तन्तुजाल में फंसी मकड़ी की तरह बताकर कवि एक साकार चित्र खींच देते है–'आत्मकल्पिततन्तुजालनिविष्टा लुतेव सा एकाकिन्येव यापयन्ती दिनम् आत्मानमात्मनैवालम्बते।'[66(अ)]

नर्तकी कमरजहाँ के कपोलों पर उभरे श्रमस्वेदबिन्दु का 'निहारबिन्दुनिचितं प्राभातिकनव्यकमलिनीपत्रयुग्ममिव'[66(ब)] के रूप में एवं उस कपोल पर स्थित तिल का 'कमलिनीपत्रोपरि स्थितस्य विच्छिन्नयूथस्य कस्यचिद् भ्रमरस्य विच्छित्ति'[66(स)] के रूप में वर्णन उसके सौन्दर्य की अतिशयावस्था को प्रतिपादित करने में सफल हुआ है।

ये कुछ दृष्टान्त मात्र हैं उपमाओं के। कविवर के सम्पूर्ण कथा साहित्य में असंख्य उपमागर्भा सादृश्य देखने को मिलते है, जो न केवल कथ्य को परिपुष्ट करते है, बल्कि उसके सौन्दर्य को भी बढ़ाते हुए सामाजिक संवेदनशीलता की प्रेरणा एवं हृदय परिवर्तन के लक्ष्य को प्रतिपादित करते हैं। जैसे–

'शिलीन्ध्रकोमलं हृदयं', 'पत्नीशनिदशेव, 'विषसम्मूर्च्छिता कालभुजगीव', 'घनच्छन्नदुर्दिनमिव', 'नयनयुगलमिव', 'मंजिष्ठरागरंजितमिव पश्चिमाकाशं कुंकुममण्डितविटंकपीठमिव, 'धनवृष्टिदिवाषाढ़कादम्बिनी सा', 'ज्वालामुखभूधरसन्निभं द्वन्द्वं', 'कालपन्नगीव दिदिशा', 'रूद्राक्षबीजमिव शर्करिला'? 'सान्ध्यरविरिव मनस्तापो',

'बालकदलीपत्रमिव कपोलयुगलम्', 'प्राभातिकपारिजात मंजरीव प्रत्यंगविकसिता', 'पथि लुण्ठितः पथिक इव', 'शरविद्धा वृद्धविहंगीव सुनन्दा', 'श्रावणनदीजलकल्पं यौवनं' जैसी सुन्दर, सार्थक, सटीक, साभिप्राय एवं अर्थगाम्भीर्य पूर्ण उपमाएं उन्हें सही मायनों में आधुनिक कालिदास ठहराती हैं। कविवर की उपमाएं 'गागर में सागर' भरने का काम करती है। उनकी उपमाओं में अर्थगाम्भीर्य है।

उपमा के कुशल चित्रकार कवि कालिदास ने जिस प्रकार अनाघ्रातं पुष्पं जैसी उपमाओं की शृंखला प्रस्तुत कर मालोपमा के सुन्दर उदारण प्रस्तुत किए है, उसी प्रकार कविवर ने यथा प्रसंग एवं औचित्यानुसार उपमाओं की शृंखला के द्वारा अपने कथ्य को प्राबल्य एवं साफल्य प्रदान किया है।

तपती के सौन्दर्यवर्णन में **मालोपमा** दर्शनीय है–'तप्तकाञ्चनदेहयष्टिम्! स्थूलकुवलयनिभे नयने, परिणतबिम्बफलप्रतिमम् अधरकुसुमं रूपनिपानोत्तरणोडुपतुल्यं समुन्नतपयोधरयुगलम्।'[67]

शुभदा के सौन्दर्यवर्णन के प्रसंग में भी कविवर सुन्दर उपमाओं से उसका शब्दांकन करते हुए कहते हैं– 'जपारूणमधरप्रवालम्। फेनधवले कपोलमण्डले। भारतमानचित्रस्थितं कन्याकुमारी कोणभागमनुकुर्वन् मनोज्ञचिबुकम्। सम्पुटितेन्दीवरयुगलमिव नयनयुगलम्।'[68]

एकहायनी की कोमलता एवं सुन्दरता का चित्रांकन करते हुए वे कहते हैं– 'एकहायनी सा आसीत्। नवनीतराशिरिव मसृणमसृणा, किण्डिरराशिरिव, धवलधवला, शिलीन्ध्रकन्दलिकेव कोमलकोमला।'[69] मालोपमा के साथ यमक इस वर्णन के चमत्कार को द्विगुणित कर देता है।

इक्षुगन्धा की बिट्टी का वर्णन भी दर्शनीय है – 'गभीरजला पुष्करिणीव शान्ताऽसीत्। बन्धुजीवारूणाधरा त्रपाभारावनतभ्रूलता मृदुमन्थरगतिमितभाषिणी।'[70]

'वेश्यावृत्ति' एवं देहव्यापार के स्थानों (मकररथ्या) का सुन्दर वर्णन करते हुए उनके साम्यमूलक उपमानों की शृंखला प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं– 'यथा विशालकान्तारे नदी, तारापथे नीहारका, पर्वतशिखरे हिमानी, भवने वलभी, नयनयुगले वा कनीनिका .... तथैव नगरे मकरथ्या भूयिष्ठं छविल्लाकषर्णं जनयति।'[71] वेश्यावृत्ति के प्रति सामान्य सामाजिक दुष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाली उपमाएं विचारणीय हैं – 'यथा दिव्योद्भवा भाषा, दिव्योद्भवं नाट्यं, दिव्योद्भवो नृपतिश्श्रूयते सर्वथा तथैव वेश्यावृत्तिरपि दिव्योद्भवा।'[72]

महेन्द्रदत्ता के वृत्तान्त को सुनकर धर्मोदयनदेव की हतप्रभ एवं किंकर्तव्यमूढ़ावस्था के वर्णन में उपमान प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं – 'महामात्यवचनं श्रुत्वैव धर्मपरायणो धर्मोदयनदेवः समुद्गिरद् धूमबिम्ब इव, ज्वालामुखभूधरो मूषित इव, खलीकृत इव, सर्वजनसमक्षं न्यक्कृत इव, क्षणं मूढ़ इवातस्थे।'[73]

संतान के बिना घर कैसे सारहीन, निरर्थक एवं शून्य लगता है इसके उपमान प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं– 'यथा क्षीरं बिना पात्रं, कज्जलं विना नेत्रम्, कोकिलं विना सहकारवनं न शोभते, तथैव खल्वश्रीकं नन्दनं विना भवनम्।'[74]

कवि महाश्वेता के निश्छल, निर्मल, शीतल एवं शान्त सौन्दर्य का शब्दचित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं– 'लावण्यशालभञ्जी आसीन्महाश्वेता। सम्पिण्डिताङ्गपारावतयुग्ममिव नयनयुगलं, कम्बूपमा ग्रीवा, चमूरूपोतक्या इव सलज्जा मन्दगतिः, परभृतिकाया इव मधुवचनोपन्यासः पारिजातपुष्पमिव मन्दस्मितं, साक्षात्सरस्वत्या इव मनोहरिणबन्धनरज्जुकल्पं वीणावादनम्।'[75]

रोचकता, सहजता, सरलता एवं सरसता कथा की विलक्षण विशिष्टताएं होती हैं, जो इसे हृदयावर्जकता प्रदान करती है। इसके मूलभूत लक्ष्य के अनुरूप प्रसाद एवं माधुर्य कथा–साहित्य में अपेक्षित है। कोमलकान्त पदावली एवं वर्णमाधुर्य इस लक्ष्य को सफलता प्रदान करता है। यही कारण है कि **अनुप्रास-अलंकार** कविवर की कथाओं में बहुतायत में देखने को मिलता है। काव्यशरीर रूपी शाब्दिक सौन्दर्य को बढ़ाने वाला अनुप्रास अलंकार जहां श्रुतिमाधुर्य उत्पन्न करता है वहीं अर्थ को भी शोभायमान करता है।

अनामिका में जनसमूह का वर्णन करते हुए वे कहते हैं – 'अहमहमिकारूग्णान् अकिंचित्करान् मनोरंजनमात्रैकरूचिकान् क्रीड़नकदिदृक्षून् जनान् ....'[76] में र् न् वर्णो की आवृत्ति दृश्य का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करती है।

शतपर्विका में सात कन्याओं के नामों की परिकल्पना में अनुप्रास का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है– 'रमाश्यामाश्यामलाविमलाऽऽचलाकमलाश्चेति सप्तकन्याः।'[77]

मिर्जापुर जनपद के वर्णन में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है– 'क्वचिन्निरन्तरालवंशगुल्ममण्डितं क्वचिदुच्चावचशिलाखण्डशर्करिलं क्वचिल्लघुपल्वलनिचितं क्वचिद्विपुलमालक्षेत्रसंवलितं क्वचिच्च शोणजलप्रवाहपावितं वर्तते।'[78] क् व् र् ल् च् प् आदि वर्णो की अनुगत आवृत्ति शब्द एवं अर्थ दोनों को आकर्षण प्रदान करती है।

वंदना के मनोभावों को प्रवाह देने में अनुप्रास की अभिव्यक्ति सहज सुन्दर बन पड़ी है– 'ममापि वक्षःस्थले क्षीरभारभङ्गुरा मन्दाकिनी मन्दं मन्दमकतु।'[79(अ)]

कुलशेखर की प्रशंसा में लिखे गए काव्य में अनुप्रास की शोभा दृश्य को साक्षात् मूर्तिमान कर देती है–

'इतश्चोलीचूड़ाविकचितघनामोदसुखदाः
सगन्धाः कर्णाटी कुचकलशकाश्मीररजसाम्!
मुहुर्माहाराष्ट्रीवदनमदिराघ्राणसरसा
नभस्वन्तः शान्तं नहि विरहिदाहं विदधति!! [79(ब)]

शान्तनु की मनोव्यथा का चित्रांकन करने में अनुप्रास की छवि प्रकट होती है–'शान्तनुरात्मानमग्निबाणबिद्धमिवान्वभवत्।..
नयनयोर्नितरामुन्मीलनमेव निर्णिनाय।'[80]

'गजवदनवाहनविरहितमिति', 'वल्गुव्यवहरणम्' 'मन्मनोमन्थानुमाने' 'संवादिविसंवादिसंस्कारवन्तो', 'लीलाविलोचनयुगलं' 'नितरामतिमात्रतरामतीतपत', 'मन्दाक्षमनुभवन्तस्तुष्णीमवतस्थुः' 'शरविद्धावृद्धविहङ्गीव' 'कलङ्कपङ्काङ्किताऽपि' 'हिमावदातसितभूतिभासितभालपट्ट' जैसी सुन्दर मनोरम, सार्थक एवं प्रासंगिक वर्णावृत्तियां कथाओं के सौन्दर्य एवं मन्तव्य दोनों को सार्थक करती हैं हठात् हमें दण्डी के पदलालित्य की याद दिलाती है। उनके शब्दविन्यास में उनके असीम शब्दकोष एवं व्याकरणिक गहनता के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

कवि की उत्कृष्ट कल्पनाशीलता, प्रकृति के साथ उनका तादात्म्य, उनकी उदात्त संकल्पनाएं **उत्प्रेक्षा** के रूप में परिणमित होकर उनके काव्यगत सौन्दर्य को द्विगुणित कर देता है। प्रातःकालीन शान्त, मनोरम एवं शीतल वातावरण में भिन्नरूचिशील सहचर का होना जिस प्रकार की उद्विग्नता उत्पन्न करता है, उसकी कल्पना करते हुए वे कहते हैं कि ये ठीक वैसा ही है जैसे शान्त सरोवर में पत्थर फेंक कर उसमें हलचल एवं अशान्ति उत्पन्न करना – 'सहचरः पुनः शान्तपल्वले लोष्टाघातमिव विदघत् वाग्वज्रं मुञ्चति।'[81]

नर्तकी कमरजहाँ के दैहिक सौन्दर्य की विलक्षणता की संभावना करते हुए वे कहते हैं कि लावण्य उसके शरीर में मानो तप्त स्वर्ण की तरह प्रवाहित हो रहा है–'वस्तुतो लावण्यं तप्तकाञ्चनमिव तत्संहनने प्रत्यङ्गं प्रवहदिव पर्यलक्ष्यत्।'[82]

सर्वदमन के समान तेजस्वी एवं चञ्चल शावकों को कथाकार के पास देखकर कुक्की मानो अशेषकार्य वाली मानकर अन्यस्थान पर पर ही रात्रि बिता देती थी। कवि की यह उत्प्रेक्षा कितनी सुन्दर दिखाई देती है–'कुक्की सर्वदमनोपमौ शावकौ मदन्तिकस्थावुत्प्रेक्ष्यात्मानमनवशिष्टविधेयामिव मन्यमाना क्वचिदन्यत्र कन्थास्तरणोपरि निषद्य रात्रिमनैषीत्।'[83]

रूपकालंकार की झलक भी उनकी कथाओं में अनेकत्र दिखाई देती है। मधुप के जीवन रूपी मरूस्थल में विमला मधुरसलिला तरंगिणी हो गई। यहाँ मधुप रूपी उपमेय में मरूस्थल एवं विमला रूपी उपमेय में मधुरसलिला तरंगिणी का आरोप अतिसुन्दर बन पड़ा है–''तस्य जीवनमरूस्थलस्य मधुरसलिला तरंगिणी जाता।'[84]

पति की मृत्यु के पश्चात् वंदना की जीवन रूपी रात्रि में शुक्ल पक्ष नहीं आया। जीवन पर दुःखातिशयता रूपी गहनांधकार की प्रतीक रात्रि का आरोप कितने सार्थक रूप से सुख की समस्त संभावनाओं को नकार देता है– 'तदारभ्य वन्दनाया जीवनशर्वर्यां शुक्लपक्षो नायातः'[85]

अपनी लेखनी से एक मार्जारी की कथा को सीता की कथा के समक्ष पवित्रता एवं महानता प्रदान कर देने वाले कवि ने कुक्की की कन्या के विडाल द्वारा शीलभङ्ग को कितने सुन्दर रूपक में प्रकट किया हैं कि मर्यादारूपी वाटिका को कदाचार रूपी हाथी ने नष्ट कर दिया। चरित्र रूपी ज्योत्स्ना को कलङ्क रूपी राहु ने ग्रहण कर लिया –'मर्यादावाटीं कदाचारमतङ्गज क्षपयाञ्चकार। शीलकौमुदीं कलङ्कसैंहिकेय उपजग्राह।'[86]

एकचक्रः के नायक की अन्तस्थित भावभागीरथी की स्थिति को रूपायित करते हुए वे कहते हैं– मद्धृदयगह्वरे प्रवहन्तीमुशीरशीतां चन्द्रभागावदातां मुक्तिसुखप्रदात्रीं भावभागीरथीं को नु खलु पश्यति।'[87] यहां 'हृदय रूपी गह्वर में प्रवाहित भाव रूपी भागीरथी' कहने का तात्पर्य है कि भावनाएं नायक ने हृदय के अन्तस्थल में अनावृत्तावस्था में रखी।

जेनी के संस्कारों से द्रवीभूत उमाचरण, प्रो.लाङ्गमैन महोदय के पत्र को पढ़कर उसके मन्तव्य तक बुद्धि के रास्ते कैसे पंहुच गए, इसका रूपक दर्शनीय है– 'पठनं विनैव निरवध्यभिप्रायां बुद्धिवर्त्मना हृदयगह्वरमवतरितुं प्रवृत्ताः।'[88]

तथ्यों को तार्किक रूप से प्रमाणित करने के लिए सामान्य से विशेष अथवा विशेष से सामान्य का समर्थन करते हुए कवि ने यथावसर **अर्थान्तरन्यास** को भी काव्यसौन्दर्य के प्रस्तुतीकरण का माध्यम बनाया है।

वन्ध्या में नायिका से घर की स्त्रियां कहती है कि हम तो एक वर्ष के अन्तराल में ही गर्भवती हो गई थी। तृण एवं अग्नि का सम्पर्क होते ही अग्नि प्रज्वलित हो ही जाती

है– 'अरे तृणस्फुलिङ्गसम्पर्के जात एव प्रदीप्तो भवति वैश्वानरः। वयं सर्वा वर्षान्तराल एवान्तर्वर्त्यस्सञ्जाताः।'[89] यहां सामान्य का विशेष से समर्थन करते हुए यह प्रमाणित किया जा रहा है कि वन्ध्या की नायिका के सन्तति होने की संभावना नहीं है।

सृष्टि को कर्ममयी सिद्ध करते हुए भी कर्मशीलता के अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये गये है – 'कर्ममयीयं सृष्टिः।............सूर्यस्तपति प्रतिक्षणं, चन्द्र आह्लादयति प्रतिक्षणम्। अग्निर्ज्वलत्यहोरात्रम्। प्रवहति वातस्सततमेव।'[90]

कविवर की कथाओं में शब्दार्थ को गरिमा प्रदान करने के लिए प्रयुक्त अलंकारों में **यमकालंकार** ने भी शब्द एवं अर्थ दोनों को चमत्कृत प्रस्तुति दी है। 'मसृणमसृणा', 'धवलधवला', 'अमन्दमंदाक्ष', 'भीष्मभीष्मं', विस्मृताऽध्वाऽध्वनीन, सहृदयहृदय जैसे भिन्नार्थक शब्दयुगल पुनरावृत्ति शब्दसौन्दर्य एवं अर्थसौन्दर्य दोनों की शोभा बढ़ाते हुए कथाओं को गति प्रदान करते हैं।

परिसंख्या-अलंकार का चमत्कार देखते ही बनता है – 'प्रशासति तस्मिन् महाविक्रमशालिनी भुभुजि असत्यं नर्मवाक्येषु वा स्त्रीषु वा, भयं राजदण्डेषु वाऽधर्माचरणेषु वा, आसक्तिः परकलत्रादिषु वा देवतासु वा, रतिः स्वप्रमदासु वा परोपकरणेषु वा, पराक्रमः कर्तव्यनिर्वहणेषु वा समराङ्गणेषु वा परिनिष्ठित आसीत''।[91]

3) कथाओं मे रीति -संघटना

कवि की प्रतिभा का प्रागल्भ्य पद्य की अपेक्षा गद्य में विशिष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत भाषा का गद्यसाहित्य कुछ विशिष्ट विलक्षणताओं से परिपूर्ण है। लाघव अथवा लघुता संस्कृत गद्यसाहित्य की महती विशेषता है। इस लघुता एवं अधिक से अधिक अर्थ को कम से कम शब्दों में कहे जाने का सामर्थ्य रखने के कारण समास संस्कृत साहित्य का प्राणस्वरूप है। समास–बाहुल्य ओज गुण का प्रधान लक्षण है, जिसके कारण संस्कृत साहित्य में भाव गाह्यता एवं गाढ़बन्धता का गुण विद्यमान है। गद्य की संजीवनी शक्ति ओज होने के कारण ही **'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।'**[92] कहा जाता है।

प्रौढ, समासबहुल एवं उदात्त गद्य का प्रयोग शास्त्रीय ग्रंथों में तथा सामान्य कथानकों में सहज एवं सरल भाषा शैली का प्रयोग संस्कृत गद्य साहित्य की विशिष्टता है। दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन पारिभाषिक शब्दों की रचना संस्कृत गद्य में स्थित है तथा कोमल भावाभिव्यक्ति के लिए कोमलकान्त पदावली का अस्तित्व है। इस

प्रकार देववाणी प्राचीनता, परिपक्वता, उपादेयता एवं भावाभिव्यक्ति की सामर्थ्य से परिपूर्ण है।

'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर **वामन** ने सर्वप्रथम काव्य में रीति को प्रमुख स्थान प्रदान करते हुए उसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया था। उन्होने रीति का गुणों के साथ नित्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा था– **'विशिष्टा पदसंघटना रीतिः। विशेषो गुणात्मा।'**[93] पदों की विशिष्ट रचना ही रीति है और विशेष का अर्थ है गुणों से युक्त होना। ये गुण नित्य धर्म है, जो काव्य की शोभा बढ़ाते है– **'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः।'**[94] पदों की संघटना के विशिष्ट प्रकार को रीति कहा गया है। 'रीङ् गतौ' धातु से निष्पन्न रीति पद का तात्पर्य गमन या मार्ग सिद्ध होता है। **आनन्दवर्धन** ने रीति को रूप–रस सौन्दर्य आदि का साधन माना है**-'व्यनक्ति सा रसादीन्।'**[95] **मम्मट** कहते हैं कि नियत वर्णों के रसानुकुल व्यापार को वृत्ति कहा जाता है– **'वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापारः।'**[96]

काव्य के विभिन्न मार्गों के रूप में रीति शब्द को परिभाषित किया गया, परन्तु अद्यावधि विशिष्ट पद रचना ही रीति की सर्वमान्य परिभाषा रही है। सार रूप में कहा जा सकता है कि रीति, शब्द और अर्थ के आश्रित रचना–चमत्कार का नाम है, जो माधुर्य, ओज अथवा प्रसाद गुण के द्वारा चित्त को द्रवित, दीप्त और परिव्याप्त करती हुई रस दशा तक पहुंचाने के साधन के रूप में सहायक होती है।

आचार्य **विश्वनाथ** के अनुसार पदो का मेल अथवा संगठन ही रीति है। यह एक प्रकार से अङ्गसंस्थान है। रीति रसादि की उपकारक होती है।

'पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्।

उपकर्त्री रसादीनां...............................।'[97]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विशिष्ट पद रचना रूपी रीति, काव्य शरीर में आत्मा की तरह साररूप में विद्यमान होती है। जिस प्रकार मानवीय शारीरिक संरचना से उसके सौकुमार्य, माधुर्य आदि गुणों का ज्ञान होता है उसी प्रकार काव्य में भी पदसंघटना से माधुर्यादि गुणों का अभिव्यञ्जना से रसादि का उत्कर्ष होता है।

रीति चार प्रकार की होती है –

'सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।

वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा।'[98]

माधुर्य व्यंजक वर्णों के द्वारा रचित, समास रहित अथवा छोटे–छोटे समासों वाली मनोहर रचना को वैदर्भी रीति कहते है–

'माधुर्यव्यंजकैर्वर्णे रचना ललितात्मका।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।'[99]

ओज को व्यक्त करने वाले कठिन वर्णों से निर्मित, अधिक समासों से युक्त शब्दाडम्बरों से युक्त बन्ध को गौडी रीति कहते है –

'ओजः प्रकाशकैर्वर्णैबन्धः आडम्बरः पुनः। समास बहुला गौडी।'[100]

वैदर्भी एवं गौडी से शेष रहे वर्णो से जो रचना रची जाए तथा जिसमें पांच छः पदों से युक्त समास हो उसे पाञ्चाली रीति कहते है–

'वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः

समस्त पञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मतः।

द्वयोर्वैदर्भी गौड्यो।'[101]

वैदर्भी एवं पाञ्चाली इन दोनों रीतियों के मध्य की रीति लाटी कहलाती है – 'लाटी तु रीति वदैर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता।'[102]

कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के गद्य में विशिष्ट रूप से कथा साहित्य में रीतिसंघटना पर दृष्टिपात करते हुए कविवर बाणभट्ट का स्मरण होता है। **बाणभट्ट की गद्यशैली गद्यकारों के लिए आदर्श है।** जिस प्रकार बाणभट्ट ने चित्रण में सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता के लिए समासबहुल एवं ओजप्रधान शैली का प्रयोग किया है, परन्तु प्रसङ्गानुसार छोटे–छोटे वाक्यों के प्रयोग से भी प्रसङ्ग को सशक्त बनाया है, उसी प्रकार अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने भी अपने संप्रेषणीय विषय की अपेक्षानुसार शैली का अनुसरण किया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय कहते है कि **'कवि किसी एक शैली का क्रीतदास नहीं होता। वह तो विषय के अनुसार अपनी शैली को परिवर्तित किया करता है।'**[103]

अभिनव बाणभट्ट कहे जा सकने वाले कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की लेखन शैली अपनी कथाओं में निहित विषय, प्रसङ्ग एवं संदेश की प्रेषणीयता को प्रभावशाली बनाने में सर्वथा औचित्यपूर्ण है। जिस प्रकार बाणभट्ट ने अटवी तथा संध्यादि के वर्णन के श्रृंगारिक प्रसङ्गों में लाघवयुक्त प्रासादिक पदों का प्रयोग कर विषय को सार्थकता प्रदान की है, उसी प्रकार कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने भी वर्णनों में अत्यन्त संश्लिष्ट एवं आलंकारिक भाषा शैली का प्रयोग किया है जबकि रस प्रधान स्थलों पर श्लेषविहीन प्रसादगुणयुक्त पदों का वर्णन किया है।

रीतिसंघटना की नियमावली के अनुसार कविवर की शैली को भी पाञ्चाली शैली में रखा जा सकता है। वर्ण्यविषय के अनुरूप पदों का विन्यास ही पाञ्चाली शैली का प्राण है। कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के काव्य में सर्वत्र वर्ण्यविषय के अनुरुप पदविन्यास किया गया है। बाण की तरह मिश्र जी का शब्दसाम्राज्य पर अखण्ड प्रभुत्व है। विषयानुसार पदावली उत्कटता अथवा कमनीयता लिए हुए है। वे भाषा एवं भावों के मर्मज्ञ है। भावों को सार्थकता एवं सामर्थ्य प्रदान करने वाले शब्दों का प्रयोग ही काव्य के कल्याणमयी स्वरूप को पूर्णता प्रदान करता है। काव्य के इसी स्वरूप की परिकल्पना कविवर कालिदास ने रघुवंश में की है –

'वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।'[104]

सत्य ही है कि अर्थ को पूर्ण करने वाले शब्द एवं शब्द को सशक्त करने वाला अर्थ, काव्य का चरमोत्कर्ष है। रीति संघटना अथवा पदविन्यास में कवि ने केवल शाब्दिक आडम्बर को खड़ा करने का प्रयास अथवा पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं किया है, बल्कि काव्य के सहृदयहृदयाह्लादरूपी लक्ष्य को सार्थकता प्रदान करते हुए विषय एवं प्रसङ्ग को ही प्राथमिकता प्रदान की है। उन्होंने अधुनातन समयानुकूल नवीन पदावली का निर्माण कर उसका प्रयोग किया है। नवीन अर्थों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। भावों की सुन्दर, सहज, सरल, प्रभावपूर्ण एवं हृदयावर्जक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यकतानुसार सटीक पदावली का प्रयोग किया है।

प्रकृति के विलक्षण स्वरूप को प्रकट करने के लिए विशाल स्वरूपा प्रकृति की तरह ही शब्दावली का प्रयोग करते हैं–

'जनपदमिदं सत्यमेव स्वर्गशकलीभूतम्। विन्ध्यश्रेणिभिश्चतुर्दिक्षु समावृत्तं वर्तते। क्वचिन्निरन्तरालवंशगुल्ममाण्डितं क्वचिदुच्चावचशिलाखण्डशर्करिलं क्वचिल्लघुपल्वलनिचितं क्वचिद्विपुलमालक्षेत्रसंवलितं क्वचिच्च शोणजलप्रवाहपावितं वर्तते।'[105]

रामेश्वरमंदिर में राजा पाण्ड्येश्वर के वैभवशाली एवं गौरवमय स्वागत को महिमामण्डित करने के लिए कविवर जिस संश्लिष्ट पदावली का प्रयोग करते हैं, वह दर्शनीय है–

'जयघोषैः पुष्पमालाप्रक्षेपणैरूपायनदानैराचारप्रदर्शनैः पुरोयायिनां चारणानां विरूदावलीर्भिवेदपाठिनां ब्राह्मणानाञ्चार्शीवचोभिर्निखिलमपि शून्याकाशनिरवकाशमिव समजनि।'[106]

अधमर्णः कथा में खुले आकाश मण्डल के नीचे रत्नमयी शय्या पर शयन करते हुए, व्याकुलमना शान्तनु की चञ्चल मनोदशा एवं नभोमण्डल की असीम छटा के स्वाभाविक वर्णन मे प्रयुक्त संश्लिष्ट पदावली सार्थकता को प्राप्त करती है – 'तस्य दृष्टिः कदाचिद् ध्रुवनक्षत्रप्रदक्षिणापरं सप्तर्षिमण्डलं, कदाचिच्छरविद्धमृगरूपधारिमृगशीर्षनक्षत्रं चावलोकितवती। कदाचिदसौ कृतिकाः दृग्भ्यां पिबन्नासीत्। एवं प्रतीयते स्म यथा विस्तृते पिठरे केनचित् धवलधवला अगणितमुक्ता विकीर्णाः स्युः।'[107]

गङ्गा के किनारे की प्रातः कालीन चहल पहल कोलाहल, गतिविधियां जितनी संश्लिष्ट एवं संकुलित है उतनी ही संश्लिष्ट एवं दीर्घसामसयुक्त पदावली का प्रयोग कवि ने इस वर्णन की भावभूमि को प्रकट करने के लिए किया है –'ब्रह्मवेलात एव गङ्गास्नानार्थिनां कोलाहलात् तीरस्थदेवालयध्वनिप्रसारियन्त्रोद्यतसम्पिण्तिभक्तिगीतशब्दनिवहात् ताम्रचूडानामनवरतकूङ्करात् प्रथमतोयड्डीनकलविङ्कमौकुलिजल्पनाच्च प्रायेणोपनगरेऽस्मिन् न कोऽपि स्वस्थो जनः षडवादनात्परं शयितुमुपक्रमते।'[108]

इलाहाबाद नगर के ऐतिहासिक मीरगञ्ज क्षेत्र के महत्त्व, वैभव एवं अतिसक्रियता के वर्णन में वर्णनीय विषय के प्रसङ्गानुसार पदसंरचना की विलक्षणता उदाहरणीय है तथा उनकी शैली का प्रतिनिधित्व करती है–

'धनकुबेराणां बहुभूमिकैर्भवनैर्निचितः विविधसघनपण्यवीथिभिस्संकुलो नगरोद्देशोऽयं प्रभातादारभ्य निशीथं यावत् कोलाहलपर्याकुलस्तिष्ठति। पत्रपुटावशिष्टभक्ष्यजातं परिलिहन्तो

बहिरागतप्रायनेत्रगोलका अर्धमृता रथ्याकुक्कुराः क्षतविक्षतजानुशिखरा भारनिर्वहणाक्षमतया दयमानैः स्वार्थान्धस्वामिभिः स्वैरमरणवरणायनिर्मुक्ताः स्थविरवैशाखनन्दना, यत्र कुत्रापि पट्टशणनिर्मितछिद्रबहुलप्रसेवमास्तीर्य भूस्वाम्युचिताधिकारेण निषद्य सनिकारप्रदीयमानं भैक्ष्यं संहरन्तो नित्यभिक्षुका, निखिलमपि हट्टं पतिवेतनमुषितैरल्पधनैः क्रेतुकामा आदिवसमापणादापणं परिभ्रमन्त्यो गृहसेविकोत्सेकिन्यः सुभगम्मन्याः प्रगल्भवनिताश्च मीरगञ्जक्षेत्रं नितरां संभूषयन्ति।'[109] **यह वर्णन** निश्चित रूप से उनकी पदसंरचनाविधि को **बाण के समकक्ष** प्रतिष्ठापित करती है।

यद्यपि कथाओं में विस्तृत वर्णन कथा की सरसता, सहजता एवं कौतुहल प्रवृत्ति में बाधक होकर रसभङ्ग की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। अतः लघुकथाओं एवं कथाओं में विस्तार के लिए अवसर की उपलब्धता सीमित रहती है, परन्तु दीर्घकथा में वर्णनसामर्थ्य की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं में यथाप्रसंग, यथाविषय तथा औचित्यानुसार वर्णनात्मक शैली विलक्षण रूप में प्राप्त होती है। उनके वर्णन हमें बाणभट्ट के वर्णनों की स्मृतिवीथिकाओं में प्रविष्ट करवा ही देते हैं। महानगरी कथा में गतिशील हुई लौहपथगामिनी से दृश्यमान स्वाभाविक प्राकृतिक छटाओं का वर्णन बलात् हमारे नेत्रों के समक्ष सजीव रूप से प्रस्तुत कर देती है। यथा–

'गन्त्री कस्याश्चिल्लघुवर्षानद्याः सेतुपथमतिक्रममाणा किञ्चिदिव मन्दवेगा सञ्जाताऽसीत्। निर्मुदिरा मुदी नवम्बरमासस्य भग्नभाण्डात्परितो व्याकीर्णा क्षीरधारेव सर्वत्र वितताऽसीत्। तस्मिन्निर्व्याजधवलिम्नि स्थिताः क्वचिदाभुग्नशिरसो विन्ध्यगिरिपादाः, क्वचित्सजलजलधरकपिशा नीरन्ध्रवनराजयः, क्वचिच्छान्तनीवृति सेवितपर्णशालो जरठतापस इव विलम्बिकूर्चप्ररोहोऽद्वितीयो न्यग्रोधः, क्वचिच्छस्यश्यामला मालभूमिः, क्वचिदितस्ततो धावन्तो ग्रामसिंहा, क्वचिन्मृत्तिकानिवेशसंहतिर्ग्रामाटिका, क्वचिच्च विद्युद्दीपभाभासिताः पण्यवीथय इति सर्वमपि धवलपर्णोपरि रेखाङ्कितं चित्रजातमिव समलक्ष्यत।'[110]

एकचक्रः के नायक की जननी की विरहव्यथा एवं व्याकुलता की दीर्घता एवं अधीरता की असहनीयता के वर्णन में उसी शैली का आश्रय लेते हुए कवि कहते हैं–

'पितृचरणागमनमुत्प्रेक्षमाणा सा कदाचित्तुलसिकार्च्चनैः कदाचिद्गृहवलभ्यभ्यर्णचरमौकुलिकुलपायसपर्येषणैः कदाचिदागमपिशुनभूतगौमयगौर्युत्थापनैः

कदाचिद्धिकाप्रशमनार्थं पितृचरणस्मरणैः कदाचिच्च दैवज्ञोपदिष्टमङ्गलसौवस्तिकैः कालक्षेपं विहितवती।'[111]

सिंहसारिः कथा में पट्टमहिषी दिदिशा की मनोदशा का वर्णन करते हुए सांयकालीन सुषमा का सजीव चित्रण कवि ने, जिस सुन्दर एवं ललित पदावली में प्रस्तुत किया है, वह उनकी उत्कृष्ट पदसंरचना का उदाहरण है। 'आदिवसं प्रकाशलेखां विकीर्य कुशेशयबन्धुर्भगवान् सहस्त्रमरीचिमाली रविरिदानीं वारूणीं दिशां प्रतिष्ठासुरासीत्। मञ्जिष्ठरागरञ्जितपश्चिमाकाशं कुङ्कुममण्डितविटङ्कपीठमिव आयान्त्याः सन्ध्यावधूट्याः सभाजनार्थं सन्नद्धमासीत्। यवद्वीपस्य सिंहसारिसाम्राज्यस्य पट्टमहिषी देवाङ्गनाप्रतियातनाभूताऽनिन्द्यसौन्दर्यवती दिदिशा स्वराजप्रासादस्य वलभ्यां तिष्ठन्ती गहनचिन्तने निमग्नेव समलक्ष्यत।'[112]

अर्थानुकूल शब्दावली की प्रयोगात्मका पाञ्चाली रीति के उदाहरण अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं में अनेकशः प्राप्त होते हैं। बालीग्राम के राङ्गडा मन्दिर का वर्णन करते हुए कविवर कहते हैं–'बालिग्रामग्रामटिकासु राङ्गड़ा मन्दिरमित्येव प्रत्यभिज्ञानमवाप्यते पुराणदेवालयस्यास्य। राङ्गडा नाम प्रेताधीश्वरी या खलु राङ्गड़ात्वोपपत्तेः प्राक् बालीनरपतेर्महाभागवतस्य मुकुटवंशवर्धनस्य च कनीयसी दुहिताऽऽसीत्।'[113]

'अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा में शोणनद का वर्णन विलक्षण पदसंरचना का अप्रतिम उदाहरण है। समासबहुलता, विकटबन्धता, नवीनता देखने योग्य है– अधोऽधो देवालयं प्रावहच्छोणनदो रेवावियोगजन्यघर्घरारवनिचितमन्युमिव समुदिगरन्। क्वचिदुत्पतन्तीभिश्शफरकन्यकाभिर्घनागमस्तनयित्नुरिव विद्युल्लताभिरून्मेषलीलां वितन्वन्, क्वचिज्जलमध्योद्गतद्वीपभूमिषु सूर्यातपसौरव्यमाप्नुवद्भिर्मकरैमकरालयभ्रान्तिमिवोपजनयन्, क्वचिद् कीर्णशतसहस्त्रबृहल्लघुपाषाणशकलैर्दृषद्वती सहोदरत्वमिव प्रकटयन् क्वचिच्चानुतटरूहां वानीराणां कदम्बकैः कालिन्दीतटान्तर्विरूढ़निकुञ्जानां विच्छित्तिमिव विरचयञ्छोणो माममतितरा प्रभावितवान्।'[114]

ये कुछ दृष्टान्तमात्र है, जिनमें कविवर की **पदसंरचना** अपनी **विकटबन्धता, नवीनता, समासबहुलता, संश्लिष्टता एवं रसपेशलता से बाणवत शैली की झलक प्रस्तुत करती है।** पदों पर कविवर का साम्राज्य है। वे पदों की संरचना करने में निपुणं है। उनकी पदावली उनके

विचारों की वाहिका है। यदि वर्णन विकटता, विशालता, बहुलता, भव्यता, वैभव, घनघोरता लिए हुए है तो पदावली उत्कटता लिए हुए है और यदि सौन्दर्य, प्रेम व कोमलता का वर्णन है, तो पदावली भी लालित्य व कमनीयता लिए हुए है। यही पाञ्चाली रीति की परिभाषा है–

'वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।
समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिकामतः।'[115]

कविवर के गद्य में अद्भुत प्रवाह है। कही बाणभट्ट की तरह उनका गद्य भयंकर शब्दनाद करते हुए प्रचण्ड सरिता की भांति निनादित होता है तो कहीं शीतल, मंद, शान्त नदी की तरह प्रवाहित होता है। पद एवं वाक्यों के गुंफन की अद्भुत क्षमता है कविवर में।

दीर्घ वाक्यों, सामासिकता एवं विकटबंधता से कविवर विषय के साथ – साथ अपने **पाण्डित्य को भी प्रमाणित करते प्रतीत होते हैं।** वे जहाँ गूढ़ एवं दार्शनिक विषयों पर अधिकार रखते है, उनके अनुकूल भाषा पर भी अपना आधिपत्य रखते हैं, वहीं सहज, सरल, कमनीय, मधुर, स्वभाविक एवं श्रृंगारिक वर्णनों के अनुकूल कोमलकान्त पदावली में भी उतनी ही दक्षता से परिपूर्ण है। उनका कलापक्ष जितना प्रभावशाली है भाव पक्ष भी उतना ही हृदयावर्जक है।

रसप्रधान, प्रसादगुणयक्त एवं कोमलकान्तपदावली के उदाहरण भी कविवर के कथा–साहित्य में सर्वत्र प्राप्त होते हैं। यहाँ भी वे बाणभट्ट के समान प्रतीत होते है। पुनर्नवा की प्रस्तावना में 'अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथा यात्रा' में कविवर की वर्णनक्षमता का वर्णन करते हुए प्रो.पुष्पा दीक्षित कहती है'–

'कथास्वेतास्वनेकत्र बाणभट्टायतेऽभिराजः।'[116]

कविवर भाषा के कुशल चितेरे है। हृदयावर्जक, रसपेशल वर्णनों में कवि समास व संश्लिष्टता से रहित छोटे–छोटे पदों का प्रयोग कर विषय को हृदयग्राह्य बनाने में भाषा को बाधक नहीं बनने देते। कविवर की निरीक्षण शक्ति अद्भुत है। वे दृश्यों को आत्मसात् कर अपना बना लेते हैं, उन्हें महसूस करते हैं तथा चमत्कृत रूप से अखण्ड शब्द भण्डार एवं विलक्षण कल्पना शक्ति के साथ अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। दीर्घ समासों की छटा के साथ ही लघुकलेवर प्रासादिक वाक्यों की शोभा भी दर्शनीय है। उनकी शैली, विषय के अनुसार औचित्य एवं सहजता लिए हुए है। जहां हृदय की भावनाओं एवं संवेदनाओं की

अभिव्यञ्जना है वहां न तो दीर्घ सामासिक पद है और न ही दीर्घ वाक्यों का प्रयोग है। छोटे–छोटे वाक्यों में सहज एवं निर्बाध भावाभिव्यक्ति है।

जिजाविषा कथा में नायिका तपती की माँ भावविह्वल होकर प्रभु से शिकायत करते हुए कहती है– 'अन्तर्यामिन्! दृष्टो मया भवन्न्यायः।...............उत्थितान् पातयसि! पापान् प्रवर्धयसि! साधून् सर्वथा खलीकरोषि! अये निघृण निष्कृप परमेश्वर! तपती हृदयतापमपि नानुभूतवानसि? गङ्गाजलं मदिरायितं त्वया? सिन्दुवारमञ्जरी कामलम्पटाय समर्पिता ? साम्प्रतं क्व यामि ? कथं खलु कस्मैचिदपि कलङ्कितं मुखं दर्शयानि? किं वक्ष्यन्ति लोकाः?'[117] जीवन की क्षणभंगुरता, करूणा, ममता, क्षणिकता, अनिश्चितता को बहुत सहज रूप में कविवर अभिव्यक्त करते हैं–

'अनिश्चितेयं जीवनयात्रा। कतिपये जना युगपत् प्रतिष्ठन्ते। परन्तु मध्येमार्गं कस्य श्वासतन्तुः कुत्र त्रुटिष्यतीति को वेत्ति? तथापि सहयायिमोहात् यात्रा न खलीक्रियते साधकेन। यावत्पथान्तं तु चलितव्यमेव।'[118]

एकहायनी की अबोध बालिका की कोमलता, अनघता एवं सौन्दर्य वर्णन की कोमलकान्त पदावली दर्शनीय है–'क्षीरगौरं शरीरं, दुग्धकुल्येव दृष्टिः। आरक्तोऽधरः। सुघटितानि सर्वाण्यपि अङ्गानि। विधात्रा लब्धप्रभूतावकाशेनेव सर्वं निर्मितम्।'[119]

नारी चेतना एवं संवेदना कविवर के केन्द्रीय विषय है। स्त्री की दयनीय एवं गौण स्थिति को वे प्रमुखता से उठाते हैं। कन्या की महत्ता, उसकी कमनीयता, उसकी कल्याणमयता, उसकी स्वपोषित व स्वसवंर्धित पुनर्नवता को बहुत सुन्दर उपमा व भाषा शैली में प्रकट करते है कविवर। कन्या की तुलना शतपर्विका से करते हुए वे कहते हैं–

'शतपर्विका इव में तनुजाः। यथा हरितवर्णा शतपर्विका गृहद्वारसुषमां, संवर्धयति, शयने तूलास्तरणसाम्यं दधती सौख्यं जनयति, स्वनवनवाङ्कुरैः पशुपक्षिणः प्रीणयति, आत्मारामतयाऽपोषिताऽपि अनभिषिक्ताऽपि अरक्षिताऽपि स्वादृष्टबलेनैव पुनर्नवतामुपैति नित्यहरिता च संलक्ष्यते तथैव पुत्र्योऽपि में वर्तन्ते।'[120]

सांसारिक चरित्र को उद्घाटित करते हुए कविवर उपदेश को हृदयगंम व प्रभावशाली बनाने हेतु लघु वाक्यों का प्रयोग करते हैं। संसार का चरित्र, उसकी

संवेदनाहीनता, स्वार्थपरता एवं विचारसरणि पर प्रहार करते हुए बोधगम्य पदबन्धों एवं सरल भाषा का प्रयोग करते हुए वे कहते हैं –

'सर्वं परवशं दुःखम्। समाजोऽयं न शीलमपेक्षते, न सौन्दर्यमाद्रियते, न वैदुषीं प्रशंसति, न धनवैभवं गणयति, न चरित्रे स्निह्यति, न दुराचरणाय कुप्यति! विचित्रा खल्वस्य मूल्यांकनपद्धतिः! स्वार्थानुकूलम् अवसरमात्रं निभालयत्ययं समाजः। स्वार्थं सिद्धयेत् तर्हि कपटाचारमिश्रितमसत्यमपि वरम्! परन्तु यदि स्वार्थो विकलीभवेत् तर्हि स्नेहसमुदाचारादिगुणा अपि व्यर्था एव !'[121]

कुक्की की नायिका मार्जारी के स्नेहसूत्र में आबद्ध कवि, करूणामय होकर वाल्मीकि समकक्ष हो जाते हैं। सांसरिक आसक्ति व मोह से दूर कवि कब संवेदनाओं की शृंखला में बंध जाते हैं, उन्हें स्वंय भी पता नहीं चलता। कथा–नायक की भावविभोर मनोदशा का बहुत सुन्दर वर्णन करते हुए कहते हैं –

'नियतिशैलूषि! कीदृशीयन्ते माया ? किं कर्तुं व्यवसिताऽसि? अकृतदारपरिग्रहोऽस्मि!.... ....मायां नानुभवामि, ममत्वं न परिचिनोमि, करूणामुपेक्षे, दयां तिरस्कारोमि। किमापि बन्धनं नाङ्गीकरोमि। एकल एव जातोऽस्म्यनेहसि। एकल एवं दिवङ्गन्तुमपि समीहे। हन्त! यदि मां भार्यासहायीकर्तुमेव व्यवसिताऽसि तर्हि किमियं दुर्भगा दुष्टा मार्जार्येव त्वया समवाप्ता?'[122]

चञ्चा कथा में इलाहाबाद के मीरगञ्ज क्षेत्र की कामवीथिकाओं के छविल्ल आकर्षण की शैली उदाहरणीय है –

'यथा विशालकान्तारे नदी, तारापथे नीहारिका, पर्वतशिखरे हिमानी, भवने वलभी, नयनयुगले वा कनीनिका परमां विच्छित्तिमावहते तथैव नगरे मकररथ्याऽपि भूयिष्ठं छविल्लाकर्षणं जनयति।'[123]

नारी की अद्भुत अनुकूलन क्षमता की वर्णन शैली विषयानुकूलता की कसौटी पर खरी उतरती है – 'यथा धूमलेखा घटे, कक्षे वितताम्बरे वा तदा काराकारिता सती सुखं तिष्ठति तथैव नारी नियतिप्रदत्तं सर्वमपि अवस्थाविपर्ययं स्वीकरोत्येव।'[124]

वन्ध्या स्त्री की मनोदशा को अभिव्यक्ति देने हेतु कविवर की पदसंरचना देखने योग्य है– 'वन्ध्यादोषोऽपि नाम स्त्रीणां नयननिद्राहरः। कारागृहायते स्वामिभवनमपि। न क्वचिज्जायते जिगमिषा। न किञ्चिज्जागर्ति चिकीर्षा। सपत्नायते हासः। आकाश कुसुमायते मानसोल्लासः।'[125]

निश्चित ही कवि भावों एवं भाषा का अनुकूल गुम्फन करने में सफल रहे हैं। उनकी भाषा भावों की वाहिका है। काव्य में भाव ही सहृदयहृदय को परमानन्द की अनुभूति करवाते हैं तथा भाषा उस भाव अथवा रस को परिपुष्ट करने का सशक्त माध्यम है। कवि इस माध्यम की सार्थक परिणति में सक्षम रहे हैं।

ध्रुवस्वामिनी की नायिका के उपेक्षित व वञ्चित पति की स्थिति उसकी पुत्री की दृष्टि में क्या है ? उसकी अभिव्यञ्जना की पदावली अपनी व्यञ्जनाक्षमता को सार्थक करती है –

'जन्मदाता पिता तस्या अङ्गभङ्गविकल इव, हतप्रभ इव, प्रताड़ित इव, परित्यक्त इव, निष्प्रयोज्य इवाऽदिवसं मौनमुपास्थाय कालं नयति।'[126]

'अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा' में 'कविवर बौद्ध धर्म के पलायनवाद अथवा सांसारिक दायित्वों से विमुखीकरण पर तीव्र प्रहार करते हुए कहते हैं– 'यस्य संसारस्य रक्षा काम्यते, तत एव पलायनं क्रियते? संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा? समरं विहाय समरविजयः? दायित्वं विहाय दायित्वपूर्तिः?'[127]

इस प्रकार कविवर की वर्ण्य विषय के अनुरूप पदों का विन्यास रूपी पाञ्चाली शैली उनके कथा–साहित्य में सर्वत्र प्रतिबिम्बित होती है। **नये पदों का निर्माण, नए अर्थों की अभिव्यक्ति, नवीन-भावभंगिमाएं कविवर की विलक्षण विशिष्टताएं हैं।** उनकी पदावली, ऊर्जस्विता, प्रवाहशीलता, भावाभिव्यञ्जना हठात हमें बाण के लिए प्रयुक्त धर्मदास की स्तुति की याद दिलाती है –

'रूचिर स्वर वर्णपदा रसभाववती जगन्मनों हरित। सा किं तरूणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।'[128]

बाणवत कवि रीतिसंघटना के माध्यम से भावाभिव्यक्ति के पुनीत प्रयोजन के श्रेष्ठ स्तर को प्राप्त करने में निस्संदेह रूप से सफल सिद्ध हुए हैं।

4) कथाओं का भाषागत वैशिष्ट्य

मनुष्य एक विवेकशील एवं चिन्तनशील प्राणी है। भावानुभूति एवं अभिव्यक्ति उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आदिकाल से ही अपनी अनुभूति एवं प्रतीति को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उसने विभिन्न माध्यमों का प्रयोग किया है। उन माध्यमों में भाषा सर्वाधिक

विकसित एवं परिष्कृत माध्यम है। भाषा वह माध्यम है, जिसमें हम चिन्तन करते हैं तथा अपने विचारें को अभिव्यक्त करते हैं। भाषा प्रकट रूप में भावों की अभिव्यञ्जना का स्त्रोत है। भाव एवं भाषा अथवा अर्थ एवं शब्द एक दूसरे के पूरक है।

प्लेटो ने सोफिस्ट में इस विषय में कहा है कि विचार एवं भाषा में थोड़ा ही अंतर है। **विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते है।**[129(अ)]

इन्साक्लोपीडिया में भाषा अर्थात् Language को परिभाषित करते हुए कहा गया है–'A system where sounds or signs convey obejects] actions and ideas'[129(ब)]

भाषा में ध्वनि समष्टियों एवं भावों में यादृच्छिक सम्बन्ध होता है, जो एक दूसरे का पूरक होता है।

'शब्दार्थौं सहितौ काव्यम्'[130] इसी मन्तत्य को व्यक्त करता है। भाषा का यह संसार विलक्षण है। शब्दों का अखण्ड साम्राज्य है तथा उसमें अथाह एवं अद्भुत सामर्थ्य है। मानव मन की असीम गहराइयों में स्थित विचार श्रृंखला को आकार प्रदान करने का कार्य शब्द करते हैं। शब्दों का यह सीमित संसार अखण्ड साहित्यसंसार की सृजन क्षमता धारण करता है।

एक साहित्यकार के पास अपनी संवेदनाओं के संप्रेषण के लिए उसका शब्द भण्डार अर्थात् भाषा, एक सशक्त हथियार है। भाव साहित्य की आत्मा है तो भाषा उसका बाह्य आवरण। निहितार्थ की अभिव्यञ्जना को शब्द ही सार्थकता प्रदान करते हैं। इसीलिए किसी भी साहित्यकार की भाषा उसके ज्ञान, दृष्टिकोण एवं उद्देश्य की परिचायक है।

कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की भाषा विलक्षण विशिष्टताओं से पूर्ण है। उनका **वर्णविन्यास, पदसंरचना, वाक्यसंरचना सर्वथा औचित्यपूर्ण है।** कविवर की भाषा अनावश्यक अलंकारों के भार से बोझिल नायिका की तरह न तो अनाकर्षक है और न ही आवश्यक अलंकरण एवं शोभा से शून्य। विषय व प्रसंग के अनुसार उनकी भाषा वर्णनों में अत्यन्त संश्लिष्ट, आलंकारिक एवं शोभावर्धक है। उनके समासबहुल व आलंकारिक दीर्घ वाक्य सहृदय हृदय को आह्लादित करते हैं। महानगरी कथा में रेलयान से गतिशील दृश्यों का स्वाभाविक वर्णन कितना सुन्दर एवं आकर्षक प्रतीत होता है। कवि की कल्पना, उपमाएं वर्णविन्यास, अलंकार, व्याकरणिक दक्षता सब एक साथ प्रतिबिम्बित हो रहे हैं–

'निर्मुदिरा मुदी नवम्बरमासस्य भग्नभाण्डात्परितो व्याकीर्णा क्षीरधारेव सर्वत्र विततीऽसीत्। तस्मिन्निर्व्याजधवलिम्नि स्थिताः क्वचिदाभुग्नशिरसो विन्ध्यगिरिपादाः, क्वचित्सजलजलधरकपिशा नीरन्ध्रवनराजयः, क्वचिच्छान्तनीवृतिसेवितपर्णशालो जरठतापस इव विलम्बिकूर्चप्ररोहोऽद्वितीयो न्यग्रोधः, क्वचिच्छस्यश्यामला मालभूमिः, क्वचिदितस्ततो धावन्तो ग्रामसिंहाः, ...रेखाङ्कितं चित्रजातमिव समलक्ष्यत।'[131]

यह वर्णन रेलयान के गवाक्ष से दृश्यमान स्वाभाविक परिदृश्य को साक्षात् हमारे समक्ष उपस्थित कर देता है। संधिसमन्वित, अंलकारपिनद्ध, वर्ण सौन्दर्यमय एवं अनुपम कल्पनाशीलता से युक्त यह वर्णन इस बात का प्रमाण है कि वे माँ सरस्वती की असीम अनुकम्पा से सहज साहित्यिक प्रतिभा के धनी है। भाषा पर उनका आधिपत्य है, शब्द उनके संकेतो पर नृत्य करते हैं, अलंकार उनके संवेगों के पूरक है, शास्त्र उनके सहृदयहृदयानुरंजन के लक्ष्य में साधक है। वर्णन प्रधान स्थलों में पाठक वर्णन में ही रम जाता है, दृश्य के साथ दृश्य ही हो जाता है। अपेक्षाकृत दीर्घ कथाओं में वर्णन उनके पाण्डित्य को प्रदर्शित करते हैं, चित्त को चमत्कृत करते हैं, पाठकों का मनोरंजन करते हैं, उनका पथ प्रदर्शन करते हैं, व्यावहारिकता का उपदेश करते हैं तथा सामाजिक सरोकारों पर विस्तार से व्याख्यान करते हैं। ऐसे स्थलों पर भाषा क्लिष्ट, संश्लिष्ट एवं आलंकारिक है। यथा –

'धात्रोट्टङ्कितं भालपट्टलेखं मृषा कर्तुं को नु शक्तः? सर्वगुणसम्पन्नोऽपि नैषधो नलः किं विपद्ग्रस्तो नाऽभूत? मर्यादापुरूषोत्तमोऽपि दाशरथिः किं कान्तारवासव्यथां प्रियापहरणजन्यावमानं न सोढ़वान्? अयुतसंख्यासिंधुरबलोऽपि मध्यमपाण्डवः किं मत्स्यमहानसे भोजनं न पपाच?'[132]

शृंगारिक वर्णनों में कवि की लेखनी उन्मुक्त रूप से मुखरित होती है। 'चञ्चा' में कामवीथिकाओं का वर्णन करते हुए उपमाओं की सुंदरता दर्शनीय है –

'यथा विशाल कान्तारे नदी, तारापथे नीहारिका, पर्वत शिखरे हिमानी, भवने वलभी, नयन युगले वा कनीनिका परमां विच्छित्तिमावहते, तथैव नगरे मकररथ्या।'[133]

कवि की भाषा चूंकि भावों की अनुगामिनी है, इसीलिए जैसे ही रस की प्रमुखता का अवसर आता है वैसे ही भाषा व शैली रसानुगामी एवं प्रसाद गुणमयी हो जाती है। यथा –

'अन्तर्यामिन्! उत्थितान् पातयसि! पापान् प्रवर्धयसि साधून् सर्वथा खली करोषि! अये निघृण परमेश्वर!'[134] अपि च

'दग्धमार्जवम् ! गतं गौरवम्। विलुलितं वैभवम्। विनष्टो विश्वासः। कलङ्कितोऽनुरागः। जितमसाम्प्रकारिणा पञ्चशरेण।'[135]

कवि की भाषा सहज एवं स्वाभाविक है, जन – जन की भाषा है। अतः जनप्रचलित भाषा की तरह उसमें स्थान–स्थान पर अनायास ही नवीन स्वनिर्मित शब्दों एवं लोकोक्तियों का समावेश हो गया है। उनकी इस विलक्षणता के कारण उनकी कथाएं जनमानस में स्थान बना लेती हैं तथा निर्विवाद रूप से इस बात को निराधार सिद्ध करती हैं कि संस्कृत एक जङ, मृत व अव्यावहारिक भाषा है। **वे सनातनकालीन भाषा को समकालीन भाषा का स्वरूप प्रदान करते हैं।** हिन्दी भाषा में प्रचलित लोकोक्तियों का सहज संस्कृत में प्रयोग उनकी विलक्षणता है। यथा –

'अविद्यमाने वेणुदण्डे वेणुरपि नाध्माष्यति।'[136]

'रिक्तं चणकं सान्द्रं नदति।'[137] 'स्नाहि दुग्धेन, फल पुत्रेण'[138] 'शृणु कर्णद्वयं उद्घाट्य'[139], 'प्रेम्णि युद्धे च सर्वं युक्तियुक्तम्'[140] आदि।

जैसे अधुनातन काल में प्रचलित सहज पदावलियों का वे अनायास प्रयोग करते हैं उसी प्रकार प्राचीन संस्कृत साहित्य में विद्यमान साहित्य के **'प्रकाशस्तम्भ' स्वरूप कविकोविदों की पदावलियों का प्रतिबिम्ब भी उनकी भाषा में** अनायास आया है। यह वाक्यसाम्य देखने योग्य है। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त विदूषक से कहते हैं 'परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः।' यहां एकचक्रः कथा में 'परिहासविजल्पितं मे तत्।'[141] तथा पोतविहगौ में 'महुलि! तदासीत् परिहासविजल्पितम्।'[142]

अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा कहते है – 'सखे! चिन्तय तावत् केनापदेशेन पुनराश्रमं गच्छामः' वैसी ही पदावली यहां एकचक्रः में 'केनापदेशेनाश्रमपदं गच्छेयम्'[143] के रूप में प्राप्त होती है। अभिज्ञानशाकुन्तल की तरह जिजीविषा में 'किमिति जोषमास्यते?'[144] तथा राङ्गडा कथा में 'जोषमास्यते भवता' प्राप्त होता है।

शाकुन्तल की तरह ही यहा सुखशयितप्रच्छिका में 'कः कालस्त्वामन्वेषयामि' तथा 'स्वनियोगमशून्यं कुर्वती'[146] जैसी पदावली प्रयुक्त हुई है।

अभिज्ञानशाकुन्तल की पदावली कवि के मानस में बसी हुई है। अनेकत्र उसी साम्यता वाली पदावली प्रतिबिम्बित होती है। जैसे– 'तच्चक्रेऽपि पर्यायैरूच्चैर्नीचैश्च गच्छति तस्मै गतिं ददतु:,'[147] 'दुष्यन्तशकुन्तलां संयोजयन्नसौ चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः' आदि प्रयोग यह सिद्ध करते हैं कि कालिदास के वैदर्भी रीतिसमन्वित वाक्यों का प्रयोग कविवर अनायास ही करते हैं।

उत्तररामचरित में भवभूति जैसे राम की करूणा को अभिव्यक्त करते है –

'अनिभिन्नों गभीरत्वादन्तर्गूढ़घनव्यथः।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करूणो रसः।।

कुक्की की करूणावस्था को अभिराज राजेन्द्रमिश्र कुछ इसी तरह व्यक्त करते हैं–

'पुटपाकप्रतीकाशमन्तश्शोकं सत्यनमुपगूह्य'[148] किरातार्जुनीयम् की नायिका द्रौपदी की विवशता भारवि की पदावली में 'तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारीसमया दुराधयः।' के रूप में प्रकट है उसी प्रकार राङ्गडा की नायिका भी नारी मर्यादा का उल्लंघन कर कापालिक धर्म के पालन के लिए विवश हो जाती है – 'निरस्तनारीसमया कापालिकधर्मनिरतेयम्।'[149] भास की पदावली भी अभिराज जी के साहित्य में विराजमान है जैसे –'चक्रारपङ्क्तिरिव सा कदाचिदुच्चैरारूरोह कदाचिच्च नीचैरवतस्थे।'[150] तथा 'भग्नायां रज्जौ के घटं धारयन्ति?'[151]

रघुवंश में राजा दिलीप द्वारा नंदिनी के अनुकरण का कवि कालिदास जिस प्रकार वर्णन करते है –

'स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां,
निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां
भूपतिरन्वगच्छत्।।'

कुछ उसी तरह का वर्णन कुक्की कथा में मार्जारी द्वारा नायक के अनुसरण का है– 'यस्मिन् यस्मिन् कक्षे गच्छामि तत्रैव सापि गच्छति। यदि भूमावुपविशामि तर्हि निभृतं स्थिता मां प्रतीक्षते। समुत्थाय प्रचलति मयि सापि प्रचलति।................सा छायेव मामन्वगच्छत्।'[152]

इस प्रकार कविवर की भाषा **प्राचीन शास्त्रीय-प्रभाव एवं नवीन लौकिक-व्यवहार दोनों का सुन्दर समन्वय** बनकर सहृदय साहित्यानुरागीजनों के लिए हृदयग्राह्यता को प्राप्त हुई है।

संस्कृत भाषा पर पूर्वाग्रहों से ग्रसित जड़ समाज आरोप लगाता है कि संस्कृत भाषा एक मृतभाषा है, यह अव्यावहारिक भाषा है, पुरातन पंथी भाषा है, प्रवाहहीन एवं गतिहीन भाषा है, परन्तु कविवर की कथाओं की भाषा यह प्रमाणित करती है कि संस्कृत भाषा संजीवनी शक्ति से भरपूर है, निरन्तर सर्जनधर्मा है, प्रवाहशील है, गतिमान है तथा नितान्त अधुनातन समयानुकूल है। साहित्यधर्मी लोग न केवल सतत सर्जनशील है, बल्कि भाषायी दृष्टि से निरन्तर प्रगतिशील है। नवीन संदर्भों एवं तकनीकि विकास की दृष्टि से प्रयोज्य नवीन शब्दों का निर्माण भी हो रहा है। संस्कृत की अपनी तार्किक एवं वैज्ञानिक पद्धति से नवीन शब्दों की रचना हो रही है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने भी स्वयं नवीन शब्दों का सृजन किया है एवं उसका प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं जैसे–

अयष्पथगन्त्री	–	Train रेलगाड़ी
स्थानकम्	–	Station स्टेशन
नियतगमनशीला	–	Regular Train प्रतिदिन जाने वाली
नियत्सेवकत्वम्	–	स्थायी नौकर
अर्धबाहुकम्	–	बनियान
वस्त्रनिर्माणकर्मशाला	–	कपड़ा बनाने का कारखाना
लम्बरा	–	लोई
कल्यवर्त सामग्री	–	कलेवे की सामग्री
दूरध्वनिसंदेशाः	–	Telephonic Calls
आरक्षिकार्यालय	–	S.P. Office
कोष्ठागारिकः	–	कोठारी Store Keeper
औषधपत्रम्	–	दवाइयों का सूचीपत्र Prescription
निरौषधसंक्रामक रोगः	–	लाइलाज महामारी
रक्षीस्थानम्	–	थाना Police Station
स्तनकर्कटरोगः	–	Breast Cancer
कूकूरूतम्	–	लुकाछिपी का खेल
बण्टयति	–	बांटता है
जिलाधीश	–	जिला कलक्टर आदि।

इसके अतिरिक्त विशाल शब्द भण्डार है, जो पारम्परिक शब्दकोष से इतर निर्माण किया गया है। अनेक स्थानों पर ध्वन्यात्मक अनुसरण के अनुसार शब्दों का प्रयोग किया गया हैं –

खट्खडिति, खट् खट् खट् खटाखट् खटाखट् खटाखट् खटाखट्, गुँई–गुँई आदि शब्द शब्दिक सौन्दर्य को द्विगुणित कर देते है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा साहित्य की भाषा सहृदयानुरंजन एवं मानस–परिष्करण के उत्कृष्ट साहित्यिक साध्य की प्राप्ति में साधक है। वे उचित मात्रा में, आवश्यकतानुसार सघनपदबन्धता, सामासिकता, आंलकारिकता, पदलाघव, रसानुप्रवणता आदि विलक्षणताओं को पिरोते हुए भाषा रूपी साधन से भाव साध्य को सार्थकता के सोपान तक ले जाते हैं। उनकी वर्णनात्मकता कहीं पर भी कथाओं की रोचकता को कम नही होने देती और न ही उनकी सरल एवं सहज भाषा उनके उत्कृष्ट स्तर को प्रभावित करती है।

भाषा में **समास, अलंकार, लोकोक्तियों, नवीन पद निर्माण, ध्वन्यात्मकता, वर्ण-सौन्दर्य के साथ-साथ** प्रभावोत्पादकता एवं सहजता के साथ उन्होंने स्थान–स्थान पर **भावगाम्भीर्य से संपूरित सुभाषितों को पिरोया है।** सुभाषितों ने उनकी भाषा में चार चाँद लगा दिए है। उनकी सूक्तियां हमें भारवि के नारिकेलसन्निभः वचो तद् भारवेः (मल्लिनाथ) के उपमान की स्मृति करवाती है। उनके सुभाषित दर्शनीय है –

'संसारेऽस्मिन् वैविध्यमेव व्यवस्थामूलं सर्वजनशरणञ्च।'[153]

'वन्ध्यादोषोऽपि नाम स्त्रीणा नयननिद्राहरः।'[154]

'अश्रीकं नन्दनं विना भवनम्।'[155]

'भोगास्वादपरिवर्तनं को नरः का वा नारी न समीहते।'[156]

'संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा?'[157]

'धिक्तं धर्मं यो लोकं कर्मपराङ्गमुखं कुरूते।'[158]

'वैधव्यमात्रं न भवति विधवायाः नियतिः। तन्नियतिस्तु तत्सौभाग्यम्।'[159]

'पुर्वजन्मार्जितसंस्कारानुप्रणितो भवति मानवनिसर्गः।'[160]

'भूमौ स्थित्वा हिमांशुपरिरम्भाकांक्षा न जातु करणीया।'[161]

'सर्वाणि दिनानि समञ्जसान्येव नातियान्ति।'[162]

'अस्मिन्नेहसि तु पदे पदे विषमसाहयर्चं दृश्यते।'[163]

'अनिश्चतेयं जीवनयात्रा।'[164]

जैसे सुभाषित उनकी भाषा एवं भाव को गाम्भीर्य एवं सौन्दर्य प्रदान करते हैं।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र माँ सरस्वती के वरदपुत्र है। वागेश्वरी की कृपा एवं कविवर की सतत सारस्वताराधना ने उनको अधुनातन संस्कृतसाहित्याकाश का देदीप्यमान नक्षत्र बना दिया है। शब्दभण्डार एवं अर्थप्राकट्य उनके अधीन है। वे शब्द सम्राट है। उनकी भाषा की अपनी मौलिक एवं विलक्षण विशिष्टताएं हैं, जो उन्हें साहित्यजगत में अनुपम स्थान पर प्रतिष्ठापित करती है। काव्य एवं कवि प्रतिभा के समन्वय पर, पाण्डित्य प्रदर्शन पर, संवेदना एवं भाषा के सम्बन्ध पर उनके अपने विचार उन्होनें 'अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा' में स्पष्ट एवं मुखर रूप से प्रस्तुत किए हैं–'कविप्रतिभा समवाप्य कोमकान्तपदावलीं ललितोदात्तसंवेदनाञ्च सहृदयहृदयहारिकाव्यविगृहमाधत्ते। शास्त्रार्थप्रभृतिपाण्डित्यप्रदर्शनसन्दर्भे सैव प्रतिभा वितण्डाछलजातिनिग्रहस्थानाद्युपस्कृता वेगवती प्रतीयते। किञ्च दुरारोहक्लिष्टशास्त्रमन्थनव्यापृता सैव प्रतिभा रूक्षाऽतिरूक्षा कठिनाऽतिकठिना जायते।'[165]

कवि प्रतिभा के इस मानक पर अभिराज राजेन्द्रमिश्र पूर्णरूपेण खरे उतरते हैं। उनके सहृदयहृदयहारि काव्य में कोमलकान्त संवेदनाएं विराजमान है जबकि शास्त्रार्थ एवं पाण्डित्य प्रदर्शन में वही प्रतिभा वितण्डा, छल, जाति, निग्रहादि से वेगवती है।

इस प्रकार अभिराज राजेन्द्रमिश्र का भाषायी वैशिष्ट्य एवं रीतिसंघटना सर्वथा औचित्यपूर्ण, उत्कृष्ट एवं काव्य की कसौटी पर खरी उतरती है। वे भाषा एवं भावों के अखण्ड साम्राज्य पर आधिपत्य रखते हैं। काव्य प्रतिभा के सहज संस्कार से अनुप्राणित कविराज अभिराज राजेन्द्रमिश्र रस, अलंकार, रीतिसंघटना एवं भाषायी वैशिष्ट्य की समीक्षा के निकष पर शत–प्रतिशत शुद्ध काव्यकञ्चन को धारण करते हैं।

सन्दर्भोल्लेख

1 आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 1/3

2 आचार्य भरत, नाट्य शास्त्र, अ० 6

3 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, पृष्ठ–150

4 आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, 1/11–12

5 डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृतनिबन्धशतकम्, पृष्ठ–130

6 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, पृष्ठ–228

7 तैत्तिरीयोपनिषद, 2/7

8 आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, 6/32

9 आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 3/182

10 भवभूति, उत्तररामचरितम, 3/47

11 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–50

12 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–52

13 वही, वही, पृष्ठ–55

14 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–23

15 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–50

16 वही, वही, पृष्ठ–11

17 वही, वही, पृष्ठ–36

18 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–21

19 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–40

20 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–29

21 वही, वही, पृष्ठ–30

22 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–109

23 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–59

24 वही, वही, वही

25 भवभूति, उत्तररामचरितम्, 3/4

26 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–59

27 वही, वही, पृष्ठ–20

28 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–47

29(अ) वही, राङ्गडा, पृष्ठ–73

29(ब) वही, वही, पृष्ठ–76

30 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–48

31 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–13

32 वही, वही, पृष्ठ–08

33 वही, वही, पृष्ठ–51

34 वही, वही, पृष्ठ–60

35 वही, वही, पृष्ठ–61

36 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–142

37 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–59

38 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–23

39 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–128

40 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–44

41 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–54

42 वही, वही, पृष्ठ–132

43 वही, वही, पृष्ठ–140

44 वही, वही, पृष्ठ–133–34

45 वही, वही, पृष्ठ–78

46 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–11

47 आचार्य वामन, काव्यालङ्कारसूत्र, 1/2

48 आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 10/1

49 आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, 2/1

50 आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, 8/67

51 अभिराजराजेन्द्र मिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–12

52 वही, वही, पृष्ठ–12

53 वही, वही, पृष्ठ–13

54 वही, वही, पृष्ठ–18

55 वही, वही, पृष्ठ–21

56 वही, वही, पृष्ठ–26

57 वही, वही, पृष्ठ–29

58 वही, वही, पृष्ठ–36

59 वही, वही, पृष्ठ–42

60 वही, वही, पृष्ठ–52

61 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–20

62 वही, वही, पृष्ठ–17

63 वही, वही, पृष्ठ–45

64 वही, वही, पृष्ठ–81

65 वही, वही, पृष्ठ–65

66(अ) वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–55

66(ब) वही, वही, पृष्ठ–75

66(स) वही, वही, वही

67 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–12

68 वही, वही, पृष्ठ–16

69 वही, वही, पृष्ठ–31

70 वही, वही, पृष्ठ–48

71 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–.25

72 वही, वही, पृष्ठ–26

73 वही, वही, पृष्ठ–98

74 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–57

75 वही, वही, पृष्ठ–140

76 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–28

77 वही, वही, पृष्ठ–38

78 वही, वही, पृष्ठ–44

79(अ) वही, वही, पृष्ठ–55

79(ब) वही, वही, पृष्ठ–60

80 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–07

81 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–26

82 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–75

83 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–21

84 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–34

85 वही, वही, पृष्ठ–52

86 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–23

87 वही, वही, पृष्ठ–55

88 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–71

89 वही, वही, पृष्ठ–105

90 वही, वही, पृष्ठ–135

91 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–93

92 दण्डी, काव्यादर्श, 1/80

93 वामन काव्यालङ्कारसूत्र, 1/2/7–8

94 भामह, काव्यालङ्कार, 3/1/1

95 आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 3/5

96 आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, 9/79कीवृत्ति

97 आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9/1

98 वही, वही, 9/2

99 वही, वही, 9/2–3

100 वही, वही, 9/3–4

101 वही, वही, 9/4

102 वही, वही, 9/5

103 आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ–318

104 कालिदास, रघुवंशम्,1/1

105 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–44

106 वही, वही, पृष्ठ–.61

107 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–.07

108 वही, वही, पृष्ठ–19

109 वही, वही, पृष्ठ–25

110 वही, वही, पृष्ठ–45

111 वही, वही, पृष्ठ–52

112 वही, वही, पृष्ठ–82

113 वही, वही, पृष्ठ–91

114 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–139

115 आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9/4

116 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–15

117 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–14

118 वही, वही, पृष्ठ–22

119 वही, वही, पृष्ठ–33

120 वही, वही, पृष्ठ–42

121 वही, वही, पृष्ठ–51

122 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–18

123 वही, वही, पृष्ठ–25

124 वही, वही, पृष्ठ–87

125 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–55

126 वही, वही, पृष्ठ–96

127 वही, वही, पृष्ठ–134

128 बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–132

129(अ) भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ–02

129(ब) इल्यूस्ट्रेटेड फेमिली इनसाइक्लोपीडिया, पृष्ठ–502

130 भामह :काव्यालङ्कार, 1/16

131 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–46

132 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–142

133 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–25

134 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–14

135 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–23

136 वही, वही, पृष्ठ–15

137 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–54

138 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–109

139 वही, वही, पृष्ठ–115

140 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–65

141 वही, वही, पृष्ठ–57

142 वही, वही, पृष्ठ–69

143 वही, वही, पृष्ठ–56

144 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–12

145 वही, वही, पृष्ठ–21

146 वही, वही, पृष्ठ–24

147 वही, वही, पृष्ठ–45

148 वही, वही, पृष्ठ–12

149 वही, वही, पृष्ठ–102

150 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–18

151 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–09

152 वही, राङ्गडा, पृष्ठ–18

153 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–47

154 वही, वही, पृष्ठ–54

155 वही, वही, पृष्ठ–57

156 वही, वही, पृष्ठ–122

157 वही, वही, पृष्ठ–134

158 वही, वही, पृष्ठ–135

159 वही, वही, पृष्ठ–131

160 वही, राङ्‌गडा, पृष्ठ–15

161 वही, वही, पृष्ठ–30

162 वही, वही, पृष्ठ–94

163 वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–45

164 वही, वही, पृष्ठ–22

165 वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–143

पञ्चम अध्याय

पञ्चम अध्याय

कथाओं में मिश्र जी का पाण्डित्य तथा नैसर्गिकी कवित्व-प्रतिभा

'साहित्यस्य कर्म साहित्यम्' के अनुसार कविकर्मरूप साहित्य के अन्तर्गत वाङ्मय की समस्त विधाओं का अन्तर्भाव हो जाता है। दृश्य, श्रव्य अथवा चम्पू किसी भी विधा में अपनी सृजन क्षमता को अभिव्यक्त करने वाला विलक्षण व्यक्तित्व कवि कहलाता है। यास्क कवि शब्द का **कुङ्** शब्दे कवते तथा **कमु** धातु से निर्वचन करते हुए कहते हैं– **'कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा'**[1] कवि का अर्थ है बुद्धिमान, मेधावी, प्रज्ञावान क्योंकि वह भूत भविष्य एवं वर्तमान के पदार्थों को अपनी विलक्षण प्रतिभा से एक साथ देखता है। कवि शब्द की निघण्टु में व्युत्पत्ति करते हुए यास्क कहते हैं– **'मेधावी कविः क्रान्तदर्शनों भवति।'**[2] कवि की सिद्धि 'कवृ वर्णने' धातु से होती है, जिसका अर्थ है **'कवते सर्वं जानाति, सर्वं वर्णयति सर्वं सर्वतो गच्छति वा।'**[3] कवि सब कुछ जानता है, सब कुछ वर्णन करता है। कवि का ज्ञान उसकी प्रतिभा की तरह ही उसके कवित्व का कारण है। इसी तात्पर्य को प्रकट करते हुए काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट कहते हैं

'शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।'[4]

अर्थात् कवित्व बीजरूप शक्ति, जङचेतन जगत, शास्त्रों, काव्यों तथा अन्य ग्रन्थों के अन्वेक्षण से उत्पन्न निपुणता तथा काव्यज्ञों से अभ्यास, यह तीनों मिलकर काव्य के उद्भव में कारण होते हैं।

कवि में नैसर्गिकी कवित्व प्रतिभा होती है, शास्त्रों का ज्ञान होता है तथा वह उसका अभ्यास अर्थात् निरन्तर परिष्कार के साथ काव्य सृजन का प्रयास करता है। आचार्य **वामन** भी इसी बात को इसप्रकार कहते हैं–

'लोक विद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि'[5]

कवि के विलक्षण व्यक्तित्व का विश्लेषण उसके काव्य के विश्लेषण के लिए आवश्यक है। कवि का काव्य ही उसके व्यक्तित्व विश्लेषण की, उसके कवित्व बीज–समीक्षण की, उसके शास्त्रीय एवं लौकिक ज्ञान की, काव्यसृजन में उसकी दक्षता–परीक्षण की कसौटी है। उसके कर्तृत्व में उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। उसके काव्य में उसकी क्षमताएं, उसका ज्ञान, उसका अभ्यास परिलक्षित होता है।

कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र अर्वाचीन संस्कृत साहित्य एव युग के प्रवर्तक पुरोधा साहित्यकार है। उनके समकालीन कवियों ने उन्हें आधुनिककालिदास की संज्ञा प्रदान की है। वे अपनी काव्य प्रतिभा से, ज्ञान की असीमता से, निरन्तर काव्य सृजन सरिता में निमज्जन से इस युग के समक्ष स्वतः सिद्ध है। उनका विशाल साहित्य इसका प्रमाण है। चूँकि यहां कविवर के कथा साहित्य की समीक्षा का प्रसंग है। अतः उनके कथा साहित्य के सन्दर्भों में उनकी विविध शास्त्रमयी प्रज्ञा का अवलोकन करने का यह मेरा छोटा सा प्रयास है। उनके शास्त्रीय व्यक्तित्व रुपी वटवृक्ष की विविध ज्ञानमयी शाखाओं का विवेचन निम्न प्रकार है :–

1) कथाओं में शास्त्रीय-ज्ञान

'प्रबन्धकल्पनाकथा' अर्थात् कल्पनाशील प्रबन्ध का नाम कथा है। कथाओं में यथार्थपरक ज्ञान के लिए अवसर अपेक्षाकृत कम होते हैं, परन्तु फिर भी प्रसंगानुसार सहज रूप से कवि के शास्त्रीयालोचन के दर्शन उनकी कथाओं में होते हैं।

भग्नपञ्जर की नायिका वन्दना अपने वैधव्य के दुर्भाग्य, समाज से अलगाव एवं पिता के दुर्व्यवहार से अभिशप्त है, निराश है, उदास है, किंकर्तव्यविमूढ़ है। इस संसार के प्रत्येक दिग्भ्रमित प्राणी के लिए सर्वशास्त्रमयी **भगवद्गीता** सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शन है। निराश वन्दना को आशा का मार्ग दिखाते हुए वन्दना की माँ कहती है–'नात्मानमवसादयेदिति'[6]

कविवर की कथा कुक्की मानवीय संवदेनाओं एवं आदर्शों से पूर्ण आदिकाव्य **रामायण** एवं आदिकवि **वाल्मीकि** का पुनः–पुनः स्मरण करवाती है। कविवर की नायिका मार्जारी कुक्की परित्यक्ता सीता की स्मृति करवाती है। कविवर स्वयं को वाल्मीकि एवं मार्जारी शिशुओं को लव–कुश कहते हैं। उनकी उपमा रामायण में निहित वाल्मीकि के ज्ञान

की गहनता, शरणागत वत्सलता, उनकी शास्त्रप्रणयन प्रतिभा सबको हठात् स्मृति पथ में लाती है। वे कहते हैं–'कतिपय दिवसानन्तरमेव प्राचेतसस्य मे लव–कुशौ क्रीड़ितुमारेभे। निर्वासिता वैदेहीव कुक्की...........वाल्मीकिसदृशाय मह्यं किं किं गूढ़ातिगूढ़व्यथावृत्तं निवेदितवतीति कृतेऽपि यावच्छक्यप्रयत्ने नाहं ज्ञातवान्।'[7]

कविवर की कुक्की का उनके पीछे–पीछे छाया की तरह अनुसरण करना काव्यशिरोमणि **कालिदास** के **रघुवंश** की नन्दिनी एवं राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा को बलात् अक्षिगोचर कर देता है। बरबस हमें उपमा कालिदासस्य को सार्थक करती शास्त्रीय उपमा का स्मरण हो उठता है–

'तस्या खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।।'[8]

कुक्की की व्यथा, परित्याग से उत्पन्न संताप, बिलाव के पुनः लौटने से संवेदनशील कथाकार को **शकुन्तला** की व्यथा एवं **दुष्यन्त** की वञ्चना की अनुभूति होती है, जिसे अभिव्यक्त करते हुए कवि कहते है–हन्तः सोऽयं विस्मरणदारूणचित्रवृत्तिर्दुष्यन्तः कुक्क्याः ?'[9]

चञ्चा कथा में वेश्यावृत्ति का प्रसंग उठने पर कवि गणिका को दिव्योद्भवा बताते हुए कहते हैं–'भारते यथा दिव्योद्भवा भाषा, दिव्योद्भवं नाट्यं, दिव्योद्भवो नृपतिश्श्रूयते सर्वथा तथैव वेश्यावृत्तिरपि दिव्योद्भवा।'[10] गणिकाओं को श्रेष्ठ ब्राह्मणों की तरह अभिमानी बताते हुए जो उद्धरण उन्होंने प्रस्तुत किए, वे उनके शास्त्रीय ज्ञान को प्रमाणित करते हैं–'प्रवराभिमानिनो ब्राह्मणो इव गणिका अपि प्रवराभिमानिन्यो यतो ह्यासामेव सद्वंशे जाता मित्रावरूणधैर्यध्वंसिन्युर्वशी, विष्वामित्रामित्रभूता मेनका, प्रमतिमतिहन्त्री घृताची, सुन्दोपसुन्दधर्षयित्री तिलोत्तमा च।'[11] यहां एक साथ इतिहास में बिखरे सारे उदाहरणों को प्रस्तुत किया है, जिसमें इन्द्र के स्वर्ग की उन अप्सराओं का उल्लेख है, जिन्होंने सत्ताभंग से भयभीत इन्द्र के कहने पर संभावित ऋषियों की साधना को भंग किया था। उर्वशी, मेनका, घृताची, तिलोत्तमा, मित्रावरूण, विश्वामित्र, प्रमति, सुन्दोप सभी लौकिक एवं वैदिक साहित्य में बिखरे **पौराणिक-पात्र** है। ये उदाहरण कवि के पौराणिक एवं शास्त्रीय ज्ञान के प्रत्यक्ष रूप है।

चञ्चा की मुन्नी बाई को जामाता मिल जाता है, तब कथा का अन्त हो जाना चाहिए, परन्तु निरंजन रूपी चञ्चा को उसके पापों का दण्ड देना अभी शेष है। जैसे

रामायण में सुन्दरकाण्ड सीतान्वेषण का प्रक्रम है और वह लक्ष्य हनुमान पूर्ण कर लेते है। वो उसको लेकर भी राम के पास आ सकते थे, परन्तु रावण को दण्डित कर समाज में यह संदेश भी देना था कि बुरे कार्य का बुरा परिणाम होता है। यहां भी मुन्नी बाई के जीवन को नर्क बना देने वाले निरंजन को दण्डित करने के लिए ही युद्धकाण्ड अनिवार्य है। इस तथ्य को कितने तार्किक रूप से कवि कहते है–'सीतान्वेषणपरं सुन्दरकाण्डं जीवनरामायणस्य परिसमाप्तमेव परन्तु युद्धकाण्डमिदानीमप्यवशिष्टमासीत्।'[12]

महानगरी में यात्रा करते परिवार के स्वरूप को साक्षात्कार का विषय बनाती हुई कवि की उपमा सहसा **आयुर्वेद, काव्यशास्त्र एवं सांख्यदर्शन** की प्रतीति कराती है। कितना चमत्कारिक वर्णन है– 'पत्नी त्रिदोषसन्निभान् उत्पातपरायणान् दुष्टदारकान् सान्त्वयितुं विहितप्रयासां दर्शं दर्शमपि, गौर्वाहीकोऽसौ न तस्याः साहाय्यं विदधेः। सांख्यपुरुष इवात्मानं विनिर्मुक्तमनुभवन् आत्मारामतया स्थित, आसीत्।'[13] शरीरज, उत्पातकारी एवं दुष्ट आचरण से युक्त पुत्रों की त्रिदोषों के साथ उपमा की सार्थकता देखते ही बनती है। जिस प्रकार शरीर में उत्पन्न वात, पित्त एवं कफ रूपी दोष अथवा उनका असंतुलन शरीर की सारी व्यवस्थाओं को अस्त–व्यस्त कर देता है, उसी प्रकार शरीर से उत्पन्न (संतान) उदण्डता करने वाले पुत्रों को पुनः पुनः शान्त करने का प्रयत्न पत्नी कर रही है, परन्तु पति उसको देखकर भी निर्विकार रहता है। पति की परिकल्पना **गौर्वाहीकः** उसकी अतिशय मुर्खता को घोषित करने वाली गौणी लक्षण–लक्षणा कवि के काव्य शास्त्रीय ज्ञान को दर्शाती है। **'सांख्यपुरुषमिवात्मानं विनिर्मुक्त'** को उसके पति की इस प्रसंग में निरासक्ति को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया है जो उनके सांख्यदर्शन के गहन बोध के प्रकट करता है। सांख्य पुरुष का वर्णन यहां उल्लेखनीय है–

'तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।

कैवल्यं माध्यस्थं दृष्टत्वमकर्तृभावश्च।।'[14]

सांख्यपुरुष का साक्षित्व, कैवल्य, तटस्थता, दृष्टत्व और अकर्तृत्व यहां गौर्वाहीक पुरुष पर कटाक्ष के रूप में प्रयुक्त किया है। विलक्षण वक्रोक्ति है यहां। कवि की आयुर्वेद, काव्यशास्त्र एवं सांख्यदर्शन की ज्ञानत्रिवेणी का साक्षात्कार हमें यहां होता है।

पोतविहगौ में महुली की माँ, जिसने रंगून में रह रहे भारतीय प्रवासी, उसके पिता से विवाह किया था और उनकी मृत्यु के पश्चात् पुत्री को छोड़कर किसी और से शादी कर

ली। उसकी तुलना मेनका से करने में मेनका के अपरिपक्व प्रेम एवं संतान से विमोह की प्रतीति में कवि की शास्त्रीय परिपक्व मति का परिचय प्राप्त होता है। पुत्री को छोड़कर पुनर्विवाह के लिए चली जाने पर उसकी माँ के विषय में कहते है– 'अपरिपक्वानुरागबन्धा मेनकायमाना निःस्नेहा तज्जन्मदात्र्यपि वरयामास कमप्यपरं स्वदेशोत्पन्नं जनम्।'[15]

वर्णाश्रम व्यवस्था के धर्म के अनुसार ब्राह्मण समाज का गुरू है, मार्गदर्शक है तथा क्षत्रिय समाज का रक्षक। क्षत्रिय के पास बल है, ब्राह्मण के पास बुद्धि एवं विवेक। बल को बुद्धि व विवेक ही सदुपयोग में ला सकता है, अन्यथा बल विनाशात्मक मार्ग पर जाकर विध्वंस के रूप में परिणमित हो सकता है। इसीलिए प्राचीनतम भारतीय परम्पराओं में राजगुरू का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राजगुरू राजा के नीति निर्देशक एवं मंत्री मंत्रणाकार अथवा सलाहकार हुआ करते थे। मंत्री राजा के सच्चे सखा होते हैं, शुभचिन्तक होते हैं, हितैषी होते हैं। इसी तथ्य को भारवि ने किरातार्जुनीयम् में कहा है–

'स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभु।'

सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।।'[16]

मंत्री, अमात्य अथवा सलाहकार का महत्त्व राजा के जीवन में क्या भूमिका निभाता है, कवि जानते है। भारतीय इतिहास में समर्पित, निष्ठावान, आदर्श अमात्यों की श्रृंखला प्रस्तुत करते हुए, उनके साथ धर्मवंश के राजगुरू एवं बालीनरेश के महामात्य की तुलना करते हैं–'वेदशास्त्रपुराणमर्मज्ञो राजनयपटुरसौ भारतवर्षे **सुमन्त्रो दशरथमिव, विदुरो युधिष्ठिरमिव, यौगन्धरायणो वत्सराजमिव, हरिषेणश्चन्द्रगुप्तमिव विद्यारण्यो माधवो हरिहरबुक्काविव** बालीनरेशमुदयनदेवं स्वप्रतिभया राजनयेन च सम्यग् रक्षितवान्।'[17]

यह उदाहरण कवि के शास्त्रीय, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं राजनीति के ज्ञान का परिचायक है।

भारतीय दर्शन व धर्म की वैश्विक अवधारणा एवं **मनुस्मृति** में प्रतिपादित भारतीय संस्कारों व आचारों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं– 'वसुधैव कुटुम्बकम् इति भारतराष्ट्रमेव समग्रविश्वमध्यापयत् कृण्वन्तो विश्वमार्यमिति संकल्पनाऽपि भारतवर्षस्यैव। स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानना इत्येवं समुद्घोष्य भगवान् मनुरेव समस्तमपि संसारमामन्त्रितवान् भारतमागन्तुं स्वचरित्रं शिक्षितुञ्च।'[18]

नर्तकी कथा में प्रसंगवश अपने **संगीत** के ज्ञान को भी प्रकट करते हुए गीत में लय, ताल, कण्ठ की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। वे स्वयं कवितायें अथवा गीत लिखते हैं, लयविधि निश्चित करते हैं तथा उनका गायन करते हैं।

'शम्बरमायः प्रद्युम्न इव'[19], 'शम्बरनिगृहीतं प्रद्युम्नं रतिरिव'[20] आदि उपमाएं शास्त्रीय प्रसंगों के द्वारा विषयवस्तु को हृदयगंम करने में सहायता करने के साथ ही कवि के प्राचीन साहित्य एवं इतिहास में रूचि को प्रकट करती है।

ध्रुवस्वामिनी की नायिका रेवती के अपने निर्वीर्य पति को छोड़कर देवर से संबंध स्थापित करेन पर, उसके सास–ससुर उसे ऐतिहासिक पात्र **ध्रुवस्वामिनी** का उदाहरण देकर सचेत करते हैं–'आत्मानमपरां ध्रुवस्वामिनीं मा विधेहि।'[21]

दुश्चरित्र महेश्वर के सच्चरित्रवान् सामाजिक चरित्र का दिखावा करने पर, धर्मराज **युधिष्ठिर** का पर्याय होने का कटाक्ष करते हुए कहते है–'अयमेव नृशंसकर्मा महेश्वरो धर्मराजपर्यायो भविष्यति समाजे।'[22]

कवि की **पुनर्नवा** कथा अपने आप में पूरा **शास्त्रीय-निदर्शन** है। यह सामाजिक परम्पराओं पर, शास्त्रों की भ्रामक व्याख्याओं पर, कुरीतियों पर, अमानवीय व्यवहारों पर, अन्धानुकरणों पर प्रबल प्रहार है। ऋषि–मुनियों एवं समाजसुधारकों के ज्ञानभण्डार स्वरूप शास्त्र, समाज को दिग्दर्शित करने के लिए है, न कि दिग्भ्रमित करने के लिए।

किसी भी कारण से एकाकी हुई, विधवा स्त्री अथवा बलात्कार पीड़ित स्त्री को पुनः अपना जीवन शुरू करने का मानवीय अधिकार है। विडम्बना यह है कि जो शास्त्र उसे नवजीवन देने के प्रबल पक्षधर है, उन्हीं शास्त्रों को हथियार बनाकर नारी जीवन को नरक बनाने का अधम कार्य किया गया है। कवि ने उन्हीं शास्त्रीय प्रमाणों के साथ पुनर्विवाह अथवा विधवा विवाह को तार्किक सिद्ध किया है।

महर्षि यास्ककृत देवर शब्द का निर्वचन 'देवर इति कस्मात् ? देवरः द्वितीयो वरो भवतीति।' यह प्रमाणित करता है कि द्वितीय वर अस्तित्व में था। **विभीषण** का **मन्दोदरी** के साथ विवाह एवं **तारा का सुग्रीव** के साथ विवाह रामायण में प्रमाणित है। सभी स्मृतियां तथा सभी महर्षि विधवा विवाह का समर्थन करते है। ब्रह्मर्षि **वशिष्ठ** के कथन को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं–

'न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।

पुष्पमासमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।'[23]

समाज में जो भी जीवन के समरस्थल में विकल है, उसका मार्गदर्शन कृष्ण समकक्ष ज्ञानयोगियों के द्वारा किया जाना चाहिए। कवि सम्पूर्ण समाज को उपदेश देते हैं कि तिरोहित अर्थात् अर्थहीन हो चुके धर्मशास्त्रों का प्रकाशन अर्थात् स्पष्टीकरण होना चाहिए–'तिरोहितमिदं धर्मशास्त्रं प्रकाशयतु भवान्, प्रतिष्ठापयतु भवान् स्वव्यवहारेण।.................. ..अज्ञानग्रस्तोऽयं भारतीय समाजो भविष्यति भवदधमर्णः। कियत्य एव दुःखदैन्यव्यथासागरनिमग्नाः कृष्णाः समुद्धृता भविष्यन्तिः।'[24]

श्रीमदभगवद्गीता को उद्धृत करके वे कहते है कि श्रेष्ठ लोग जो आचरण करते है, समाज उसका अनुसरण करता है–

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।।'[25]

अज्ञानी लोग अन्धानुकरण करते है, ज्ञानी तो स्वयं मार्ग का निर्माण करते है–'केसरिणः कवयः सत्पुरुषाश्च न प्रवर्तन्तेऽभ्यस्तवर्त्मना।'[26]

अनारव्याता बाणभट्टाऽत्मकथा में वेदनिन्दक **बौद्धधर्म का खण्डन व वैदिक धर्म व दर्शन का मण्डन** करने में कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र का सम्पूर्ण शास्त्रीयज्ञान अवतरित हो उठा है। संसार की रक्षा के लिए, संसार को छोड़ना, पलायन करना, अकर्मण्यता, पराश्रितता, नास्तिकता की वे घोर निन्दा करते हैं–'संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा ? समरं विहाय समरविजयः ? दायित्वं विहाय दायित्वपूर्तिः?'[27]

वेदों की निन्दा करके जिन चार आर्यसत्यों की बौद्ध स्थापना करते हैं, वे वेदोपनिषदों में पहले से ही विद्यमान हैं। इस प्रतिपादन में कवि का **वेद, उपनिषद्, पुराण, काव्य, दर्शन** आदि का गहन चिन्तन–मनन परिलक्षित होता है–'आर्यसत्यानि चत्वारि ? ....किमेतानि पूर्वं नोपदिष्टानि वेदेषु, पुराणेषु, काव्येषु वा? तापत्रयनिवारणं किं न प्रतिज्ञायते सांख्यदर्शनेन ? अज्ञाननिवृत्तिः किं नोपदिश्यते अद्वैतवेदान्तदर्शननेन दुःखमुक्त्युपायाः किं नोपवर्णितास्तपस्विभिः प्राक्तनैः?'[28]

कवि घोषणा करते है कि वेदों ने ही विश्ववारा संस्कृति का निर्माण किया है। परमेश्वर ही सृष्टि के निर्माण, पालन एवं प्रलय में क्रमशः सत्व, रजस् एवं तमोगुण युक्त है। यह संसार उसी से निकलता है, उसी में लीन होता है–'विद्वेक्षि तं शाश्वतं सनातनं

वेदधर्मं यो विनिर्ममे विश्ववारासंस्कृतिम्। विद्वेक्षि तं जगदीश्वरं यः प्रजानां जन्मनि रजोजुट् परिपालने सत्त्ववृत्तिः प्रलये च तमः स्पृक् परिलक्ष्यते। विद्वेक्षि तं परमेश्वरं यतोऽयं निसर्गः यस्मिन्नयं निसर्गः यदवध्ययं निसर्गः?'[29]

भाग्य की प्रबलता को शास्त्रीय दृष्टान्तों से प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं– 'सर्वगुणसम्पन्नोऽपि **नैषधो** नलः किं विपद्ग्रस्तो नाऽभूत्? मर्यादापुरुषोत्तमोऽपि **दाशरथिः** किं कान्तारवासव्यथां प्रियापहरणाजन्यावमानं न सोढ़वान् ? अयुतसंख्यसिन्धुरबलोऽपि **मध्यमपाण्डवः** किं मत्स्येश्वरमहानसे भोजनं न पपाच?'[30]

पौराणिक आख्यानों के ये प्रतिमान अभिराज राजेन्द्रमिश्र के विशालवाङ्मयालोचन के बिम्ब हैं।

कान्यकुब्ज से लौटकर आने पर उदास बाणभट्ट के मित्र जब मनोविनोद का प्रयत्न करते हैं तो कवि कहते हैं–'सन्त्यनेकेऽभ्युपाया आत्मविनोदस्य।......................शास्त्रभ्यासो नाम निश्चप्रचमौदासीन्यवर्धक एव। परन्तु नाट्यं नाम त्रिवर्गसाधनभूतं सद्यपरनिवृत्तिकरञ्च।'[31] काव्यशास्त्र के मर्मज्ञो का भी यही कहना है– 'काव्येषु नाटकं रम्यम्।'

आचार्य भरत कहते हैं–

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।'[32]

बाणभट्ट के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कर्तृत्त्व की झलक तो इसी अनाख्याता आत्मकथा में अभिव्यक्त होती है, साथ ही उनके जीवन के, वे अनाख्यात पक्ष भी उजागर होते हैं, जो कवि ने स्वप्निल कल्पना में साकार किए हैं।

बाणभट्ट कलासक्त है, त्रयी निष्णात् है, शास्त्रज्ञ है, तन्त्र–मन्त्र ज्ञाता है, परन्तु काव्य उन्हें विशिष्ट प्रिय है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र काव्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं– 'काव्यं लोकोत्तराख्यानं रसगर्भं स्वभावजम्।'[33] नाट्य में बाणभट्ट की रुचि है। कुलक्रमागत पाण्डित्याभिमान की रक्षा के लिए उन्होंने शास्त्रों का परिशीलन, पिता की प्रेरणा से किया है, परन्तु उनके पिता का पक्षपात काव्य में ही है।

काव्य के संदर्भ में काव्य शास्त्रीय विवेचन, जो कवि ने बाणभट्ट के पिता के मुख से करवाया है, वह अद्भुत, अनिर्वचनीय तथा अनुपम है। कविता कामिनी के विलक्षण स्वरूप को वर्णित करते हुए वे कहते हैं– 'या निम्नगा समतलभूमिभागे शान्तं स्थिरं निर्विघ्नं प्रवहति सैव हसितनखे प्रदेशे दुर्वारतीव्रगत्या पुरस्सरति। किन्तु समवाप्य पर्वतशिलान्तभूमिं गर्ते

प्रपतन्ती सैव भैरवाकृतिर्जायते तथैव कविप्रतिभा समवाप्य कोमलकान्तपदावलिं ललितोदात्तसंवेदनान्ञ्च सहृदयहृदयहारिकाव्यविग्रहमाधत्ते। शास्त्रार्थप्रभृतिपाण्डित्यसन्दर्भे सैव प्रतिभा वितण्डाछलजातिनिग्रहस्थानाद्युपस्कृता वेगवती प्रतीयते। किञ्च, दुरारोहक्लिष्टशास्त्रमन्थनव्यापृता सैव प्रतिभा रूक्षातिरुक्षा कठिनाऽतिकठिना जायते।'[34]

पयः सरिता के साथ इस काव्य सरिता का सादृश्य, औपम्य एवं सौन्दर्य कितना सटीक, मनोहारि एवं हृदयावर्जक है? कविताकामिनी के रुपों की इससे यथार्थपरक एवं सुव्यवस्थित व्याख्या नहीं हो सकती।

कहा जा सकता है कि कविवर की प्रज्ञा सर्वशास्त्रमयी है, उसका विस्तार असीम है, उसको सीमाओं में बांधना दुष्कर है। उनका विशाल ज्ञान भण्डार कल्पनापरक कथाओं में भी अनायास स्थान पा जाता है। ये कुछ झलकियां मात्र है, उनके शास्त्रीय (शास्त्रों के) ज्ञान की क्योंकि उनका शास्त्रीय ज्ञान अतुल्य है, अवर्णनीय है।

2) कथाओं में दार्शनिक-ज्ञान

प्रत्येक समाज की संसार, आत्मा–परमात्मा, सुख–दुःख, जीवन–मृत्यु आदि को लेकर एक निश्चित विचारधारा अथवा दृष्टि होती है। इन्हीं धारणाओं अथवा दृष्टिकोण को उस समाज का दर्शन कहा जाता है। सामाजिक दृष्टिकोण ही दर्शन है। जिस दृष्टिकोण से इस संसार के समस्त पदार्थों का याथातथ्य निरीक्षण, परीक्षण तथा समीक्षण किया जाये, वह दर्शन है। इस प्रकार सम्पूर्ण आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक विवेचन, दर्शन की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह संसार क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? मृत्यु के बाद एवं जन्म के पूर्व का सत्य क्या है? मानव जीवन का लक्ष्य क्या है? परम सत्य क्या है? उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है? मोक्ष क्या है? दुःख क्यों है? दुःख मुक्ति का स्थायी उपाय क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है? सृष्टि एवं जीवन का कर्ता कौन है? जीवन का कर्तव्य क्या है? जीवन का पाथेय क्या है? इन सभी जिज्ञासाओं का तात्त्विक चिन्तन एवं समाधान ही दर्शन है। जैसा की कहा गया है–

'केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति, चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।'[35]

'प्रेक्षणार्थक दृश धातु से ल्युट् प्रत्यय भाव अथवा करण अथवा अधिकरण अर्थ में लगकर दर्शन शब्द निष्पन्न होता है।'[36] दर्शन शब्द अपने व्यापक अर्थ में देखना, वह साधन

जिससे किसी विषय अथवा वस्तु को देखा जाए अथवा वह आधारभूत वस्तु जिसमें किसी को देखा जाए आदि अर्थों को प्रतिपादित करता है। अतः जीव व जगत को देखने के दृष्टिकोण को दर्शन एवं इस दृष्टिकोण को सप्रमाण प्रतिपादित करने वाले ग्रंथों को दार्शनिक ग्रंथ कहा जाता है।

समकालीन समाज के एक समृद्ध कवि के रुप में अभिराज राजेन्द्रमिश्र भारतीय दर्शनशास्त्र में पारंगत है। चूंकि कथाओं का मूल मन्तव्य कल्पनामिश्रित रोचकता एवं चमत्कार के साथ हृदयपट खोलकर, उसमें करणीय कार्यों के संदेश को सहज रुप से अधिगम करवा देना होता है। अतः सीधे–सीधे दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन प्रविष्ट होना थोड़ा मुश्किल है, परन्तु फिर भी कथाओं के ताने–बाने में यथाअवसर उनके दर्शनज्ञान की झलक मिलती है। 'अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा' में प्रत्यक्ष रुप से बौद्ध दर्शन (नास्तिक दर्शन) का खण्डन करके वेदों (आस्तिक दर्शन) की सार्थकता एवं महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। वहां कवि का दार्शनिक ज्ञान प्रबलता के साथ दृष्टिगोचर होता है।
दार्शनिक ज्ञान के संदर्भ में कवि के जीवनदर्शन को भी सम्मिलित किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। उनके जीवन दर्शन से तात्पर्य है, जीवन के प्रति कवि का अपना दर्शन क्या है? उनके जीवन मूल्य अथवा नैतिकता के सिद्धान्त क्या हैं? उसका विवेचन दार्शनिक ज्ञान में अन्तर्निहित करने का प्रयास किया है क्योंकि तर्क, बुद्धि, अधिगम, समझ को ही दर्शन के विविध प्रकारों के रुप में स्वीकार किया जाना चाहिए। आगस्ट विलियम हेमर एवं जुलियस चार्ल्स हेमर ने दर्शन को परिभाषित करते हुए कहा है–

'Philosphy is love of wisdom, religion is wisdom of love'

कहा जा सकता है कि जीवन के विविध पहलुओं पर हमारा जो दृष्टिकोण है, वही स्थापित होने पर दर्शन कहलाता है। अतः मैंने दार्शनिक ज्ञान के प्रकोष्ठ में भारतीय दर्शनों में स्थापित आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों के अतिरिक्त कवि के जीवन दर्शन को भी विवेचित किया है।

जीवन की **नश्वरता** अथवा **क्षणभंगुरता** को संकेतित करते हुए कवि कहते हैं कि यह जीवन यात्रा अनिश्चित है। लोग साथ चलते हैं, बिछड़ जाते हैं, परन्तु फिर भी जीवन अनवरत चलता रहता है– 'अनिश्चितेयं जीवनयात्रा। कतिपये जना युगपत प्रतिष्ठन्ते। परन्तु मध्येमार्गं कस्य श्वासतन्तुः कुत्र त्रुटिष्यतीति को वेत्ति? तथापि सहयायिमोहात् यात्रा न खलीक्रियते साधकेन। यावत्पथान्तं तु चलितव्यमेव।'[38]

भारतीय दर्शन में **पुनर्जन्म, संस्कार एवं पाप-पुण्यों की परिकल्पना** प्रमुखता से वर्णित है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी दर्शन पुनर्जन्म के लिए कर्म फल को, आसक्ति को व माया को आधार मानते हैं। कर्म, कर्मफल में आसक्ति एवं फल की प्राप्ति के क्रम को परिवर्तित कर निष्काम कर्म को ही भारतीय दार्शनिक परम्परा में मोक्ष का मार्ग बताया गया है। इक्षुगन्धा कथा में बिट्टी एवं उसके पति की बेमेल जोड़ी की विडम्बना पर चर्चा करते हुए नायक कहता है कि सृष्टि में ऐसी विपर्ययावस्था दिखाई देती है। वस्तुतः यह सब कर्मों का फल है, जो हमें सुख या दुःख के रुप में मिलता है– 'इदृशैरेव विपर्ययैः सृष्टिः प्रवर्तते। सर्वेऽपि प्राणिनः पूर्वजन्मार्जितान्येव पापपुण्यानि भुञ्जन्ति। सुखस्य दुःखस्य वा न कोऽपि दातेति मयाऽधीतं।'[39]

ब्रह्म अर्थात् **परम सत्य पर, मिथ्या जगत का आवरण** है और वह आवरण ब्रह्म की अनुभूति में बाधक है। जब ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान का नाश होता है, तो सत्य हमारे समक्ष शाश्वत स्वरुप में भासित हो उठता है। इसी तथ्य को उद्घाटित करते हुए कहा है– 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकाः नेमाः विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वे तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।'[40] ज्ञान के प्रकाश में ब्रह्म स्वयं भासित होता है।

सिंहसारिः की नायिका की सपत्नी रूपी विपत्ति के आने पर कहते हैं– 'अकस्मादेव दिदिशाजीवनाकाशे भीष्मभीष्मं समुहद् वात्याचक्रं समुत्थितम्, सर्वमपि येन विसंवादि जातम्। उन्मूलिता आशा प्ररोहाः धूलिधूसरितानि स्वप्नकुसुमानि संचूर्णिता सौभाग्यत्रियामाव्रततिः विरुपिताश्च मनोरथालवालाः।'[41] यवद्वीप की बदलती हुई **परिस्थिति की परिवर्तनशीलता** को कवि इन शब्दों में वर्णित करते हैं– 'परन्तु सर्वाणि दिनानि समञ्जसान्येव नातियान्ति। शान्तेऽपि उपवने वात्येव वात्या। शान्तेऽपि जलधौ समुत्तिष्ठत्येव जलोत्प्लवः। शान्तेऽपि भूतले समुज्जृम्भत एव भूकम्पः।'[42]

सुख एवं दुःख जीवन रुपी सिक्के दो पहलू हैं। जीवन चक्र निरन्तर गतिशील है। मनुष्य की अवस्था प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। समय का रथ सतत अग्रसर हो रहा है। जीवन की इसी परिवर्तनशीलता, गतिशीलता एवं प्रतिकूलता को दर्शाते हुए कुक्की कथा में कहते हैं– 'समययानं क्रमेण पुरस्ससार। तच्चक्रेऽपि पर्यायैरुच्चैर्नीचैश्च गच्छती तस्मै गतिं ददतुः। परन्तु सर्वोऽपि कालोऽनुकूलो न व्यत्येति। कदाचिदायाति वासन्तीनिशा रसालमंजरी मधुपरिमलभारभंगुरा कदाचिच्चोत्तिष्ठति न्यग्रोधप्लक्षपर्कट्युन्मूलनक्षमाधूलिघनबिम्बप्रोद्धुरा

भीमवात्या।'[43] पुनर्नवा में वे कहते हैं—'अलमसहाय इव विवश इव, हतभाग्य इवात्मानं विनिन्द्य, नैराश्य सागरे वा निपात्य।'[44]

भारतीय जीवन दर्शन में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रुपी पुरुषार्थ चतुष्ट्य को प्राप्त करने हेतु जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम में कर्मों के आधार पर विभाजित किया है। इसकी **वर्णव्यवस्था** का आधार कर्म है न कि जाति। इसी का समर्थन करते हुए वे कहते हैं 'नाहं नास्तिको न वा परम्परा विरोधी। परन्तु परम्पराया अन्धानुकरणमपि न मह्यं मनागपि रोचते। गुणकर्मार्जितवैशिष्ट्य एव मम दृढ़ो विश्वासो न पुनर्जातिमात्रायत्ते वृथाऽभिजात्याभिधाने।'[45]

सौभाग्य एवं दुर्भाग्य के लिए, पुनर्जन्म एवं मोक्ष के लिए, भारतीय दार्शनिक परम्परा में **कर्म को ही मुख्य सूत्रधार** स्वीकार किया गया है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं में अनेकशः इस कर्म प्रधानता का समर्थन किया गया है। पुनर्नवा में वे कहते हैं—'.... कर्मविपाकरहस्यं को नु जानाति? परन्तु निश्चितमिदं यत्प्रत्येकं घटनायाः सूत्रं तेनैव नियन्त्रितम्। इदमपि सुनिश्चितं यन्न किमपि निष्प्रयोजनं घटते। केन दुःखेन किं सुखं समुत्पद्यते कस्य वा दुःखेन कस्याऽन्यस्य सुखं विधीयते इति परमेश्वरः प्रागेव जानाति। घटिते सति लोकोऽपि जानीते। विचित्रं विस्मायावहञ्च नियतिजनितं घटनाचक्रम्।'[46]

'अनाख्याता— बाणभट्टाऽत्मकथा'' में कवि ने स्पष्ट रुप से **वेदत्रयी एवं ब्राह्मण धर्म के प्रति दृढ़ आस्था** प्रकट की है। वहां वे वेदनिंदक एवं पलायन का रास्ता बताने वाले बौद्ध धर्म का तार्किकता के साथ खंडन करते हैं तथा वेद, उपनिषद व ब्राह्मण ग्रंथों में निहित कर्म विज्ञान के दृष्टिकोण को प्रतिपादित करते हैं। **संसार में सारे दर्शनों की उत्पत्ति का मूल उद्देश्य आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक दुःखों से निवारण एवं मोक्ष प्राप्ति है। अद्वैत के प्रतिपादक शंकराचार्य यह स्वीकार नहीं करते कि कर्म से मुक्ति हो सकती है। वस्तुतः कर्म का आधार अनात्मा में आत्मा और आत्मा में अनात्मा का अभ्यास है, यही मोक्ष का बाधक एवं बंधन का कारक है।** भारतीय दर्शनों में जीवन को दुःखात्मक नहीं, बल्कि आसक्ति को दुःखात्मक माना है। यदि आसक्ति रहित कर्म किया जाए तो आनन्द हीं आनन्द है। भोगों की क्षणभंगुरता, विषयों की दुःखात्मकता एवं भौतिक जीवन की नश्वरता प्रतिपादित करके भारतीय दर्शन, मोह के बंधन से मुक्त कर परमानंद का मार्ग प्रदर्शित करता है। स्थायी सुख का रास्ता बताने वाला

भारतीय दर्शन निराशावादी अथवा पलायनवादी कैसे हो सकता है? भारतीय दर्शन में कर्म ही बंधन एवं कर्म ही मुक्ति का माध्यम है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है–

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
म कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।'[47]

उपनिषदों में भी कहा गया है कि विज्ञान के द्वारा सत्य का साक्षात्कार होने पर कर्मबंधन क्षीण हो जाते है। यहां **ज्ञान को ही मुक्ति का उपाय** बताया गया है–

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।'[48]

अपि च–

'प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।'[49]

वेदों में कर्मवाद के विषय में मतभेद होने पर भी दृष्टान्तों से यह प्रमाणित है कि **वेदों में कर्म की महत्ता** प्रतिपादित है। देवताओं के विशेषण 'शुभस्पतिः, पिपस्पतिः, विश्वचर्षणिः' सिद्ध करते हैं कि कर्मो का वेदों में भी महत्त्व प्रतिपादित हैं। ऋग्वेद में शुभाशुभ कर्मो के परिणामों का संकेत दिया गया है–

'न स स्वो दक्षो वरूण द्युतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता।।'[50]

वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, आदि पौराणिक दार्शनिक ग्रन्थों में शुभकर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है, परन्तु संसार से पलायन का समर्थन कहीं भी नही किया गया है। वैदिक कर्मकाण्ड एवं दर्शन की गहराई तथा उसकी वैज्ञानिकता को परखे बिना, जो सांसारिक पलायन का रास्ता बुद्ध ने दिखाया उसका कविवर दृढ़ता से विरोध करते है– 'संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा? समरं विहाय समरविजयः? दायित्वं विहाय दायित्वपूर्तिः?'[51]

वन मे रहकर जिन चार आर्यसत्यों की खोज का दावा बुद्ध कर रहे हैं, उन चार आर्यसत्यों का प्रतिपादन वेद–पुराणों में किया जा चुका है। सांख्यदर्शन में तापत्रयनिवारण, वेदान्त में अज्ञाननिवृत्ति एवं दुःखमुक्ति के उपाय पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित हैं। उपनिषदों में उद्घोष किया गया है–

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा'।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।'[52]

कवि वेदों में आस्था रखने वाले आस्तिक है तथा कर्म का पुरजोर समर्थन करते है। वे कहते हैं– 'धिक्तं धर्मं, धिग्धिक्तं सम्प्रदायं यस्समाजं क्लीबं विदधाति यो लोकं कर्मपराङ्मुखं कुरूते................. कर्मकमयीयं सृष्टिः।.........सूर्यस्तपति प्रतिक्षणं, चन्द्र आह्लादयति प्रतिक्षणम्। अग्निर्ज्वलत्यहोरात्रम्। प्रवहति वातस्सततमेव।.....................इदमेव सृष्टिरहस्यम्। इदमेव यज्ञरहस्यम्।'[53]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि कथाओं में गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों का प्रत्यक्ष विवेचन स्थान नहीं बना सकता, परन्तु उपदेशात्मक कथा–संदेशों के ब्याज से कविवर ने अपने दार्शनिकज्ञान–मुक्तकों को पिरोकर कथाओं को शिरोधार्य बनाने का कोई अवसर चूका नहीं है। **भारतीय पौराणिक शास्त्रों यथा वेदों, उपनिषदों, पुराणों, गीतादि तथा प्रत्यक्ष दार्शनिक ग्रन्थों में वर्णित दार्शनिक सिद्धांतों जैसे- कर्म, कर्मविपाक, पुनर्जन्म, सांसरिक नश्वरता, पाप-पुण्य, सुख-दुख, सांसारिक परिवर्तनशीलता आदि तत्त्वों का यथावसर सम्यक विवेचन करते हुए पुरुषार्थ एवं आशावाद का मार्ग प्रशस्त कर जीवनमूल्यों का बहुमूल्य सम्मिश्रण किया है। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' कहते हुए उन्होंनें समयानुकूल नूतन जीवनादर्शों को अपनाते हुए कल्याणकारी भविष्य का आधार प्रस्तुत किया है।** कवि का गहन दार्शनिक चिन्तन उनकी कथाओं के उपदेश को प्रामाणिकता प्रदान करता है। जो नैतिक संदेश पाण्डित्य प्रदर्शन करते, जटिल दार्शनिक ग्रन्थ तर्क, बुद्धि, प्रमाणों एवं प्रमेयों के साथ विस्तार से प्रतिपादित करते है, उसी नैतिक संदेश को उनकी कथायें सहज, सरल, रोचक एवं संवेदनशीलता के साथ बलात् हृदयंगम करवा देती हैं। दुःखमुक्ति एवं सुख प्राप्ति के लक्ष्य को कथायें सहज सुलभ करवाती हैं।

3) कथाओं में व्यावहारिक-ज्ञान

साहित्य समाज का दर्पण है और साहित्यकार समाज का अध्येता। एक संवेदनशील साहित्यकार मानव समाज का, उसके व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण करता है, उसके हृदय के अन्तःस्थल तक जाता है, उससे एकाकार होता है तथा उसको अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसी को पुष्पादीक्षित कुछ इन शब्दों में अभिव्यक्त करती है– 'यौवनरूपी उत्कट कल्लोलों वाली, कामादिरूपी सलिल से फेनिल तथा बन्धुओं की स्नेहवागुरा में बाँधकर भी सतत् प्रवाहमाण, इस जीवनरूपी दुर्नदी को कालसागर मे जाकर गिरना ही है, परन्तु अर्हनिश भी इसे देखकर सब के मन में समान आन्दोलन नहीं होता। कुछ तो इसे देखकर भी नहीं देखते। कुछ देखकर भी निर्विकार से खड़े रहते हैं, किन्तु क्वचित् कोई एक ऐसा होता है,

जो दृश्य को देखकर दृश्य ही हो जाता है।'[54] समाज को इस रूप में महसूस करना समाज के तादात्म्य से ही सम्भव है। साहित्यकार को समाज का व्यवहार, उसका मनोविज्ञान सब कुछ स्फटिक के समान दिखाई देता है। सामाजिक व्यवहार का वह सूक्ष्म निरीक्षण उसके काव्य में प्रतिबिम्बित होता है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र का **सामाजिक-व्यवहार एवं शिष्टाचार का गहन ज्ञान** उनकी कथाओं की विषयवस्तु में, उनके पात्रों के संवादों में दिखाई देता है। युगानुकूल भौतिकता जैसे–जैसे बढ़ रही है, लोगों में आत्मीयता घट रही है। सम्बन्धों में औपचारिकता एवं शिष्टाचार का प्रदर्शन बढ़ रहा है। लोक व्यवहार का निर्वाह भर लोग कर रहे हैं यह वास्तविकता भी है कि हमें अपना सुख व दुःख दोनों ही स्वयं ही भोगने हैं, परन्तु फिर भी कहते है कि सुख बाँटने से बढ़ता है और दुःख बाँटने से घटता है। इसीलिए एक समाज में रहने वाले लोग सुख–दुःख में भागीदार बनते हैं, परन्तु अब रिश्तों की आत्मा रूप स्नेह क्षीण हो रहा है और दुनिया केवल औपचारिकता का निर्वाह कर रही है। जिजीविषा की नायिका तपती के पिता की मृत्यु हो जाती है। मित्रगण क्षणभर सांसारिक नश्वरता की निन्दा करके निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु संसार सागर तो उसे स्वयं ही पार करना है– 'दयासखाः सखायो मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया कुटुम्बं सन्तोष्य यथागतं गताः। परन्तु दुरूत्तरः पितृशोकसागरस्तु तपत्यैव तरणीयं आसीत्।'[55]

समाज की अपनी रीति होती है, शिष्टाचार होता है, परम्पराएं होती हैं। उन सामान्य परम्पराओं का ज्ञान अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं में परिलक्षित होता है। सुखशयितप्रच्छिका में वृद्ध पुरूष के स्नेह एवं सौजन्य को देखकर नायक कहता है–'वार्ता वार्तयोत्तीर्यते गाली गाल्योत्तीर्यते। प्रेम प्रेम्णोत्तीर्यते। सौजन्यं सौजन्येनोत्तीर्यते। परन्तु शिथिलप्रायेऽस्मत्परिचयप्रसंङ्गे किं कीदृशं कियन्मितं वा भवेन्मम सौजन्यम्।'[56]

जीवन एक यात्रा है। इसमे लोग मिलते हैं, बिछुड़ते हैं और स्मृतियां छोड़ जाते हैं। विरहविनोद के लिए स्मृतिचिह्न प्रदान करने की सुन्दर परिपाटी का उल्लेख अभिज्ञानशाुकन्तल आदि ग्रंथों में मिलता है। उपहार उन सभी बातों को कह देता है, जो हम शब्दों में नही कह पाते। इस उपहार परम्परा की झलक पोतविहगौ कथा में देखने को मिलती है, जब वे कहते हैं– 'सर्वेऽपि सैनिकाः कुटुम्बिजनानां कृते कामप्युपहारसामग्रीं क्रेतुमादिवसं रंगूननगरस्य निरन्तरालपण्यवीथिकासु गतागतं कुर्वाणाः पर्याकुला अदृश्यन्त।

दयितार्थं गजदन्तवलयानि, दारकार्थं क्रीडनकानि पित्रर्थं च स्वचालितदृढ़ातपत्रादीनि समादाय सर्वेऽपि प्रस्थानोत्सुकाः सञ्जाताः।'[57]

संसार यात्रा के निर्विघ्न संचालन के लिए प्रकृतिप्रदत्त विलक्षण गुणों से एक दूसरे को पूरकता प्रदान करने वाले **स्त्री एवं पुरुष** का **सहयोगी** होना आवश्यक है। विवाह संस्कार उसी पूरकता को सम्पादित करता है। दो लोग एक दूसरे की कमियों को पूरा करते हुए संकट में एक दूसरे का साथ देते हैं। विवाह अथवा जीवनसाथी इस लोकयात्रा की एक अनिवार्य एवं प्रमुख परम्परा है। इसी व्यवहार की सीख देते हुए न्यासरक्षा कथा में नायक की माँ उससे कहती है– 'स्वगार्हस्थ्यं सुव्यवस्थं विधेहि। मेघागमात्प्रागेव कृषाणाः स्वकुटीरच्छदिं नवीकुर्वन्ति। किञ्च अविवेकवन्तोऽपि पिपीलकाः स्वबिले प्रभूतभक्ष्यं संहरन्ति संकटकालार्थम्।'[58]

हमारे निजी चरित्र के साथ–साथ एक **सामाजिक-चरित्र** भी होता है। विवेकशील मनुष्य को निश्चित ही उचितानुचित का ज्ञान होता है, परन्तु सत्य के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने जैसा होता है और मनुष्य अपनी सुविधा परिधि से बाहर नहीं जाना चाहता। इस पूरी प्रक्रिया में मनुष्य का **दोहरा चरित्र** निर्मित हो जाता है। एक वो जो होना चाहिए और एक वो जो वस्तुतः है। सामाजिक चरित्र समूह में दिखता है और निजी चरित्र पर मनुष्य एक मुखौटा लगाकर चलता है। कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र इस तथ्य से सुभिज्ञ है। वे प्रसङ्गानुसार इस को उद्‌घाटित करते है। नर्तकी कथा में वेश्योन्मूलन के संदर्भ में कहते हैं– 'लोकनायकाः नेतारो मन्त्रिणोऽधिकारिणो न्यायाधीशाः महामण्डलेश्वराः सर्वेऽपि दृढ़समर्थका आसन् अस्यान्दोलनस्य! ....न कोऽपि सर्वगुणसम्पन्नां रूपलावण्यप्रतिमां नर्तकीपुत्रीं स्वस्नुषां स्वकलत्रं वा विधातुमिच्छतिस्म।'[59] मरून्यग्रोध कथा में चिकित्सा प्रमाणपत्र के बदले में यौन शोषण करते चिकित्सक के उल्लेख से कवि चिकित्सकों के बदलते चरित्र एवं **नैतिक-अवमूल्यन** को प्रतीकात्मक रूप से प्रकट करते हैं।

पुनर्नवा में कृष्णा के वैधव्य पर, भग्नपञ्जर की नायिका वंदना पर, मरून्यग्रोध की नायिका की असहायावस्था पर, अनामिका की अबोध लावारिस कन्या पर, नर्तकी की कमरजहाँ की युवावस्था पर, वन्ध्या की संततिहीनता पर **संवेदनहीन समाज के संवेदनहीन व्यवहार के संवेदनशील वर्णन में उनके व्यावहारिक ज्ञान की झलक है।**

चित्रपर्णी की छोटी छोटी कथाएं 'देखन में छोटे लगे घाव करे गंभीर' को सार्थक करती हुई प्रभावशाली ढंग से समाज के व्यवहार को प्रस्तुत करती है। अभिनयः, द्विसन्धानम्, पितृभक्तिः, आत्मविश्लेषणम्, मद्यनिषेधः, राष्ट्रपतिपुरस्कारः, पात्रत्वम् आदि कथायें संकुचित स्वार्थी, महत्त्वाकांक्षी एवं पाखण्डी चरित्रों को कथाओं के माध्यम से अक्षिगोचर कर देती हैं।

4) <u>कथाओं में मनोवैज्ञानिक-ज्ञान</u>

'मन्यतेऽनेन **मन् करणे असुन्'** से ज्ञानार्थक मन् से करण अर्थ में असुन् प्रत्यय लगकर 'मन' पद निष्पन्न होता है। मन समझ, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रज्ञा, संज्ञान और प्रत्यक्ष **ज्ञान का आन्तरिक अंग, वह उपकरण है, जिसके द्वारा ज्ञेय पदार्थ आत्मा को प्रभावित करते हैं।** मन को चेतना, निर्णय या विवेचन की शक्ति भी कहा जा सकता है। इस मन का विज्ञान मनोविज्ञान है। विज्ञान अर्थात् विशिष्ट ज्ञान, तर्कसंगत ज्ञान, प्रयोगाधारित सिद्ध ज्ञान अथवा प्रामाणिक ज्ञान। इस मन को जानकर परमात्मा को जाना जा सकता है क्योकि अन्ततोगत्वा तो सबकी आत्मा, सबका मन एक ही तो है। मन की गहराई में उतरने का आनन्द ही परमानन्द है। श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञानविज्ञानमय सातवें अध्याय में श्री कृष्ण कहते हे–

'उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।'[60]

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार भी मनोविज्ञान मन का वैज्ञानिक अध्ययन है– 'Psychology means- the scientitic study of the human mind or the mental characteristics or attitude of a person or groups or the mental factors in a situation, activity etc.'[61]

एक जिम्मेदार एवं संवेदनशील साहित्यकार के रूप में कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र मानवमन के धरातल पर उतरे हैं। उन्होनें उसका सूक्ष्म निरीक्षण एवं अध्ययन–मनन किया है। मानव मन की अवस्था एवं उसकी प्रतिक्रियाओं का कविवर को गहन बोध है। मनुष्य का सारा व्यवहार उसके मनोविज्ञान की प्रतिक्रिया है। इन प्रतिक्रियाओं की पृष्ठिभूमि में जाए बिना, न उसके व्यवहार को, न उसके कारण को और न ही उसके समाधान को पाया जा सकता है। **अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं का कथ्य मानव-मनोविज्ञान का प्रत्यक्षीकरण है। उनकी कथाओं में मनोविज्ञान की अभिव्यक्ति दर्शनीय है।**

जिजीविषा की पितृहीन तपती विवशता में आजीविका ढूंढते हुए अपना सर्वस्व खो चुकी है। माँ सांसरिक जटिलताओं के चलते सरलता से आजीविका मिल जाने से शङ्कित है। तपती भी उसके प्रश्नों से घबराई हुई है। कवि जानते है कि झूंठ के आवरण में सच को छिपाना आसान नहीं है। झूंठ बोलने पर जो बात हमारे शब्द नहीं कहते, वे **मनोभाव आङ्गिक भाषा से प्रकट** हो जाते हैं। तपती के कार्यालय के बारे में प्रश्न पूछने पर उसकी मनोभूमि को शारीरिक प्रतिक्रियाओं से कितना सुन्दर चित्रित किया है– 'अये, निर्वर्णमिव कथन्ते कपोलयुगलम्? अधरोष्ठः प्रकम्पते कथम्? तपति! मम दारिके! मन्ये हृदये किमप्यन्यन्निधाय निगदसि।'[62]

प्रेम एवं स्नेह का बंधन स्त्री-पुरुष को पूर्णता प्रदान करता है। प्रणय समर्पण में एक पर दूसरे का अधिकार होता है, परन्तु विवाह सूत्र में यदि प्रेम रूपी आत्मा न हो तो यह दो शरीरों का बंधन कितनी मानसिक पीड़ा देता है, इसका अत्यन्त मार्मिक वर्णन कविवर ने एकहायनी कथा में किया है। एकहायनी की नायिका का विवाह उसके प्रिय मधुप से नहीं हो पाता। किसी अन्य पुरूष को पाकर वह कैसा महसूस करती है, उसका चित्रण देखने योग्य है–'प्रणयवञ्चितः पुरूषः स्त्री वा न जीवितुं शक्नोति। जीवन्नपि मृतो नरः। जीवन्त्यपि मृता नारी।.....मधुपस्य सम्पत्तिभूताऽहम्। अन्यमनभिमतम् अपरिचितमनभीष्टं पुरूषं स्वीकृत्य तद्वासनोपशमपात्रीभूता चाहं निश्चप्रचं वेश्यैव जाताऽस्मि। एको मामद्यापि प्रतीक्षते। स्वजीवनपर्यायभूतां मन्यते। अपरश्च सर्वगुणविहीनः कुक्कटरत्यात्मानं तोषयति............व्यर्थं मेऽध्ययनम् वेशवाटोचितं मे सौन्दर्यम्। मन्दिरायमाणं शरीरं मया मदिरालयीकृतम्? अस्मिन्नेव रौरवे निखिलमपि जीवनम् अतिवाहनीयं भविष्यति?'[63] यह मनोदशा केवल एकहायनी की नायिका विमला की नहीं है, बल्कि हर उस स्त्री की है, जिसका विवाह अनीप्सित वर के साथ कर दिया गया है, जो कभी हृदय से उसके समक्ष समर्पण नहीं कर पाएगी। ऐसा विवाह केवल शारीरिक एवं भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। **प्रणयरहित-विवाह** में मन, भाव, संवेदनशीलता, स्नेह सब कुछ अपूर्ण एवं **कुण्ठित** रह जाता है तथा अनेक मनोविकारों को जन्म देता है। इस मानसिक व्याधि का उपचार यही है कि विवाह से पहले स्त्री–पुरूष दोनों की मनोकामना को जान लिया जाए।

पुत्र–पुत्री के भेदभाव से जुड़े मनोरोग पर प्रहार करती शतपर्विका कथा सशक्त रूप से यह प्रतिपादित करती है कि **पुत्र की महत्ता** एवं पुत्री की हीनता यह **हमारे मनों की उपज**

है, अन्यथा ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो पुत्री नहीं कर सकती और पुत्र कर सकते हैं। प्रेम, सेवा, यश, कीर्ति, प्रसिद्धि, सुख कन्या भी उतना ही प्रदान करती है, जितना पुत्र कर सकता है, बल्कि अपनी भावुकता, कोमलता एवं संवेदनशीलता के कारण बेटियां इस कार्य को ज्यादा अच्छे से कर सकती है।

सृष्टि–सृजन से अद्यपर्यन्त ऊँची–नीची पगडंडियो पर चलते हुए विकास के सोपानों को पार करते हुए आज हम जहां खड़े हैं, वहां पुरूष परिभाषित पुरूषप्रधान समाज में एक मानसिक रोग ने घर कर लिया है कि बेटियां माता–पिता के लिए जिम्मेदारी है, बोझ है, झुकने का कारण है, परन्तु कवि ने शतपर्विका कथा में सात पुत्रियों के प्रति संवेदनहीन व्यवहार पर पश्चात्तापग्रस्त, शतपर्विकावत स्वतः पल्लवनशील पुत्री की सेवा से परिवर्तित हृदयवान, पिता के मुख से कहलवाया है– **'रोगस्तु मम मनस्यासीत न शरीरे।'**[64] यह उपनिषद्वाक्य न केवल इसी संदर्भ में, बल्कि प्रत्येक विकार अथवा रोग के सन्दर्भ में रोगनिदान का सूत्र है। रोग शरीर से पहले मन में पैदा होते हैं। हमारी मानसिक विकृति ही शारीरिक विकृति के रूप में परिणत हो जाती है। यदि मन निर्मल हो, स्वस्थ हो, रागद्वेषादि विकारों से रहित हो तो ऐसे शक्तिशाली तथा संकल्पवान मन की रोगप्रतिरोधक सेना से युक्त शरीर में शत्रु रूपी रोग प्रविष्ट ही नही हो सकता।

भग्नपञ्जर कथा में एक **विधवा की मनोदशा का मनोविश्लेषण** सूक्ष्मता से शब्दों में साकार किया गया हे। पुत्री के प्रति पिता के हेय दृष्टिकोण से व्यथित वन्दना का मन प्रश्न कर रहा है– 'केन गुणेन पुरूषो विद्वान् भवति? धर्मग्रन्थेषु यत्पठ्यते किं तदाचर्यते जीवने? केन नयनेन तातो मां पश्यति? केन हृदयेन मामनुभवति? केन विवेकेन वा मामुपदिशति?......... ... मां पुनरभिशप्तां पाषाणीमहल्यां जानाति?'[65] उसके मन में उमड़ रहे सपनों एवं आकांक्षाओं को मूर्त रूप देते हुए कवि कहते हैं– 'किम्ममापघनेषु चेतना नास्ति? किम्ममापि बलीयसी सुखेच्छा, भोगेच्छा वा नास्ति? ममापि क्रोड़े कोऽपि बन्धुरश्चन्दिरो निर्भरं क्रीड़तु। ममापि वक्षःस्थले क्षीरभारभङ्गुरा मन्दाकिनी मन्द–मन्दमकतु। ममापि कोऽपि जीवनसूत्रधारः स्यात् यस्य वक्षसि शीर्षं निधाय अहमपि स्वातीतं विस्मरेयम्।'[66] अपने जीवन को नये सिरे से शुरू करने की आंकाक्षा रखने वाली, अपने दुःखद अतीत को भूलने का प्रयास करने वाली, अपने जीवन की सभी कामनाओं को साकार करने की इच्छा रखने वाली विधवा की मनोदशा का इससे सुन्दर वर्णन नहीं हो सकता। वैधव्यजनित हताश जीवन का रेखाचित्र

खींचते हुए कवि कहते हैं– 'ह्रीणा हर्षसंभाराः, क्षीणाः क्षपोत्सवाः, ग्लानिमुपगतं गीतनृत्यवादित्रादिकम्, शून्यतामुपयाताश्शास्त्रचर्चाः, विरक्ता रागाः, स्मृतिशेषं स्मितकम्, सातङ्कोट्टहासः। किञ्च, परमार्थतोऽहासिषुः कुलद्वयं प्रसादमाधुर्यादिगुणाः। अवशिष्टं केवलं सर्वव्यापि कारूण्यमेव।'[67]

पत्नी वियोग की मानसिक शून्यता को कवि ने 'अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा' में शब्दांकित किया है। बाण की पत्नी कदम्बप्रिया रूपी दीपशिखा के निर्वाण के पश्चात् उनका जीवन अन्धकारमय हो गया। बाण कहते हैं– 'शोण–तटमुपगम्य पाषाणशिलायामुपविश्य मुषित इव, कदर्थित इव, भृशमवमत इव, किंकर्त्तव्यविमूढ़ इव................ ..चतुर्विंशतिवर्षदेशीय एव सन्नपि शरीरेण, चेतनया मनसा च वार्धक्य जर्जर इव जातोऽहम्।'[68]

मानसिक दुःख मनुष्य को हताश, निराश, अवसादग्रस्त एवं जर्जर कर देता है। उस खोखलेपन से उपजी सारहीन श्रीहीन, रसहीन जिंदगी को कवि ने हृदय से न केवल अनुभूत किया है, बल्कि अभिव्यक्त भी किया है।

समाज के परिभाषित शिष्टाचारों की श्रृंखला में नारी **मन की भावनाएं** अनेकशः **अभिव्यक्ति पाने से वञ्चित** रह जाती है। संयम एवं शिष्टाचार उसे स्पष्टवादी होने से रोकते हैं। चूंकि नारी मिश्र जी की कथाओं की मेरूदण्ड है, अतः उनकी कथायें नारी मन की कथायें हैं। वे उसके त्याग को, सहिष्णुता को, उदारता को समझते हैं तथा उसे अभिव्यक्ति प्रदान करते है, कुलदीपक कथा में जातीय वर्गभेद से ग्रस्त विवेकहीन पति को सिन्धु की माँ समझाना चाहती है, परन्तु वह चुप रहती है– 'पत्युः सङ्कीर्णविचारं निभाल्य धनसम्पत्तिगर्वञ्च विलोक्य सा मनस्येव सन्तप्ताऽभूत् परन्तु शीलसमुदाचारवशात् कदाचित् न विरोधं कृतवती न च कलहम्।'[69] एकचक्रः कथा में **पिता-पुत्र के वैचारिक मतभेद** के बीच दुविधाग्रस्त माँ की भावनाओं का मूर्तिमान रूप वर्णनीय हैं–'आवयोर्विचारसंघर्षे वराकी जननी किं कुर्यात्? नासौ शास्त्रज्ञा न वा निर्बन्धपरायणा।.......... आनुकूल्ये प्रातिकूल्ये वा, आह्लादेविषादे वा, सुखेदुःखे वा, सामर्थ्येऽसामर्थ्ये वां शान्तनयननिर्यदश्रुसन्ततिरेव तस्या अक्षयसम्पत्तिरासीत्।'[70]

मानव मनकी गति अद्भुत् है। यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि मन की गति वायु से भी ज्यादा है। मन का रथ संसार में सर्वत्र निर्बाध गति से विचरण कर सकता है। **मन की इस चंचलता का संकेत** कवि ने कथाओं में अनेक स्थानों पर किया है।

अधमर्णः कथा में हस्तिनापुर नरेश शान्तनु का मन आंधी भरे आकाश की तरह अशान्त है। यहां **मन की विलक्षण गति** को शब्दायमान करते हुए कवि कहते हैं–'मनोगतिरपि कियती विचित्रा? इदानीमेव निषण्णं शरीरे। प्रसह्य बहिष्कृतमपि न निष्क्रामति शरीरगह्वरात्। परन्त्वन्यस्मिन्नेव क्षणेऽनभिधाय किञ्चित्पलायते नगरान्नगरं जनपदाज्जनपदं धरित्र्या आकाशं ग्रहादेकस्माद् ग्रहान्तरपिण्डं यावत्! अद्भुतैव शक्तिरेकादशेन्द्रियस्य! अद्भुतैव त्वराऽपि तस्य।'[71]

मानव मनोवृत्ति स्थिर नहीं रहती। पीपल के पत्ते की तरह चंचल होता है मन। कोई किसी के आचरण को प्रमाणित नहीं कर सकता क्योंकि पूर्वजन्म के अर्जित संस्कारों से निर्मित मानव स्वभाव अपरिभाषेय है। इसी ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं– 'को ननु खलु विश्वासो मानवमनोवृत्तेः? अश्वत्थपत्रमिव चञ्चलं मनः। कोऽपि पिता स्वपुत्रचारित्र्यं प्रमाणयितुं न शक्नोति। भद्र! पूर्वजन्मार्जितसंस्कारानुप्राणितो भवति मानवनिसर्गः।'[72]

जीवन में नैतिकमूल्यों पर चलना दुर्गम हैं। मन की भावुकता, उसका आवेश, क्षणिक–स्खलन, विवेकहीनता सौन्दर्यासक्ति, भौतिक–आकर्षण जैसी बााधाएं उसके भटकाव का कारण बन जाती है। यह **क्षणिक मानवीय त्रुटियां जिन्दगी को तहस-नहस कर देती हैं।** जैसे पोतविहगौ कथा के नायक निहाल का जीवन अस्त व्यस्त हो गया। यदि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कसौटी पर परखा जाए तो कथा के सभी पात्र अपनी अपनी जगह सही हैं, परन्तु संसार की दृष्टि में सब गलत हो गए है। परदेश में एकाकी निहाल का पुरूष मन महुली की तरफ आकर्षित हो गया है, मातापिताहीन महुली निहाल के रूप में अपनी भावनाओं का आश्रय पा जाती है, उसकी संस्कृति में यह अनुचित नहीं है, निहाल के पिता कामदेव की शक्ति को पहचानते हुए उसे क्षमा कर देते है, निहाल की माँ महुली के गुणों से प्रभावित हो जाती है, परन्तु निहाल की पत्नी की पीड़ा आक्रोश के रूप में फूट पड़ती है, वह शिष्टाचार की समस्त सीमाएं लाँघ जाती है, वह निहाल को क्षमा नहीं कर सकती, महुली को जीवन में स्थान नहीं दे सकती। अपनी–अपनी मनोभूमि में सब सही हैं, परन्तु एक दूसरे के लिए सब गलत। यह **मानव मन की विचित्रता** है। भगवान् मन्मथ के प्रभाव को वर्णित करते हुए निहाल के पिता कहते हैं–'त्रिदेवानपि क्वचित् मदयति भगवान मन्मथः। तर्हि का कथा हतभाग्यस्य भावशाबल्योद्भ्रान्तस्य अनियन्त्रितहृषीकहयखलीनस्य निहालस्य!'[73] एक **स्त्री की मनोदशा** का सटीक वर्णन कविवर करते है कि स्त्री स्वप्न में भी

अन्य स्त्री को पति के जीवन में सहन नहीं कर सकती– 'नारी न कथमपि नार्यन्तरं सहते। पतिः कामपि युवतिं कियद्भिरेव कौशलेः प्रख्यापयेत् ममेयं भगिनीति ममेयं परिचारिकेति वा, परन्तु निसर्गादेव सापत्न्यभीता पतिचरितशङ्किनी भार्या तां वल्लभाङ्कशायिनीमेव मन्यते। का कथा पुनः प्रोषितस्य?'[74] अमृताङ्ग के द्वारा बलात् अधिगृहीत परन्तु अब कर्णाङ्गारक की तरफ आकृष्ट दिदिशा यद्यपि स्वयं पीडिता है, परन्तु फिर भी अपने सपनों के आकाश में विचरने में आत्मग्लानि महसूस करती है– 'न मे मनसि शान्तिः, न मे काये शक्तिः, न मे हृदये निष्ठा। वाञ्छन्त्या अपि न मेऽमृताङ्गं प्रत्यमर्षः शाम्यति। द्विधाभूतं जीवितम्। किं करोमि? स्वकृतकव्यवहारैः आत्मानं पतिपरायणां प्रदर्शयन्ती स्वभर्तारं राजपरिवारं संसारं वा छलयितुं प्रभवामि परन्तु अर्न्तयामिनं परमेश्वरं कथं छलयितुं पारयेयम्।'[75]

स्त्री की निंदारस के प्रति रूचिशीलता का संकेत भी प्रसंङ्गवश कवि ने किया है–'महुलीविषयिणीं चर्चामान्तराह्लादै प्रतीक्षमाणाः प्रतिवेशिकास्सम्प्रति नैराश्यमनुभवन्तः पुनरागमिष्यामो वयमिति कूटप्रणयैर्मन्त्रयमाणाः प्रतस्थिरे।'[76]

सपत्नी कथा **वन्ध्या स्त्री की मनोदशा** को अभिव्यक्त करती है। बधुनी के विवाह को बीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परन्तु वो सन्तान सुख से वञ्चित है। बुधनी प्रतिक्षण अपने भविष्य को लेकर चिन्तित है। वह सोचती है– 'किं भविष्यति? पाषाणे कुतो नु दूर्वा प्ररोक्ष्यति?............धिङ्मम् गर्भम् अजागलस्तनकल्पम्।''[77] वन्ध्या स्त्री की रातों की नींद, दिन का चैन खो जाता है। उसके जीवन में सब कुछ उलट–पलट हो जाता है। इसी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं–वन्ध्यादोषोऽपि नाम स्त्रीणां नयननिद्राहरः। कारागृहायते स्वामिभवनमपि। न क्वचिज्जायते जिगमिषा न किञ्चिज्जागर्ति चिकीर्षा। सपत्नायते हासः। आकाशकुसुमायते मानसोल्लासः। महोत्सवे कस्मिंश्चिद् विद्यमानायामभितः परितः सन्दृश्यन्ते आरभटीमुपस्थापयन्तः प्रतिवेशिनीतिर्यक्कनीनिकोद्गताः शूलदप्रश्नाः। एवं सति नोपस्थिति रोचते, नो वा प्रस्थानमार्गोऽवाप्यते। सर्पगन्धमूषिकयोरिव दुर्दशाऽनुभूयते।'[78]

सामाजिक परम्पराओं को तोड़ते हुए समयानुकूल पुरातन मान्यताओं में परिवर्तन करते हुए जो **मानसिक द्वन्द्व** उठ खड़ा होता है। उस द्वन्द्व को चित्रित करते हुए कवि कहते है–'किं कथयिष्यन्ति सामाजिकाः कुटुम्बिनश्चेत्यपि चिन्तनीयम्। इदानीमपि रामचरणस्य राधाचरणस्य

च कन्याः परिणेतव्यास्तिष्ठन्ति। अपि नाम तासामुद्वाहे प्रत्यवायस्समुत्पद्येत? समाजोऽयं न जेन्याः सद्‌गुणान् द्रक्ष्यति। समाजस्तु, तस्या अभारतीयत्वमेव प्रख्याप्य निर्बन्धपरो भविष्यति।'[79]

हमारे आशीर्वचन, मङ्गलाचरण, परम्पराएं, रीति–रिवाज व त्योहार हमारे संकल्पों एवं लक्ष्यों के प्रतीक होते हैं। हमारी पूरी संस्कृति ही मनोरथों को घोषित करती है। पुत्रकामना रूपी साध्य के लिए पुत्रवधु को माध्यम रूप में घोषित करते, हमारे अनेक आशीर्वचनों में से एक यह भी है–'स्नाहि दुग्धेन, फल पुत्रेण।' 'एतादृशमेवाऽपरमपि पौत्रं मत्कृते जनय। इतोऽधिकं न मे काम्यम्।'[80]

परिवर्तनप्रिय मानवस्वभाव सर्वविदित है। जीवन में निरन्तर एकरसता को मानव मन तोड़ना चाहता है। वह कुछ अलग चाहता है, जो नीरसता को भङ्ग कर नवीनता एवं ताजगी का संचार कर सके। इसी को लक्ष्य करके कवि कहते हैं– 'भोगास्वादपरिवर्तनं को नरः का वा नारी न समीहते! समीहन्ते तु सर्वे एव परन्तु क्षमन्ते केचिदेव।'[81]

इस प्रकार अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाएं मानव मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, मानसिक धरातल का साक्षात् रूप है, मनोव्यथाओं की चिकित्सा है, निर्मल, शीतल, शान्त, स्थिर, स्वस्थ एवं आह्लादित मन का मार्ग है, सामाजिक मनोभूमि की यथार्थ अभिव्यक्ति है।

जीवनयात्रा में प्रियजनों का वियोग होने पर हमारी मनः स्थिति पर होने वाले प्रभाव को कविवर ने अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा में बाणभट्ट की पत्नी की मृत्यु हो जाने पर, बाण के माध्यम से व्यक्त किया है। महाश्वेता के पति की मृत्यु, पिता की मृत्यु और उसके बाद पत्नी कदम्बप्रिया से वियोग से बाण का हृदय विदीर्ण हो जाता है। वे कहते हैं– 'जीवनदीपशिखाया परिनिर्वाणम्! हृदयं विशीर्णमिव जातं धातुर्नृशंसतामवेक्ष्य। जिजीवषैव प्रणष्टा। क्व गन्तव्यम्! किं करणीयम्? कथमात्मा विपन्नोऽवलम्बनीयः? न किञ्चिदपि निश्चेतुं शक्यमासीत्।'[82]

कहा जा सकता है कि कवि मानव मनोविज्ञान के कुशल चितेरे हैं। घटनाओं, व्यवहार एवं प्रतिक्रियाओं के पीछे के मनोविज्ञान को भलीभांति समझते हैं। सामाजिक एवं मानसिक विकृतियों के निराकरण का कार्य गूढ़ मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को सुलझाने से ही मिलेगा। समाज की मनः स्थिति को समझकर उसके विकारों, विकारों के कारणों को जानकर, उनका निराकरण करके मानव को कल्याणकारी सत्कार्यों की ओर प्रशस्त किया जा सकता है।

5) कथाओं में प्रकृति-चित्रण

मानवीय, संवेगो के साथ एकाकार हुए कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं का केन्द्रीय विषय सामाजिक सरोकार है। उन्होने सामाजिक चिन्तन के मुद्दों को लिया है और उन्हे कथाओं की रोचकता में पिरोकर सामाजिक संवेदनाओं को छूने का भागीरथी प्रयत्न किया हैं, परन्तु फिर भी सहज एवं स्वाभाविक रूप से कथाओं की पृष्ठभूमि में उनके प्रकृति–चित्रण के दर्शन हुए है।

कथाओं के **नैतिक-संदेश** एवं जीवन मूल्यों को उन्होनें **प्रकृति के विविध रूपों में** भी खोज लिया है। सुखशयितप्रच्छिका के नायक को औषधालय के उद्यान में धरा पर नयनाकर्षक पुष्पछटा एवं आकाश में बलाकाओं में गीतोक्तकर्मयोग दिखाई देता है– 'हरित दुर्वावृत्ता वाटिकाभूमिः समन्ततः विविधवर्णपाटलपुष्पपरिवारिता नयनाकर्षिणीश्रियमजीजनत्। आकाशे गीतोक्तकर्मयोगं चरितार्थयन्ती बलाका नीड़ाभिमुखं सुखोड्डीना समलक्ष्यत्।'[83]

प्रकृति से साक्षात्कार एवं उसकी सौन्दर्यानुभूति में एकान्तानुभूति को आवश्यक बताते हुए कवि कहते हैं कि प्राकृतिक आनन्द की अनुभूति निर्बाध रूप से होने के लिए, उसके सूक्ष्मावलोकन के लिए, उससे तारतम्य स्थापित करने के लिए एवं उससे एकाकार होने के लिए प्रकृति की गोद में अकेले ही विचरण करना सुखद है। अनामिका कथा का नायक प्रातःकालीन भ्रमण में साथी की उपस्थिति को प्रभातकालीन सौन्दर्यानुभूति में बाधक मानते हुए कहता है–'यामुनगाङ्गसङ्गमदर्शनेऽनुलिप्तं भवच्चेतः। सहचरः पुनः ब्रूते –हयस्त्रिपाठी लयङ्करोऽल्लापुरश्रृङ्गाटके भवन्तं निन्दन्नासीत्।..................... एवं हि सहचरेण शनैश्चरायते। न तस्य सुखं न भवतः। वृषभमहिषयुगलीव दुर्गति भवति। वृषभस्तावत् क्षेत्रकर्षणायोपक्रामति महिषः खलु तडागजलावगाहनाय। एवं सति एकलेनैव पर्यटितव्यम् इति ममाभिरूचिः।'[84]

यथावसर कवि ने **प्रकृति का** ऐसा सुन्दर, सहज एवं **स्वाभाविक वर्णन** किया है कि वर्णित दृश्य अक्षिगोचर प्रतीत होता है। शब्दों के रूप में मूर्तिमान् दृश्य हमें अपने भीतर समेट लेता है और हम साक्षात् उस दृश्य के साथ हो जाते हैं। इक्षुगन्धा में मिर्जापुर जनपद का वर्णन दर्शनीय है, जो उस धरा को प्रत्यक्ष प्रस्तुत कर देता है–'जनपदमिदं सत्यमेव स्वर्गशकलीभूतम्। विन्ध्यश्रेणिभिश्चतुर्दिक्षु समावृत्तं वर्तते। क्वचिन्निरन्तरालवंशगुल्ममंडितं क्वचिदुच्चावचशिलाखण्डशर्करिलं क्वचिल्लघुपल्वलनिचितं क्वचिद्विपुलमालक्षेत्रसंवलितं क्वचिच्च शोणजलप्रवाहपावितं वर्तते।'[85] वन्यप्रदेशों व प्राकृतिक

पर्यटन स्थलों की तरफ बहुतायत में विकसित होते उद्योगधन्धों व कार्यशालाओं की तरफ भी कवि का ध्यान गया है। खनिज पदार्थो का दोहन भी निरन्तर हो रहा है। इस ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं–'विन्ध्यपर्वतोपत्यकासु उद्योगपतिभिः स्वकर्मशालाः स्थापिता वर्तन्ते। बहवः प्रपाताः नयनाभिरामाः जनपदशोभां वर्धयन्ति। रेणकूटे हिण्डालियमप्रोद्योगो भारतैश्वर्यं प्रकटयति। किमधिकं? जनजातिसंकुलमपि गिरिशिलाप्रायमपि जनपदमिदं खनिजदृष्ट्या भारतवसुन्धरारत्नभूतं वर्तते।'[86]

प्रकृति का एक वो रूप है, जो सहज ही प्रस्फुटित होता है बिना किसी संरक्षण के स्वतः उद्भूत, **स्वतः स्फूर्त** एवं स्वतः उन्नत, विपरीत परिस्थितियों में प्रतिकूलताओं को अनुकूलता में परिवर्तित करते हुए, जिसका संकेत शतपर्विका में कवि करते हैं– 'शतपर्विका. ....आत्मारामतया अनभिषिक्ताऽपि अरक्षिताऽपि स्वादृष्टबलेनैव पुनर्नवतामुपैति नित्यहरिता च संलक्ष्यते।'[87] प्रकृति के इस रूप का वर्णन कविवर ने बहुशः किया है, परन्तु **प्रकृति** का एक वो रूप भी है, जो कोमल, सुन्दर सुसज्जित, सावधानी से सहेज कर संरक्षित एवं सवंर्धित, आंगन की बगिया में, **बागवान की देखरेख में,** खिलता हुआ, मुस्कुराता हुआ, आंखों को सुकून देता हुआ सा शोभायमान होता है। कवि ने प्रकृति के इस रूप को भी सराहा है। कुलदीपकः कथा में सिन्धु के पिता चौधरी महोदय के उद्यान के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं– 'विशालगृहोद्यानं भृशं चकास्ति धारासलिलयंत्रेण विविधैश्चशोभावहैः पुष्पक्षपैः। क्वचित् कदलीकुंजः क्वचित् मल्लिकालता क्वचित् शेफाली क्वचिच्च यूथिका। तोरणमभितो बकुलाशोवृक्षाः पंक्तिबद्धा वर्तन्ते।'[88]

कविवर के **प्रकृति चित्रण में** उनका अथाह **शास्त्रीय-ज्ञान** प्रतिबिम्बित होता है। खुले आकाश के नीचे नक्षत्र मण्डलों को निहारते हुए शान्तनु के हृदय को जो कविवर ने साक्षात् प्रस्तुत किया है, उसमें उनकी ज्योतिषज्ञान की गहनता दर्शनीय है। ध्रुवनक्षत्र की प्रदक्षिणा करता सप्तर्षिमण्डल, शरबिद्ध मृगरूपधारी मृगशिरानक्षत्र, कृतिका आदि नक्षत्र ऐसे प्रतीत हो रहे है जैसे किसी बडे पात्र में असंख्य श्वेत मोती बिखेर दिए गए हो। कितना मोहक एवं हृदयार्वजक दृश्य उपस्थित होता है!, 'कदाचिद् ध्रुवनक्षत्रप्रदक्षिणापरं सप्तर्षिमण्डलं, कदाचिच्छरविद्धमृगरूपधारि मृगशीर्षनक्षत्रं चावलोकितवती। कदाचिदसौ कृत्तिकाः दृग्भ्यां पिबन्नासीत्। एवं प्रतीयते स्म यथा विस्तृते पिठरे केनचित् धवलधवला अगणितमुक्ता विकीर्णाः स्युः।'[89]

गंगा के किनारे गंगास्नान करने वालों का शोर, मुर्गे की निरन्तर कूकार, भजनों की आवाजें, मन्दिरों की घंटियों, ध्वनिप्रसारणयंत्रों, पहली उडान भरती चिड़ियाओं एवं कौवों के दृश्य का **नयनाभिराम वर्णन** किया है। कहते है– 'ब्रह्मवेलात एव गङ्गास्नानार्थिनां कोलाहलात् तीरस्थ देवालयध्वनिप्रसारियन्त्रोद्यतसम्पिपण्डितभक्तिगीतशब्दनिवहात् ताम्रचूड़ानामनवरतकुङ्कारात् प्रथमतयोड्डीनकलविङ्कमौकुलिजल्पनाच्च प्रायेणोपनगरेऽस्मिन न् कोऽपि स्वस्थोजनः षड्वादनात्परं शयितुमुपक्रमते।'[90]

बालीद्वीप प्रवास में अमरावती क्षेत्र के कुतरी ग्राम में लघु पर्वत पर दुर्गामहिषमर्दिनी के मंदिर का वर्णन करते हुए वहां के **प्राकृतिक-सौन्दर्य का,** विशाल बरगद का तथा वृक्ष से आवेष्टित पर्वतीय क्षेत्र का सजीव एवं **मूर्तिमान रूप** प्रस्तुत किया है– 'दिग्व्याप्तविततपीनशाखो विविधवर्णस्वरोत्पतनपद्धतिविहगकुलमण्डितः स्तम्भीभवदनेकविलम्बिविटपप्ररोहः गाढ़ोपगूढ़बृहच्छिलाशकलसन्ततिः पुराणबिरिंगनवृक्षो न्यग्रोधजातीयः पर्वतशिखरं तत् संस्खलितप्रायमावेष्ट्यशिफाङ्कपाल्या दुर्ललितदारकमिवं लालयन् स्थित आसीत्।'[91]

प्रकृति की स्वाभाविक छटाओं का वर्णन करते हुए, कवि की कल्पनाएं बहुत सुन्दर एवं सटीक बन पड़ी हैं। महानगरी में यात्रा करते हुए सेतु के ऊपर से गुजरती अयष्पथगन्त्री (Train) की खिड़की में से गतिशील दृश्यों का वर्णन अतिसुन्दर एवं रमणीय प्रतीत होता है–'खट् खट् खट् खट् खटाखट् खटाखट् खटाखट् खटाखट् खटाखट् .... गन्त्रीगमनध्वनिरकस्मादेव परिवर्तितोऽश्रूयत। .... गन्त्रीकस्याश्चिल्लघुवर्षानद्याः सेतुपथमतिक्रममाणा किञ्चिदिव मन्दवेगा सञ्जाताऽसीत्। निर्मुदिरा मुदी नवम्बरमासस्य भग्नभाण्डात्परितो व्याकीर्णा क्षीरधारेव सर्वत्र वितताऽसीत्। तस्मिन् निर्व्याजधवलिम्नि स्थिताः क्वचिदाभुग्नशिरसो विन्ध्यगिरिपादाः, क्वचित्सजलजलधरकपिशा नीरन्ध्रवनराजयः, क्वचिच्छान्तनीवृति सेवितपर्णशालो जरठतापस इव विलम्बिकुर्चप्ररोहोऽद्वितीयो न्यग्रोधः, क्वचिच्छस्यश्यामला मालभूमिः, क्वचिदितस्ततो धावन्तो ग्रामसिंहाः, क्वचिन्मृत्तिकानिवेशसंहतिर्ग्रामाटिका, क्वचिच्च विद्युद्दीपभाभासिताः पण्यवीथय इति सर्वमपि धवलपर्णोपरि रेखांङ्कितं चित्रजातमिव समलक्ष्यत्।'[92]

इस वर्णन से गतिमान रेलयात्रा का साक्षात् दृश्य मानो प्रस्तुत हो जाता है। फूटे पात्र से बिखरी दुग्धधारा की तरह छिटकी हुई चांदनी, विंध्याचल के शिखर, सघन–वन,

विशाल बरगद के वृक्ष शस्यश्यामल मालभूमि, दौड़ते हुए ग्रामसिंह (कुत्ते), मिट्टी के घरों वाले दरिद्र गांव, विद्युत् दीपों से चमकते हुए बाजार सब श्वेत पत्र पर रेखांकित चित्र की तरह स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

एकचक्र में उदय होते हुए सूरज की अगाध समुद्र में प्रतिबिम्बित लालिमा युक्त छवि का वर्णन दर्शनीय है– 'निसर्गरमणीयोत्कलवसुन्धरा न केषामभिभता? अगाधपयोधिगर्भादुदियाय प्रत्यहं यत्र बालार्कः। उदयतश्च तस्यारूणिमा सागराम्भसि प्रतिबिम्बितो वाडवाग्निविच्छित्तिमुपस्थापयति स्म।'[93]

संकल्प कथा में **धरती के** प्रभातकालीन सौन्दर्य के **उपमान अनुपम** है। धरती रूपी नायिका सहकार रूपी कुण्डलों को धारण करती हुई, पलाश पुष्प रूपी अरूणाधरों से युक्त, भ्रमरगुञ्जन रूपी वाणी से युक्त विलक्षण प्रतीत हो रही है। वसन्त कालीन प्रभात का यह वर्णन रमणीय है– 'वासन्तोऽयं प्रभातकालः समधिकरमणीयः प्रतिभाति स्म। रात्रिनिपतितमधूकपुष्पपरिमलैः समग्रमपि वातावरणं क्षीबमिवासीत्। कलायपरिमाणैः सहकारफलप्रकरैः श्रुतिकुण्डलानीव धारयन्ती, पलाशपुष्पारूणाधरा, भ्रमरगुञ्जनवाङ्मती धरित्री विचित्रैव प्रतीयते स्म।'[94]

अगरू, गुग्गुल, घृत, शर्करादि हविष्य से उत्पन्न गन्ध से सुगन्धित तथा पार्वती मन्दिर तक फैली हुई भूमि के वामभाग में महाकवि बाण के घर के प्रवेशद्वार को देखकर कवि को कादम्बरी का भूमिकापद्य स्मृत हो उठता है–

'जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः।।'[95]

कादम्बरी में वर्णित घर का साक्षात् रूप अपनी आंखो के सामने कवि देखते हैं– 'रत्नशलाकाखचितविलम्बिपञ्जरेषु सत्यमेव प्रवेशद्वारमभितो विविधवाचिकाङ्गिकाभिनयवन्तः शुकाः सारिकाश्च विराजन्ते स्म। तच्चञ्चुपुटाग्रविलूननिपतितफलशाकादिशकलानश्नन्त्यो गृहवर्तिकाः कलघण्ट्यश्च मधुरकलरवैः परिवेशं मुखरयन्तिस्म। हम्भारवं विदधती कृष्णा धेनुरपि नातिदूरे शंकुबद्धाऽतिष्ठत्।'[96]

कादम्बरीकार की तरह ही अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने अच्छोदसरोवर का सजीव चित्रण किया है– 'कस्मिंश्चिद्घट्टे पशवो जलं पिबन्ति स्म, सन्तरणलीलाञ्चापि नाटयन्ति स्म,

दूरवर्तिनि घट्टे कश्मिंश्चिद्रजका ग्रामवास्तव्यानां वस्त्राणि क्षालयन्ति स्म।'[97] अच्छोद सरोवर सम्पूर्ण ग्राम की गतिविधियों का केन्द्र होने के साथ ही शरदकाल में पूर्ण सौन्दर्य को धारण करता है। उसके शरदकालीन सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं– समागतप्राय एव शरदृतौ पुष्करमिदं विकसितकोकनदैः मधुपानलम्पटैर्भ्रमरैः रिरंसावर्धितप्रणयिनीप्रसादनोपायैः राजहंसैः मत्स्यभक्षणालोलुपैः कारण्डवैः सचीत्कारं गगनमण्डलचङ्क्रमणलीलां नाट्यद्भिष्टिट्टिभैश्च कामप्यपूर्वामेव सुषमां धारयति स्म।'[98]

कवि के **प्रकृति-चित्रण में** सर्वत्र **बाणभट्ट की शैली प्रतिबिम्बित** होती है। दीर्घसमासों, उपमाओं, रूपकों की कविवर शृंखला बांध देते हैं। जहां वे मानवीय संवेदनाओं को कोमलकान्तपदावली में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं– वहीं विलक्षण प्रकृति के सर्वत्र विराजमान व्यापक सौन्दर्य के लिए विस्तृत वर्णनात्मकता को आश्रय बनाते हैं।

प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति के कोमल एवं कठोर पक्षों को शाब्दिक अभिव्यक्ति देने के साथ ही उनकी **उपमाओं एवं रूपकों में प्रकृति के गूढ़ अर्थों को प्रतिपादित** किया गया है। यथा– कम्बूपमाग्रीवां, चमूरुपोतक्याइव सलज्जा मन्दगतिः, परभृतिकाया इव मधुवचनोपन्यासः, पारिजातपुष्पमिव मन्दस्मितं, साक्षात्सरस्वत्या इव मनोहरिणबन्धनरज्जुकल्प वीणावादनम्, बोधिवृक्षमूले निषण्णस्तथागत इव मोगीरामो, अमरवल्लीकोमला तत्प्रिया, आत्मकल्पिततन्तुजालनिंष्यिलुतेव सा एकाकिनी, कोकिलं विना सहकारवनं, सजलजलधर इवानुरागसम्भारः तस्य मनोऽम्बरे, रूद्राक्षब्रीजमिव शर्करिला, निहार बिन्दुनिचित प्राभातिकनव्यकमलिनीपत्रयुग्ममिव, निशीथनिपतितनिहारबिन्दूच्चयविराजित बालकदलीपत्रमिव, प्राभातिक पारिजातमञ्जरीव, निमीलितशङ्कुमुखशुक्तियुगलीव नयनयुगली, शरविद्धा वृद्धविहगीव, चन्द्रोदयोच्छवसितः सिन्धुरिव ममापघनेषु आन्दोलनम् आदि कुछ उदाहरण मात्र है। ऐसी असंख्य उपमाएं, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वाभावोक्ति आदि अलंकारो को सुशोभित करता कविवर का **प्रकृति-चरित्र का ज्ञान अद्भुत है, गहन है, सूक्ष्म है, सटीक है, तर्क संगत है, सुन्दर है, बोधगम्य है और अपने मन्तव्य को स्पष्टीकरण देने में सक्षम है। कवि की उपमाओं में प्राकृतिक प्रतिमान स्वयं में शोध के योग्य विषय बन सकते हैं।** कविवर की प्रकृति की समझ, निरीक्षण एवं अवलोकन सूक्ष्म है, दर्शनीय एवं विवेचनीय है।

सन्दर्भोल्लेख

1. यास्क, निरूक्त, 12/13
2. वही, वही, 11/13
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोष, पृष्ठ 259
4. मम्मट, काव्यप्रकाश, 1/3
5. वामन, अग्निपुराण, 1.3.1
6. श्रीमद्भगवतगीता, 6/5
7. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–20
8. कालिदास, रघुवंशम्, 2/2
9. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–22
10. वही, वही, पृष्ठ–26
11. वही, वही, वही
12. वही, वही, पृष्ठ–32
13. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–45
14. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, 19
15. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–67
16. भारवि, किरातर्जुनीयम्, 1/5
17. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–93
18. वही, पुर्ननवा, पृष्ठ–70
19. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–106
20. वही, पुर्ननवा, पृष्ठ–93
21. वही, वही, पृष्ठ–100
22. वही, वही, पृष्ठ–123
23. वही, वही, पृष्ठ–131

24. वही, वही, वही

25. वही, वही, पृष्ठ—130

26. वही, वही, वही

27. वही, वही, पृष्ठ—134

28. वही, वही, वही

29. वही, वही, पृष्ठ—135

30. वही, वही, पृष्ठ—142

31. वही, वही, वही

32. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 1/117

33. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, पृष्ठ—28

34. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—143

35. केनोपनिषद्, 1/1

36. वामनशिवराम आप्टे, संस्कृतहिन्दी शब्दकोष, पृष्ठ—450

37. डॉ. कृष्णाकांत पाठक, धर्म—दर्शन, पृष्ठ—32

38. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—22

39. वही, वही, पृष्ठ—45

40. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 6/14

41. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ—88

42. वही, वही, पृष्ठ—94

43. वही, वही, पृष्ठ—21

44. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—129

45. वही, राङ्गडा, पृष्ठ—31

46. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—128

47. श्रीमद्भगवतगीता, 2/47

48. मुण्डकोपनिषद, 2/2/8

49. कठोपनिषद्, 1/2/23

50. ऋग्वेद, 7/86/6

51. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–134

52. यजुर्वेद, 40/2

53. अभिराजराजेन्द्रमिश्रः पुनर्नवा, पृष्ठ–135

54. वही, वही, पृष्ठ–5

55. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–12

56. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–17

57. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–68

58. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–111

59. वही, वही, पृष्ठ–75

60. श्रीमद्भगवतगीता, 7/18

61. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ–659

62. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–13

63. वही, वही, पृष्ठ–36

64. वही, वही, पृष्ठ–43

65. वही, वही, पृष्ठ–55

66. वही, वही, वही

67. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–140

68. वही, वही, पृष्ठ–142

69. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–140

70. वही, वही, पृष्ठ–58

71. वही, वही, पृष्ठ–08

72. वही, वही, पृष्ठ–15

73. वही, वही, पृष्ठ–68

74. वही, वही, पृष्ठ–71

75. वही, वही, पृष्ठ–85

76. वही, वही, पृष्ठ–70

77. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–55

78. वही, वही, वही
79. वही, वही, पृष्ठ—71
80. वही, वही, पृष्ठ—109
81. वही, वही, पृष्ठ—122
82. वही, वही, पृष्ठ—142
83. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—19
84. वही, वही, पृष्ठ—26
85. वही, वही, पृष्ठ—44
86. वही, वही, वही
87. वही, वही, पृष्ठ—42
88. वही, राङ्गडा, पृष्ठ—01
89. वही, वही, पृष्ठ—07
90. वही, वही, पृष्ठ—19
91. वही, वही, पृष्ठ—92
92. वही, वही, पृष्ठ—46
93. वही, वही, पृष्ठ—52
94. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—45
95. वही, वही, पृष्ठ—132
96. वही, वही, वही
97. वही, वही, पृष्ठ—140
98. वही, वही, वही

षष्ठम अध्याय

षष्ठम अध्याय

कथाशास्त्रीय तत्त्वों एवं समसामयिकता के आधार पर मिश्र जी का समीक्षण

किसी भी साहित्यकार के साहित्य में उसका मानस, दृष्टिकोण, चिन्तन एवं ज्ञान परिलक्षित होता है। काव्य में कवि के भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों प्रस्फुटित होते हैं। इन दोनों पक्षों को समेटते हुए कविवर के कथा साहित्य एवं अन्य विधाओं का सार समीक्षण, जीवन दर्शन, मूलमंत्र, उपादेयता, मौलिकता, प्रांसङ्गिकता, उनकी सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, दलित, धार्मिक, ऐतिहासिक, नारी चेतना, उनके दार्शनिक, शास्त्रीय, व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक, प्रकृति चित्रण आदि की समीक्षा के साथ उनके काव्य में अलंकार, रस, रीतिसंघटना एवं भाषायी वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

इस खण्ड में कथाविधा के शास्त्रीय मानकों पर कविवर के कथा–साहित्य को समझने एवं व्याख्यायित करने का लक्ष्य मैंने रखा है। मुख्यतः मैंने कथानिका संग्रह पर ही चित्त को एकाग्र करना चाहा था, परन्तु लघुकथा संग्रह चित्रपर्णी पर दृष्टिपात् करने का लोभसंवरण नहीं कर पायी। चूँकि संस्कृत कथानिका कवि के मन्तव्य के अनुसार प्राचीन शास्त्रीय 'कथा' के निहितार्थों की अपेक्षा अधुनातन हिन्दी कहानी के अन्तर्निहित मानदण्डों के अधिक निकट प्रतीत होती है। अतः कथाशास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर समीक्षण से पूर्व मुंशी प्रेमचन्द की कहानी की परिभाषा को उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है।

मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है–'कहानी एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेख का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथाविन्यास–सब उसी एक भाव की पुष्टि करते हैं। वह एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।'[1]

एक अन्य संदर्भ में वे पुनः कहते हैं 'सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित होती है।'[2]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा संसार में राङ्गडा की नौ, इक्षुगन्धा की आठ, पुनर्नवा की ग्यारह कथानिकाएं तथा चित्रपर्णी की बाँसठ लघुकथाएं मेरी शोध समीक्षा की विषय है। पुनर्नवा के 'नान्दीवाक्' में प्रस्तुत कथा विधा के विस्तार समीक्षण के दृष्टिकोण से देखने पर चित्रपर्णी की बाँसठ कथाओं को स्वंय कवि ने लघु कथा, खण्ड कथा अथवा Short Story के नाम से तथा शेष कथाओं को अग्निपुराण द्वारा प्रस्तावित कथानिका नाम से परिभाषित किया है। उनका मानना है कि 'प्राचीन शास्त्रीय 'कथा' शब्द वर्तमान में प्रचलित 'कहानी' का प्रतिनिधित्व नहीं करता अपितु वासवदत्ता, कादम्बरी, उदय सुन्दरी कथा जैसी दीर्घकलेवरा कथाओं के लिए प्रयुक्त होता है।'[3]

संस्कृत साहित्य में प्राचीन शास्त्रीय रूढ़ **'कथा'** एवं वर्तमान **'कहानी'** में तात्त्विक दृष्टि से भिन्नता है। इसलिए संस्कृत में हम परम्परागत दीर्घकथाओं से भिन्न आज की कहानी को कथानिका शब्द से पुकारे तो उचित होगा। कथानिका शब्द हिन्दी की कहानी के नजदीक है। वह एक ऐसी गद्य रचना है, जो छः तत्वों पर आधारित है :–

1. कथावस्तु 2. पात्र 3. संवाद 4. परिवेश 5. शैली तथा 6. उद्देश्य।

जीवन के किसी एक मनोभाव अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य रूपी मौलिक संवेग को लेकर कथाकार चलता है। उस मनोवैज्ञानिक सत्य, संवेग अथवा जीवन के किसी एक पक्ष को अभिव्यक्त करने में पात्र, संवाद, वातावरण, शैली व कथावस्तु सहायक होते हैं। उस मूलभाव को सामाजिक हृदय के अन्तस्थल में प्रतिष्ठापित करना ही कथाकार का उद्देश्य होता है।

एक समकालीन कथाकार समकालीन समाज को किस से प्रकार से देखता है? सामाजिक समस्याओं को कैसे महसूस करता है? उनके समाधान के प्रति उसकी क्या विचारधारा है? साहित्यसाधना से वह किस साध्य को साधना चाहता है? उसके साध्य में कथाओं के पात्र, उनके संवाद, कथाओं का परिवेश, भाषा तथा कथाविन्यास कितनी सार्थकता प्रदान करते है? इस सभी बिन्दुओं पर विचार करना प्रासंगिक है। यहां कथाशास्त्रीय मानकों पर कवि के कथा साहित्य की समीक्षा कथानिका के छः तत्त्वों के दृष्टिकोण से प्रस्तुत है–

1) कथाकार की कथावस्तु

कथानिका की कथावस्तु अर्थात् कथ्य उसकी आत्मा है। यह उसका मूल तत्त्व है। उपन्यास अथवा दीर्घकथा की तरह यहां घटनाओं की बहुलता का अभाव होता है। एक घटना, एक मनोभाव अथवा जीवन के किसी एक आयाम को लेकर ही कथा का विन्यास किया जाता है। एक भाव को लेकर जिस रोचकता, सक्रियता, सहजता एवं प्रभावशीलता के साथ कहानी चरमोत्कर्ष पर निर्बाध रूप से पहुंचकर पाठकों के हृदय को झकझोर देती है, यही उसकी विलक्षणता है। कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र के शब्दों में –'लघ्वाकृति, संवेदनैक्य, प्रभावात्मकता, सत्याश्रितता, मनोवैज्ञानिकता एवं सक्रियता – कहानी के प्रमुख संघटनात्मक वैशिष्ट्य है।'[4]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा साहित्य की विषयवस्तु सर्वथा समकालीन समाज को अपने भीतर समेटे हुए है। अधुनातन समाज के भीतर के द्वन्द्व को, उसकी व्यथा को, उसके प्रश्नों को तथा उसकी समस्याओं को उनकी कथाओं में समाधान एवं विश्रान्ति प्राप्त होती है। कविराज की कथाओं में प्राचीन जीवन मूल्यों, नैतिक मर्यादाओं, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं समसामयिक अपेक्षाओं में अद्भुत समन्वय है। वे आँख बन्द करके प्राचीन एवं अप्रासंगिक परम्पराओं का अनुसरण नहीं करते, परन्तु मर्यादा का उल्लंघन भी कदापि नहीं करते। कथाओं में नवीन एवं प्राचीन के ग्राह्य विषयों को शिरोधार्य करके अप्रासंगिक को विनम्र अस्वीकृति प्रदान करते हैं। अधुनातन समाज एवं अधुनातन समस्याएं उनकी कथाओं का कथ्य है। न तो वे आधुनिकता के नाम पर पुरातन गरिमामयी परम्पराओं का त्याग करते हैं और न ही प्राचीन विरासत के नाम पर व्यर्थ लकीर पीटने का कार्य करते हैं। नवीन युग की समस्याओं एवं नवीन विचाराधारा को उदारमना कवि हृदय से स्वीकार करते है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाएं विवरणात्मक है, संस्मरणात्मक है, आत्मकथ्यात्मक है, संवादात्मक है अथवा डायरी विधा में है। उनमें जीवन की झलक है तथा सहृदय पाठकों को आन्दोलित कर देने वाली चिंगारी है। पूरा समाज विशेषतः नारीमन कवि हृदय के साथ एकाकार हुआ है तथा उनकी कथाओं में अभिव्यक्त हुआ है। भारतीय समाज का ऐसा कोई आयाम नहीं है, जो उनकी दृष्टि से अछूता रहा हो। कम या ज्यादा रूप में उन्होंने हर विषय को स्पर्श किया है। लोकजीवन कथाओं में अपने यथार्थ स्वरूप में विद्यमान है।

स्त्री संवेदना कवि के कथा संसार की केन्द्रीय विषयवस्तु है। वस्तुतः किसी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र के केन्द्र में स्त्री ही मुख्य भूमिका में होती है। नारी से संवेदनाएं है, खुशियां है, उमंग है, उत्साह है, उल्लास है, उत्सव है, रंग है, ऊर्जा है तथा बंधन है। यदि स्त्री प्रसन्न है तो वह पूरे परिवार व समाज को खुशियां बाँटती है। यदि वह स्वयं व्याकुल है तो दूसरों को खुशियां कैसे दे सकती है? उस पर वर्तमान पीढ़ी (पति व अन्य हम उम्र रिश्ते) पुरानी पीढ़ी (सास–श्वसुर आदि) तथा नई पीढ़ी (संतति) तीनों की प्रसन्नता निर्भर करती है। इसलिए भी उसका स्वस्थ व प्रसन्न रहना अनिवार्य है। इसी कारण हमारी संस्कृति के मनोवैज्ञानिक तत्त्ववेत्ता 'यत्र नार्यस्तु, पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'[5] का उद्घोष करते हैं।

नारी की अस्मिता एवं उसकी समस्याओं से जुड़े प्रत्येक विषय को कविवर ने न केवल उठाया है बल्कि उसका सही समाधान भी प्रस्तुत किया है।

नारी उपभोग की वस्तु है, भोग्या है, उसका महत्त्व उसके शारीरिक सौन्दर्य से आंका जाता है और उसी सौन्दर्य को विकृत करने का कार्य भी यही समाज करता है और फिर दूसरे के द्वारा उसके साथ किए अन्याय की सजा उसे ही दे दी जाती है। **इस विडम्बना पर** उन्होंने **प्रहार किया है।** उनकी जिजीविषा, कुक्की, चञ्चा, नर्तकी, मरून्यग्रोध, पुनर्नवा आदि कथाओं में इस विषय पर उन्होंने प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है। यथा–'न कुत्रापि गुण शिक्षाशीलमूल्यम्। सर्वत्रैव यौवनमूल्यम्।'[6]

अपि च

'उभयसाधारणे हि संभोगसुखे.......................................कुलटा व्यभिचारिणी वा सैव ख्याप्यते न पुरुषः। कलङ्कितं जीवनं सैव दुर्वहति न खलु पुरुषः।'[7]

भोग्या की अवधारणा के कारण ही उपभुक्ता स्त्री अपवित्र है। ऐसी विकृत मानसिकता प्राचीन काल से ही जनमानस में व्याप्त है। इस धारणा से स्त्री का जीवन निर्दोष होते हुए भी नरक हो गया है। बहुत तर्किक समाधान 'पुनर्नवा' कथा में कवि ने दिया है, जो प्रशंसनीय, वरेण्य एवं अद्भुत है। वे कहते हैं–

'न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते पुष्पमासमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।।'[8]

विधवाविवाह, पुनर्विवाह, अन्तर्जातीय विवाह एवं प्रेमविवाह के पक्ष में बात करते हुए वे स्त्री के नवजीवन के पुननिर्माण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। शास्त्रीय मतों से पुष्टि करते हुए वे कहते हैं– 'वैधव्यमात्र न भवति विधवाया नियतिः। तन्नियतिस्तु तत्सौभाग्यम्।'[9] पुनर्नवा, वाग्दत्ता, सुखशयितप्रच्छिका, इक्षुगन्धा, भग्नपञ्जर, चञ्चा, पोतविहगौ, मरूंन्यग्रोधः नर्तकी आदि कथाओं का कथ्य **वैवाहिक विसंगतियों को** समेटते हुए **समसामयिक** औचित्यानुसार आदर्श **समाधान** प्रस्तुत करता है।

संतानहीनता से आई अन्तहीन शून्यता एवं मानसिक पीड़ा को कवि ने वन्ध्या एवं सपत्नी कथा में अपनी कुशल लेखनी से उकेरा है और उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है– 'सन्ततिप्रजननं नाम न केवल पत्न्या दायित्वम्। वस्तुतः उभयसंविभक्तमिदं दायित्वम्।'[10]

नर्तकी एवं चञ्चा कथाओं में **वेश्यावृत्ति** एवं वेश्या की संवेदनशीलता, मानवीय एवं सकारात्मक पक्ष का वर्णन करते हुए उनके सौभाग्य का मार्ग प्रशस्त किया है। एक संवेदनशील, सजग एवं जिम्मेदार साहित्यकार के रूप में उन्होंने सम्पूर्ण स्त्री समाज को मुख्यधारा से जोड़कर उनके कल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया है। प्रो. पुष्पा दीक्षित उनके इसी मन्तव्य का उल्लेख करते हुए कहती हैं– **'असहाय विधवा, परित्यक्ता और व्यभिचारिता नारियां भी सौभाग्यमण्डित गार्हस्थ्य में प्रतिष्ठित होकर रहें, यह संदेश देकर वे भारतीय गार्हस्थ्य धर्म की विश्वजनीनता का उद्घोष कर रहे हैं।'**[11]

दाम्पत्य-जीवन की अस्थिरता, पारिवारिक टूटन एवं बिखराव वर्तमान समाज की बड़ी समस्या है। एकचक्रः कथा में आदर्श दाम्पत्य जीवन का स्वरूप प्रस्तुत किया है– 'निष्ठैव दाम्पत्यमूलम्।'[12]

संकल्प कथा पलायनवाद की आधुनिक समस्या का चित्राकंन करते हुए सवर्ण–अवर्ण के भेदभाव को भी प्रस्तुत करती है। गाँव खाली हो रहे है। शहरों में भीड़ बढ़ रही है। कृषि व्यवस्था व पारम्परिक व्यवसाय खतरे में है। सवर्ण – असवर्ण के बीच की खाई बढ़ रही है। इस समस्या पर उन्होंने इस कथानिका के अतिरिक्त कुलदीपकः कथा में भी प्रकाश डाला है।

न्यायमहं करिष्ये एवं महानगरी कथा **दूसरे की संतति** के प्रति **असंवेदनशीलता** का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करने वाली दुखान्त कथाएं है। इसके उदाहरण हमें समाज में अकसर मिल जाते है। संवेदनहीनता की शिकार उस समस्त पराश्रयी संतति के साथ कवि मन

एकाकार हुआ है। उनका कथा–काव्य समाज को प्रतिबिम्ब दिखाते हुए उसकी निष्ठुरता पर प्रहार करता है–'कस्माज्जनाः स्वसंततिं शुनश्शेपीकृत्यान्येभयः समर्पयन्ती!!'[13]

विवाहेतर सम्बन्धों का सच उजागार करती ध्रुवस्वामिनी कथा, नायिका को अन्त में सही मार्ग के चयन का रास्ता दिखाती है।

हम देखते हैं कि सभी कथाओं की विषय–वस्तु में जीवन के किसी एक अंग अथवा मनोभाव को पकड़कर शेष तत्त्वों को कथ्य के विकास का पूरक बनाया गया है। उनकी कथाओं में मनोवैज्ञानिक सत्यों का ही विश्लेषण है। **मन के भावों के ताने-बाने को सुलझा कर, जीवन को उलझनों से उन्मुक्त करने का कार्य ही उनकी कथावस्तु करती है।** ये सभी कथाएं किसी एक भाव अथवा संवेदना के ताने–बाने में बुनी गई है, परन्तु फिर भी सम्पूर्ण जीवन से जुड़ी हुई है। इस एक भाव से पूरा जीवन जुड़ा हुआ है। कथाएं मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण है। प्रत्येक कहानी का एक मौलिक संवेग है। उसी का तार्किक, सहज, सरल, रोचक विकास करते हुए जीवन के कल्याण रूपी लक्ष्य तक पहुंचने का पथप्रशस्त किया गया है।

साहित्यकार समकालीन समाज एवं उससे जुड़ी संवेदनाओं अथवा समस्याओं का चित्रण सामान्यजन के मानस तक जाकर उनके मन की गांठों को खोल देता है। उनके सपनों को उन्मुक्त गगन में विचरने को पंख देता है। वही कार्य कवि ने अपनी कथाओं में किया है।

कुछ कहानियां ऐतिहासिक कथानक पर आधारित है। इतिहास वर्तमान का शिक्षक है तथा भविष्य का मार्गदर्शक है। अतः इतिहास भी मानवकल्याण के पुनीत लक्ष्य को प्रतिपादित करता है। ऐतिहासिक कथाओं में भी कथ्य मानवमनोभूमि ही है। सिंहसारिः, राङ्गडा, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी, अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा जैसी कथानिकाएं इतिवृताश्रित होते हुए भी मानवीय संवेदनाओं का ही विश्लेषण करती हैं।

कथाओं का कथ्य, सामान्य सामाजिक के मन का कथ्य है। उनमें सहज एवं सरल गति है। कथाओं में कहीं भी भटकाव अथवा ठहराव नहीं है। कथाओं में रोचकता अथवा जिज्ञासा है। गति में बाधा नहीं है। साहित्यदर्पण के 'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्'[14] का अक्षरशः पालन करते हुए इतिवृत्त एवं सरसता का अदभुत समन्वय किया

है। को वे कथा का उपलक्षण मानते हैं। उनकी कथाओं की विषयवस्तु कहीं भी शिथिल नहीं हुई है। कथाओं का प्रारम्भ एवं अन्त मजबूत है।

चित्रपर्णी की लघु कथाओं के कथ्य की बात करने से पहले यह जानना उचित है कि खण्डकथा अथवा लघुकथा में आंशिक अथवा एकदेशीय वर्णन होता है। कथानिका में एक पक्ष का वर्णन होता है, परन्तु सायाम होता है। एक अल्पकालखण्ड में सरलता से पढ़ी जा सकने वाली लघुकथा, लघु आकार वाली होते हुए भी सुगठित संरचना वाली है। **एक संवेग बिजली की तरह कौंधता है और कहने से ज्यादा इशारा कर जाता है।**

चित्रपर्णी की बाँसठ लघुकथाओं में वर्तमान समाज की सारी समस्याओं को उठाया गया है। अभिनयः द्विसन्धनाम्, पितृभक्तिः, आत्मविश्लेषणम्, मद्यनिषेधः, काष्ठभाण्डम्, संस्कृतवर्षम्, पिशाचः राष्ट्रपतिपुरस्कारः, पात्रत्वम् जैसी लघुकथाएं अद्यतन समाज के **दोहरे चरित्र** को प्रतिपादित करती हैं। यहां जैसा दिखता है वैसा होता नहीं, परन्तु अंततोगत्वा सत्य उजागार होता ही है– 'व्यंसकमयूरत्वं तस्य सर्वैरद्य ज्ञातमेव।'[15]

इदंप्रथमतया, प्राणभयम्, अश्रुमूल्यम्, छागबलि, वृद्धामहिषी, कृतज्ञः, नयनयोर्भाषा, वैराग्यम्, आदि कथाओं में पशुपक्षी, प्रकृति आदि को विषय बनाते हुए बिगङते **पर्यावरणीय समीकरणों** को दर्शाते हुए पर्यावरण चेतना जागृत करने का कार्य अभिराज राजेन्द्रमिश्र करते है।

विवाह सम्बन्धों की विषमताओं को लेकर लिखी गई जामाता, आद्यन्तम्, पत्रसंवादः, वरान्वेषणम्, अभिरूचिः, पितुह्रदयम्, प्रीतियोगः, गौर्यावरः, लिखितमपि ललाटे, युद्धविरामः, वाग्दत्ता आदि लघुकथाएं मस्तिष्क में एक कौंध की तरह चमक कर जीवन को आलोकित कर जाती है।

जीवनमूल्यों का उपदेश देती प्रतिशोधः, निर्णयः, दायित्वबोधः, यशोलिप्साः, परिवर्तनम्, न्यायाधीशः, कल्पवृक्षः, साक्ष्यम्, दृष्टिलाभः, वेतनम्, वाहनसार्थक्यम्, गुरूदक्षिणा, कोऽनुकरणीय, उर्ध्वरेता, भिक्षुकः, नियतिकौशलम्, दस्सहम्, वात्सल्यामृतम् जैसी लघुकथाएं **छोटे-छोटे उपदेशवाक्यों से जीवन बदल देती है। ये छोटे-छोटे तीर है, जो ह्दय पर जाकर लगते हैं और दृष्टिकोण बदल देते हैं-**

'संस्कारवत्त्वाद् रमयत्सु चेतः प्रयोगशिक्षागुणभूषणेषु।
जयं यथार्थेषु शरेषु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशशंसे।।'[16]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं की कथावस्तु सच्चे अर्थों में समाज को प्रतिबिम्बित करते हुए समाधान का मार्ग प्रदान करती है तथा शास्त्रीय मानकों पर भी खरी उतरती है। सामाजिक सरोकार उनकी कथाओं के विषय बने हैं। नारी चूंकि उनकी कथाओं के केन्द्र में है। अतः नारी चेतना से जुड़े विषय जैसे बाल–विवाह, विधवा–विवाह, पुनर्विवाह, अर्न्तजातीय–विवाह, बलात्कार, यौन–उत्पीड़न, कन्या–भ्रूणहत्या, दहेज, वेश्यावृत्ति, वन्ध्यावस्था, सपत्नी–पीड़ा, सौतेली माँ की अवधारणा, लिङ्गभेद आदि विषयो पर संवेदनशीलता के साथ लिखते हुए पुरातनपंथी अन्धानुकरण का तार्किक खण्डन किया है तथा नवीन पंथ के अनुसरण का मार्ग प्रशस्त किया है। स्त्री–विमर्श के अतिरिक्त भी अन्य समसामयिक विषयों जैसे–भ्रष्टाचार, पर्यावरण, चारित्रिक दोहरापन, राजनीति, इतिहास, धर्म, संस्कृति, आर्थिक प्रगति को कथाओं में समाहित करते हुए काव्य के **'शिवेतरक्षतये'** के पुनीत लक्ष्य को पूर्ण किया है।

कहा जा सकता है कि कथाशास्त्रीय मानक के आधार पर एक मनोवैज्ञानिक सत्य के विश्लेषण, एक भाव के अर्न्तद्वन्द्व, मानवमन के झञ्झावात, मानवमन की कोमल मनोभूमि को अपनी कथनिकाओं में सूत्रबद्ध करके जीवन से अमंगल का नाश, सत्यान्वित सुन्दर शिव को साधने का सार्थक पुरुषार्थ किया है। एक ही मनोभाव कथाओं के अङ्गप्रत्यङ्ग में पूरित होकर, जनमंगल के लक्ष्य को प्रतिपादित करता है। कवि की कथावस्तु शास्त्रीय कसौटी पर शतप्रतिशत खरी साबित होती है। उनका कलेवर लघु होते हुए भी कथाएं अपने कथ्य को स्फोट की तरह ध्वनित करती है। वे संकेत करती हैं। अपने पाठक को शिथिल नहीं होने देती। उनकी कथाओं में संरचनात्मक कसावट है। वे पाठकों पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं। उनकी कथाओं में तारतम्य प्रारम्भ से अन्त तक टूटता नहीं है। वे अपनी मंजिल पर जाकर ही रूकतीं हैं। इसी सातत्य का संकेत करते हुए कथानिका को 'The Story is like a horse race'[17] कहा गया है।

2) कथाकार का वातावरण-चित्रण

विषय एवं उद्देश्य के अनुसार वातावरण–चित्रण का कथाओं में विशेष स्थान है। यह वातावरण भौगोलिक परिवेश के रूप में हो सकता है अथवा कथा–पात्रों की मनोभूमि के रूप में हो सकता है अथवा किसी दृष्टिकोण अथवा सिद्धान्त के रूप में हो सकता है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र की कथाओं में परिवेश का सार्थक चित्रण हुआ है। चूंकि कथाओं की

विषयवस्तु आधुनिक है, इसीलिए परिवेश भी नवीन है। कथाओं के पाठक की भावभूमि के अन्तःस्थल से साक्षात्कार करने में कहानियों का परिवेश वर्णन महती भूमिका निभाता है। अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं का वातावरण चित्रण कथाओं को जीवन्त एवं मूर्त रूप दे देता है। वातावरण का ऐसा चित्रण, जिससे हम कहानी के पात्रों के बीच जा पहुंचते हैं, हम कहानी को जीने लगते हैं, उन्हें महसूस करने लगते हैं, पात्रों से बातें करने लगते हैं, उनकी मनःस्थिति को महसूस करने लगते हैं। यही उनके वातावरण चित्रण की सार्थकता है।

इक्षुगन्धा में **मिर्जापुर जनपद के प्राकृतिक-सौन्दर्य का अनुपम चित्र** खींचा है। विन्ध्याचल पर्वतश्रृंखला से घिरा हुआ यह जनपद मानो स्वर्गखण्ड है –

'जनपदमिदं सत्यमेवं स्वर्गशकलीभूतम्। विन्ध्यश्रेणिभिश्चतुर्दिक्षु समावृत्तं वर्तते। क्वचिन्निरन्तरालवंशगुल्ममण्डितं क्वचिदुच्चावचशिलाखण्डशर्करिलं क्वचिल्लघुपल्वलनिचितं क्वचिद्विपुलमालक्षेत्रसंवलितं क्वच्चिशोणजलप्रवाहपावितं वर्तते। विन्ध्यपर्वतोपत्यकासु उद्योगपतिभिः स्वकर्मशालाः स्थापिता वर्तन्ते.................जनजातिसंकुलमपि गिरिशिलाप्रायमपि जनपदमिदं खनिजदृष्ट्या भारतवसुन्धरारत्नभूतं वर्तते।'[18]

जिजीविषा कथा की नायिका की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म एवं मार्मिक चित्रण किया गया है। नायिका का सर्वस्व लुट चुका है। उसे सब कुछ निरर्थक प्रतीत हो रहा है। नौका के दूर जाने पर नाविक तथा रस्सी के दूर जाने पर घड़े की स्थिति से साम्यता के साथ नायिका की मनःस्थिति का वर्णन अतिसुन्दर बन गया है– 'अस्तित्वमपि मे परिवर्तमानमिति दृढ़ं प्रतीयते। रात्रौ निकामं शयितव्यं नास्ति। निमीलितप्राय एव नयनयुगले दौर्भाग्यशरविद्वा में कृतकतनयभूताः स्वप्नकुरङ्गशावकाः सम्भावनादर्भकवलमिव याचमाना मत्समीपमायान्ति। परन्तु किं करोमि मन्दभागिनी? पोतभङ्गे जाते सन्तरणाय कियदेव प्रयतितं मया। भो दिष्टम्! न विधिः पक्षपक्षधरोऽभूत्। भग्नायां रज्जौ के घटं धारयन्ति?'[19]

अनामिका कथा में **प्रातः कालीन भ्रमण के समय दृश्यमान परिवेश का स्वाभाविक वर्णन** पढ़कर सारा वातावरण हमारी दृष्टि के समक्ष संजीव हो उठता है। रात के अंधेरे में कन्या शिशु को मृत्यु के मुख में छोड़कर चले जाने की संवेदनहीन घटना का रहस्योद्घाटन कथाकार के प्रातः कालीन भ्रमण के समय होता है। दीर्घकालीन अंधकार के अनन्तर भोर

के उजियारे की सक्रियता देखते ही बनती है। भ्रमण में व्यवधान की एक समाज विज्ञानी के रूप में व्याख्या दर्शनीय है –

'प्रायेण सहचरे सति पर्यटनसुखं क्षीयते। हरिस्मरणस्य अभिमतमंत्रजापस्य अतीतजीवनानुभवस्य प्रकृतिविच्छित्तिदर्शनस्य जनजीवनावलोकनस्य दिवास्वप्नादिकस्य वा का कथा ?......................सहचरः पुनः शान्तपल्वले लोष्टाघातमिव विदधत् वाग्वज्रं मुञ्चति.............। एवं हि सहचरेण शनैश्चरायते।'[20]

कविवर ने अपनी चित्रण क्षमता से इलाहाबाद नगर के केन्द्र में स्थित मीरगञ्ज का साक्षात् स्वरूप खड़ा कर दिया है। बहुमंजिला इमारतों वाली धनकुबेरों की नगरी को कथाकार की भाषा ने साकार रूप प्रदान कर दिया है –

'पत्रपुटावशिष्टभक्ष्यजातं परिलिहन्तो बहिरागतप्रायनेत्रगोलका अर्धमृता रथ्याकुक्कुराः क्षतविक्षतजानुशिखरा भारनिर्वहणाक्षमतया दयमानैः स्वार्थान्धस्वामिभिः स्वैरमरणवरणाय निर्मुक्ताः स्थविरवैशाखनन्दनाः, यत्र कुत्रापि पटट्शणनिर्मितं छिद्रबहुलं प्रसेवमास्तीर्य भूस्वाम्युचिताधिकारेण निषद्य सनिकारं प्रदीयमानं भैक्ष्यं संहरन्तो नित्यभिक्षुकाः, निखिलमपि हट्टं पतिवेतनमुषितैरल्पधनैः क्रेतुकामा आदिवसमापणादापणं परिभ्रमन्त्यो गृहसेविकोत्सेकिन्यः सुभगम्मन्याः प्रगल्भवनिताश्च मीरगञ्जक्षेत्रं नितरां सम्भूषयन्ति।'[21]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं की वर्णनात्मकता कथाओं की विषयवस्तु को पूरकता प्रदान करते हुए कभी उनकी भौगोलिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक परिवेश, राजनीतिक वातावरण अथवा ऐतिहासिक विरासत का भव्य वर्णन करती है तो कभी कथाओं की मानसिक पृष्ठभूमि की मनोवैज्ञानिक व्याख्या, दार्शनिक दृष्टिकोण अथवा समाजशास्त्रीय परिकल्पना प्रस्तुत करती है। वातावरण की इन झांकियों के बिना कथावस्तु पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाती।

राजमहल के ऊपर खुले आकाश के तले रत्नजटित शय्या पर शयन करते, हस्तिनापुरनरेश की **मनोदशा की विविधता एवं तारों भरी रात के वर्णन** के बिना कथा का सौन्दर्य अधूरा ही रह जाता। कवि कहते हैं– 'राजप्रासादोपरि मुक्तव्योमाधस्तलेऽधिरत्नशय्यं शयानोऽसौ निर्निमेषदृष्टया नक्षत्रमण्डलाभिमुखं पश्यन्नासीत्। तस्य दृष्टिः कदाचिद् ध्रुवनक्षत्रप्रदक्षिणापरं सप्तर्षिमण्डलं, कदाचिच्छरविद्धमृगरूपधारि मृगशीर्षनक्षत्रं चावलोकितवती।

कदाचिदसौ कृतिकाः दृग्भ्यां पिबन्नासीत्। एवं प्रतीयतेस्म यथा विस्तृते पिठरे केनचित् धवलधवला अगणितमुक्ता विकीर्णाः स्यु।'[22]

संकल्प कथा में **रेल्वे स्टेशन की हलचल के साथ वासन्ती प्रातःकाल का सुन्दर चित्रण** करते हुए वे कहते हैं— 'अयष्पथगन्त्र्या हैदरपुराख्ये स्थानके तस्मिन्दिने महान् जनसम्मर्द आसीत।.. ....वासन्तोऽयं प्रभातकालः समधिकरमणीयः प्रतिभाति स्म! रात्रिनिपतितमधूकपुष्पपरिमलैः समग्रमपि वातावरणं क्षीबमिवासीत्। कलायपरिमाणैः सहकारफलप्रकरैः श्रुतिकुण्डलानीव धारयन्ती, पलाशपुष्पारूणाधरा, भ्रमरगुञ्जनवाङ्मती धरित्री विचित्रैव प्रतीयते स्म।'[23]

बाणभट्ट के पूर्वजों की गौरवशाली शृंखला तथा उनकी विलक्षण एवं अद्भुत साहित्यिक एवं बौद्धिक परम्परा को गरिमा प्रदान करते हुए अभिराज राजेन्द्रमिश्र अपने कथ्य को सार्थकता प्रदान करते है। पूरी कहानी इस संकल्पना पर आधारित है कि कवि वो कहना चाहते है, जो बाणभट्ट के बारे में नही कहा गया है अथवा बाणभट्ट स्वंय नहीं कह पाये हैं। इस लक्ष्य के लिए विषयवस्तु के साथ–साथ वर्णनशैली भी साध्य बनी है। भोजनोपरान्त विश्रामशाला में भित्तिफलक पर बाणभट्ट के वंशवृक्ष को देखते हैं। अपने दृष्टिकोण को जिस प्रकार व्याख्यायित करते हैं वह दर्शनीय है— 'महाकविपूर्वजानां कुबेराऽच्युतहरेशानपशुपत्यर्थपतिचित्रभानुप्रभृतीनां चित्राणि वर्णदिप्रयोगदक्षचित्रकृद्घटितानिभित्तिन्यस्तान्यासन्। तत्सर्वं विस्फारितविलोचनाभ्यां निपिबन्निवाहं कश्चिदन्य एव संवृत्तः। निखिलोऽपि सारस्वतो वात्स्यायनवंशो महाकवेर्ममालोके प्रत्यक्षमिवाभासत्।'[24]

अभिराजीय कथाओं का भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक अथवा मनोवैज्ञानिक परिवेश उनकी कथाओं की विषय वस्तु तथा उद्देश्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुतः कथा के पात्र, उनके संवाद, उनकी शैली, उद्देश्य एवं विषय को समझने के लिए उस वातावरण की अनुभूति अति आवश्यक है, जिस वातावरण में वह घटना घटित हो रही है। यह सिर्फ और सिर्फ कवि की वर्णन क्षमता पर निर्भर करता है कि वह उस वातावरण को पाठक के मानस में कितना सजीव कर सकता है, जिसमें कथ्य उसके हृदय से एकाकार हो सके।

कवि की लेखनी इतनी सिद्धहस्त है कि कथाओं के परिवेश हमारे समक्ष मूर्तिमान प्रतीत होते हैं। तपती की परिस्थितियां, अनामिका की समाजशास्त्रीय स्थिति, एकहायनी की उत्पत्ति की विकट परिस्थिति, शतपर्विका के पिता की मनोदशा, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी का ऐतिहासिक व मानसिक परिवेश, भग्नपञ्जर में खींचा गया विधवा की सामाजिक एवं मानसिक संरचना का चित्र, महानगरी का रेलयात्रा एवं संगीता की मनोभूमि का वर्णन, पोतविहगौ, सिंहसारिः, राङ्गडा तथा अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा के ऐतिहासिक परिवेश, ऐतिहासिक पात्रों के भीतर के मानवीय संवेग, नर्तकी तथा चञ्चा में वर्णित शारीरिक व्यापार के स्थानों के भीतर की व्याकुल, विवश एवं अस्मिता के लिए छटपटाती स्त्री तथा अन्यान्य कथाओं में वर्णित मानवीय संवेदनाओं की जटिल शृंखलाओं को खोलते, सामाजिक परिवेश सभी अधुनातन विषयों में आबद्ध कथाओं को स्तरीय ऊँचाइयां प्रदान करते हैं। इस प्रकार अभिराज राजेन्द्रमिश्र कथाओं के परिवेश को उनके विषयों के अनुकूल बनाने में पूर्ण रूप से खरे उतरते हैं।

3) कथाकार के पात्र एवं चरित्र-चित्रण

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं के पात्र वर्तमान समाज के हमारे आस–पास विचरण कर रहे, सामाजिक विसंगतियों से व्याकुल, अपने जीवन को सुसंगत बनाने की जुगत में लगे लोकप्रसूत सामान्य प्राणी है। कथाओं के पात्र काल्पनिक नही है, वे यथार्थ से परे नहीं है तथा वे असम्भव आदर्श भी नहीं है। कथाओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि शायद इन पात्रों को हमनें अपने आस–पास ही कहीं देखा है। उनकी समस्याएं, वे समस्याएं हैं, जिनसे हम रोज रूबरू होते हैं। उनके संवेग, हमारे अपने संवेग प्रतीत होते हैं। उनकी कथाओं के पात्रों के हृदयों से हम एकाकार होते हैं। उनकी कथाओं के पात्रों से मानो हमारा प्रतिदिन साक्षात्कार होता है।

सामाजिक परिवेशगत जिन घटनाओं अथवा विसंगतियों को अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने अपनी लेखनी से उकेरा है, वे विसंगतियां प्रतिदिन हमारे आस–पास हमारे अपनों के साथ, हमारे स्वयं के जीवन में घटित हो रही है। इन पात्रों की पीड़ा को हम रोज सुनते है, समाचार पत्रों व टी.वी चैनलों पर देखते हैं ।

पिता की दुलारी जिजीविषा की तपती उन समस्त कन्याओं का प्रतिनिधित्व करती है, जिन्होंने बाल्यावस्था में अपने संरक्षको को खो दिया है। नारी की भोग्या, रमणी, कामिनी, मोहिनी जैसी अवधारणा वाले समाज में सामाजिक वासना उसे उपभोक्ता की दृष्टि से देखती है। स्त्री के संवेदशनशील मन, तीक्ष्ण मेधाशक्ति, कार्यकुशलता, व्यवस्थाक्षमता, विश्लेषण–कौशल, गहनचिन्तन–प्रवृत्ति, गम्भीर दृष्टिकोण, विलक्षणकोमलता, पूर्ण समर्पण, निस्वार्थ निष्ठा, अद्भुत भावसंप्रेषणीयता, अनुपम अपनत्व, असीम सहनशीलता, असाधारण अनुकूलन–योग्यता, अदम्य जिजीविषा, स्वाभाविक संघर्षकौशल, स्वतः विकसित होने के ईश्वरप्रदत्त गुणों के प्रति समाज भावशून्य, निष्ठुर एवं संवेदनहीन है। सांसरिक जड़वस्तुओं की तरह उसे पसन्द अथवा नापसन्द किया जाता रहा है। उपभोग की गुणवत्ता का भौतिक स्तर ही उसका मूल्य निर्धारित करता है। स्व तथा स्वामी शब्द हमारी निहितार्थ दृष्टि को प्रतिपादित करती है। उसके शील, गुण आदि का कोई मूल्य नहीं है। तपती हमारे बीच का ही चरित्र है। समाज में ऐसे चरित्र देखने को मिल जाते है, जो विवशता में शोषण का शिकार होते हैं। जिजीविषा की तपती समाज में अनेकत्र, अनेक रूपों में हमारे आस–पास दिखाई देती है। उस **तपती की विवशता में पूरे स्त्री समाज की विवशता है।** उस विवशता का मार्मिक चित्रण दर्शनीय है–'पोतभङ्गे जाते सन्तरणाय कियदेव प्रयतितं मया! भो दिष्टम्! न विधिः पक्षधरोऽभूत। भग्नायां रज्जौ के घटं धारयन्ति?'[25]

कन्याभ्रूण–हत्या अथवा कानीन शिशुओं को लावारिस छोड़ देने की घटना समाज में साधारण बात है। **कभी कचरे के ढेर में, कभी झाड़ियों में, कभी ट्रेन की पटरी पर, कभी अनाथालय के दरवाजे पर, कभी मंदिर में तो कभी अस्पताल में कई अनामिकाएं सामाजिक-संवेदनहीनता के प्रमाण के रूप में पड़ी मिल जाती हैं।** इसी संवेदनहीनता पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं– 'आनन्दोपभोगे तु सर्वं विस्मर्यते। स्फारीभूते पुनः परिणामे सर्वमेव स्मृतं भवति। कीदृशं युगमायातम्? नवप्रसूताऽपि सन्ततिः भगवन्नाम्नि प्रणालीतटे परित्यक्ता तया रण्ड्या? नैतावदपि चिन्तितं यत् कुक्कुरा भक्षयिष्यन्ति शृंगाला वा?'[26]

अनीप्सित विवाह के परिणाम स्वरूप उत्पन्न एकहायनी भी समाज का एक अभिन्न अंग है। यह अलग बात है कि सामान्यतया माँ अपने शिशु से घृणा नहीं करती, चाहे वह बलात्कार का ही परिणाम क्यों न हो, परन्तु इस प्रकार के उदाहरण भी समाज में प्राप्त होते है।

शतपर्विका की **रमाश्यामाश्यामलाविमलामलाऽऽचलाकमला जैसी कन्याओं की लम्बी शृंखला कई परिवारों में विद्यमान है,** जो पुत्र संतति की चाह का परिणाम है। इन कन्याओं को उस करनी का दण्ड मिलता है, जो वस्तुतः उनके माता–पिता ने की है। रमा की तरह कई बेटियां हैं, जो अपने अथक प्रयासों से अपने माता–पिता के हृदय में स्थान बना पाती हैं। पुत्रेच्छा के परिणामस्वरूप परिवारों में पुत्रियों की दीर्घ शृंखलाएं हमारे आस–पास कई परिवारों में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही हैं। कवि समाज की इस निरपराध दण्ड झेलती संतती की व्यथा एवं विलक्षणता को रूपायित करते हैं। वास्तव में ही बेटियां शतपर्विका की तरह स्वपोषित होती हैं– 'यथा हरितवर्णा शतपर्विका गृहद्वारसुषमां संवर्धयति, शयने तूलास्तरणसाम्यं दधती सौख्यं जनयति, स्वनवनवाङ्कुरैः पशुपक्षिणः प्रीणयति आत्मारामतयाऽपि अनभिषिक्ताऽपि अरक्षिताऽपि स्वादृष्टबलेनैव पुनर्नवतामुपैति नित्यहरिता च संलक्ष्यते तथैव पुत्र्योऽपि में वर्तन्ते।'[27]

इक्षुगन्धा व एकहायनी जैसी **असंख्य असफल प्रेम-कथाएं समाज में** देखी जा सकती है। असंख्य बेटियों का प्रेम सामाजिक अपेक्षाओं की भेंट चढ़ जाता है। परिवार नामक सामाजिक संस्था में स्वाभाविक रूप से घटित घटना से टूटे हृदयों की व्यथाओं को कवि ने इन कथाओं का विषय बनाया है।

जिस समाज में स्त्री को भोग्या व भुक्ता जैसी अवधारणाओं में बांधा जाता है। उसके शरीर को पवित्र एवं अपवित्र के मापदण्ड पर मापा जाता है, उस समाज की रूढ़ियों के पिंजरे में कई वंदनाएं कैद हैं, छटपटा रही हैं, कुण्ठित हैं, व्याकुल हैं, निर्जीव हैं, घायल हैं, सपनों के उन्मुक्त आकाश में नए पंखो से उड़ान भरना चाहती हैं, परन्तु पिंजरो को तोड़ने का साहस नही जुटा पा रही हैं। पुरुष प्रधान समाज में पुरुष वृद्धावस्था तक भोगलोलुपता से मुक्त नहीं हो पा रहा लेकिन नवयौवना कन्याओं को संयम व साधना का उपदेश दे रहा है। वंदना का चरित्र पिंजरे में कैद उन समस्त विधवाओं, परित्यक्ताओं, उपभुक्ताओं एवं शोषिताओं के लिए आदर्श है कि पंख फैलाओ और पिंजरे को तोड़कर उड़ जाओ – 'विजहि भग्नपञ्जरमिमं सारिके! विहर नीलनभोमण्डले। तत्रास्ति जीवनम्। तत्रास्ति ते कांक्षितसहचरः! तत्रास्ति ते चिरवांञ्छितं कल्पनासाम्राज्यम्।'[28]

कुलदीपक का **सिन्धु आने वाली पीढ़ी का आदर्श है,** जो सवर्ण व असवर्ण के बीच मैत्री व समानता की नई शुरूआत करने वाला है। समाज में आजकल ऐसे उदाहरण दिखने लगे

हैं। इन दोनों वर्गों की खाई पट रही है। सिन्धु वह कड़ी है, जो मानसिक खोखलेपन को भरकर समाज को जोड़ने का कार्य करेगी।

महानगरी की ममत्वरहित स्त्रियां सामाजिक परिवेश में मिल ही जाती हैं, जो संकुचित मानसिकता के कारण मानवीय स्तर से गिरकर दूसरे की संतति के प्रति क्रूरता का व्यवहार करती हैं।

समाज में **असंख्य स्त्रियां बाल्यावस्था में वञ्चना की शिकार** हुई हैं और उन अंतहीन अंधकार की गलियों में धकेल दी गई है, जहां से वापिस उजाले की ओर लौटने की संभावाएं शून्य हो जाती हैं। चञ्चा की नायिका मुन्नीबाई में उनकी पीडा अभिव्यक्ति पाती है। एक पीढ़ी के साथ अगली पीढ़ी भी बर्बाद हो जाती हैं, परन्तु **मुन्नीबाई** कृतसंकल्प है। वह अपनी आने वाली पीढ़ी के भविष्य निर्माण के लिए **आशा की किरण है।** वह उन समस्त माँओं के लिए संदेश है, जो अपनी बेटियों को सम्मान का जीवन देना चाहती हैं।

पोतविहगौ, सिंहसारिः, राङ्गड़ा, अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा, अधर्मणः, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी, ध्रुवस्वामिनी आदि कथाओं की विषय वस्तु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को धारण करती है। अतः स्वाभाविक है कि उसके पात्र भी इतिहास के प्रमाणिक पात्र हैं, परन्तु उनके **ऐतिहासिक पात्रों का भी हृदयपक्ष ही प्रधान** है और प्रणय, प्रकृति एवं मानवीय सम्बन्धों की उलझनें ही उनके केन्द्र में है। वन्ध्यत्व को भारतीय समाज में स्त्री की उर्वरा शक्ति से सनातनकाल से जोड़कर देखा जा रहा है। यदि संतानोत्पत्ति नहीं होती तो स्त्री समाज एवं स्वयं की दृष्टि में अपने जीवन को निरर्थक मानने लगती है तथा वह वांछित सम्मान से वंचित होती है। कविवर की वन्ध्या कहानी की बुधनी एवं सपत्नी कहानी की नायिका उन सारी स्त्रियों की पीडा को सहृदय पाठक से साझा करने में सार्थक रही है, जो स्त्रियां सन्तानहीनता के कारण अपनी अस्मिता एवं आत्मसम्मान से च्युत हुई है। बुधनी की व्यथा को वे कहते हैं– 'वन्ध्या दोषोऽपि नाम स्त्रीणां नयननिद्राहरः। कारागृहायते स्वामिभवनमपि। न क्वचिज्जायते जिगमिषा। न किञ्चिज्जागर्ति चिकीर्षा। सपत्नायते हासः। आकाश कुसुमायते मानसोल्लासः।.........................सर्पगन्धमूषिकयोरिव दुर्दशाऽनुभूयते।'[29]

मोगी का चरित्र उस सारी युवा पीढ़ी का प्रतीक है, जो शहरी संस्कृति एवं चमक से आकर्षित होकर अपने पैतृक कार्यों एवं गांवों को छोड़कर पलायन करना चाहते है। अपनी

पहचान एवं जड़ों को छोड़कर भीड़ में खो जाना चाहते हैं। मोगी के रूप में कविवर एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं कि **पलायन का मार्ग ही विकल्प नहीं** है। अपने स्थान पर रहकर वर्गसंघर्ष के स्थान पर वर्गसामञ्जस्य के साथ उन्नति करना ही एक बेहतर समाज का आधार है।

वाग्दत्ता के उमाचरण के चरित्र के रूप में एक आदर्श पात्र प्रस्तुत हुआ है, जो जाति, धर्म, संस्कृति आदि के भेदभाव से ऊपर उठकर गुणों से प्रभावित होकर एक विदेशी कन्या को वधु के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

नर्तकी में मुस्लिम नृत्यांगना के ह्रदय के स्वाभाविक भावों को व्याख्यायित करते हुए उसके विवाह का मार्ग प्रशस्त किया है। एक नर्तकी से विवाह करने वाला आदर्श चरित्र कविवर के सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव के लक्ष्य को संपूरित करता है।

न्यायमहं करिष्ये और न्यासरक्षा की माताएं समाज में स्थित दो विपरीत प्रकृति की माताओं की समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।

कवि की पुनर्नवा, अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा एवं कुक्की कहानियां उनके कथासंग्रहों की सर्वश्रेष्ठ कहानियां कही जा सकती है। कुक्की कथा का ताना– बाना इस प्रकार से बुना है कि कुक्की परित्यक्ता सीता समकक्ष तपस्विनी, शावक लवकुश समकक्ष एवं कवि स्वयं उनके पालक वशिष्ठ के पद पर विराजमान हो जाते हैं। **परित्यक्ता कुक्की का मनोविज्ञान, शावकों की बालसुलभ क्रीडाएं, कवि का उनके प्रति वात्सल्य तथा बिलाव की भोगलोलुपता, सब कुछ अद्भुत एवं विलक्षण है।** यह कविवर का ही सामर्थ्य है कि एक मार्जारी–कथा में मानवीय संवेदनाओं का प्रत्यारोपण इतनी मार्मिकता के साथ किया है।

पुनर्नवा कथा समस्त पारंपरिक मान्यताओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का शास्त्रीय तर्कों से खण्डन करते हुए स्त्री के नवजीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। नायिका के भाई की भूमिका समाज के सभी भाइयों के लिए आदर्श है। पण्डित **महेश्वरानंद** समाज के तथाकथित **धर्म के ठेकेदारों के लिए वरेण्य** है कि वे शास्त्रों की व्याख्या किस प्रकार करें? श्रेष्ठ जनों का अनुसरण किस प्रकार करें? सुधार की शुरूआत किस प्रकार करें?

मरून्यग्रोध के नायक **दयालु का चरित्र उदारमना पुरुषों का प्रतिनिधित्व** करता है, जो रेगिस्तान के बरगद की तरह शरणागत वत्सल है।

चित्रपर्णी की लघुकथाओं में आधुनिक समाज के ही पात्र गतिशील है। धर्म के स्थानों पर विराजमान चारित्रिक पतन से युक्त संन्यासी, रिश्वत लेकर नौकरी देने वाले अधिकारी, चारित्रिक दोहरेपन को धारण करने वाले न्यायाधीश, प्रतिशोध से व्याकुल व्यक्तित्व, रिश्तों को कलंकित करते दहेज के दानव, पशुओं एवं प्रकृति के साथ अन्याय करते स्वार्थी मानव, मिथ्या प्रसिद्धि के पीछे भागते लोग, आडम्बर एवं दिखावे का जीवन जीते लोग तथा साथ ही समाज में सकारात्मक परिवर्तनों की प्रेरणा देते चरित्र कविवर के कथासाहित्य में समाहित अधुनातन सामाजिक सरोकारों एवं सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन के पुनीत लक्ष्य में साधक बने हैं।

कवि ने कथाओं के विषय, परिवेश एवं उद्देश्य के अनुकूल पात्रों को चरित्र के सांचे में ढाला है। प्रत्येक चरित्र आदर्श एवं यथार्थ का सामञ्जस्य है, अनुकरणीय है, उज्ज्वल भविष्य का पूर्वाभास है। उनके पात्रों की सर्जना सर्वथा औचित्यपूर्ण है। उनकी कथाओं के पात्र सकारात्मक सामजिक परिवर्तन के शुभसंकल्प को साधने में साधक बने हैं।

4) कथाकार की कथा-शैली

कहानी का एक अन्य तत्त्व उसकी कथा–शैली है। भाषागत वैशिष्ट्य की चर्चा पृथक् अध्याय में विस्तारपूर्वक की जा चुकी है। वहां अभिराजीय कथाओं की भाषागत विशिष्टताओं को सोदाहरण स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

इस अध्याय में कथा शैली के अन्तर्गत हम यह समझने की कोशिश करेगें कि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की **कथा कहने की शैली कैसी है?** कहानी को कहने की शैली ही कथा–शैली कही जा सकती है। कहानी किसी भी भाषा में हो, उनको लिखने की शैलियां अनेक हो सकती हैं। पुनर्नवा की 'नान्दीवाक्' में कवि ने स्वयं मुख्य शैलियों का परिगणन किया है–'कहानी, चाहे किसी भी भाषा में हो, को लिखने की अनेक शैलियां हो सकती हैं, परन्तु मुख्य है–आत्मकथात्मक, संवादात्मक, विवरणात्मक, पत्रात्मक, संस्मरणात्मक तथा दैनन्दिनी (डायरी) शैली।'[30(अ)] तो इस प्रकार कथा की शैलियां निम्न हो सकती हैं :–

(i) आत्मकथात्मक (ii) संवादात्मक (iii) विवरणात्मक

(iv) पत्रात्मक (v) संस्मरणात्मक तथा

(vi) दैनन्दिनी अर्थात् डायरी शैली।

<u>(i) आत्मकथात्मक-शैली</u>

आत्मकथात्मक शैली में कथाकार कथ्य में शामिल होता है। वह स्वयं घटनाओं का साक्षी होता है। कथाओं की विषयवस्तु आत्मकथात्मक रूप में होती है। **आत्मकथा** में स्वयं के जीवन में घटित **समस्त घटनाओं का वर्णन** होता है, वैसे ही **आत्मकथात्मक-कथा** में जीवन के किसी **एक पक्ष अथवा घटना का वर्णन** होता है।

अभिराज जी की कई कथाएं आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई हैं। एकचक्रः, सुखशयतिप्रच्छिका, इक्षुगन्धा आदि कथानिकाएं तथा वैराग्यम्, आद्यन्तम्, द्विसन्धानम्, आत्मविश्लेषणम्, इदम्प्रथमतया आदि कथाओं में नायक स्वयं अपनी कथा कह रहा है। वे स्वंय कहते हैं– **इक्षुगन्धा की कथाओं का परिवेश सीमित था। अधिकांश कथायें मेरी अपनी जिजीविषा से कहीं न कहीं जुड़ी थी अथवा इलाहाबाद की चौहद्दी से सम्बद्ध थी। कथाओं में उभरे मेरे वैयक्तिक स्पर्श को श्रेष्ठ समीक्षक डॉ. कृष्णलाल ने इक्षुगन्धा की समीक्षा में रेखांङ्कित भी किया था।**’[30(ब)] ऐसा महसूस होता है कि कथाऐं उनके अपने अनुभवों का सारभूत निष्कर्ष है। सुखशयितप्रच्छिका मानो कथाकार की अपनी प्रेमकथा है। इक्षुगन्धा एक अधूरी प्रेमकहानी है। द्विसन्धानम्, वैराग्यम् आदि कहानियां भी आत्मकथात्मक शैली में कहे गए आत्मकथ्य है। ‘अनाख्याता–बाणभट्टाऽत्मकथा’ भी स्वप्न में प्रकट की गई आत्मकथात्मक शैली की ही कथा है। बाण के निमित्त कवि की ही अपनी कथा है।

<u>(ii) संस्मरणात्मक-शैली</u>

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा संसार की बहुत–सी कहानियां संस्मरणात्मक है अर्थात् संस्मरणों पर आधारित है। उनमें संस्मरण ही कथ्य है।

कुक्की कथा कवि के जीवन का एक सुन्दर संस्मरण है। यह संयोग कवि का जीवन बदल देता है। एक विरक्त एवं तटस्थ मनुष्य ममत्व एवं स्नेह से पूर्ण हो जाता है, शावकों का पालक एवं रक्षक हो जाता है, संवेदनशील हो जाता है। कुक्की के साथ बिडाल का छल, कुक्की का साध्वाचार, शावकों की निश्छलता एवं चपलता, बिडाल का दुराचार, कुक्की की हत्या ये सब कवि की संवेदनाओं को झकझोर देने वाला करूण संस्मरण हैं, जो कथा के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। जैसे **क्रौञ्चपक्षियुगल** में से एक पक्षी का

वध वाल्मीकि की करूणा को **काव्य** में प्रवाहित कर देता है, वैसे ही **कुक्की** के जीवन की करूणामय अवस्था कवि की **कथा** के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

महानगरी भी कविवर का एक रेलयात्रा संस्मरण है, जिसमें किसी अन्य की संतति के प्रति असंवेदनशील व्यवहार का मार्मिक वर्णन है।

अनामिका कहानी एक प्रातः कालीन भ्रमण के समय घटित घटना का संस्मरण है। कहानी में एक आश्रयहीन बालिका असहायावस्था में मिलती है, जिसे किसी दम्पती ने संसार के भय से त्याग दिया है और बाद में कथाकार ने अपना लिया है।

चित्रपर्णी की लघुकथाओं में अनेकों संस्मरण ही है। प्राणभयम्, गुरूक्षिणा, कल्पवृक्षः, ऊर्ध्वरेता, गौर्यावरः, देवाकृपाऽनुभवः, अभिरूचिः, मूल्यांकनम्, राष्ट्रपति–पुरस्कारः, पितृभक्तिः, पिशाचः, नियतिकौशलम्, दायित्वबोधः, वाहनसार्थक्यम्, दुर्गंपथस्तत्कवयो वदन्ति, ज्योतिषमाहात्म्यम् आदि कथाएं वस्तुतः अपने भीतर कथ्य को समेटे हुए, सामाजिक संदेश देते हुए कथाकार के अपने संस्मरण है, जो कथा के रूप में साकार हुए हैं।

(iii) दैनन्दिनी-शैली

अभिराज जी की राङ्गडा कथा दैनन्दिनी शैली में लिखी गई कथा है, जो उनके बालीद्वीप प्रवास के समय लिखी गई है। प्रतिदिन के अनुभवों को लिखने में बालीद्वीप के अमरावती क्षेत्र के कुतरीग्राम में स्थित दुर्गामिहिषमर्दिनीमन्दिर के बारे में उन्होंने लिखा है। मन्दिर के बारे में लोकप्रचलित इतिवृत्तान्त को भी दैनन्दिनी में लिखा है। धर्मोदयनवर्मा की रानी महेन्द्रदत्ता की रानी से राङ्गडा बनने तक का वृत्तान्त, जो उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है, वही राङ्गडा कथा है।

(iv) संवाद-शैली

शोधार्थी की दृष्टि से देखने पर 'लयेरिका' कथा ही मुझे संवादशैली में लिखी गई कहानी प्रतीत होती है, जिसमें एक पुत्र का माँ से संवाद है। ये संवाद ही कथ्य है, जो कथाकार की अपनी माँ के प्रति संवेदनाएं हैं।

(v) पत्रात्मक-शैली

पञ्चाशद्वर्षपरवर्ति कथा एक पुत्र का पचास वर्ष पश्चात् लिखा गया एक पत्र है, जिसमें उन्होंने अपनी माँ के प्रति उन समस्त कार्यों के लिए कृतज्ञता प्रकट की है, जो माँ ने उसके लिए किए हैं।

पत्रसंवादः परिपक्व प्रणय की वह कथा है, जिसमें दोनों एक–दूसरे को समझते हैं, प्रेम करते हैं, मिलना चाहते हैं, दोनों परस्पर पत्र लिखते हैं, दोनों एक साथ एक–दूसरे से मिलने पहुंच जाते हैं। नायक नायिका के पास बेतूलनगर पहुँचता है ठीक उसी समय नायिका नायक के पास दिल्ली पहुंच जाती है। पत्र के माध्यम से संप्रेषणीय प्रेम की सच्ची भावनाएं ही इस कथा की विषयवस्तु हैं। इसी कथ्य को कथासूत्र में पिरोया गया है।

(vi) विवरणात्मक-शैली

प्रायः कथाएं विवरणात्मक ही होती हैं। विवरणात्मक कथाओं में कथाकार समाज के चरित्र में घटित घटनाओं को काल्पनिकता एवं संवेदनशीलता से रुचिकर बनाकर कथा– के साँचे में ढाल देता है। कविवर की भी अधिकांश कथाएं विवरणात्मक है। पुनर्नवा के अभिनव कथानिका–संकलन में नर्तकी के अतिरिक्त सभी कहानियां विवरणात्मक शैली में लिखी गई है। जिनमें समाज में बिखरे, हमारे आस–पास के परिवेश में गतिशील पात्रों के ही जीवन को कथ्य बनाया है। कथाओं की विषयवस्तु पर हम द्वितीय अध्याय में विस्तार से चर्चा कर चुके है। यहां हम उनकी शैली अथवा विधा का ही उल्लेख कर रहे हैं। विवरणात्मक शैली में उनकी दीर्घकथा **अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा** एवं ऐतिहासिक कथाएं **राङ्ड्डा, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी, अधमर्णः, सिंहसारिः, पोतविहगौ** आदि तो हैं ही, अन्य कथाएं भी यथावसर वर्णनात्मक रूप धारण करती हैं। **कुलदीपकः, एकहायनी, शतपर्विका, भग्नपञ्जर** आदि कथाएं **विवरणात्मक** कथाएं हैं।

इस प्रकार लगभग सभी प्रकार की प्रतिनिधि कथाएं उनके कथा संसार में प्राप्त होती हैं। शैली चाहे कोई भी हो कथ्य सामाजिक सरोकार एवं सूक्ष्म मनोविज्ञान ही है। जगत के आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण को ही ब्रहमानन्द सहोदर काव्य के माध्यम से साधा है।

वे भाषा एवं शैली दोनों मे प्रंसग एवं औचित्य के सूक्ष्मवेत्ता हैं। उन्होंने विषायनुकूल भाषा, पात्र, संवाद, परिवेश आदि का प्रयोग करते हुए काव्य को गरिमा प्रदान की है।

5) कथाकार के कथोपकथन अथवा संवाद

संवाद अथवा कथोपकथन कहानी में जीवन्तता उत्पन्न करते हैं। पात्रों का परस्पर संवाद अथवा स्वयं से संवाद कहानी में प्रभावोत्पादकता लाने के अतिरिक्त कहानी के पात्रों के मनोविज्ञान को, सामाजिक शिष्टाचार को, समाज अथवा परिवेश की भाषा शैली तथा उपदेश को प्रत्यक्ष ही सहृदयहृदय तक पहुंचाने का कार्य करता है। प्रबन्धकल्पना कथा से अलग आधुनिक संस्कृतकथानिका हिन्दी की कहानी के नजदीक है। संवाद कहानी का एक अनिवार्य तत्त्व है। संवाद कहानी को सहज, सरल एवं रोचक बनाते हैं। संवाद मानो समाज से **'सीधी-बात'** है। संवाद पात्रों की **मनोविश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति** है। कथा के पात्र मानो हमारे मन की बात करते हैं। पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, परस्पर संवाद एवं अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण, कहानी में सक्रियता एवं गति उत्पन्न करता है। इसके अभाव में कथा एक सपाट बयान होगा, जो नीरसता के कारण पाठकों के हृदय तक पहुंचने का सामर्थ्य खो देगा।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र जी की कहानियों में संवाद कहानी का प्राण तत्त्व है। उनके पात्र स्वयं से संवाद करते हैं, अन्य पात्रों से संवाद करते हैं तथा उस परम शक्तिमान परमात्मा से संवाद करते हैं। उनकी कथाओं के संवाद लोकप्रसूत कथाओं को लोक तक पहुंचाते हैं। उन्होंने स्वयं राङ्गड़ा की भूमिका में कहा है **'कथायें जिन स्रोतों से जन्मी हैं, उन्हीं स्रोतों तक पुनः पहुंच रही हैं। पहले ये कथायें मृत्तिका मात्र थी, अब उसी माटी से बनी शालभंजिकाएं हैं।'**[31] कवि ने समाज में बिखरे अनगढ़ लेकिन संवेदनाओं को झंकृत कर देने वाले वृत्तान्तों को कुशल शिल्पकार की तरह तराश कर शालभञ्जिका में परिवर्तित कर दिया है।

कवि की कहानियों में मानवमन का, समाजशास्त्रीय व्यवस्थाओं का, सांस्कृतिक परम्पराओं का विश्लेषण है। इस तथ्य को उन्होंने स्वयं इक्षुगन्धा की भूमिका में स्वीकार किया है। वे कहते हैं– 'Most of these stories reveal the upto date human psychology and the modern socio-cultural setup.'[32]

जिन उद्देश्यों को लेकर कवि चलते हैं, उनमें संवाद अथवा कथोपकथन एक महत्त्वपूर्ण सोपान के रूप में कार्य करते हैं।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कहानियों में संवाद पात्रों के मन की पीड़ाओं, कुण्ठाओं अथवा ग्रंथियों को खोल कर रख देते हैं। उनके पात्र सर्वशक्तिमान से निवेदन करते हैं,

मनोभाव साझा करते हैं, उन्हें उलाहना देते हैं। जिजीविषा में तपती की माँ अपनी पुत्री का शीलभङ्ग होने पर स्तब्ध रह जाती है। प्रभु पर क्रोध करते हुए कहती है–

'अर्न्तयामिन्। दृष्टों मया भवन्न्यायः। समुज्जृम्भमाणं सौख्यकन्दलं दृष्टुं न पारयसि! अये निघृण परमेश्वर! तपती हृदयतापमपि नानुभूतवानसि? गङ्गाजलं मदिरायितं त्वया? सिन्दुवारमञ्जरी कामलम्पटाय समर्पिता?'[33]

इस संवाद में माँ के मन की पीडा की कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति है?

एकहायनी की नायिका जीवनसंघर्षो से पराजित हो जाती है। वह जीना नहीं चाहती, अनीप्सित वैवाहिक सम्बन्ध का निर्वाह नहीं करना चाहती। उसे अपने शरीर से घृणा होने लगती है। वो कहती है 'हन्त दुर्देव! कथं न मयाऽत्मघातः कृतः? कथं न मया विवाह सम्बन्धोऽयं न्यक्कृतः। व्यर्थं मेऽध्ययनम्। वेशवाटोचितं मे सौन्दर्यम्। मन्दिरायमाणं शरीरं मया मदिरालयीकृतम्?'[34] **विमला के अन्तःसंवाद से उन समस्त नारियों के मन की व्यथा को अभिव्यक्ति दी है, जिनका विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध हुआ है और वो भीतर ही भीतर घुट रही हैं।**

अभिराज जी ने कथाओं के पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व से मानवमनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। यह विश्लेषण पाठकों के मन को झकझोर देने वाला है और यही सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन के लिए भाव–भूमि निर्माण करने रूपी लक्ष्य की प्राप्ति का आधार है। पात्रों का मनोमंथन हमारा मनोमंथन है। उनका अन्तर्द्वन्द्व हमारा अन्तर्द्वन्द्व है। अपने आप से संवाद का यह अनूठा माध्यम एक नवीन एवं सुन्दर समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है।

बुधनी का चिन्तन हमें चिन्तन के लिए **प्रेरित करता है** कि क्या वस्तुतः संतानहीनता के लिए एक स्त्री को तिरस्कार की दृष्टि से देखना चाहिए? क्या स्त्री के जीवन की सार्थकता संतानोत्पत्ति से ही है? वन्ध्या की अन्तःपीडा दर्शनीय है–

'किं भविष्यति ? पाषाणे कुतो नु दुर्वा प्ररोक्ष्यति?.........................धिङ् मम गर्भम् अजागलस्तनकल्पम्।'[35]

भग्नपञ्जर की नायिका वंदना की मनोदशा समस्त विधवा स्त्रियों के मन का संवाद है। यह संवाद एक जीती जागती इंसान को निर्जीव बना देने वाले समाज के लिए एक प्रहार है–

'मा पुनरभिशप्तां पाषाणीमहल्यां जानाति? भस्मीभूतं मदीयं सौख्यसंसारं तृणकमपि न स्मरति?................किम्ममापघनेषु चेतना नास्ति? किम्ममापि बलीयसी सुखेच्छा, भोगेच्छा वा नास्ति?'[36]

आत्ममंथन अथवा सर्वशक्तिमान से भावसंप्रेषण संवाद का एक प्रकार है, जिसे कविवर ने अपने अधुनातन नवीन जीवनमूल्यों को स्थापित करने का माध्यम बनाया है।

कथोपकथन अथवा पात्रों के परस्पर संवाद अत्यन्त सहज, सरल एवं स्वाभाविक हैं। उन संवादों की भाषा वही है, जो सामान्य लोकजीवन में सामान्य लोगों की होती है। कार्यालय से लौटे तपती के पिता अपनी दुलारी पुत्री के लिए खिलौने लेकर आते हैं। उसे ढूंढते हैं– वत्से शीले। इदमस्ति ते काष्ठक्रीडनकम्। गृहाणैतत्। सोम! पुत्रक! मत्पार्श्वमायाहि।................तपति! वत्से तपति!! हे प्रभो! न जाने कुत्र विलीनैषा गृहमूषिका?'[37(अ)] अपि च

'महुलि! गन्तव्यमिदानीम्। स्वस्ति भवत्यै। माँ विस्रष्टुमागतासि किम्?

अहमपि तव देशं चलिष्यामि।

किं किमुक्तम् ? मम देशं चलिष्यसि ?

अथ किम्! त्वयैव सह चलिष्यामि।'[37(ब)]

ये सामान्य संवाद लोकसामान्य के संवाद है। ये कथाओं को रोचक एवं बोधगम्य बनाते हैं। ये लोकभाषा एवं लोकविचारधारा से हमारा परिचय करवाते हैं। संवाद के अभाव में कथा एक निबन्ध का रूप धारण कर लेगी।

समाज क्या सोचता है? समाज क्या चाहता है? समाज क्या कहता है? समाज किधर जा रहा है? समाज को किस तरफ जाना चाहिए? ये सब कुछ कथाओं के कथ्य से साध्य है और जो कथ्य है उसे कवि ने बहुलता से संवादों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। **उनके संवाद कथाकार एवं पाठक के बीच सेतु हैं।**

अभिराजीय कथाओं में संवाद–तत्त्व को समेटने तथा समीक्षा का कार्य यदि करणीय हो तो एक पृथक से विस्तृत अध्याय लिखा जा सकता है। संवादो का सविस्तार विश्लेषण की अपेक्षा साररूप में ही कहने का प्रयत्न किया गया है।

6) कथाकार की कथाओं का उद्देश्य

साहित्य सहृदयहृदय साहित्यकार के हृदय की संवेदना है, पीड़ा है, आत्मबोध है, समय एवं काल से परे हृदयों की एकाकारता है। **समाज की पीड़ा को महसूस करना एवं उन्हें समाधान की दिशा देना, साहित्य का उद्देश्य है।** कहानी, साहित्य का सबसे रोचक एवं आकर्षक अंश है। कहानी उपदेश का अत्यन्त सहज, सरल, रोचक, औत्सुक्यपूर्ण, मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावशाली माध्यम है। साहित्य के **कान्तासम्मित-उपदेश** को कहानी पूर्णरूप से चरितार्थ करती है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कहानियों का उद्देश्य समकालीन समाज में वर्तमान समस्याओं का स्फोरण करना एवं उनका मर्यादा परिरक्षण के साथ समाधान करना है। उनकी कहानियों का उद्देश्य भारतीय जीवन मूल्यों एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा के साथ भविष्य का पथ भी प्रशस्त करना है। राङ्गडा की प्राग्वाक् में वे कहते हैं**-'कविता में कवि स्वंय अभिव्यक्त होता है, परन्तु कथा में सम्पूर्ण समाज, राष्ट्र अथवा विश्व।'**[38(अ)]

समाज के मनोविज्ञान को समझना, उसको अभिव्यक्ति प्रदान करना तथा उसको सही दिशा देना कविवर की कथाओं का मूलभूत उद्देश्य है। अभिराजीय कथाओं, के केन्द्र में नारीचेतना है। नारी के जीवन को समझना, उनकी मनोवेदना की भावभूमि तक पहुंचना, जनमानस का ध्यानाकर्षित करना एवं उसे सही दिशा देना यही कविवर की कहानियों का उद्देश्य है।

समसायिक समाज की मूलभूत एवं मुख्य समस्याओं की ओर कविवर ने जन–मानस को आंदोलित किया है, उनकी विचारवीणा के तारों को झंकृत किया है एवं एक समन्वित संतुलित तथा सुन्दर समाज के मार्ग को निर्मिति का पथ प्रदान किया है।

बलात्कार, यौनोत्पीडन व छेड़छाड़ जैसी घटनाएं समाज में आम तौर पर देखने को मिलती है, जो नारी की अस्मिता एवं सम्मान के लिए खतरा है। जिजीविषा में तपती का शीलभङ्ग, कुक्की में विडाल की कुक्की एवं उसकी पुत्री के प्रति भोगलिप्सा, चञ्चा में नायिका मुन्नीबाई के बाल्यावस्था में शोषण के विषय को प्रस्तुत कर नारी की पीड़ा एवं आत्मसम्मान के प्रश्न को उठाया है और सभी कथाओं में **नायिकाओ के साहसी संघर्ष को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है।**

विधवाविवाह एवं पुनर्विवाह की स्वीकृति भारतीय समाज में शून्य के बराबर है। बलात्कार पीड़िता, परित्यक्ता अथवा विधवा स्त्री को अपना जीवन पुनः प्रारम्भ करने का अधिकार है। इसके पक्ष में कवि ने शास्त्रीय आधार प्रस्तुत किया है। भग्नपञ्जर, पुनर्नवा, मरून्यग्रोध, जिजीविषा एवं नर्तकी जैसी कथाओं में अभिराज राजेन्द्रमिश्र जी ने यह स्थापित किया है कि चाहे बलात्कार पीड़िता हो, विधवा हो, परित्यक्ता हो अथवा नर्तकी ही क्यों न हो, सबको नवजीवन के प्रारम्भ का अधिकार होना चाहिए।

पुत्री-संतति अथवा वन्ध्यत्व के प्रति भारतीय समाज का दृष्टिकोण नकारात्मक है। संतानहीन स्त्री का सामाजिक जीवन समाप्त प्रायः है। सपत्नी एवं वन्ध्या कथाओं में कवि ने न केवल नारी की व्यथा को प्रकट किया है, बल्कि यह प्रतिपादित किया है कि **संतोनत्पत्ति मात्र ही विवाह का लक्ष्य नहीं है।** विवाह तो प्रेम, समर्पण एवं साहचर्य का प्रतीक है।

शहरी पलायनवाद से मुक्ति के उद्देश्य से उन्होंने संकल्प कथा को लिखा है। इस कथा में सवर्ण–असवर्ण के वर्गसंघर्ष का भी विस्तारपूर्वक चित्रण करते हुए परस्पर सामञ्जस्य एवं सद्भाव के मार्ग को दिखाया है। कुलदीपक कहानी भी लगभग इसी वर्गसंघर्ष का उदाहरण है।

आदर्श दाम्पत्य जीवन को प्रतिष्ठापित करती हुई एकचक्रः कथा आज के टूटते एकल परिवारों के लिए आदर्शस्वरूपा है। अहंकार को छोड़कर परस्पर पूरकता प्रदान करना ही विवाह की सार्थकता है। इस पूरकता को प्रतिष्ठापित करना ही कवि का उद्देश्य है।

उनकी ऐतिहासिक कहानियों का उद्देश्य भी **नारी मन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या** है। पोतविहगौ कथा एक निस्वार्थ समर्पित प्रेमिका एवं एक वञ्चित विवाहिता के विद्रोह की व्यथा है। सिंहसारि कथा यवद्वीप साम्राज्ञी दिदिशा की पीड़ा की ही साक्षात् अभिव्यक्ति है। उसके सौन्दर्य में राजा की आसक्ति, पिता की मृत्यु, कर्णाङ्गारक का जीवन में आना, अमृताङ्ग का वध, कर्णाङ्गारक द्वारा अन्य युवती से विवाह, कर्णाङ्गारक का वध, सब घटनाओं में पीड़ा दिदिशा को ही हुई है। राङ्गडा भी महेन्द्रदत्ता की व्यथाकथा है। साम्राज्ञी से राङ्गडा बनने तक की यात्रा का मार्मिक वर्णन कर कविवर नारी मन के महान मर्मज्ञ सिद्ध हुए है।

अनामिका व शतपर्विका कहानियों का उद्देश्य कन्या संतति के प्रति समाज के दोहरे चरित्र को उकेरना है। संतति, संतति है उसमें लिङ्ग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

नर्तकी, इक्षुगन्धा, सुखशयितप्रच्छिका, वाग्दत्ता, अधमर्ण, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी कथाएं **प्रेमकथाएं** है, जिसको **सामाजिक स्वीकृति** दिलवाना कविवर का उद्देश्य है। विवाह एक पवित्र संस्था है, जिसका मूल बीज प्रेम है। प्रेम ही विवाह में सर्वोपरि होना चाहिए।

विवाहेतर सम्बन्धों को सकारात्मक मोड़ देना एवं गार्हस्थ्य धर्म की पुनः स्थापना करना ध्रुवस्वामिनी कथा का लक्ष्य है। **अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा** भी प्रकारान्तर से **पलायनवाद के प्रति आक्रोश** है। संसार से भागना, संसार से मुक्ति का उपाय नहीं हो सकता।

न्यासरक्षा सौतेली माँ के दृढ़ प्रेम व वात्सल्य की कहानी है। चित्रपर्णी बाँसठ छोटी–छोटी कथाओं का एक लघुकथा संग्रह है। लघुकथा के बारे में कवि कहते हैं–'मनोभावस्य चिररूढस्यातर्कितं परिवर्तनम्, कस्यचित्संकल्पस्य इटित्येव सृष्टिः, भावोन्मेषः, भावविवर्तः, मनोवैज्ञानिकं विश्लेषणम्, चिरसंस्तुतवर्त्मनोऽकस्मादेव परिहारः, अग्राह्यस्य ग्रहणम्, ग्राह्यस्योपेक्षाऽवसरोचिता इत्येवं शतशतोल्कापिण्डसदृक्षाश्चमत्कारसृष्टिक्षमा भावा लघुकथां वितन्वते।[38(ब)] कथ्य को स्फोट की तरह व्यक्त करती है लघुकथा। एक कौंध की तरह उपजती है और शब्दों की अपेक्षा संकेतों से ज्यादा कहती है। सामाजिक चरित्र के दोहरेपन, भ्रष्टाचार, पर्यावरण एवं मानवीय जीवन मूल्यों को संकेतित करने वाली इन कहानियों का उद्देश्य श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण ही है। कवि कहते है–'चित्रपर्ण्यांमस्यां संकलिता लघुकथा मदनुभवसंहतेः, मत्परिचयपरिधेः, मद्यात्राचयस्य, मच्चिन्तनस्य वा अंगभूतास्तिष्ठन्ति। काऽपि कथा साक्षात्कृतपरिवेषस्य प्रसवभूता। काऽपि कथा नयनपाथेयीकृतविसंवादस्य प्रतिक्रियाभूता। काऽपि कथा मम वैयक्तिकचिन्तनं वैयक्तिकीं जीवनदृष्टिं वा विशदीकरोति। काऽपि पुनः समाजाऽदर्शसंस्थापनाय कल्पनाबलेनापि प्रसह्य समुत्थापिता। एवं प्रत्येककथाया उत्पत्तिरहस्यं मिथो भिद्यते।'[39]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की **कथाओं का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक वट-वृक्ष को सुरक्षित व संवर्धित करते हुए समकालीन समीचीन मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा प्रदान करना है।**

प्राचीन एवं अर्वाचीन जीवन मूल्यों का अद्भुत सामञ्जस्य है, उनकी कथाओं में। पुराने व अप्रासंगिक का साहस करके त्याग करना एवं समकालीन समाज के प्रासंगिक

मूल्यों को अपनाने का साहस करना होगा। प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों के सत्य, शिव और सुन्दर को वरेण्य एवं दोनों के अनौचित्यपूर्ण, अकल्याणकारी, भ्रामक एवं मिथ्याडम्बर को त्याज्य मानते हुए कविवर एक सुन्दर, सुसंगत, सामञ्जस्यपूर्ण एवं सकारात्मक **प्रगतिशील समाज का स्वप्न** देखते हैं। अपनी कथाओं के कथानक, पात्र, परिवेश, संवाद एवं शैली को माध्यम बनाते हुए एक स्वस्थ समाज की संरचना का लक्ष्य पाना चाहते हैं।

यद्यपि शोध कार्य के अन्य अध्यायों में कथावस्तुतसमीक्षा, भाषा, शैली आदि पर सविस्तार चर्चा की जा चुकी है। चूंकि आधुनिक संस्कृत कथाएं हिन्दी कहानी के अधिक निकट है तथा उससे प्रभावित है। अतः उसकी बुनावट के अनुरूप कहानी के छः तत्त्वों पर पृथक् से चर्चा करना और इन छः तत्त्वों की कसौटी पर कहानी को कसना समीचीन लगा।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि अभिराजीय कथानिकाएं कहानी के छः तत्त्वों के आदर्श उदाहरणों के रूप में उद्धृत की जा सकती हैं। कथानक, पात्र, संवाद, परिवेश एवं शैली लक्ष्य प्राप्ति के प्रभावशाली साधक हैं। कथानक, पात्र, संवाद एवं परिवेश अधुनातन समयानुकूल नवीन है। शैली संस्कृत साहित्य के अनुरूप है, विषय के अनुकूल है। औचित्य के अनुसार अल्पसमास, समासबहुल, अलंकृत तथा अनलकृंत पदावली की रचना कर, संस्कृत की शास्त्रीय शैली का अनुसरण करते हैं। उनकी कथाओं का उद्देश्य सांस्कृतिक मर्यादाओं की रक्षा तथा वैचारिकविकाससरणि का प्रतिपादन है ।

कथाकार का युगीन समाकलन

'कवयः क्रान्तदर्शिनः अर्थात् कवि, देश व काल की सीमाओं से परे जाकर सत्य का साक्षात्कार करता है, वह सीमाओं में आबद्ध होकर नहीं रह सकता। अन्तः सत्ता के साक्षात्कार की सहज प्रक्रिया में वह, जो महसूस करता है, वह सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक उपादेयता को धारण करता है। यही कारण है कि त्रिकालदर्शी कवि के काव्य की उपादेयता तथा उसकी प्रासंगिकता सदैव बनी रहती है। किसी भी काव्य की उपादेयता अथवा प्रासंगिकता ही उसके चिरंजीवी होने का आधार हैं।, जो समय के साथ अप्रासंगिक हो जाता है, उसे छोड़ना ही होता है तथा जो प्रासंगिक है, उसे धारण करना ही होता है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र का कथा–साहित्य प्रासंगिकता अथवा उपादेयता की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है। उनकी कथाएं कालखण्ड की सीमाओं को चीरते हुए प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय बन जाती हैं। अनादिकाल से प्रवाहित संस्कृत साहित्य की काव्य

परम्परा के मौलिक स्वरुप को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए उन्होंने वर्तमानकालीन समस्याओं को कथाओं की विषय वस्तु बनाया है। नवीन समय, नवीन दृष्टिकोण, नवीन समस्याएं तथा नवीन समाधान उनके साहित्य को समसामयिक दृष्टि से अमूल्यता प्रदान करते हैं।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र की कथाओं की विषयवस्तु, उनके पात्र, संवाद एवं वातावरण नवीन समयानुकूल नवीनता लिए हुए हैं, परन्तु उनका उद्देश्य समकालीन समस्याओं को समाज के समक्ष रखना, समाज को उस विषय में सोचने के लिए विवश करना एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य में उनका उचित समाधान करना है। अप्रासंगिक हो चुकी पारम्परिक श्रृंखलाओं को तोड़ते हुए भी अभिराज राजेन्द्रमिश्र स्वप्न में भी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करते।

उनकी कथाओं की सर्वोत्तम विलक्षण क्षमता उनकी प्रासंगिकता, सामयिकता अथवा उपादेयता ही है। समकालीन समाज की ऐसी कोई समस्या अथवा विषय नहीं है, जिसे उन्होंने अपनी कथाओं का विषय न बनाया हो और उसका आदर्श समाधान प्रस्तुत न किया हो। सामयिक दृष्टि से उचित, परन्तु पुरातन जीवन मूल्यों की विरासत के समन्वय के साथ अद्‌भुत है, उनकी कथाओं में विद्यमान समाधान।

कविवर ने अधुनातन समाज में यत्र–तत्र सर्वत्र व्याकुलता प्रदान करने वाली सामाजिक विसंगतियों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए उन्हें सुसंगतियों में परिवर्तित करने का मांगलिक प्रयास किया है। कविवर ने समाज में विद्यमान लिंगभेद, कन्याभ्रूण–हत्या, वेश्यावृत्ति, विधवादुर्दशा, वन्ध्यावस्था, यौन–दुराचार, बालविवाह, पुनर्विवाह, जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, भ्रष्टाचार, धर्मान्धता, पलायनवाद, अर्न्तजातीय व अन्तर्देशीय–विवाह, प्रेमविवाह, नैतिक–अवमूल्यन, सामाजिक–चरित्र, लावारिस–शिशु, पर्यावरण आदि समस्त विषयों को उन्होंने अपनी कथाओं की विषयवस्तु में पिरोया है।

तथाकथित नारी सशक्तीकरण के अनेक दावों के बावजूद समाज में नारी की स्थिति दूसरे स्थान पर है। आज भी उसे भोग्या दृष्टि से देखा जाता है, वस्तु की तरह उपभोग में लिया जाता है, शिक्षा में लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है, विवाह में उनकी इच्छा को महत्ता नहीं दी जाती है। जिजीविषा की तपती शिक्षित है, आजीविका चाहती है, परन्तु समाज उसके यौवन को प्रतिफल के रुप में चाहता है। तपती जैसे उदाहरण समाज में हजारों की संख्या में मिल सकते हैं। तपती की पीड़ा आज की आजीविका चाहने वाली अधिकांश स्त्री समाज की पीड़ा है–

'न कुत्रापि गुण शिक्षाशीलमूल्यम्। सर्वत्रैव यौवनमूल्यम्
यौवनादृते किमन्यदासीत् तदर्हत्वम्।'[40]

विवेक के रुप में विवेकशील वर के द्वारा तपती का वरण इस सामाजिक मान्यता को परिपुष्ट करता है कि शारीरिक शोषणसे पीड़ित स्त्री अवरेण्य नहीं है।

हमें स्त्री के प्रति उस दोहरे अन्यायपूर्ण आचरण से बाहर आना होगा जिसमें, जो उसके साथ शारीरिक अत्याचार करता है, वही उसे अपवित्र, उपभुक्त जैसी संज्ञा देकर पुनः मानसिक एवं भावनात्मक अत्याचार करता है। हम अपने पुरातन आदर्श मानकों में वरेण्य स्त्री को–

'अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै,
रनाविद्धं रत्नं मधुं नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।'[41]

के रुप में वर्णित करते हैं। हमें इस पारम्परिक विचारसरणि को तोड़कर शास्त्रीय तर्कसंगत वैचारिक परम्परा का वरण करना होगा जिसमें कविवर कहते हैं–

'स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता,
बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगतापि वा।
न त्याज्या दूषिता नारी नास्यात्यागोविधीयते,
पुष्पमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।।'[42]

इस समाधान से कविवर ने उन समस्त नारियों को सम्मान के पद पर प्रतिष्ठापित किया है, जो बलात्कार पीड़ित हैं, विधवा हैं, परित्यक्ता हैं अथवा अपहृत हैं। नैतिकता के मापदण्ड स्त्री–पुरुष के लिए समान होने चाहिए।

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में लैगिंक संतुलन की बिगड़ती स्थिति सम्पूर्ण समाज एवं प्रशासन के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है। लैंगिक संवेदनशीलता जाग्रत करने के लिए सरकार हर स्तर पर कार्य कर रही है। एक जिम्मेदार साहित्यकार के रुप में कवि ने जनचेतना जाग्रत करने की दिशा में अपनी कथाओं को सशक्त शस्त्र की तरह माध्यम बनाया है। कविवर की शतपर्विका कहानी कन्या सन्तति की उपेक्षा व उसकी पीड़ा को उठाते हुए इस संदेश को वहां तक ले जाती हैं कि पुत्रियां–पुत्रों की तरह ही सेवाभावी एवं पारिवारिक संस्कारों को आगे ले जाने वाली होती हैं। पुत्र प्राप्ति की कामना में सात पुत्रियों

का पिता बना रामलाल अपनी बेटियों को अपने दुर्भाग्य का कारण मानता है, उनका तिरस्कार करता है, परन्तु पुत्री की सेवा शुश्रूषा से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। यह **रामलाल का हृदय परिवर्तन पूरे समाज का हृदय परिवर्तन है।** वह पश्चात्ताप करता है–

'मया नृशंसेन पुत्रलोभवशात् स्वकन्यकाः भृशं समुपेक्षिताः .... यदि नाम मत्कन्यकाः प्रारम्भादेव मद्वात्सल्यलालिता अभविष्यत् अवश्यमेवासां सद्गुण विकाशोऽभविष्यत्।'[43]

वस्तुतः तो कन्याएं दूर्वा घास की तरह घर की शोभा होती हैं। अपोषित, असिंचित तथा अरक्षित होते हुए भी आत्मबल से ही पुनर्नवता को प्राप्त कर लेती हैं। रामलाल कहता है– 'शतपर्विका इव में तनूजाः। यथा हरितवर्णा शतपर्विका गृहद्वारसुषमां संवर्धयति, शयने शूलास्तरणसाम्यं दधती सौख्यं जनयति, स्वनवनवाङकुरैः पशुपक्षिणः प्रीणयन्ति, आत्मारामतयाऽपोषिताऽपि अनभिषिक्ताऽपि अरक्षिताऽपि स्वादृष्टबलेनैव पुनर्नवतामुपैति नित्यहरिता च संलक्ष्यते।'[44]

यह दृष्टिकोण ही पुत्र व पुत्री के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार को दूर कर, सही दिशा देगा और अन्ततोगत्वा समाज में **कन्यासन्तति का भी उतना ही अभिनन्दन होगा, जितना पुत्र सन्तति का होता है।**

स्त्री को भोग्या अथवा उपभोग की वस्तु समझने के कारण समाज में जो विकृतियां आई उनमें से एक है वेश्यावृत्ति। समाज में स्त्री की उपयोगिता एवं महत्ता उसके सौन्दर्य एवं शारीरिक सुगढ़ता से मानी जाती है। समाज की दृष्टि सर्वप्रथम उसके शारीरिक अस्तित्व पर होती है। भोग–लोलुप मनुष्य समाज में एकाधिक स्त्रियों के साथ समागम चाहता है। इस विकृत मानसिकता का ही परिणाम है यह देह व्यापार अथवा वेश्यावृत्ति। जब किसी स्त्री को कुछ चाहिए होता है तब उसके बदले में समाज की दृष्टि उसके रूप एवं सौन्दर्य पर होती है। विवशता में स्वयं अथवा दूसरों के द्वारा बाध्य किये जाने पर किसी भी प्रकार से प्राचीन काल से ही वेश्यावृत्ति समाज में अपना अस्तित्व बनाए हुए है। कवि कहते हैं– 'भारते यथा दिव्योद्भवा भाषा, दिव्योद्भवं नाट्यं, दिव्योद्भवो नृपतिश्श्रूयते सर्वथा तथैवं वेश्यावृत्तिरपि दिव्योद्भवा।'[45]

समकालीन समाज में भी बदले हुए रूप में वेश्यावृत्ति ही चल रही है। इस तथ्य को इंगित करते हुए कविवर कहते हैं– 'तत्कृते समाजेऽन्ये सदुपाया इदानीं प्रचलिताः। धनकुबेरैर्मुम्बईकलिकातादिमहानगरेषु पञ्तारका बहुभूमिका विश्रामालयाः स्थापिता यत्र........

अभिजातकुलोत्पन्नाः कन्यकाः कलाप्रदर्शनव्याजेन नृत्यन्ते। पुराचीनैव मदिराऽभिनवेषु गोलकेषु वर्तत इतिदिक्।'[46]

कविवर समाज के इस उपेक्षित, वंचित, शोषित एवं मुख्यधारा से विलग अंश को समाज की मुख्यधारा से जोड़कर इस समस्या का आदर्श समाधान प्रस्तुत करते हैं। कविवर नर्तकी कथा की कमरजहाँ से नायक का विवाह एवं चञ्चा में मुन्नी बाई की पुत्री का उसके प्रोफेसर से विवाह का मार्ग प्रशस्त करके आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यही श्रेयस्कर मार्ग है, जिससे समाज से कटे हुए, एक अलग ही उपेक्षित दुनियां में रहने वाले हिस्से को पुनः समाज में समायोजित कर, उसके जीवन का पुररुद्धार किया जा सकता है। हुस्ना बाई को कविवर साक्षात् निष्कलंक नारी चेतना कहते हैं, जिसने नर्तकी पद से उसका उद्धार किया– 'नर्तकी पदात् त्वां वारयितुं ममाऽयं प्रयत्नः। तत्सम्पाद्यऽहमपि नर्तकीतो ब्राह्मणी संजाता।'[47] सत्य है सामाजिक कल्याण ही ब्राह्मणत्व है।

चञ्चा में मुन्नी बाई की पुत्री से विवाह का आधार गुण एवं कर्म को बताते हुए प्रवीन कहता है 'नाहं नास्तिको न वा परम्पराविरोधी। परन्तु परम्पराया अन्धानुकरणमपि न मह्यं मनागपि रोचते। गुणकर्मार्जितवैशिष्ट्य एव मम दृढ़ो विश्वासो न पुनर्जातिमात्रायत्ते वृथाऽभिजात्याभिमाने।'[48] यही दृष्टिकोण वेश्यावृत्ति उन्मूलन का मार्ग है, अन्यथा सामाजिक अथवा प्रशासनिक औपचारिकताओं से तो कुछ होने वाला नहीं है– 'लोक नायकाः नेतारो मन्त्रिणोऽधिकारिणो न्यायाधीशाः महामण्डलेश्वराः सर्वेऽपि दृढ़समर्थका आसन् अस्यान्दोलनस्य! परन्तु वेश्यावृत्तिमपहाय साध्वीजीवनं यापयन्तीनामासां नर्तकीनां का नु भविता जीवनयापनत्यवस्थेत्यस्मिन् विषये न कोऽपि चिन्तयतिस्म। न कोऽपि सर्वगुणसम्पन्नां रूपलावण्यप्रतिमां नर्तकीपुत्रीं स्वस्नुषां स्वकलत्रं वा विधातुमिच्छति स्म।'[49]

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में मतलोलुपता के कारण बढ़ता जातीय संघर्ष अथवा साम्प्रदायिक वैमनस्य सामाजिक संरचनागत स्वरुप के लिए एक बड़ा खतरा बन गया है। सामाजिक सद्भाव घट रहा है। आरक्षणादि उपायों से वर्ग संघर्ष घटने के बजाय बढ़ रहा है और जिसे प्रयास करना चाहिए, उसे रोकने का, वही इसे निजी स्वार्थों अथवा सत्ता लोलुपता के कारण बढ़ा रहा है। इसे संकेतित करते हुए कविवर कहते हैं–'अर्थसाम्यप्रयासापेक्षया हृदयसाम्यस्थापनप्रयासः सुकरः उपादेयश्च प्रतिभाति। हन्त, तदेव कार्यं शासनेन, न च क्रियते।'[50]

कविवर सावचेत हैं इस तथ्य से कि प्रशासनिक प्रयासों की शिथिलता के बावजूद समय के साथ अपेक्षित प्रशंसनीय प्रयास हो रहे हैं, परिणाम दिखाई दे रहा है। जाति की अपेक्षा गुणों से पहचान मानवीय है और वह हो रहा है– 'पुरावृत्तमिदं जातम्। सम्प्रति समुज्जृम्भते नूतनस्समाजो यत्र मानवः स्वगुणैरेव प्रतिष्ठितो, न पुनः स्वजात्या।'[51]

वैधव्य, बलात्कार, परित्यक्तावस्था न केवल प्राचीन समाज, अपितु अर्वाचीन समाज में भी एक जीते जागते मनुष्य के जीवन का अन्त है। विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह के प्रति **उदार-दृष्टिकोण एवं सहृदयता** ही इस सामाजिक विकृति का **समुचित निराकरण** है। जिस धर्म, परम्परा एवं संस्कृति के नाम पर स्त्री पर पुनर्विवाह की वर्जना की परिकल्पनाएं थोपी जाती हैं, अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने उन्हीं शास्त्रीय एवं धार्मिक मान्यताओं के सशक्त प्रमाणों से विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह का मार्ग प्रशस्त कर कांटे से कांटा निकालने का साहसिक प्रयास किया है। बलात्कार से, परित्याग से, अपहरण से अथवा पति की मृत्यु के कारण स्त्री त्याज्य नहीं है। वह वस्तुत पवित्र ही है, वरेण्य है। वे कहते हैं–

'न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।
पुष्पमासमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।'[52]

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के अनुसार वह पुनः विवाह के योग्य है–'सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति।'[53] और भी 'वैधव्यमात्रं न भवति विधवाया नियतिः। तन्नियतिस्तु तत्सौभाग्यम्।'[54] यही विचारधारा नारी सशक्तीकरण का महत्त्वपूर्ण सोपान सिद्ध होगा।

दहेज, जो वस्तुतः अपने मूलस्वरुप में एक पिता के द्वारा अपनी पुत्री को आशीर्वाद, स्नेह एवं स्मृतिचिह्न के रुप में दिया जाने वाला उपहार था, न जाने कब वरपक्ष के अधिकार के रुप में परिणत हो गया, कह नहीं सकते। समस्त वैधानिक प्रयासों एवं सामाजिक जागरुकता के बाद भी दहेजप्रथा सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती ही जा रही है। उसका एकमात्र समाधान है युवा पीढ़ी विवेकशीलता के साथ कृतसंकल्प हो कि वे गुण, कर्म, रुचि, योग्यता, संस्कार, आचरणगत समानता के आधार पर अपने जीवन साथी का चयन करेंगे। चित्रपर्णी की लघुकथाएं जामाता एवं गौर्यावरः इसका दृष्टान्त हैं, जिसमें वर विनम्रतापूर्वक केवल कन्या का हाथ मांगते हैं और उन परिवारों की खुशियां लौट आती है।

भौतिकता की अंधी दौड़ में शामिल कलियुगी समाज में स्वार्थान्ध मनुष्य इस समय दोहरी जिंदगी को जी रहा है। इसका एक चेहरा वो है, जो वह दिखाता है जैसा उसे

होना चाहिए, और एक वो चेहरा है, जो वह वस्तुत है– छल, कपट एवं वैमनस्यपूर्ण। इस सामाजिक दोहरे चरित्र को उद्घाटित किया है अभिराज राजेन्द्रमिश्र महोदय ने। अभिनयः, द्विसन्धानम्, पितृभक्तिः, काष्ठभाण्डम्, संस्कृतवर्षम्, पिशाचः, राष्ट्रपतिपुरस्कारः, आत्मविश्लेषणम्, मद्यनिषेधः, पात्रत्वम् जैसी चित्रपर्णी की लघुकथाएं समाज की इस विसंगति पर प्रहार करती हैं।

सनातन वैदिक परम्परा में प्रकृति की जिन अलौकिक शक्तियों को देवत्व के रुप में स्थापित किया है, वे समस्त जङजंगम की शृंखला को संतुलित रखने के लिए अनिवार्य है। इसी शुभाशंसा को व्यक्त करते हुए वैदिक ऋषियों ने उद्घोष किया था–

'ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयश्शान्तिर्वनस्पतयश्शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः। शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।'[55]

वह शान्ति अब अशान्ति में परिवर्तित हो रही है। पृथ्वी (मृदा), वायु, आकाश (ध्वनि), सूर्य (पराबैंगनी किरणें), जल सब कुछ अशान्त, असंतुलित एवं विकारग्रस्त हैं। प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है, जैव विविधता गड़बड़ा रही है, वन्य प्रजातियां नष्ट हो रही हैं, प्रकृति का पोषण व दोहन होने की बजाय मात्र शोषण हो रहा है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र इससे अपरिचित नहीं है। इस सामयिक विकराल स्थिति के प्रति वे संवेदनशील है। यद्यपि उनकी अधिकांश कथाएं मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हैं, परन्तु चित्रपर्णी की कई लघुथाओं में तथा कुक्की कथा में उनकी प्रकृति एवं पशुपक्षियों के प्रति संवेदनशीलता प्रकट होती है। उनकी छागबलिः, वृद्धामहिषी, नयनयोर्भाषा, कुक्की, इदम्प्रथमतया, प्राणभयम्, कृतज्ञः, वैराग्यम् एवं अश्रुमूल्यम् आदि कथाएं पर्यावरण चेतना की साक्षात् प्रमाण है। अश्रुमूल्यम् लघुकथा में इस पाञ्चभौतिक सृष्टि की सार्थकता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं– 'प्रकृतिक्रोडे, विलसतां पशुपक्षिस्थावराणां समेषां सार्थकता भवत्येव। नास्यां सृष्टौ पाञ्चभौतिक्यां किमप्युपादानं निरर्थकम्। यथा मानवो जन्मजन्मान्तराचरितकर्मविपाकवशादिह सञ्जातस्तथैव पशुपक्षिवृक्षा अपि। अतएव सर्वेऽपि मानवसाधारणा एव मन्तव्याः।'[56]

भ्रष्टाचार अधुनातन समाज की एक अन्यतम समस्या है, जिसने सम्पूर्ण प्रशासनिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक व्यवस्था को आमूलचूल जर्जर कर दिया है। नैतिक

सिद्धान्तों का स्थान भ्रष्टाचार ने ले लिया है। जीवन मूल्य क्षीण हो रहे हैं, धन की महत्ता बढ़ रही है, लोभ बढ़ रहा है, चहुँ ओर अर्थ की सत्ता है। परिवेशगत प्रभाव के कारण मुनष्य कम परिश्रम में अधिक धनोपार्जन करना चाहता है। भ्रष्टाचार (आर्थिक) इसका लघु एवं सरल मार्ग है। चित्रपर्णी की लघुकथाएं नियुक्तिः मद्यनिषेधः, ऊर्ध्वरेता, आत्मविश्लेषणम्, अवमानना, रक्षाकवचम्, भिक्षुकः, नियतिकौशलम् आदि भ्रष्टाचार पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए जनमानस को आन्दोलित करती हैं तथा नैतिकता का मार्ग प्रशस्त करती हैं। आत्मविश्लेषणात्मक स्वरुप में कलियुग के प्रचारतन्त्र पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं–'कलियुगेऽस्मिन् प्रचारतन्त्रमेव जीवितसर्वस्वम्।...................ये परमार्थतः स्वाभिमानैकजीविताः स्वोपार्जितवित्ततुष्टा, चारित्र्यकल्पतरुभूताः शतसहस्रगुणालङ्कृताश्च ते पङ्के गाव इव भृशं सीदन्ति।'[57]

अपनी पहुंच के बल से अयोग्य व्यक्ति जब नियुक्ति पा लेता है, तब पद के आवरण में उसकी सारी अयोग्यता छिप जाती है, परन्तु संस्कार अपरिवर्तित रहते हैं। साक्षात्कार प्रक्रिया एवं नियुक्ति प्रक्रिया पर प्रश्नचिह्न खड़ा करने वाली काष्ठभाण्डम् लघुकथा में इस विषय पर कविवर का दृष्टिकोण एवं विचार दर्शनीय है– 'सामाजिक दृष्ट्या या काऽपि पदोन्नतिर्जायेत मानवस्य, तया पदोन्नत्या कामं तस्य पदमुन्नतं भवेत् परन्तु सांस्कारिकाः गुणा दुर्गुणाश्च अपरिवर्तितास्तिष्ठन्ति। एव हि मन्दबुद्धौ प्रवक्तरि पदोन्नते कृते मन्दबुद्धैरेव पदेन सहोन्नतिर्जायते। प्रतिभाशीले पदोन्नते सति प्रतिभाया उन्नतिर्भवति।'[58]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक जिम्मेदार साहित्यकार के धर्म का पालन अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने पूर्ण मनोयोग से किया है। उनकी कथाएं समाज को प्रतिबिम्बित करते हुए समाधान का आदर्श मार्ग प्रस्तुत करती हैं, वे जनमानस को दोलायमान करती हैं, हृदयवीणा को स्वरायमान करती हैं, विचारों को गतिमान करती हैं तथा सन्मार्ग में प्रेरित करती हैं। समसामयिक समाज की लगभग सभी समस्याओं को रुचिकर कथाओं के माध्यम से कविवर ने उद्घाटित किया है। यद्यपि समकालीन समाज की एक ज्वलन्त समस्या युवापीढ़ी की हिंसक प्रवृत्ति– आतंकवाद तथा उग्रवाद आदि को कविवर की कथाओं में स्थान नहीं मिला है। चूंकि मिश्र जी की लेखनी सतत प्रवाहशील है, अतः आशा करते हैं कि इन विषयों तथा समाज पर इनके दुष्परिणामों को रेखांकित करने वाली कथाएं सहृदय पाठक वर्ग को मिलेंगी।

सन्दर्भोल्लेख

1. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–35
2. वही, वही, वही
3. वही, वही, वही
4. वही, वही, वही
5. मनुस्मृति, 3/56
6. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–12
7. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–29
8. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–130
9. वही, वही, पृष्ठ–131
10. वही, वही, पृष्ठ–101
11. वही, वही, पृष्ठ–9–10
12. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–59
13. वही, वही, पृष्ठ–50
14. आचार्यविश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 6/332
15. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, चित्रपर्णी, पृष्ठ–109
16. भारवि, किरातार्जुनीयम्, 17/06
17. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–36
18. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–44
19. वही, वही, पृष्ठ–09
20. वही, वही, पृष्ठ–25–26
21. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–25
22. वही, वही, पृष्ठ–07
23. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–45

24. वही, वही, पृष्ठ—137

25. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—09

26. वही, वही, पृष्ठ—27

27. वही, वही, पृष्ठ—42

28. वही, वही, पृष्ठ—56

29. वही, वही, पृष्ठ—55

30(अ) वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—37

30(ब) वही, राङ्गडा, पृष्ठ—05

31. वही, राङ्गडा, पृष्ठ—06

32. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—06

33. वही, वही, पृष्ठ—14

34. वही, वही, पृष्ठ—36

35. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—55

36. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—55

37 (अ) वही, वही, पृष्ठ—10

37 (ब) वही, राङ्गडा, पृष्ठ—68

38 (अ) वही, राङ्गडा, पृष्ठ—06

38 (ब) वही, चित्रपर्णी, पृष्ठ—06

39. वही, वही, पृष्ठ—06

40. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—12

41. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2/10

42. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ—130

43. वही, इक्षुगन्धा, पृष्ठ—40

44. वही, वही, वही

45. वही, राङ्गडा, पृष्ठ—26

46. वही, वही, वही

47. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ—75

48. वही, राङ्गडा, पृष्ठ–31
49. वही, पुनर्नवा, पृष्ठ–45
50. वही, वही, पृष्ठ–47
51. वही, वही, पृष्ठ–51
52. वही, वही, पृष्ठ–130
53. वही, वही, पृष्ठ–131
54. वही, वही, वही
55. वैदिक शांतिपाठ, वैदिकवाङ्मय
56. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, चित्रपर्णी, पृष्ठ–117
57. वही, वही, पृष्ठ–66
58. वही, वही, पृष्ठ–108

उपसंहार

उपसंहार

न स शब्दो न तद् वाच्यं न सा विद्या न सा कला।
जायते यन्न काव्याङ्गम्, अहो भारो महान् कवेः।।

सर्वशास्त्रविचक्षण, दिव्य प्रतिभासम्पन्न, विवेक रूपी ज्ञानचक्षु से सम्पूर्ण सृष्टि को दृष्टि प्रदान करने वाला तथा माँ सरस्वती की उपासना से विलक्षण विशिष्टताओं से विभूषित क्रान्तदर्शी कवि अपने काव्य रूपी कर्म से जनमङ्गल की साधना करता है। वह माया, मोह एवं अज्ञान के अन्धकार में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित करता है, मन के रोगों की चिकित्सा करता है, शोक रूपी अग्नि को शान्त करता है, संसार के आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक दुःखों का नाश करते हुए उस ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्द की अनुभूति का साधक बनता है, जो जन्मजन्मान्तर तक तपोभूमि में तपने के उपरान्त अनुभूत होती है। सांसारिक संरचना की समस्त सीमाओं को पार कर कवि इतिहास को जीवन्त करता है, भविष्य की कल्पना को साकार करता है एवं वर्तमान की यथार्थ अनुभूति करवाकर लोकमङ्गल के मार्ग को निष्कण्टक बनाने का पुनीत कार्य करता है। **माँ सरस्वती के वरदपुत्रों की वाणी में तूफानों के रुख को मोड़ देने की ताकत होती है। उनके शब्द सामाजिक-विधान बन कर पीढ़ियों तक समाज का पथप्रदर्शन करते हैं।**

अर्वाचीन संस्कृतसाहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र की लेखनी साहित्य की सभी विधाओं मे अपने शब्दशिल्प एवं भावशिल्प की उत्कृष्टता के साथ सर्वोच्च शिखर पर विराजमान है। अदभुत काव्य–क्षमता एवं विलक्षण व्यक्तित्व के धनी मिश्र जी अपनी सहज भावसंप्रेषणीयता से **अभिनव-कालिदास** प्रतीत होते हैं, तो कहीं अपने उत्कृष्ट शब्दशिल्प से **अभिनव-बाण** के रूप में अवतरित हो उठते हैं। वाङ्मय का दृश्य स्वरूप हो अथवा श्रव्य, मिश्र जी की लेखनी निर्द्वन्द्व एवं निर्बाध रूप से श्रेष्ठता के शिखर पर विराजमान हैं।

अभिराजवाङ्मय–वारिधि में विलोड़न करते हुए मैनें महसूस किया है कि उनकी गहराई को मापना असम्भव है। उनकी साहित्यसाधना की विविधता को देखकर मुझे अनुभव

होता है कि अर्वाचीन संस्कृतसमाज में यह उद्घोष किया जा सकता है कि **'अभिराजोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'**। ऐसी कोई विधा नहीं, जिसका आपने स्पर्श न किया हो और उसे स्वर्ण नहीं बना दिया हो। इसीलिए डॉ. दिनेश दत्त चतुर्वेदी कहते हैं– **'अद्भुत सृजनात्मक प्रतिभा** (Creative Genius) और **विलक्षण-पाण्डित्य** (Critical Genius) का अपूर्व संगम है, आपके मोहक व्यक्तित्व में और इस पर भी रंचमात्र अहम् का न होना आपके समूचे व्यक्तित्व को महिमामण्डित कर देता हैं।' उनका रचनासंसार वाणी–त्रिवेणी के महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीत, गज़ल, नाटक, नाटिका, एकांकी, कथा, समीक्षा, अनुवाद आदि रत्नों से जटित, अद्भुत एवं विलक्षण है। केवल संख्या एवं आकार ही नहीं गुणवत्ता की दृष्टि से भी उनका काव्य श्रेष्ठता के शिखर पर हैं।

संस्कृत कविता के धनी एवं भारतीय दर्शन के निष्ठावान पाठक होने के नाते अभिराज जी का काव्य मिलन–विछोह, उत्थान–पतन, जीवन–मृत्यु तथा सुख–दुःख आदि परस्पर विरोधी दो ध्रुवों का संगम बन गया है। कवि के अपने शब्दों में उनके जीवन को परिभाषित करना चाहूंगी–

धागा है साँस और चादर है जिन्दगी
परिचय की सृष्टि में समादर है जिन्दगी।
ऊपर नीचे हैं जुड़े सुख-दुःख के गोटे
लगते है कभी बड़े और कभी छोटे
बीच में सफेदी के बादर सी जिन्दगी।।

साहित्यसमाज को सार्थकता प्रदार्न करने वाले त्रिवेणी कवि शतायु हों। संस्कृत, हिन्दी एवं भोजपुरी को प्राणवायु प्रदान करने वाले मिश्र जी को सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो।

कविवर के रचनासंसार में अपने अनुसंधेय विषय 'कथा–साहित्य' के साथ एकाकार होते हुए मैनें महसूस किया कि अभिराज राजेन्द्रमिश्र के कथा साहित्य की विषयवस्तु सर्वथा समकालीन समाज को अपने भीतर समेटे हुए है। अधुनातन समाज के भीतर के द्वन्द्व को, उसकी व्यथा को, उसके प्रश्नों को तथा उसकी समस्याओं को उनकी कथाओं में समाधान एवं विश्रान्ति प्राप्त होती है। कविराज की कथाओं में प्राचीन जीवन मूल्यों, नैतिक मर्यादाओं, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं समसामयिक अपेक्षाओं में अद्भुत समन्वय है। वे आँख बन्द करके प्राचीन एवं अप्रासंगिक परम्पराओं का अनुसरण नहीं करते, परन्तु मर्यादा का उल्लंघन भी कदापि नहीं करते। कथाओं में नवीन एवं प्राचीन के ग्राह्य विषयों को

शिरोधार्य करके अप्रासंगिक को विनम्र अस्वीकृति प्रदान करते हैं। अधुनातन समाज एवं अधुनातन समस्याएं उनकी कथाओं का कथ्य है। न तो वे आधुनिकता के नाम पर पुरातन गरिमामयी परम्पराओं का त्याग करते हैं और न ही प्राचीन विरासत के नाम पर व्यर्थ लकीर पीटने का कार्य करते हैं। नवीन युग की समस्याओं एवं नवीन विचाराधारा को उदारमना कवि, हृदय से स्वीकार करते है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र का कथा–साहित्य उनकी **अन्तश्चेतना का लोक की अन्तश्चेतना से साक्षात्कार** है। उनकी कथाओं में लोक की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। अभिराजीय कथासंसार में सम्पूर्ण चराचर जगत का प्रकाशन है। उनका काव्य आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक जगत की व्याख्या है। राधावल्लभ जी के **'लोकानुकीर्तनं काव्यं'** की कसौटी पर मिश्र जी पूर्णरूपेण खरे उतरते हैं।

इतिहास में विद्यमान भूतकाल का समाज, प्रत्यक्ष चलता–फिरता जीवन्त यथार्थ वर्तमान समाज एवं हमारा परिकल्पित निर्दोष, सुन्दर एवं स्वस्थ आने वाला समाज कवि की निर्मल मनोभूमि में स्फटिक के समान प्रतिबिम्बित होता है। सांस्कृतिक–संक्रमण के इस दौर में किंकर्तव्यविमूढ़ मानव को दिशा देने वाले कई नीति–सूत्र कवि की कथाओं में विराजमान है। समाज एवं जीवन ऐसा कोई पक्ष नहीं है, जिसका स्पर्श कविराज ने न किया हो।

स्त्री-विमर्श कविराज के काव्य का प्राणतत्त्व है। स्त्री सशक्तीकरण के सही मायने समझाते हुए उन्होंने सामाजिक मेरूदण्ड को मजबूत बनाकर उसकी गति व प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया है। अपनी कथाओं में नारी के विविध रूपों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए उनकी संवेदनाओं को भी साकार रूप प्रदान किया गया है, परन्तु कहीं भी वे मर्यादा के अतिक्रमण के पक्ष में नहीं हैं। विधवाविवाह, पुनर्विवाह, प्रेमविवाह, अन्तर्जातिय विवाह, कानीन–शिशु, लिङ्गभेद, सपत्नी–पीड़ा, विवाहेतर सम्बन्ध, बालिका–शिक्षा, सौतेली माँ, परित्यक्ता नारियां, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, यौनोत्पीड़न सब के सब विषय कवि की लेखनी के विषय बनकर, नारीसमाज की कुण्ठाओं को वाणी प्रदान करके, समाज के हृदय को द्रवित करने का कार्य कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति, कवि के काव्य में पुरातन एवं अधुनातन जीवनमूल्यों के पूर्ण सन्तुलन के साथ विराजमान है। सत्ता के गलियारों की सच्चाइयाँ उजागर करती है कवि की कथाएं तथा साथ ही धर्मोदयन जैसे राजा एवं हस्मिल्ल जैसे आदर्श चरित्रों को वरेण्यता भी प्रदान

करती हैं। समाज के आर्थिक समीकरण के मर्म को उद्घाटित करते हैं अभिराज राजेन्द्रमिश्र। दलितों के हृदयों को उद्घाटित करते हुए वर्णव्यवस्था के आदर्श स्वरूप को प्रतिष्ठापित किया है कविवर ने। इतिहास के समाज एवं पात्रों का मनोविज्ञान भी झलकता है मिश्र जी के काव्य में। **समाज, संस्कृति, राजनीति, इतिहास, स्त्री, दलित व अर्थव्यवस्था के यथार्थ स्वरूप को उकेरते हुए सही दशा व दिशा का मार्ग प्रशस्त करते हैं कविवर।**

कवि के कर्तृत्व के भावसौन्दर्य से जनहृदय आह्लादित होकर ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्द को प्राप्त होता है तथा अनायास ही सत्य का साक्षात्कार करता है, वहीं उसका शिल्पसौन्दर्य साहित्य एवं भाषा को परिष्कार एवं विस्तार प्रदान करते हुए उसका उपकार करता है।

अभिराज जी का पूरा का पूरा कथासंसार करूणा की अनुभूति है। कुक्की जैसी पात्र कथानायिका बन जाती है। मुझे प्रतीत होता है कि करूण रस ही कवि की कथाओं में भिन्न–भिन्न रूपों में परिवर्तित होता है। **भवभूति की प्रतिच्छाया कवि के कथाकाव्य में** घटित होती है–

'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।'

यद्यपि सहज रूप से अन्य रसों की प्रतीति भी यथा अवसर तथा यथाप्रसंग होती है।

कवि के काव्य में अलंकार अनावश्यक बोझ नहीं है, वे सहज सौन्दर्यबोध में साधक बने हैं। **अलंकार कालिदास के काव्य की तरह उनकी कथानायिका का शृंगार करते हैं।** उपमा, मालोपमा, अर्थान्तरन्यास, रूपक, यमक, परिसंख्या आदि अंलकार काव्यशरीर के सौन्दर्य को द्विगुणित करते हुए काव्य की आत्मा, रसानुभूति में पूरक बने हैं।

पदसंघटना विषयानुकूलता लिए हुए है। हठात् पाण्डित्यप्रदर्शन का आग्रह कहीं भी नहीं है। उनकी पदसंरचना भावबोध की सीढ़ी है। जटिल विषयों को जटिल पदावली में तथा सरल व सहज छोटे–छोटे वाक्यों से सहजमाधुर्यपूर्ण भावों को अभिव्यक्ति देने में कवि सफल रहे हैं।

कवि की भाषा भावों की साधिका है। नवीन संदर्भ एवं नवीन विषयानुसार नवीन पदनिर्माण कर सही मायनों में वे आधुनिक काल के कवि सिद्ध होते हैं। उनकी कथाओं में

शब्दों का जटिल जाल भी है तथा शब्दों के छोटे–छोटे सूत्र भी भावसाधन के माध्यम के रूप में उपस्थित है। सब कुछ विषय एवं औचित्य पर निर्भर है।

कवि की कथाओं का अद्‌भुत संसार है। अपनी हृदयावर्जकता से हृदयों पर तीर की तरह जाकर तीक्ष्ण प्रहार करने वाली कथाएं अपने भीतर जिस ज्ञानभण्डार को समाहित रखती हैं, उनमें कवि का अथाह ज्ञान एवं पाण्डित्य प्रस्फुटित होता है। उनकी **कथाएं वो गागर है, जिसमें ज्ञान का सागर समाहित हो गया है।** कथाओं के कथ्य में, पात्रों के संवादों में, कवि के विवरणों में उनके विविधायामी ज्ञान की झलक दिखाई देती है। कवि का शास्त्रीय ज्ञान अभूतपूर्व है। वैदिक एवं लौकिक वाङ्‌मय के शास्त्रमुक्तकों को कथाओं में पिरोया है कवि ने। शास्त्रों के गहन अभ्यास से काव्य को धार प्रदान की है कविवर ने। उनकी कथाओं में वैदिक धर्म, ब्राह्मण व ब्रह्ममयी सृष्टि में आस्था तथा अद्वैत का समर्थन व्यक्त किया गया है। उनकी सारी कथाएं उनके दर्शन का प्रतिनिधित्व करती हैं। कथाओं में जीवन के मूलमंत्र हैं, उनका जीवनदर्शन है। **कवि की कथाएं मानवीय मनोभूमि की व्याख्या है,** उनकी कथाओं में मन के विकारों का समाधान है, कथाएं मन की अशान्ति को विश्रान्ति में परिवर्तित कर देती हैं। मानवीय व्यवहार के सूक्ष्म अध्येता है कवि। कवि समाज के हृदय से एकाकार हुए हैं। वे पात्रों के हृदय की व्यथा को साझा करते हैं। मानवमन की क्रिया व प्रतिक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण एवं उसकी सटीक अभिव्यंजना उनकी कथाओं में प्राप्त होती है। कथाओं में प्रकृति के भावों को, उसके बाह्य एवं आन्तरिक पक्ष को उन्होंने साकार रूप प्रदान किया है। प्रकृति के उपमानों में अपने संदेशों को व्याख्या दी है कविवर ने।

कथा के बीज को अपने गर्भ में धारण करने वाले वैदिक वाङ्‌मय से अर्वाचीन काल तक सतत प्रवाहमान कथासरिता में कविवर का स्थान अनुपम है। उन्होंने कथा को नई व्याख्या दी है। पुनर्नवा की नान्दीवाक् में 'कथा' विधा पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए उन्होंने वर्तमान कथा के स्वरूप को निर्धारित किया है। उनकी कथाओं में इक्षुगन्धा, राङ्‌गडा तथा पुनर्नवा कथानिकाएं है, जो स्वरूप में हिन्दी कहानी के नजदीक हैं। चित्रपर्णी लघुकथासंग्रह है। पुनर्नवा की अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा दीर्घकथा का उदाहरण है। अभिराजीय कथाओं की विषयवस्तु पुर्णरूप से अधुनातन समयानुकूल होने से नवीन है। पात्र भी नवीन है। संवाद वर्तमानसमयानुकूल नवीन है। परिवेश अथवा वातावरण आधुनिक ही है। कवि की शैली प्रायः संस्मरणात्मक है। **कवि की कथाओं का उद्देश्य समकालीन समाज की**

समस्याओं की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति हैं। पुरातन बहुमूल्य को न छोड़ते हुए सामयिक जीवनमूल्यों को आत्मसात करना कवि का अदभुत गुण है। वे सर्वशास्त्रविचक्षण हैं, शास्त्रमर्यादा के ज्ञाता हैं, काव्यमर्यादा के पालक हैं तथा समाजमर्यादा के विधायक है।

मिश्र जी के कथासंसार के पर्यालोचन में मैने महसूस किया कि कविकुलशिरोमणि अभिनव–कालिदास का विलक्षण व्यक्तित्व एक विशाल सागर–सी गहराई एवं विस्तार लिए हुए है। उसके अन्तःस्थल तक पहुंचना मेरे सामर्थ्य में नहीं है, परन्तु जितना मैं समझ पाई हूँ, मुझे लगता है, अभिराज राजेन्द्रमिश्र के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व में बाण, कालिदास, भवभूति जैसे कवियों से अन्तःसंवाद की प्रेरणा है तथा नवीन, अधुनातन एवं प्रासंगिक का अनुसंधान है। उनके समकालीन साहित्यकार स्नेह एवं आदर के साथ उन्हे अभिनव–कालिदास की उपाधि प्रदान करते हैं। सच में! उनका भाव–गाम्भीर्य उन्हें कालिदास के समकक्ष प्रतिष्ठापित करता हैं। उनका शब्दशिल्प उन्हे बाणभट्ट के समकक्ष स्थापित करता है। प्रो. पुष्पा दीक्षित कहती हैं– **'जैसे वायु का झकोरा पल्लवों को हिला दे, उसी प्रकार कथाएं पाठकों के मन को झकझोरकर रख देती हैं। मिश्र जी की भाषा में ऐसा प्रवाह है कि वस्तुतः कभी दण्डी, कभी बाण, कभी क्षेमेन्द्र, कभी भवभूति और कभी माघ उनमें अवतीर्ण हो जाते हैं।'**

संस्कृत, हिन्दी, भोजपुरी तीनों भाषाओं में समान अधिकार के साथ काव्य, नाट्य , कथा, समीक्षा, गीत, गज़ल, एकांकी में समान उत्कृष्टता के साथ काव्यसर्जना कर रहे, युग प्रणेता अभिराज राजेन्द्रमिश्र के विशाल वाङ्मय एवं विलक्षण व्यक्तित्व से इस बात में कोई सन्देह नहीं कि **यह युग अभिराज-युग है।** उन्हे अर्वाचीन काल का कालिदास मानने में साहित्य–समाज में कोई द्वेध नहीं होना चाहिए। ज्ञान–गाम्भीर्य, अर्थ प्राकट्य, शब्दसंयोजन, रसप्रवणता, अलंकारसंयोजन व हृदयग्राह्यता से वे अर्वाचीन संस्कृतसाहित्याकाश के देदीप्यमान भास्कर हैं, जो अपनी ज्ञानरश्मियों से लोक को प्रकाश, जीवन, चेतना, प्रेरणा व ऊर्जा प्रदान करते हुए लोक की पीड़ाओं को हरकर उनके जीवन को आनन्द रूपी उत्सव से पूर्ण कर रहा है।

निस्सन्देह 'र–त्रय' (राजेन्द्रमिश्र, राधावल्लभ एवं रमाकान्त जी) में विराजमान मिश्र जी आधुनिक साहित्य में कालिदास की तरह कनिष्ठिकाधिष्ठित हैं। अभिराज अनुपम हैं। उनकी उपमा दुर्बोध्य हैं। स्मिता राजवाड़े जी के शब्दों में, मैं भी कहना चाहूंगी–

आदरणीय मिश्र जी!

निकली थी मेरी प्रतिभा ढूंढने उपमा, आपके लिए

थकी-मांदी वह लौट आई, अनुपम हैं आप,

इसलिए!!

परिशिष्ट

परिशिष्ट

सुभाषितानुक्रमणिका

इक्षुगन्धा

जिजीविषा

भग्नायां रज्जौ के घटं धारयन्ति?

सुखशयितपृच्छिका

अस्माकं संस्कृतौ तु सप्तपदी मैत्री स्वीक्रियते।

अनिश्चितेयं जीवनयात्रा।

सहयायिमोहात् यात्रा न खलीक्रियते साधकेन।

सत्यं वर्तते सर्वोपरि।

अनामिका

पठने पाठने वा को भेदः।

आनन्दोपभोगे तु सर्वं विस्मर्यते।

उपाख्यानकातरेयं जाति।

एकहायनी

जवनिकोद्घाटनादृते कुतो नेपथ्यज्ञानम्।

भयभीतां मन्दाक्षजिताञ्चावलोक्य रमणीं को नु विजयसौख्यं नानुभवति।

स्नेहाचलनिर्गताऽनुरागापगाऽवरोधान् न गणयति।

बलीयसी भवितव्यता।

प्रण्यबन्धने समुपबद्वयोः प्राणिनोर्जीवनं न स्वतन्त्रम्।

भोक्ता यो वा को वा भवेत् सन्ततिस्तु जायते एव।

शतपर्विका

पाषाणेऽपि राजतेऽग्निः।

भाग्यात्तमेव मनोवाञ्छितसन्ततिजन्म।

पुत्रीपुत्रयोर्न कोऽपि विशेषः।

प्रेमैव हृदयानि बध्नाति।

इक्षुगन्धा

सर्वेऽपि प्राणिनः पूर्वजन्मार्जितान्येव पापपुण्यानि भुञ्जन्ति।

तुल्यगुणं वधुवरं विधाता क्व समानयति।

भग्नपञ्जरः

सर्वं परवशं दुःखम्।

स्वार्थानुकूलकम् अवसरमात्रं निभालयत्ययं समाजः।

तमसा तमः प्रभवति ज्योतिषा च ज्योतिः।

नात्मानमावसादयेत्

केन गुणेन पुरूषो विद्वान् भवति।

जीवनमिदं विधात्रा जीवनाय दत्तम्।

वात्याध्वस्तं कुटीरं सर्वे पुनर्व्यवस्थापयन्ति।

आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति।

ताम्बूलकरङ्कवाहिनी

भैक्ष्यमपि वरं न खलु राजैश्वर्यम्।

भाग्यक्रमेण हि राज्यश्रीरायाति याति च ।

वैद्यं विना कोऽन्विष्येदामयम्?

जाङ्गलिकं विना को वा नर्तयेत् सर्पिणीम्?

कियद्वेगवती भवत्यतीतस्तमृतिर्गतिः?

राङ्गडा

अधर्मणः

अद्भुतैव शक्तिरेकादशेन्द्रियस्य।

आत्मा वै जायते पुत्रः।

पूर्वजन्मार्जितसंस्कारानुप्राणितो भवति मानवनिसर्गः।

कुक्की

विचित्र एव प्रतिभाति कर्मविपाकः।

सर्वोऽपि कालोऽनुकूलो न व्यत्येति।

चञ्चा

पर्वतोद्गता नदी संयमच्युता कन्या च निसर्गत एवाधो गच्छतः।

मातृहृदयं घासबीजसङ्कुलं भूतलमिव भवति।

प्रणयसूत्रे विच्छिन्ने सति नार्येव पराजयं पश्यति न पुरूषः।

भूमौ स्थित्वा हिमांशुपरिरम्भाकांक्षा न जातु करणीया।

क्रोधः सर्वनाशमूलम्।

महानगरी

नयनतारकायते पितृकृते प्रत्येकं शिशुः।

एकचक्रः

स्वार्थान्धोऽयं लोकः।

विहरणार्थं विहगानामाकाशः पञ्जरायते।

विकसनार्थं कैरवाणां निशीथिनी निमेषायते।

प्रेम्णि का प्रमाणमीमांसा?

निष्ठैव दाम्पत्यमूलम्।

हन्त गरूत्मान् कालविहगः।

पोतविहगौ

नूनं रतिसुखान्तो मानिनीनां मानः।

वरं वैधव्यं न पुनः कामकीटस्वीकरणम्।

परसुखासहिष्णवो हि नार्यः।

सिंहसारिः

द्यूते प्रणये च सर्वमेव युक्तियुक्तं भवति।

सर्वज्ञोऽसौ प्रत्येकं हृदयस्पन्दनं सुष्ठु विजानाति।

अश्रुपातो नाम नारी पराजयप्रतीकध्वजः।

दयितं प्रति प्रस्थिताः स्त्रियः सागराभिमुखा निम्नगा इव केन रोद्धु शक्याः?

साहसे श्रीः प्रतिवसति।

धूमलेखेव नारी सर्वस्थितिस्वीकृति क्षमा।

नारी नियतिप्रदत्तं सर्वमपि अवस्थाविपर्ययं स्वीकरोत्येव।

किं रमण्यां सौन्दर्यादृते नान्यत्किमपि अवशिष्यते समादरयोग्यम्?

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते।

सर्वाणि दिनानि समञ्जसान्येव नातियान्ति।

राजनीतिः खलु क्षुरस्य निशिता धारा।

पितुरपि महीयसी माता भवतिः।

पुनर्नवा

सङ्कल्पः

संसारेऽस्मिन वैविध्यमेव व्यवस्थामूलं सर्वजनशरणञ्च।

समाजस्तु समाजेनैव धार्यते।

प्रेम समग्रमपि भेदं समापयति।

प्रेमद्रुमः पीयूषफलं जनयति।

सपत्नी

वन्ध्यादोषोऽपि नाम स्त्रीणां नयननिद्राहरः।

सुखसमृद्धिसंरक्षणप्रदः पुत्रः प्रकारान्तरेण पतिरेव भवतीति लोकव्यवहारः।

पौत्रमुखदर्शनेच्छा कां स्थविरां नान्दोलयति?

अश्रीकं पुत्रं विना भवनम्।

नारीणां रोदनं बलम्। जयस्स्यातपराजयो वा। सर्वोऽपि व्यवहारस्तासां नत्रजलेष्वेव पर्यवस्यति।

सपत्नीति नाममात्रमनुश्रुत्य स्फुटितप्राया भवन्ति गृहिण्यः।

जानन्नपि को नु खलु विषं भुङ्क्ते?

सपत्नीरूपां दुर्वारविपदं का नु खलु रमणी प्रसह्यामन्त्रयते?

सन्ततेर्महत्त्वं प्रसूरेव जानाति।

समुत्थिते खलु वात्याचक्रे क्वचिदवस्थानमेव वरम्।

वाग्दत्ता

समाजस्तु नदीप्रवाहकल्पो यो हि प्रावृषि मलीमसश्शीततर्तौ च स्वच्छतरो जायते।

नर्तकी

नारी तु निसर्गतः कलं व्याहरति गायति वा।

न कापि गणिका, प्रकृत्यैव निःस्नेहा, कस्मिन्नपि जने दृढं श्रद्दधाति।

न्यायमहं करिष्ये

कुमारयोर्नित्यसङ्गतिः समुचिता सोदरीसोदरयोर्न पुनर्यूनोः।

लोके स्थातव्यं चेत्, लोकानुकूलमेव करणीयम्।

इयमीदृशी मुखाभ्यन्तरस्था मक्षी या न निगरितुं शक्यते न वोद्वमितुम।

नारीभूयाऽपि नारीं शातयसि स्वार्थान्धा सती?

या स्वयमेवाऽशिक्षिता सा स्वपुत्रीं कथं शिक्षयिष्यति!

या निसर्गतो नृशंसा सा स्वपुत्रीं कियतीमुदारां विधास्याति।

या स्वयमेव द्रुह्यति स्वजनेभ्यः सा स्वपुत्रीं कीदृशं प्रेमबन्धमुपदेक्ष्यति।

ध्रुवस्वामिनी

यौवनमदिरोन्मदा युवतिर्वाञ्छति यत्तस्या भोक्ता कन्दर्पकेलिकुशलः स्यात्।

यौवनवती रमणी सर्वविधं दारिद्रयं पत्युः सोढुं क्षमते परञ्च न तस्य रतिकर्मशैथिल्यम्।

स्थौल्यमुपगतोऽपि मूषिको लोष्टकल्प एवं भवितुमर्हति न ततोऽधिकः।

समतलमनवाप्य अधोगमनप्रकृतेर्जलस्य प्रवाहः क्वावरूध्यते?

को नु भोजयति निरूद्यमं निरूपायं मोघजीविनमौदरिकम्?

हन्त, अगाधे सलिले तिष्ठन्नपि रजकस्तृषाकुल एव?

महिलाहृदयोत्थिताऽशङ्का गृहच्छदिसन्दीप्ताऽग्निज्वालेव सहसोपशाम्यति।

वन्ध्या

सन्ततिप्रजननं नाम न केवलं पत्न्या दायित्वम्। वस्तुत उभयसंविभक्तमिदं दायित्वम्।

तृणस्फुर्लिङ्गसम्पर्के जात एव प्रदीप्तो भवति वैश्वानरः।

विलम्बो वर्तते परमेश्वरगृहे न तावदन्यायः।

न्यासरक्षा

मेघागमात्प्रागेव कृषाणाः स्वकुटीरच्छदिं नवीकुर्वन्ति।

न कापि जननी पूर्वत एव पुत्रनिसर्गं जानाति।

पुत्रेणैव पाल्यतेऽसौ पुत्रेणैव पीड्यते चापि। तथापि पुत्रजननान्न कापि विरमति।

वर्तमानमात्रमस्माकं हस्ते, भविष्यं पुनः परमेश्वराधीनम्।

मरून्यग्रोधः

अनभीष्टे भवति प्रतिषेधः।

भोगास्वादपरिवर्तनं को नरः का वा नारी न समीहते?

प्रच्छायशीतलोऽपि मरून्यग्रोधो विविक्ततया न केनापि सेव्यते मरूपथिकानपहाय।

पुनर्नवा

देवचरणार्पणात्प्रागेव पुष्पमाला कर्दमे निपत्य मलीमसा जाता।

कर्मानुष्ठानात्प्रागेव गोमयोपलिप्ता पूजाभूमिः कोलदलचङ्क्रमणैरपवित्रा जाता।

समाजस्तु विमुक्तनासारज्जुः क्रमेलक इव न पन्थानं समीक्षते।

समाजस्तु स्वार्थान्धः क्वचिदमृतमपि विषं घुष्यति क्वचित्पुनर्विषमपि निगरणीयममृतम्।

समाजोऽयं केवलमसहायानां सामर्थ्यहीनानां किञ्च प्रतीकाराक्षमाणां दोषान् पश्यति न पुनस्समर्थानाम्।

समाजश्शातयति केवलमार्जवोपेतान् न तावद्रावणजरासन्धकंसप्रभृतीन्।

इदमपि सुनिश्चितं यन्न किमपि निष्प्रयोजनं घटते।

केन दुःखेन किं सुखमुत्पद्यते, कस्य वा दुःखेन कस्यान्यस्य सुखं विधीयते इति परमेश्वरः प्रागेव जानाति।

विचित्रं विस्मयावहञ्च नियतिजनितं घटनाचक्रम्।

चिराभ्यस्तेन क्षुण्णेन मार्गेण साधारणजना गच्छन्ति ये स्वकीयं मार्गं निर्मातुमक्षमा अज्ञा वा।

केसरिणः कवयः सत्पुरूषाश्च न प्रवर्तन्तेऽभ्यस्तवर्त्मना।

यथा वर्षाजलपरीवाहेनाऽपेयसलिलाऽपि वापी परमार्थतः शुध्यति तथैव प्रत्येकं रजोदर्शनेन नारी शुध्यति।

वैधव्यमात्रं न भवति विधवाया नियतिः। तन्नियतिस्तु तत्सौभाग्यम्।

अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा

किं कानने निलीयैव संसारो रक्षितुं शक्यते, नोषित्वा गृहे?

संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा?

समरं विहाय समरविजयः?

धिक्तं धर्मम्। धिग्धिक्तं सम्प्रदायं यस्समाजं क्लीबं विदधाति।

धिक्तं धर्मं यो लोकं पराश्रयिणं परोपजीविनं परमुखपेक्षिणञ्च विधत्ते।

धिक्तं धर्मं यो लोकं कर्मपराङ्मुखं कुरुते।

निर्वाणं न तिष्ठति दायित्वनिवृत्तौ। निर्वाणं विलसति दायित्वसम्पादने।

त्वरायां सम्भ्रमे समुद्वेगे वा पौरा जीवन्ति न पुनर्ग्रामीणाः।

या निम्नगा समतलभूमिभागे शान्तं स्थिरं निर्विघ्नं च प्रवहति सैव हस्तिनखे प्रदेशे दुर्वारतीव्रगत्या पुरस्सरति।

चित्रपर्णी

प्राप्ते खलु सम्बले संरक्षणे निर्गुणोऽपि सगुणो जायते।

कलङ्काद वरं मरणम्।

जगत्पापनोदिनी जाह्नव्यपि क्वचित्प्रावृषि मलोपहिता जायते।

पङ्कः जलेन प्रक्षालयितुं शक्यते, न पुनः पङ्केन।

पुण्येनैव पुण्यमवाप्तुं शक्यते।

शिशोः सर्वमप्यधरोत्तरमाचरितं मातुर्मनोरञ्जनायैव भवति।

अकिञ्चनोऽपि जनः सततोद्योगेन उन्नतिशिखरमुपैति।

मद्यपानं समेषां विपज्जालानां मूलम्।

कलियुगेऽस्मिन् प्रचारतन्त्रमेव जीवितसर्वस्वम्।

परिश्रमोपार्जितमेव धनं सुखाय कल्पते।

यद्धनं यया रीत्योपार्ज्यते तथैव व्ययीर्भवति।

प्रेष्ठा अपि जीवनादर्शाः प्रायेण खलीभवन्ति।

सिकताभ्योऽपि तैलं निष्कासयितुं समर्थः।

स्वकीयमेव गर्दभं हयीकर्तु समीहन्ते।

सर्वं स्वार्थं समीहते।

जाह्नवीस्नानेनापि कौलेयको न शुचितामवाप्नोति।

नियतिर्बलीयसी।

पत्नी भवति पत्युः संरक्षिका वृद्धावस्थायाम्।

लोकोक्तियाँ/मुहावरे

इक्षुगन्धा

भग्नपञ्जरः

होमं सम्पादयन्त्या अपि भस्मीभवतो हस्तौ।

रिक्तं चणकं सान्द्रं नदत्येव।

नदन्तो मेघा न वर्षन्ति।

कुलदीपकः

भाष्ट्रे गच्छतु तवोष्णं शीतलं वा।

नियमय जिह्वाकर्तरिकाम्ः।

अधमर्णः

असाम्प्रतकारिणीम् डाकिनीम्।

शनैः शनैः सर्वमापि नैसर्गिकं जातम्।

कुक्की

रण्डे! भाष्ट्रमुखं गच्छ।

आकाशात्तारकारकाण्यपि लूत्वाऽऽनेतुं नितरां बद्धपरिकर आसीत।

क्षतं पुनर्नवतां प्रपेदे।

अग्निरेव लौहं द्रवयति।

परिणयोऽयं न पुनः पुत्तलिकाक्रीङनम्।

गोमयवरकसंवर्धितो विषद्रुमो।

नवप्रसूता गौरिव वात्सल्यमेदुरा।

हृदयं पाषाणीकृत्य।

करबदरनिभं सुस्पष्टम्।

अविद्यमाने वेणुदण्डे, वेणुरपि नाधमाष्यति।

नाग्रे कोऽपि न वा पश्चाात्।

सर्वथा निर्गृहघट्टोऽस्मि रजक सारमेय इव।

श्मसान वैताल इव चङ्क्रमणं।

सर्वोऽपि प्रयत्नः सिकतागृहोद्यमस्संजातः।

तदेव संवृत्तं यदनभीष्टमासीत्।

मर्यादावाटीं कदाचारमतङ्गजः क्षपयाञ्चकार।

शीलकौमुदीं कलङ्कसैंहिकेय उपजग्राह।

चञ्चा

पुराचीनैव मदिराऽभिनवेषु गोलकेषु वर्तते।

पृथुमौक्तिकाकारा अश्रुबिन्दवो नयनाभ्यां व्यपतम्।

क्रोधोद्धुरा कालभुजगीव।

सारमेयमिमं मध्ये न्यायालयं नग्नं करिष्यामि।

राहुभूतोऽसि कौमुद्या कृते।

शीर्षे एकोऽपि बालस्ते नावशिष्टो भविष्याति।

महानगरी

तुम्बिकां धमन् जाङ्गलिक इव।

सांख्यपुरूष इव विनिर्मुक्तम्।

शुनश्शेपीकृत्यान्येभ्य समर्पयन्ति।

अजागलस्तनायमानमेव प्रतिभाति।

शनिदशेव शिरस्यारूढ़ा।

मध्वन्वेषणार्थं वने प्रविष्टो विस्मृताध्वाऽध्वनीन इव।

पोतविहगौ

प्रेम्णि युद्धे च सर्वं युक्तियुक्तम्

दिनं पर्वतायमानं निशीथिन्यश्च कालभुजगीकल्पाः प्रतिभान्ति।

निर्मक्षिकं जातम्

नारी न कथमपि नार्यन्तरं सहते।

शङ्कायाः पुनः किमौषधम्?

विद्युदिव प्रचरिष्यति।

अलं तिलं तालीकृत्य।

बुद्धिस्ते भ्रष्टा।

जर्जरोपाहनमिव परित्यजामि।

द्यावाप्रथिव्योसङ्गमो जातः।

गरलमुखाः पथि पथि प्रभवन्ति।

चरणप्रक्षालनजलसमतामपि न बिभर्ति ।

याचित्वा खादिष्यामि।

हृदयस्पन्दनं सहसाऽवर्धात।

निरूद्धपयःपूरप्रवाहमिव कुण्ठितं धारायन्त्रम्।

दुर्धर्षमन्त्रप्रेरिता भुजगीव अवेदयत्।

सुव्यवस्थां नियतिः कथं सहेत?

निर्जला शफरीव वेल्लमाना।

राङ्गडा

कान्तारे नर्तितो मयूरः केन दृष्टः?

द्वितीयातिथिभूताय भूपतये।

निषद्वरमग्ना चमूरूपोतकीव सीदति तस्य बुद्धि।

पाटीरव्रतति काकोदरपरिवृत्ता।

चक्रारपंक्तिरिव व्यतीयाय हायनदिवसत्रियामादिपंक्तिः।

पुनर्नवा

संकल्पः

सर्षपमात्रावकाशोऽपि दुर्लभः।

सयद्धुमुद्रम् निषण्णाः।

शीर्षस्फोटनेन् कः लाभ?

हस्ताद् च्यवते।

कृशरः पच्यते।

कीटसदृशं जीवनम् नयन्ति।

कालापानीतिकल्पं।

सपत्नी

न निगरणं वरं न वोद्गरणम्।

हस्तामलकमिव स्पष्टं जातम्।

यावन्ति मुखानि तावन्ति वचनानि।

निम्बाधिरूढ़ातितिक्तालानुकल्पा।

आत्महस्तेनैव गृहं सन्दीप्तम्।

नयनयोरेव निशामनैषीत्।

वाग्दत्ता

प्रथमं भोजनं पश्चादन्यत्सर्वम्।

प्रणयेऽन्धः जातः।

प्रतिशाखं त्वं, प्रतिपत्रं चाऽहम्।

नर्तकी

दुग्धदग्धा तक्रमपि शीतलीकृत्य पिबन्ति।

न्यायमहं करिष्ये

मुखाभ्यन्तरस्था मक्षी या न निगरितुं शक्यते न नोद्वद्मितुं।

छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।

ध्रुवस्वामिनी

भाण्डं स्फुटयिष्यति।

मुखं कृष्णयन्ती

ज्ञात्वाऽपि मक्षिकां निगरिष्यति।

जलमिदानीं नासामतिक्राम्यति।

तदधोभूमिः प्रचस्खाल

वन्ध्या

विलम्बो वर्तते परमेश्वरगृहे, न तावदन्यायः।

न्यासरक्षा

स्नाहि दुग्धेन, फल पुत्रेण।

प्रतीक्षाया फलं मधुरं भवति

नरकेऽपि त्वत्कृते स्थानो न भविष्यति।

मरुन्यग्रोधः

चतुष्पथबलीवर्द इवः नासारज्जुविहीनो जातः।

सर्वं सम्भवति परमेश्वरेच्छयैव।

पुनर्नवा

केसरिणः कवयः सत्पुरुषाश्च न प्रवर्तन्तेऽभ्यस्तवर्त्मना।

अनाख्याता बाणभट्टात्मकथा

दुग्धमुखं दारकम्।

निर्मक्षिकम् तत् स्थानम्।

स्वप्नस्तु स्वप्न एव।

चित्रपर्णी

विवशताया एव नाम गान्धी।

न तावत्काष्ठभाण्डमसकृत् भोजनं पचति।

समयस्तावत् कं प्रतीक्षते?

दुर्विषचुलुकमिव निपीय सर्वं शुभाशुभम् क्वाग्नेर्निर्वापणम्?

रूपसौंदर्याकांक्षा कस्य चित्ते न वरीवर्ति?

हा हन्त! वैधस्यां सृष्टौ सर्वं विपर्यस्तमेव सन्दृश्यते।

यस्य वैरी ससुखं स्वपिति धिक्तस्य जीवनमिति।

स्वाभिमानं विक्रीय आत्मानञ्चाविलप्य शासनसेवा न कार्या।

मानवस्तु जन्मना जाह्नवीजलकल्पं एव जायते।

अङ्गीकृतं सुकृतिनो न परित्यजन्ति।

संस्कारैरेव मानवो मानवान्तरेभ्यो भिद्यते।

सांस्कारिका गुणा दुर्गुणाश्च अपरिवर्तितास्तिष्ठन्ति।

नास्यां सृष्टौ पाञ्चभौतिक्यां किमप्युपादानं निरर्थकम्।

स्फुट-पद्य-संकलन

(1)

अयि भो कृष्णकलेवर मधुकर!

स्वीकुरु मम विनयव्यवहारम्

हर निमंत्रणम्, प्रापय बन्धो!

ज्ञातिजनं तदुदारम्

सम्प्रति मम पुत्रस्य विवाहः प्रवर्तते

तत्कुरू साहाय्यम्

याहि, निमंत्रय परिजननिवहं मातृकुलं प्रतिवेशम्

अरिजनमपि सादरं निमंत्रय

किन्तु सहोदरवर्जम्।

तेनाऽहं रुष्टाऽस्मि मधुव्रत!

न ततोऽसौ प्रष्टव्यः!! **(पुनर्नवा, सपत्नी, पृष्ठ-56)**

(2)

क्षणे क्षणे स्नेहादिसारितास्तनयाः खलु गृहदीपाः

कन्याः सन्ति दिनोदयताराः स्फुट रवौ लीयन्ते!!

पञ्जरशुकास्तात! माणवकाः फलरसचाटुविपुष्टाः

कन्याः किन्तु गृहद्रुमचटकाः छोटिकया डीयन्ते!!

अन्नं धनं सुवर्णं पुत्राः सर्वेषामवतंसाः

कन्यास्तात! देवनैवेद्यं दानैर्नो शिष्यन्ते!! **(इक्षुगन्धा, भग्नपञ्जर, पृष्ठ-54)**

(3)

राशीभूतविशदहिमधवले

क्षीरसागरे सुतरां विमले!

शेषशायितनुलेखाललिता

विलसति कनीनिका सन्तुलिता!!

पवनविधूतबलाहकतरले

नभसि कौमुदीशकलकोमले!
अधरसंयता नयनविगलिता
कीलितहासकलानुबिम्बिता
तव नयनाकलिता!!
नामरूपसम्बोधनरहिता!
भवति नवा कविता!! **(राङ्गडा, एकचक्रः, पृष्ठ-59)**

(4)

निरीहयात्रा यदाङ्गीकृता
मयैकाकिना नियतिकल्पिता!
जनसङ्कुलकोलाहलकलिता
केवलनिराकारता फलिता!!
बहुधा पिरचितनवपरिवेशं
मयि सरसञ्च तवाभिनिवेशं
स्मरति तथाशेषं
स्वान्तः प्रकाशिता
रजनीनीरवता!! **(राङ्गडा, एकचक्रः, पृष्ठ-60)**

(5)

इतश्चोलीचूडाविचकिलघनामोदसुखदाः
सगन्धाः कर्णटीकुचकलशकाश्मीररजसाम्!
मुहुर्माहाराष्ट्रीवदनमदिराघ्रारसरसा
नभस्वन्तः शान्तं नहि विरहिदाहं विदधति!! **(इक्षुगन्धा, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी, पृष्ठ-60)**

(6)

आदाय दाम मयि कौसुममर्पयन्त्या
किञ्चिद् विकुञ्चनचलच्छिथिलोत्तरीयम्
आक्रम्य पक्ष्मलदृशा कुसुमायुधस्य
बाणैरिव स्फुटमहं परिवेष्टितोऽस्मि!! **(इक्षुगन्धा, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी, पृष्ठ-63)**

(7)

इयं सा लावण्यामृतसरिति यस्यां मम दृशौ

निरुच्छ्वासं मग्ने पदमपि लभेते न तुरितुम।

स्थिरीभूतं यस्यां प्रकृतितरलं सम्प्रति मनों

यया कामः कामं हृदयमिदमन्तर्व्यथयति!! **(इक्षुगन्धा, ताम्बूलकरङ्कवाहिनी, पृष्ठ-63-64)**

(8)

राम एव जानाति जीवने पराजिता वा वयं विजयिनः।

यदवशिष्यते विरते गीते गुञ्जनमेव न कि तद् बहु रे!! **(राङ्गडा, एकचक्रः, पृष्ठ-61)**

(9)

प्रियस्मृतिरागता रुदितम्मयाऽलम्!!

गता घासाय तत्र स्मृतिरवाप्ता

क्षुरप्रं करतले, रुदितम्मयाऽलम्!!

गता सलिलाय तत्र स्मृतिरवाप्ता

घटं धृत्वा करे, रुदितम्मयाऽलम्!!

गता पचनाय तत्र स्मृतिरवाप्ता

गृहीत्वा वेल्लनं रुदितम्मयाऽलम्!!

गता शयनाय तत्र स्मृतिरवाप्ता......**(पुनर्नवा, सङ्कल्पः, पृष्ठ-53)**

सहायक-ग्रन्थ नामानुक्रमणिका

सहायक-ग्रन्थ-नामानुक्रमणिका

अभिराज-वाङ्मय

1. अभिराज राजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनम्, वैजयन्त प्रकाशन, 8, बाघम्बरी रोड़, इलाहाबाद 1988
2. वही, वामनावतरणम्, अक्षयवट प्रकाशन, 26, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद 1994
3. वही, आर्यान्योक्तिशतकम्, वैयजन्तप्रकाशन, इलाहाबाद, 1975
4. वही, नवाष्टकमालिका, वही, 1976
5. वही, पराम्बाशतकम्, वही, 1981
5. वही, शताब्दीकाव्यम्, वही, 1987
6. वही, अभिराजसप्तशती, वही, 1987
7. वही, धर्मानन्दचरितम्, वही, 1992
8. वही, पञ्चकुल्या, वही, 1993
9. वही, अरण्यानी, वही, 1999
10. वही, संस्कृतशतकम्, वही, 1999
11. वही, करशूलनाथमाहात्म्यम्, वही, 1996
12. वही, कस्मै देवाय हविषा विधेम, वही, 1996
13. वही, अभिराजसहस्रकम्, वही, 2000
14. वही, मृगाङ्कदूतम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2003
15. वही, चर्चरी, वही, 2004
16. वही, जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्, वैजयन्तप्रकाशन, 2010
17. वही, मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्, श्री भद्रङ्करोदय शिक्षण ट्रस्ट, गोधरा (नन्दनवनकल्पतरू प्रकाशन), 2008
18. वही, वाग्वधूटी, अक्षयवटप्रकाशन, इलाहाबाद, 1978

19. वही, मृद्वीका, वैजयन्तप्रकाशन, 1985
20. वही, श्रुतिम्भरा, वही, 2004
21. वही, मधुपर्णी, वही, 2000
22. वही, कनीनिका, वही, 2001
23. वही, मत्तवारणी, वही, 2007
24. वही, शालभञ्जिका, वही, 2009
25. वही, हविर्धानी, वही, 1984
26. वही, प्रमद्वरानाटिका, 1984
27. वही, विद्योत्तमानाटिका, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली–7, 1992
28. वही, प्रशान्तराघवम्, वैजयन्तप्रकाशन, 2008
29. वही, लीलाभोजराजम्, वही, 2010
30. वही, नाट्यपञ्चगव्यम्, वही, 1974
31. वही, अकिञ्चनकाव्यम्, वही, 1974
32. वही, नाट्यपञ्चामृतम्, वही, 1977
33. वही, चतुष्पथीयम्, वही, 1983
34. वही, रूपरूद्रीयम्, वही, 1986
35. वही, नाट्यसप्तपदम्, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली–7, 1996
36. वही, नाट्यनवरत्नम्, वैजयन्तप्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
37. वही, नाट्यनवग्रहम्, वही, 2007
38. वही, नाट्यनवार्णम्, वही, 2010
39. वही, इक्षुगन्धा, वही, 1986
40. वही, राङ्गड़ा, वही, 1992
41. वही, पुनर्नवा, वही, 2008
42. वही, चित्रपर्णी, वही, 2000
43. वही, छिन्नमस्ता, वही, 2010
44. वही, कौमारम्, राष्ट्रिय संस्कृतसंस्थान, नई दिल्ली, 2009

45. वही, अभिनवपञ्चतन्त्रम्, वैजयन्तप्रकाशन, 2009
46. वही, कान्तारकथा, वैजयन्तप्रकाशन, 2009
47. वही, अभिराजयशोभूषणम्, वैजयन्तप्रकाशन, 2007
48. वही, शास्त्रालोचनम्, अक्षयवटप्रकाशन, 1995
49. वही, समीक्षासौरभम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2003
50. वही, बालीद्वीपे भारतीया संस्कृति, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली, 2009
51. वही, संस्कृतसाहित्य में अन्योक्ति, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, 1985
52. वही, सुवर्णद्वीपीय रामकथा, राष्ट्रीय संस्कृतसंस्थान, नई दिल्ली, 1996
53. वही, भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीकः बालीद्वीप, राष्ट्रीय संस्कृतसंस्थान, नई दिल्ली, 1977
54. वही, मणिकाञ्चन, अक्षयवटप्रकाशन, 1991
55. वही, सप्तधारा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि., वाराणसी, 2004
56. वही, संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010
57. वही, शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008
58. वही, स्वाध्यायपर्व, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली, 2009
59. वही, सेजराह कसुसास्त्रान संसकिर्त, नवच्छाया मुद्रणालय, देनपसार, 1988
60. वही, विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम्, अक्षयवटप्रकाशन, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद, 2002
61. वही, रामायणककविन्, सम्पूर्णानन्द वि.वि. प्रकाशन, वाराणसी, 1995
62. वही, रसों की संख्या, वही, 2007
63. वही, महालक्ष्मीमुक्तिसंवादः, डेवलपमेण्ट एजूकेशन इन्टरनेशनल सोसायटी, पुणे (महाराष्ट्र), 2010
64. वही, देववाणीसुवासः, देववाणी परिषद्, वाणीविहार, नई दिल्ली, 1993
65. वही, प्रतानिनी, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996
66. वही, विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामृतम्, दिल्ली, संस्कृत अकादमी, 2000
67. वही, संस्कृतवाड्मय में हिमाचल, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009

68. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, साहित्यकल्पतरू : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
69. वही, अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, वही, 2005
70. वही, दो पात नींबू–तीन पात अमोला, वही ,1968
71. वही, मुक्तधारा, कोटद्वार (पौडी गढ़वाल), 1972
72. वही, सपनों में डूब गया मन, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
73. वही, पलकों के बन्द द्वार, वैजयन्त प्रकाशन, 1990
74. वही, तटस्था, रत्ना पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, 2002
75. वही, वेदना, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966
76. वही, पनघट, वही, 1967
77. वही, मुक्तिदूत, अशोक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, 1975
78. वही, गृहत्याग, वही, 1975
79. वही, पूर्णकाम, वही, 1975
80. वही, देवराहजारी, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994
81. वही, रक्तवैतरणी, शारदा संस्कृतसंस्थान, वाराणसी, 2005
82. वही, विधवा, ग्रन्थाकार प्रकाशन, 1975
83. वही, पढ़ो और बनो, अशोक प्रकाशन मंदिर, चाहचन्द, इलाहाबाद, 1975
84. वही, नया विहान, हरिप्रकाशन, कर्नलगञ्ज, इलाहाबाद, 1976
85. वही, रक्ताभिषेक, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985

अन्य सहायक-ग्रन्थ

86. कलानाथ शास्त्री, आधुनिक संस्कृत साहित्येतिहास, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2011
87. केशव मुसलगॉवकर, आधुनिक संस्कृत काव्य परंपरा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004
88. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ. प्रभाकर शास्त्री, डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2003

89. दण्डी, काव्यादर्श, आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1991
90. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् 2042
91. वही, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, (हिन्दी अनुंसधान परिषद्) आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली–6, संवत 2011, सन् 1954
92. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, डॉ. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वराणसी–1, 1970
93. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली, 2008
94. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, 22–ए, सरोजनी नायडूमार्ग, इलाहाबाद, 2001
95. एस. एन. दासगुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास भाग–1, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2001
96. हरिकृष्णदास गोयन्दका, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, संवत् 2061
97. पण्डित रामेश्वर भट्ट, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू.ए., जवाहरनगर, नई दिल्ली, 2001
98. रामचन्द्र दत्तात्रेय रानाडे, उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2011
99. डॉ. कृष्णाकांत पाठक, धर्मदर्शन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2011
100. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2013
101. डॉ. राममूर्ति शर्मा, वैदिक साहित्य का इतिहास, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली, 1987
102. डॉ. दीप्ति कमल, पुरातत्त्व संस्कृत के पुरोधा, राव पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009
103. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1963
104. धनञ्जय, दशरूपक, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1961
105. डॉ. कृष्ण कुमार, अलंकार शास्त्र का इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995

106. डॉ. लक्ष्मीनारायण पुरोहित, अलंकार समीक्षा, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1997
107. डॉ. जगन्नाथ, अलंकार साहित्य का इतिहास, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2000
108. दण्डी, काव्यादर्श, धर्मेन्द्र कुमार गुप्त, मेहरचंद लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1973
109. हेमचन्द्र, काव्यानुशासनम्, निर्णय सागर, मुबंई, 1933
110. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, प्र.सं. 2031
111. भामह, काव्यमीमांसा, बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी, 1928
112. रूद्रट, काव्यालंकार, निर्णय सागर, मुम्बई, 1933
113. जयदेव, चन्द्रालोक, सुबोधचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1966
114. श्यामसुन्दरदास, साहित्यलोचन, इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन लि., प्रयाग, 2011
115. डॉ. सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यशास्त्र, अलंकार प्रकाशन, नई दिल्ली–6, 1963
116. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, 5 बी, कस्तुरबानगर, सिगरा, वाराणसी, 1999
117. पाण्डेय तथा व्यास, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, साहित्य–निकेतन, 1964
118. डॉ. हीरालाल शुक्ल, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971
119. प्रो. कृष्णलाल, आधुनिक भारत में संस्कृत की उपादेयता, नागप्रकाशन, दिल्ली, 1992
120. कलानाथ शास्त्री, आधुनिक काल का संस्कृत गद्यसाहित्य, वही, 1995
121. देवर्षि कलानाथ, पद्म शास्त्री, आधुनिक संस्कृतसाहित्येतिहासः, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2011
122. डॉ. रामजी उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, 2004
123. रामकृष्ण शर्मा, संस्कृत एवं अभिनव भारत, नागप्रकाशन, दिल्ली, 1989
124. प्रो. (डॉ.) सुभाष वेदालंकार, वाङ्मय विमर्श, अलंकार प्रकाशन, जयपुर, 2014
125. कलानाथशस्त्री, भारतीय संस्कृतिः सिद्धान्त और स्वरूप, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2004
126. कलानाथशास्त्री, संस्कृत साहित्य का इतिहास, साहित्यागार, जयपुर, 2009

127. डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1973
128. धनञ्जय, दशरूपकम्, डॉ. श्रीनिवासशास्त्री, दुर्गा ऑफसेट प्रिण्टर्स, गढ़रोड., मेरठ, 1979
129. बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति, रवीन्द्र प्रकाशन, पाटनपुर बाजार, ग्वालियर, 1975
130. डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, भारतीयदर्शन, रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ 1986
131. श्री हर्ष, नैषधीयचरितम्, नारायणराम आचार्य 'काव्यतीर्थ', निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई 1952
132. भर्तृहरि, नीतिशतक, श्री तरणीश झा, रामनारायणलाल विजय कुमार, कटरा रोड़, इलाहाबाद, 1985
133. शास्त्री ब्रह्मदत्त, लडूराम त्रिवेदी, स्मृति संदर्भ, सी. क्लाइव रो, कलकत्ता, 1952
134. ममता जैतली, श्री प्रकाश शर्मा, आधी आबादी का संघर्ष, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 2010
135. तैत्तिरीयोपनिषद्, चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्यभण्डार मेरठ, 1985
136. भर्तृहरि, नीतिशतक, महाबलशास्त्री की टीका, निर्णयसागर प्रेस,बम्बई, सं. 1938
137. वेदव्यास, महाभारत, मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर सं. 2027
138. कालिदास, रघुवंश, आचार्य कृष्ण कुमार, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, सं. 1972
139. वाल्मीकि, रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1980
140. कपिल, सांख्यकारिका, डॉ. रामकृष्णआचार्य, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सं. 1915
141. प्रो. उमाशंकर शर्मा, सर्वदर्शन संग्रह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सं. 1964
142. नारायण पण्डित, हितोपदेश (मित्रलाभ), न्यायाचार्य श्रीकृष्ण बल्लभाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सं. 2039
143. ऋग्वेद, अपौरूषेय, स्वाध्याय मंडल, पारडी, सं. 1967, 70, 78 (3 भाग क्रमशः)
144. यजुर्वेद, अपौरूषेय, संस्कृति संस्थान, बरेली, सं. तृतीय 1965
145. सामवेद, अपौरूषेय, संस्कृति संस्थान, बरेली, सं. तृतीय 1965
146. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, अथर्ववेद संहिता, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभमि, मथुरा, 2010

147. डॉ. श्री कृष्णमणि त्रिपाठी, अष्टादश पुराण परिचय, भारतीय साहित्य विद्यालय, काशी सं. 2023
148. भारवि, किरातार्जुनीयम्, बदरीनारायण मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1982
149. बाणभट्ट, कादम्बरी, पं. रामतेजशास्त्री, पंडित पुस्तकालय, काशी, 1958
150. कालिदास, रघुवंशमहाकाव्यम्, श्रीकृष्णमणिशास्त्री, पं. छन्नुलाल ज्ञानचन्द पाठक, संस्कृत पुस्तकालय, कचौड़ी गली, वाराणसी, सं. 2016
151. भर्तृहरि, नीतिशतक, गंगासराय, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1978
152. विष्णुशर्मा, पञ्चतन्त्रम्, श्यामाचारण पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1983
153. भवभूति, उत्तररामचरितम्, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी –1, पं. संस्करण, सं. 1960
154. माघ, शिशुपालवधम्, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1986
155. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2005
156. सरिता प्रभाकर, फिक्शन एण्ड सोसायटी, रावत पब्लिकेशन्स, न्यू देहली, 2011

व्याकरण एवं कोश-ग्रन्थ

164. पाणिनी, **अष्टाध्यायी सूत्रपाठ,** श्री नारायण मिश्र, गोकुलदास संस्कृतग्रंथमाला, वाराणसी, सं. 1971
157. नारायणराम आचार्य, **अमरकोश,** चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, सं. 1995
158. राजा राधाकान्तदेव बहादुर, **शब्दकल्पद्रुम,** मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, 1961
159. श्री वरदराज, **लघु सिद्धान्त कौमुदी,** धरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, दिल्ली, 1977
160. डॉ. कपिल द्विवेदी, **प्रौढ़ रचनानुवाद कौमुदी,** विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2004
161. भीमसेन शास्त्री, लघुसिद्धान्त कौमुदी, **भैमी व्याख्या,** भैमी प्रकाशन 537, लाजपतराज मार्कट, दिल्ली, 1988
162. वामन शिवराम आप्टे, **संस्कृत हिन्दी कोश,** रचना प्रकाशन, चाँदपोल बाजार, जयपुर, 2005

163. **मानक हिन्दी-अंग्रेजी कोश,** डॉ. एस.एस. गुप्ता, डॉ. सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 2004

164. कॉम्पेक्ट ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, वाई.एम.सी.ए. लाइब्रेरी बिल्डिंग, जय सिंह रोड़, न्यू देहली, 2003

165. इल्यूस्ट्रेटेड ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पेंग्विन बुक्स, इण्डिया, 2007

166. इल्यूस्ट्रेटेड फेमिली इनसाइक्लोपीडिया, डॉर्लिंग किंडर्सले लिमिटेड, लंदन (ए पेंग्विन कम्पनी), 2007

शोध-पत्रिकाएं

167. सागरिका, सागरिका समिति, महामनापुरी, वाराणसी (उ.प्र.)

168. भारती, भारती भवन, बी–15, न्यू कालोनी, जयपुर (राजस्थान)

169. स्वरमङ्गला, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर (राजस्थान)

170. दृक्, दृग्–भारती, एम.आई.जी. रोड़, यूपी, इलाहाबाद

171. कथासरित्, कथा–भारती, प्रयागः, स्वस्तिका, राजपुरम, कोलकाता

172. अर्वाचीन संस्कृतम्, देववाणी परिषद्, दिल्ली

173. संस्कृतमञ्जरी, दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली

174. आधुनिक साहित्य में लोक चेतना (शोधसार), राजकीय महाविद्यालय, भवानीमण्डी झालावाड़ (राजस्थान)

175. मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर (राजस्थान)